CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१५

हरिॐ

॥ श्री अभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतमाम् ॥

श्री कैलासविद्यालोकस्य पञ्चत्रिंशः (३५) सोपानः

काठकोपनिषत्

आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशाङ्करभाष्यसमेता

'गोविन्दप्रसादिनी' टिप्पणीकार विद्यावाचस्पति

महामण्डलेश्वर स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज

'हिन्दी' व्याख्याकार वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य यतीन्द्रकुलतिलक श्रीकैलासपीठाधीश्वर

महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज

सम्पादक :

डॉ० उमेशानन्द शास्त्री

एम. ए., एल-एल. बी., पी. एच. डी., व्याकरणाचार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हरि ॐ

।। श्री अभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतमाम् ।।

श्री कैलासविद्यालोकस्य पञ्चत्रिंशः (३५) सोपानः

काठकोपनिषत्

आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशाङ्करभाष्यसमेता

'गोविन्दप्रसादिनी' टिप्पणीकार विद्यावाचस्पति

महामण्डलेश्वर स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज

•

'हिन्दी' व्याख्याकार वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य यतीन्द्रकुलतिलक श्रीकैलासपीठाधीश्वर

महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज

•

सम्पादक :

डॉ० उमेशानन्द शास्त्री

एम. ए., एल-एल. बी., पी. एच. डी., व्याकरणाचार्य

•

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक—
श्री कैलाश आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति
मुनि की रेती, ऋषिकेश (उ०प्र०)

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

प्रथम संस्करण २००० मूल्य ६ रुपये पुरुषोत्तमी एकादशी वि० सं० २०३६

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

१. श्री कैलास आश्रम मुनि की रेती, ऋषिकेश—२४९२०१
२. श्री कैलास आश्रम, उजेली, उत्तरकाशी—२४९१९३
३. श्री दशनाम संन्यास आश्रम, भूपतवाला, हरिद्वार—२४९४०१
४. श्री राम आश्रम, समानामण्डी, पटियाला—१४७१०१
५. श्री दक्षिणामूर्ति सं० म० विद्यालय, मिश्रपोखरा, वाराणसी—२२१४०१
६. श्री चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी—२२१००१
७. श्री चौखम्बा विश्वभारती, चौक, वाराणसी—२२१००१
८. श्री मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी—२२१००१

मुद्रक—श्री कैलास विद्या प्रेस, श्री ब्रह्मानन्द आश्रम, मुनि की रेती, ऋषिकेश (उ०प्र०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पादकीय

'काठकोपनिषत्' अद्वैत वेदान्त का सिद्धान्त समझने वालों के लिए मौलिक एवं उपादेय ग्रन्थ है। 'कठ' शोके धातु से काठकोपनिषत् का नामकरण हुआ क्योंकि नचिकेता के पिता को पुत्र की आस्तिक्य बुद्धि को देखकर शोक हुआ था। 'मृत्यवे त्वा ददामि' (तुझे मृत्यु को दूंगा) ऐसा झुँझलाकर पिता ने अपने पुत्र को कह डाला। इधर पुत्र ब्रह्मविद्या प्राप्त करने की इच्छा से यमराज के पास गये। मृत्यु को जीतने का उपाय ब्रह्मविद्या ही है, ऐसा इसके उपसंहार में कहा है—

"ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युः"

मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ उसे कहाँ-कहाँ तक भटका सकती हैं, इसका मार्मिक विवेचन नचिकेता-यमराज संवाद में किया गया है। शांकर भाष्य एवं आनन्दगिरि टीका का आश्रयण कर अर्थ चिन्तन करने से विषयों से सहज विरक्ति एवं शोक से पार जाने रूप साधन अर्थात् ब्रह्मविद्या अनुशीलन के प्रति दृढ़ अनुरक्ति हो जाती है। विद्यावाचस्पति महामण्डलेश्वर स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज की 'गोविन्द प्रसादिनी' टिप्पण उन ग्रन्थियों का भी भेदन कर डालती हैं, जहाँ भाष्यकार एवं टीकाकार पाठकों को विचार का अवकाश देते हैं किन्तु श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठा के अभाव में वहाँ तक उनकी बुद्धि नहीं पहुँच पाती। उदाहरणार्थ प्रथमाध्याय प्रथमवल्ली के पच्चीसवें मन्त्र के भाष्य की टिप्पण देखिए।

वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य यतीन्द्रकुलतिलक कैलासपीठाधीश्वर महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज की हिन्दी व्याख्या के साथ प्रस्तुत प्रकाशन वेदान्त प्रेमियों की तीव्रतर जिज्ञासा को शान्त करेगा। ईश, मुण्डक, माण्डूक्य एवं बृहदारण्यक उपनिषत् के प्रकाशन के बाद पाठकों को अन्य उपनिषदों की प्रतीक्षा थी/कई पत्र भी विज्ञ पाठकों के आते रहे। भगवान् विश्वनाथ की अपार महिमा एवं भगवती मन्दाकिनी की अहैतुकी कृपा से सम्पादन कार्य निर्विघ्न हो पाया। आशुतोष भगवान् शंकर अवशिष्ट उपनिषदों को भी आप तक यथाशीघ्र पहुँचाने में प्रेरक का कार्य करते रहेंगे ऐसी उनके श्रीचरणों में प्रार्थना है।

प्रस्तुत संस्करण के सम्पादन में जो कुछ भी स्खलन हैं, उनके लिए विज्ञ पाठक क्षमा करेंगे। इसमें जो कुछ भी अच्छाई है, वह गुरुजनों का कृपा प्रसाद है। अन्त में "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये" ॐ शम्

कैलास आश्रम, ऋषिकेश
पुरुषोत्तमी एकादशी

भवदीय
डॉ० उमेशानन्द शास्त्री

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तावना

दिशन्तु शम्मे गुरुपादपांसवः ।

शुक्ल और कृष्ण के भेद से दो भेद वाले यजुर्वेद की १०१ शाखायें थीं। इनमें से कृष्ण यजुर्वेद की कठशाखा के अन्तर्गत कठोपनिषत् आती है। इसमें यम और नचिकेता के सम्वादरूप से ब्रह्मविद्या का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस उपनिषत् पर भाष्य लिखते समय आद्य भगवत्पाद शंकराचार्य जी ने ब्रह्मविद्या के आचार्य सूर्यपुत्र यम और नचिकेता को अत्यन्त आदर के साथ नमस्कार किया है। इससे आचार्य ने न केवल ब्रह्मविद्या के प्रति आदर दिखलाया है, अपितु ब्रह्मविद्या के प्रवक्ता आचार्य और विद्यार्थी के प्रति भी अत्यन्त आदर सूचित किया है। गुरु-शिष्य सम्वाद के रूप में इसका अवतरण होने के कारण यह उपनिषत् सरल तथा सुबोध्य है। इसके कुछ मन्त्रों का शब्दतः और कुछ मन्त्रों का अर्थतः उल्लेख श्रीमद्भगवद्गीता में भी किया गया है। उपनिषत् का अर्थ ब्रह्मविद्या होता है, जिसका गम्भीर विवेचन इसमें मिलता है। साथ ही नचिकेता का जीवन पाठकों के सामने अनुपम आदर्श के रूप में उपस्थित किया गया है। नचिकेता के पिता वाजश्रवस को जहाँ एक ओर विश्वजिन्नामक यज्ञ के फल की आकांक्षा है, वहाँ दूसरी ओर पुत्र व्यामोह उससे अनर्थ करवा रहा है। फलतः अपनी समस्त सम्पत्ति का विभाग ऋषि ने कर दिया था, अर्थात् अच्छी-अच्छी गायें नचिकेता के हिस्से में और निकम्मी गायें अपने हिस्से में कर रखी थीं। दान के लिये उपस्थित की गयीं जीर्ण-शीर्ण गौओं को देख श्रद्धाविष्ट नचिकेता से रहा नहीं गया। वह बाल्य सुलभ चापल्य प्रदर्शित करते हुये अपने पिता से कहता है "तत कस्मै मां दास्यसि" (अर्थात् हे पिता! आप मुझे किस ऋत्विग्विशेष को दोगे) नचिकेता का प्रश्न अत्यन्त समुचित है; क्योंकि सर्वस्व दान किये बिना विश्वजित् यज्ञ पूर्ण नहीं होता। हम भी पिता की सम्पत्ति हैं, जिसे दानकर हमारे पिता इस यज्ञ को सम्पन्न करें और इसके फल का भागी बनें। इस प्रकार कई बार पूछने पर क्रोधावेश में ऋषि ने कहा कि मैं तुझे मृत्यु को दूंगा। क्रोधावेश में कहा हुआ भी पिता का वाक्य उपेक्ष्य नहीं है। अतः पिता के वाक्य को सत्य करने के लिये नचिकेता अपने पुण्य के फल स्वरूप सदेह यमलोक में पहुँच जाते हैं। उस समय यमराज वहाँ पर नहीं थे। उनकी अनुपस्थिति में भोजनाच्छादनादि की चिन्ता छोड़कर वे यमराज के द्वारपर तीन दिनों तक पड़े रहे; क्योंकि पिता के वाक्यानुसार वे यमराज को समर्पित हो चुके थे। उनके शरीर पर यमराज का ही पूर्ण अधिकार था। अतः उनसे मिले बिना उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। तीन दिनों के बाद जब यमराज आये तो अतिथि के महत्व को जानने वाले यम ने एक-एक उपावास के बदले एक-एक वरदान नचिकेता को दिया।

इस पर नचिकेता ने प्रथम वरदान से पितृसन्तोष, द्वितीय वरदान से स्वर्गलोक प्राप्ति के साधनभूत अग्निविज्ञान और तीसरे वर से आत्मज्ञान माँगा है। इन तीनों वरों के क्रम में भी अद्‌भुत रहस्य प्रतीत होता है। पिता के सत्य रक्षा के लिये नचिकेता उनकी इच्छा के विरुद्ध यमलोक चले आये थे। इससे उनके पिता के मन में स्वभावतः खेद था। ऐसी स्थिति में उन्हें सर्व प्रथम यह आवश्यक जान पड़ा कि पिता को वे सन्तुष्ट करें; क्योंकि पितृसन्तोष के बिना उन्हें भी शान्ति नहीं थी। लोक में यदि कोई आप से असन्तुष्ट एवं दुःखी हो, तो आप भी सुख की नींद नहीं सो सकते। फिर भला पूज्य पिता को सन्तुष्ट किये बिना कोई पुत्र कैसे सुखी हो सकता है। इस वरदान में पितृपरितोष के साथ ही अपना नवजीवन वरदान माँगना भी अत्यन्त बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

लौकिक शान्ति के बाद मानव को स्वभाव से ही पारलौकिक सुख की इच्छा होती है। पारलौकिक सुख की प्रबल आकांक्षा हो जाने पर साधक ऐहिक सुख की तिलाञ्जलि कर देता है। इसीलिये नचिकेता ने दूसरे वर से स्वर्गलोक प्राप्ति के साधन अग्निविज्ञान को माँगा, जो एकमात्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परोपकार का ही सूचक है। स्वयं उन्हें स्वर्ग सुख की आकांक्षा नहीं थी। जैसा कि यमराज के द्वारा प्रलोभन दिये जाने पर भी आत्मज्ञान के लिये वे दृढ़ रहे और अपने लक्ष्य से विचलित नहीं हुये। तात्पर्य यह है कि जैसे प्रथम वर में नचिकेता को पिता को शान्ति अभीष्ट थी वैसे ही द्वितीय वर में मनुष्यमात्र की हितचिन्ता भी अभीष्ट है। सबके हित में उनका भी हित ही है।

इस प्रकार जब यमराज ने देखा कि नचिकेता के मन में विश्वकल्याण की कामना प्रदीप्त है और वे स्वयं ऐहिक तथा पारलौकिक भोगों से सर्वथा उदासीन हैं, इनमें पूर्ण विवेक-वैराग्य शम-दमादि साधन हैं और इनमें तीव्र मुमुक्षा की अग्निज्वाला धधक रही है, तो विवश हो नचिकेता की भूरिशः प्रसंशा करते हुये यमराज को उनकी शान्ति के लिये ज्ञानामृत की मूसलाधार वर्षा करनी पड़ी। वही ज्ञानवर्षा सम्पूर्ण विश्वकल्याण के लिये आज भी कठोपनिषत् के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत है; किन्तु इससे विशुद्ध बोधरूप अंकुर का उदय उसी के हृदय में हो सकता है, जो नचिकेता के समान साधन चतुष्टय सम्पन्न होगा। उदार जलधर जल तो सभी जगह समानरूप से वर्षाते हैं; किन्तु उससे लाभ योग्यतानुसार विभिन्न भूमियों में पृथक्-पृथक् होता है। ऐसा ही शास्त्रोपदेश के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। आत्मज्ञान के लिये ईश्वर कृपा, शास्त्र कृपा, गुरु कृपा और आत्मा की कृपा होनी चाहिये। इनमें से तीन की कृपा सब पर समानरूप से है; किन्तु आत्मकृपा के न्यूनाधिक्य के फल स्वरूप परिणाम में भेद हो जाता है।

इस अनुपम ज्ञानामृत का पानकर अमर जीवन की तीव्र आकांक्षा से प्रेरित हो हमें तदनुरूप योग्यता सम्पादन करनी चाहिये; क्योंकि मनुष्य जीवन का यही परम लक्ष्य है। कारण सहित दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति इस मानव जीवन में ही सम्भव है। इसके बिना जीवन अपूर्ण है और इसकी प्राप्ति का एकमात्र उपाय औपनिषद आत्मविज्ञान ही है। जो उपनिषत् के श्रवण, मनन और निदिध्यासनरूप विचार से ही सुलभ हो सकता है।

प्रस्तुत संस्करण में विश्व विश्रुत शांकरभाष्य तथा आनन्दगिरि टीका के सहित कैलास आश्रम की प्राचीनतम टिप्पणियाँ एवं भाष्य की सरल सुबोध सुस्पष्ट हिन्दी में व्याख्या भी सम्मिलित है, जो अनुपम है। इससे पहले ऐसा कोई संस्करण इस कठोपनिषत् का नहीं निकला था। कैलास आश्रम शताब्दी महोत्सव प्रसंग पर संस्थापित कैलास विद्या प्रेस से अनेकों अमूल्य ग्रन्थरत्न प्रकाशित हो चुके हैं। इस कठोपनिषत् की टिप्पणियों को प्रेसकापी करने में न्यायाचार्य श्रीमान् रामनरेशदास शास्त्री जी का प्रयत्न श्लाघनीय रहा है। शांकरभाष्य की हिन्दी व्याख्या करते समय हमारे विचारों को लिपिबद्ध करने में वेदान्ताचार्य श्री ब्रह्मचारी रामानन्द शास्त्री ने अथक परिश्रम किया है। सर्वाधिक परिश्रम तथा बुद्धि कौशल इसके सम्पादक डॉ० उमेशानन्द शास्त्री जी तथा उनके सहायक श्री स्वामी केशवानन्द सरस्वती जी का हम मानते हैं; जिसके फलस्वरूप पाठकों के सम्मुख इस अभिनव संस्करण को प्रस्तुत करते हुये हमें अपार हर्ष हो रहा है। अतः इन सभी महानुभावों की हम मंगल कामना करते हैं।

इसके प्रकाशन से कैलास आश्रम के पूर्वाचार्य की कृति का संरक्षण होगा, साथ ही उनके अनुपम विचारों से विद्वत्समाज तथा सामान्य जिज्ञासुओं का भी परम हित होगा। ऐसा कैलास आश्रम के अधिष्ठातृदेव तथा पूर्वाचार्यों से हम कृपा का वर माँगते हैं। इसी प्रकार शेष उपनिषदों का प्रकाशन भी यथाशीघ्र सम्पन्न हो जायगा, ऐसी सम्भावना है। इत्यों शम्।

भगवत्पादीयः
महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि
कैलास आश्रम, ऋषिकेश।

दिनांक २६-९-८२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयानुक्रमणिका

प्रथमाध्याय प्रथमावल्ली

अवतरणभाष्य	१
वाजश्रवा का दान	५
नचिकेता की विचार पद्धति	८
पिता पुत्र सम्वाद	८
यमलोक में नचिकेता	११
वर माँगने के लिए यमराज का अनुरोध	१३
नचिकेता का पितृ सन्तोष रूप प्रथम वर	१४
स्वर्ग के स्वरूप का वर्णन	१६
स्वर्ग साधन अग्नि विद्यारूप द्वितीय वर	१७
वर देने के लिए यमराज की यह प्रतिज्ञा	१७
नाचिकेत नग्नि चयन करने का फल	२१
नचिकेता का तृतीय वर आत्म रहस्य	२५
नचिकेता की परीक्षा	२६
अपनी माँग पर अडिग नचिकेता	२७
यमराज का पुनः प्रलोभन	२८
नचिकेता की निस्पृहता	३१

प्रथमाध्याय द्वितीयवल्ली

श्रेय प्रेय की विवेचना	३७
अविद्या ग्रस्त पुरुषों की दुर्दशा	४३
आत्मज्ञान का दौर्लभ्य	४६
कर्मफल की अनित्यता	५१
नचिकेता का त्याग प्रशंसनीय है	५२
आत्मज्ञान का फल	५३
सर्वातीत वस्तु के विषय में नचिकेता का प्रश्न	५५
प्रणव का उपदेश	५६
आत्मतत्त्व का निरूपण	५८
आत्मविज्ञान से शोक की निवृत्ति	६४
आत्मा की प्राप्ति आत्मकृपा साध्य है	६५
आत्मानुभूति का अनधिकारी	६६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रथमाध्याय तृतीयवल्ली

औपाधिक आत्मा में भेद निरूपण ६८
शरीरादि उपाधि वाला आत्मा का रथादि रूपक ७०
अज्ञानी की विवशता ७२
ज्ञानी की स्वाधीनता ७२
अविवेकी की संसार गति ७३
विवेकी की परम पद प्राप्ति ७३
इन्द्रियादिकों के तारतम्य का वर्णन ७४
आत्मा सुख-समृद्धि से ग्रहण योग्य है ७७
लय चिन्तन प्रकार ७९
उद्बोधन ८०
निर्विशेष आत्मज्ञान ही अमरत्व का साधन है ८१
प्रकृत आत्म विज्ञान की महिमा ८२

द्वितीय अध्याय प्रथम वल्ली

इन्द्रियों की बहिर्मुखता आत्मदर्शन में बाधक ८४
विवेकी और अविवेकी का भेद ८६
आत्मज्ञानी की सर्वज्ञता ८७
ब्रह्मज्ञानी की शोक निवृत्ति ८८
आत्मज्ञानी की निर्भीकता ८९
ब्रह्मज्ञानी का सर्वत्र आत्मदर्शन ९०
अरणिस्थ अग्नि में ब्रह्मदृष्टि ९२
प्राण में ब्रह्मदृष्टि ९२
भेद दर्शन की निन्दा ९३
हृदयस्थ ब्रह्मदर्शन का फल ९५
भेद दर्शन की निन्दा ९६
अभेद दर्शन की प्रशंसा ९६

द्वितीय अध्याय द्वितीय वल्ली

अन्य प्रकार से ब्रह्म का अनुसन्धान ९७
आत्मा ही जीवन १०१
मरण के बाद जीव की गति १०३
गुह्य ब्रह्म का उपदेश १०४
आत्मा में औपाधिक प्रतिरूपत्व १०५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा की अलिप्तता १०६
आत्मज्ञानी को ही नित्यसुख प्राप्त होता है १०८
आत्मा सबका प्रकाशक होता हुआ अप्रकाश्य है १११

द्वितीय अध्याय तृतीयवल्ली

अश्वत्थ वृक्ष के समान संसार का वर्णन ११२
परमेश्वर का ज्ञान अमरत्व का साधन है ११५
परमेश्वर सब का शासक है ११६
परमेश्वर को जानें विना पुनर्जन्म होना अनिवार्य है ११६
परमेश्वर दर्शन में स्थान भेद का तारतम्य ११७
फल सहित आत्मज्ञान का प्रकार ११८
परम पद प्राप्ति का प्रकार १२१
आस्तिक बुद्धि आत्मोपलब्धि का साधन है १२३
साधक अमरत्व का अनुभव कब करता है १२६
उपसंहार १२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

काठकोपनिषत्

सटिप्पणटीकाद्वयसंवलितश्रीमच्छाङ्करभाष्यसमेता ।

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भाव :—वह परमात्मा हम (आचार्य और शिष्य एवं वक्ता और श्रोता) दोनों की साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ-साथ पालन करें, हम दोनों साथ-साथ विद्याजन्य सामर्थ्य का सम्पादन करें। हम दोनों का अधीत (ज्ञान) तेजस्वी हो और हम (कभी भी परस्पर) द्वेष न करें। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

(अथ श्रीमच्छङ्करभगवत्पादविरचितं भाष्यम्)

ॐ नमो भगवते वैवस्वताय मृत्यवे ब्रह्मविद्याचार्याय नचिकेतसे च ।

(अथाऽऽनन्दगिरिटीका)

[1]धर्माधर्माद्यसंसृष्टं [2]कार्यकारणवर्जितम् ॥
कालादिभिरविच्छिन्नं ब्रह्म यत्तन्नमाम्यहम् ॥१॥

यः [3]साक्षात्कृतपरमानन्दो [4]यावदधिकारं याम्ये पदे वर्तमानो[5]ऽकर्तृब्रह्मात्मतानुभवबलतो भूत[6]यातनानिमित्तदोषैरलिप्तस्वभाव आचार्यो [7]वरप्रदानेन परब्रह्मात्मैक्यविद्यामुपदिदेश यस्मै चोपदिदेश [8]ताभ्यां [9]नमस्कुर्वन्नाचार्यभक्तेर्विद्याप्राप्त्यङ्गत्वं दर्शयति—ॐ नमो भगवते वैवस्वतायेति ।

अवतरण भाष्य

ब्रह्मविद्या के आचार्य सूर्य पुत्र ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् यम और नचिकेता को नमस्कार है।

---

१. अखिलोपनिषत्तात्पर्यगोचरमन्यत्रधर्मादन्यत्राधर्मादित्यादिना नचिकेतसा पृष्टं विशुद्धं ब्रह्मैव मङ्गलायानुस्मरन्निबध्नाति—धर्माधर्मादीत्यादि। धर्मादिप्रतियोगिकसंसर्गाननुयोगीत्यर्थः। स च संसर्गो जन्यताजनकतान्यतररूपस्तथा च धर्माद्यजन्यं तदजनकं चेत्यर्थः। आदिना धर्मादिफलं सुखदुःखादिग्राह्यम्। २. विशेषाभावे सामान्याभावं हेतूकरोति—कार्येति। कार्यवर्जितमिति कारणत्वाभावोक्तिः। कारणवर्जितमिति कार्यत्वाभावोक्तिः। तत्र हेतुमाह—कार्येति। कालादिपरिच्छिन्नमेव लोके कार्यं कारणं च दृष्टमिति भावः। ३. आचार्यगुणानाह—साक्षादित्यादिना। ४. प्रकृताचार्यमाचार्यान्तरेभ्यः पृथक्करोति—यावदधिकारं याम्ये पदे वर्तमान इति। यावदधिकारं यावत्प्रारब्धकर्मेति यावत्। यमस्येदं याम्यं दित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्य इत्यत्र यमाच्चेति काशिकायामिति कौमुदीकृदुक्तेः। ५. अकर्तृब्रह्मेत्यादि। यस्य नाहं कृतो भाव इत्यादिभगवदुक्तेरिति भावः। ६. यातना तीव्रवेदनेत्यमरः। ७. वरप्रदानेनेति। हेतौ तृतीया। कृपयैवाचार्यो विद्यामुपदिशेदिति भावः। ८. ताभ्यां नमस्कुर्वन्नाचार्यभक्तेरित्यादि—अस्मदादिपर्यन्तं विद्यासम्प्रदाये नचिकेतसोऽप्याचार्यत्वाविशेषात्तन्नमस्करणमपि नाचार्यभक्तेर्विद्याप्राप्त्यङ्गत्वप्रदर्शने विरुध्यत इति ध्येयम्। ताभ्यां नमस्कुर्वन्नित्यत्र "उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी"ति नादृतमिति मन्तव्यम्। "क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानमिति" वा। ९. नमस्कुर्वन्नित्यादि। हेतावत्र शता। प्राप्तविद्यस्यापि विद्याप्राप्त्यङ्गभक्त्यनुष्ठानं कृतज्ञतासम्पत्तयेऽप्राप्त-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ ¹काठकोपनिषद्वल्लीनां सुखार्थप्रबोधनार्थमल्पग्रन्था वृत्तिरारभ्यते। सदेर्धातोर्विशरणगत्यवसादनार्थस्योपनिपूर्वस्य क्विप्प्रत्ययान्तस्य रूपमुपनिषदिति। उपनिषच्छब्देन

---

²अथशब्दो मङ्गलार्थः। चिकीर्षितं प्रतिजानीते—काठकेति। ³ननूपनिषदो वृत्तिर्नाऽऽरब्धव्या प्राणिनां कामकलुषितचेतसामुपनिषच्छ्रवणात्पराङ्मुखत्वाद्विशिष्टस्याधिकारिणो दुर्निरूपत्वाद्बन्धस्य च सत्यस्य कर्मभ्य एव निवृत्तेरुपनिषज्जन्यविद्याया निष्प्रयोजनत्वाज्जीवस्य चासंसारिब्रह्मात्मतायाः प्रतिपादयितुमशक्यत्वेन निर्विषयत्वाच्चेत्याशङ्क्योपनिषच्छब्दनिर्वचनेन विद्याया विशिष्टाधिकार्यादिमत्त्वप्रदर्शनेन तज्जनकस्य ग्रन्थस्यापि विशिष्टाधिकार्यादिमत्त्वेन व्याख्येयत्वं दर्शयितुं प्रथममुपनिषच्छब्दस्वरूपसिद्धिं तावदाह—⁴उपनिपूर्वस्येति। ब्रह्मविद्यायामुपनिषच्छब्दस्योपनिषदं भो ब्रूहीत्यादिप्रयोगदर्शना⁵द्धात्वर्थमाह—उपनिषच्छब्देनेति। ⁶क्लृप्तावयवशक्त्यैव प्रयोगसंभवे समुदायशक्तिरुपनिषच्छब्दस्य

(ब्रह्मात्मतत्त्वदर्शी याम्यपद पर वर्तमान विशुद्ध ज्ञान के बल से भूत यातनादि दोषों से सर्वथा अलिप्तस्वभाव यमाचार्य ने वर प्रदान के माध्यम से ब्रह्मविद्या का उपदेश नचिकेता को किया। उन दोनों को नमस्कार करते हुए भगवान् भाष्यकार ये सूचित कर रहे हैं कि आचार्यभक्ति ब्रह्मविद्या प्राप्ति का अंग है) अथ शब्द मंगलार्थक है। चिकीर्षित ग्रन्थ की प्रतिज्ञा भाष्यकार करते हैं कि अब कठोपनिषत् की वल्लियों को सुगमता से बोध कराने के लिये यह संक्षिप्तवृत्ति प्रारम्भ की जा रही है। उपनिषद् शब्दार्थ निर्वचन द्वारा इस ग्रन्थ के विशिष्ट अधिकारी आदि का निरूपण करते हैं।

सद्धातु का नाश, गति और शिथिल करना, ये तीन अर्थ होते हैं। उप और नि उपसर्ग पूर्वक उक्त सद्धातु से क्विप् प्रत्यय करने कर उपनिषद् शब्द बनता है। उपनिषद् शब्द से जिस ग्रन्थ की

विद्यानां शिष्याणां तदनुष्ठानप्रवृत्तये च "यद्यदाचरति श्रेष्ठः" "लोकसंग्रहमेवापि" स्मृतेः। ततो नेदं नमस्करणं मङ्गलार्थं निर्विघ्नसमाप्त्यर्थककर्मण एव मङ्गलत्वात्प्रकृतनमस्करणस्य च यथोक्तार्थकत्वात् मङ्गलार्थमथशब्दस्य वक्ष्यमाणत्वाच्च ध्वनितं चेदमथशब्दो मङ्गलार्थ इति वदद्भिष्टीकाकृद्भिरिति ध्येयम्। आचार्यभक्तेरित्याचार्यग्रहणं देवतोपलक्षणं "यस्य देवे परा भक्ति"रित्यादिश्रुतेः। १. काठकोपनिषदिति। कठेन—प्रोक्तमधीयत इति कठाः। कठचरकाल्लुक्। तेषामाम्नायः काठकम्। गोत्रचरणाद्वुञ्। चरणाद्धर्माम्नाययोरिति वक्तव्यम्। काठकं च सोपनिषच्चेति समानाधिकरणसमासः। २. स्वयं नमस्करणेन विद्याप्राप्त्यङ्गभक्त्यनुष्ठानं शिष्यान् शिक्षयित्वा भाष्यमारभमाणो मङ्गलमाचरतीत्याशयेनाह—अथशब्दो मङ्गलार्थ इति। "ओङ्कारश्चाथशब्दश्चे"त्यादिवचनादिति भावः न चारम्भार्थ एवायमस्त्वथशब्दो मङ्गलत्वं तु प्राच्यं नमस्करणमेवेति शक्यं वक्तुमारम्भस्यारम्यत इति शब्दत एवोक्तत्वादित्यवधेयम्। ३. सिद्धार्थं सिद्धसंबन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तत इति न्यायं मनसि कृत्याऽऽक्षिपति—नन्विति। ४. उपनिपूर्वस्य क्विप्प्रत्ययान्तस्य विशरणाद्यर्थस्य सदेर्धातोरित्यन्वयं सूचयन्प्रतीकमादत्ते—उपनीत्यादिना। ५. धात्वर्थमाहेति—उपनिषच्छब्दघटकस्य सदेर्धातोरर्थं विद्यात्मकमाहेत्यर्थः। धात्वर्थस्यैव विद्यात्वादित्थमुक्तिरिति ज्ञेयम्। ६. क्लृप्तेति—नियतेत्यर्थः। प्रसिद्धेति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

च व्याचिख्यासितग्रन्थप्रतिपाद्य वेद्यवस्तुविषया विद्योच्यते । केन पुनरर्थयोगेनोपनिषच्छब्देन विद्योच्यत इत्युच्यते । ये मुमुक्षवो दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णाः सन्त उपनिषच्छब्दवाच्यां वक्ष्यमाणलक्षणां विद्यामुपसद्योपगम्य तन्निष्ठतया निश्चयेन शीलयन्ति तेषामविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणाद्धिंसनाद्विनाशनादित्यनेनार्थयोगेन विद्योपनिषदित्युच्यते । तथा च वक्ष्यति—"निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते" इति ।

पूर्वोक्तविशेषणान्मुमुक्षून्वा परं ब्रह्म गमयतीति ब्रह्मगमयितृत्वेन योगाद्ब्रह्मविद्योपनिषत् । तथा च वक्ष्यति—"ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युः" इति । लोकादिर्ब्रह्मजज्ञो योऽग्निस्तद्विषयाया विद्याया द्वितीयेन वरेण प्रार्थ्यमानायाः स्वर्गलोकफलप्राप्तिहेतुत्वेन

न कल्पनीयेत्याह—केन पुनरिति । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेष्विति धातोर्विशरणमर्थमादाय योगवृत्तिमाह—उच्यत इति । विषयेषु क्षयिष्णुत्वादिदोषदर्शनाद्विरक्ताः केचन मुमुक्षवः प्रसिद्धा न सर्वे भवादृशाः कामुका एवेति यच्छब्देन प्रसिद्धावद्योतकेन कथयति । आनुश्रविकाः शब्दप्रतिपन्नाः स्वर्गभोगादयः । उपसद्येति । आचार्योपदेशाल्लब्ध्वा यावत्साक्षात्कारं शीलयन्ति संसार्यसंसार्यैक्यासंभावनादि निरस्यन्तीत्यर्थः ।

गत्यर्थमादायाऽऽह—पूर्वोक्तेति । अग्निविद्यायामप्यवसादनमादायोपनिषच्छब्दस्य वृत्तिमाह—लोकादिरिति । भूरादिलोकानामादिः प्रथमजो ब्रह्मणो जातो ब्रह्मजः स एव जानातीति ज्ञः । ग्रन्थे तु

व्याख्या करना चाहते हैं, उसके प्रतिपाद्य और वेद्य वस्तु ब्रह्मविद्या का ही प्रतिपादन किया गया है। किस अर्थ के सम्बन्ध से उपनिषद् शब्द का अर्थ विद्या कहा जाता है, उसे बतलाते हैं—लोक-परलोक के भोगों से विरक्त जो मुमुक्षु उपनिषद् शब्द से कहे जाने वाली विद्या को प्राप्त कर उसमें पूर्णनिष्ठा के साथ निश्चयपूर्वक परिशीलन करते हैं, उन मुमुक्षुओं के हृदयस्थ संसार के बीज अविद्या का विनाश करने वाला होने के कारण ब्रह्मविद्या को उपनिषद् शब्द से कहा गया है। ऐसा ही आगे श्रुति भी कहेगी कि उस आत्मा को साक्षात् जानकर पुरुष मृत्यु से छूट जाता है।

अथवा पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट मुमुक्षुओं को ब्रह्मविद्या परब्रह्म को प्राप्त करा देती है। इस प्रकार ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाली होने के कारण ही ब्रह्मविद्या को उपनिषद् शब्द से कहा गया है। ऐसा ही श्रुति आगे कहेगी—ब्रह्म को प्राप्त हुआ पुरुष विशुद्ध और अमर हो गया।

भूर्भुवः आदि लोकों से भी पूर्व सिद्ध, ब्रह्मा से उत्पन्न और चेतन जो अग्नि है, उससे सम्बन्ध

---

१. प्रतिपाद्यस्वर्ग्याग्न्यादिविद्याया मुख्योपनिषत्त्वं वारयितुं वस्तु विशिनष्टि—वेद्येति । मुमुक्षूणामवश्यं वेदनार्हत्यर्थः । २. अर्थयोगेनेति—अवयवार्थेनेति यावत् । ३. निचाय्येत्यादि—काठके १।३।१५ भाष्यं द्रष्टव्यम् । ४. काठक० २।३।१८ । ५. काठक० १।१।१५ । काठक० १।१।१७ । ६. योगवृत्तिमिति—समुदायशब्दस्यावयवशक्तिर्योगस्तेन वृत्तिं वाचकत्वमिति यावत् । ७. आचार्योपदेशाल्लब्ध्वेति-श्रवणमुक्तम् । ८. मननिदिध्यासने विवक्षित्वा शीलयन्तीतिपदं व्याचष्टे—संसारीत्यादिना । ९. ब्रह्मणो हिरण्यगर्भादित्यर्थः । स त्रेधाऽऽत्मानं व्यकुरुताऽऽदित्यं तृतीयं वायुं तृतीयमग्निं तृतीयमित्यादि श्रुतेः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गर्भवासजन्मजराद्युपद्रववृन्दस्य लोकान्तरे पौनःपुन्येन प्रवृत्तस्यावसादयितृत्वेन शैथिल्यापादनेन धात्वर्थयोगादग्निविद्याऽप्युपनिषदित्युच्यते । तथा च वक्ष्यति—"[१]स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते" इत्यादि । ननूपनिषच्छब्देनाध्येतारो ग्रन्थमप्यभिलपन्ति । उपनिषदमधीमहेऽध्यापयाम इति च । एवं नैष [२]दोषोऽविद्यादिसंसारहेतुविशरणादेः सदिधात्वर्थस्य ग्रन्थमात्रेऽसंभवाद्विद्यायां च संभवात् । ग्रन्थस्यापि तादर्थ्येन तच्छब्दत्वोपपत्तेः । आयुर्वै घृतमित्यादिवत् । तस्माद्विद्यायां मुख्यया वृत्त्योपनिषच्छब्दो वर्तते ग्रन्थे तु भक्त्येति । एवमुपनिषच्छब्दनिर्वचनेनैव विशिष्टोऽधिकारी विद्यायामुक्तः । विषयश्च विशिष्ट उक्तो विद्यायाः परं ब्रह्म प्रत्यगात्मभूतम् । प्रयोजनं चास्या उपनिषद आत्यन्तिकी संसारनिवृत्तिर्ब्रह्मप्राप्तिलक्षणा । संबन्धश्चैवंभूतप्रयोजनेनोक्तः । अतो यथोक्ताधिकारिविषय-

---

भक्त्येत्यु[३]पचारेणोपनिषच्छब्दप्रयोग इत्यर्थः । उपनिषच्छब्दनिर्वचनेन सिद्धमर्थमाह—एवमित्यादिना । आत्यन्तिकी [४]निदाननिवृत्त्या निवृत्तिर्विवक्षिता । निदानं [५]चान्वयव्यतिरेकशास्त्रन्यायेभ्यः संसारस्या-

---

रखने वाली विद्या को दूसरे वरदान द्वारा नचिकेता ने माँगा है और स्वर्गलोक फल की प्राप्ति के कारण होने से लोकान्तरों में बार-बार प्राप्त होने वाले गर्भवास जन्म-जरा आदि सम्पूर्ण उपद्रवों को शिथिल करने वाली अग्निविद्या को भी उपनिषद् कहा गया है क्योंकि सद् धातु का सम्बन्ध इस अर्थ के साथ भी कहा जाता है। इसे भी श्रुति आगे कहेगी कि स्वर्ग को प्राप्त होने वाले पुरुष अमर हो जाते हैं।

शंका:—यदि कहो कि अध्ययन करने वाले पुरुष को हम उपनिषद् पढ़ते हैं और पढ़ाते हैं और पढ़ाते हैं इत्यादि व्यवहार से उपनिषद् शब्द से ग्रन्थ को भी कहा जाता है।

समाधान—ऐसा कहना भी दोष युक्त नहीं है। संसार के कारण अविद्यादि का नाश होना अर्थ ग्रन्थमात्र में सम्भव नहीं है किन्तु ब्रह्मविद्या में ही सम्भव है। ऐसी विद्या के लिए ग्रन्थ उपयोगी होने के कारण ग्रन्थ को भी उपनिषद् शब्द से कहा जाता है। जैसे आयुवर्द्धक घृत को आयु शब्द से कहा जाता है। अतः उपनिषद् शब्द का मुख्य अर्थ ब्रह्मविद्या है, उसके प्रापक ग्रन्थ को गौणीवृत्ति से उपनिषद् शब्द द्वारा कहा गया है।

इस प्रकार उपनिषद् शब्द का निर्वचन करने से ही विद्या का विशिष्ट अधिकारी बतला दिया गया और प्रत्यगात्मरूप परब्रह्म इसका विशिष्ट विषय भी बतला दिया गया। ऐसे ही इस उपनिषद्

---

१. काठक० १।१।१३ । २. दोषोऽध्येत्रभिलापविरोधात्मा । ३. उपचारेणेति—सहचरणादिनिमित्तेन अतद्भावे तद्वदभिधानमुपचारः तेन । लक्षणयेति यावत् । ४. निदानेति—निदानं त्वादिकरणमित्यमरः । मुख्यत्वमत्रादित्वम् । ५. अन्वयेत्यादि—अविद्यासत्त्वे संसारसत्त्वं तदभावे तदभाव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां च विद्वदनुभवं विवक्षतीति मन्तव्यम् । "अनीशया शोचति मुह्यमान" इत्यादिशास्त्रं न्यायो युक्तिः—जगन्मिथ्या दृश्यत्वाच्छुक्तिरूप्यवत् । मिथ्यात्वाच्चाज्ञानकृतं तद्वदेवेत्यादिरूपा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ उशन्ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥१॥

यह बात शास्त्रों में प्रसिद्ध है कि विश्वजित् यज्ञ के फल को चाहते हुए वाजश्रवा के पुत्र ने (विश्वजित् यज्ञ में) अपना सम्पूर्ण धन दे दिया। उस (यजमान) का नचिकेता नामक एक पुत्र था ॥ १ ॥

प्रयोजनसंबन्धाया विद्यायाः करतलन्यस्तामलकवत्[1]प्रकाशकत्वेन विशिष्टाधिकारिविषय-प्रयोजन[2]संबन्धा एता वल्लयो भवन्तीति ।

अतस्ता यथाप्रतिभानं व्याचक्ष्महे—

तत्राऽऽख्यायिका [3]विद्यास्तुत्यर्था । उशन्[4]कामयमानो ह वा इति वृत्तार्थस्मरणार्थौ

ऽऽत्मैकत्वाविद्या । [5]सा च न कर्मणा विनिवर्तते[6]ऽतो विद्यायाः प्रयोजनेन साध्यसाधनलक्षणः संबन्ध इत्यर्थः ।

वश कान्तावित्यस्य शत्रन्तं रूपमु[7]शन्निति । [8]श्रवः कीर्तिः । सर्वमेधेन सर्वस्वदक्षिणेनेजे

का प्रयोजन संसार दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और ब्रह्मप्राप्ति बतला दिये गये हैं एवं उक्त प्रयोजन के साथ इसका साध्य-साधन सम्बन्ध भी कह दिया गया। अतः उपर्युक्त अधिकारी, विषय, प्रयोजन और सम्बन्ध वाली विद्या को हस्तामलकवत् प्रकाशित करने वाली होने के कारण इस कठोपनिषद की वल्लियाँ विशिष्ट अधिकारी आदि से युक्त कही गयी हैं, उन्हीं वल्लियों की व्याख्या हम अपनी बुद्धि अनुसार करते हैं।

वाजश्रवा का दान

यहाँ पर आख्यायिका ब्रह्मविद्या को स्तुति के लिये है (विश्वजित् यज्ञ के) फल की कामना

---

१. प्रकाशकत्वेन जनकत्वेनेति यावत् । वल्लीनामिति शेषः । २. संबन्धा इति—अत्र गोपालटीकातः संबद्धा इति पाठो गम्यते । ३. विद्यास्तुत्यर्थेति—यमेन दिव्यभोगादिभिः प्रलोभ्यमानोऽपि नचिकेता विद्यार्थमेव तानजहादित्येवं महिमेयं विद्येतिस्तुतिराख्यायिकात एव लभ्यत इति भावः । ४. सकामस्य तस्य कर्मणः साङ्गत्वमेव संपादयितव्यमासीत् सर्वत्र कामुकत्वात् लोभेन नासौ तथा कृतवान्नित्यधर्मं एव सकामधर्मं इति सूचयितुमुशन्पदमित्याशयेन व्याचष्टे—कामयमान इति । निष्कामस्य तु न साङ्गताद्याग्रहः नेहाभि-क्रमनाशोऽस्तीत्यादिस्मृतेः । मन्त्रो हीनः स्वरत इत्यादि श्रवणात्सकामस्य तु साङ्गतादिनियम एवेति भावः । ५. सा चेत्यादि—शुक्त्यविद्यादेः कर्मणा निवृत्त्यदर्शनादिति भावः । ६. अत इति—अविद्याया विद्यैक-निवर्त्यत्वादिति यावत् । ७. उशन्निति—ग्रहिज्येत्यादिना संप्रसारणादुत्वमिति भावः । ८. निघण्टौ श्रवोयशःशब्दौ धननामसु पठितावत्र तु कीर्तिपरावेवेत्याशयेनाह—श्रवः कीर्तिरिति श्रूयत इति व्युत्पत्तेः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निपातौ [1]वाजमन्नं तद्दानादिनिमित्तं श्रवो यस्य स वाजश्रवा रूढितो वा तस्यापत्यं वाजश्रवसः किल विश्वजिता सर्वमेधेनेजे [2]तत्फलं [3]कामयमानः। स तस्मिन्क्रतौ सर्ववेदसं [4]सर्वस्वधनं ददौ दत्तवान्। [5]तस्य यजमानस्य ह नचिकेता [6]नाम [7]पुत्रः [8]किलाऽऽस बभूव ॥१॥

यजनं कृतवानित्यर्थः ॥१॥

वाला 'ह' और 'वै' ये दोनों निपात अतीत वृतान्त के स्मरणार्थ हैं। वाज अन्न को कहते हैं, उसके दानादि से जिसे यश प्राप्त हुआ हो. उसे वाजश्रवा कहते हैं अथवा रूढि से भी उसका नाम वाजश्रवा हो सकता है। उस वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस् ने विश्वजित् नामक यज्ञ के फल की कामना करते हुए विश्वजित् यज्ञ द्वारा यजन किया। विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व समर्पण करने की विधि कही गयी है। तदनुसार उस यज्ञ में वाजश्रवस् यजमान ने अपना सारा धन दे डाला। यह प्रसिद्ध है कि इस यजमान का एक नचिकेता नामक अनुपम पुत्र था ॥१॥

---

१. वाजमन्नमिति—निरुक्तनिघण्टौ द्वितीयाध्यायसप्तमखण्डे—अन्धः। वाज इत्येवमष्टाविंशतेरन्ननाम्नां पाठात्। परं तत्र वाज इति पुँल्लिङ्गपाठः क्लीबत्वमप्यतो भाष्यादवगन्तव्यम्। २. उशन् कामयमान इत्युक्तं तत्रापेक्षितं कर्मपदमाह—तत्फलमिति। विश्वजितः फलं स्वर्गमित्यर्थः। पुनः कामयमान इति पदमन्वयप्रदर्शनार्थम्। ३. ननु उशन् सर्वस्वं ददाविति विरुद्धं नहि स्वयं लुब्धोऽपरस्मै तृणमपि दातुमिच्छति किमुत सर्वस्वमिति। न चाधिकमुशन् निहीने विरज्यतीत्यविरोध इति वाच्यं तथा सति पीतोदका इत्यादि। धर्मवञ्चनां कुर्यात्कथमित्याशङ्क्य कीर्तिलोभादुशन्नपि ददावित्याशयेन पितुर्नामाचक्षाण आह—वाज मित्यादि। पितुर्गुणा पुत्रे लेशतोऽनुवर्तन्त इति भावः। न चैवं व्याख्याने तत्फलं कामयमान इति भाष्यं कथमिति शङ्कितव्यं तस्य च्छलोक्तिख्यापकत्वात्कीर्तेरपि लौकिकफलत्वेन तत्फलत्वाविशेषाच्च। न चैवं पुरोक्तमुशन्पद-तात्पर्यं व्याहन्येतेति वाच्यं कीर्तिकामेऽपि साङ्गतोपयोगादित्यलं बहुना। ४. सान्तो नपुंसकलिङ्गो वेदस्-शब्दो निरुक्तनिघण्टौ "मघं रेक्णः रिक्थं वेदः" इत्येवमादि धननामसु पठितः सर्वञ्च तद्वेदश्चेति कर्मधारय-तत्पुरुषे सति "अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसी"ति समासान्तष्टजित्याशयेन व्याचष्टे—सर्वस्वं धनमिति। ५. ननु उशन्हेत्यादि पूर्ववाक्येन तस्य हेत्याद्युत्तरवाक्यस्यानाकाङ्क्षितत्वादसंबद्धत्वमित्याशङ्क्य सर्ववेदसं ददावित्यस्य पीतोदका इत्यादिना विरोधपरिहारार्थत्वान्न तस्य तथात्वमित्याशयेन व्याचष्टे—तस्य यजमानस्येति। पीतोदकत्वादिविशेषणैस्तावत्पास्यमानोदकादयो व्यावर्त्यन्ते न च व्यावृत्तिर्व्यावर्त्यासत्त्वे संभवतीति शोभन-गवीनां रक्षितत्वमवगम्यते। तथा च सर्वस्वदानोक्तिर्विरुध्यते। ततः कथं सोक्तिः संगच्छत इत्या-काङ्क्षायामाह—तस्येत्यादि। पुत्रसत्त्वात्तन्नामाङ्कितानां शोभनगवीनां रक्षितत्वेऽपि स्वनामाङ्कितानां पीतो-दकादीनां सर्वासां दानात्सर्वस्वदानोक्तिरविरुद्धेति भावः। ६. तत्कालीनबालेषु लोकोत्तरप्रभादिगुणालङ्कृ-तत्वेन नचिकेतसः सर्वलोकप्रसिद्धिद्योतकोऽयं निपात इत्याशयेनाह—नामेति। कथमन्यथा बालमात्रलभ्यत्व-बोधिकयाऽनयाऽऽख्यायिकया विद्यायाः स्तुतिः सम्पाद्येतेत्यवधेयम्। ७. पुत्र इति—पुंनाम्नो नरकात् पितुस्त्राणकारित्वबोधकेनानेन श्रद्धावेशादियोग्यता नचिकेतसः सूच्यते। ८. हेति निपातपर्यायः किलेति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तँ ह कुमारँ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु
श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥२॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ।

जिस समय दक्षिणाएँ (दक्षिणा के लिए गौएँ विभागपूर्वक) ले जायी जा रही थीं, उसी समय कुमार अवस्था वाला होते हुए भी नचिकेता में श्रद्धा (अपने पिता के हित के लिए आस्तिक्य बुद्धि) प्रविष्ट हो गयी। तब वह नचिकेता सोचने लगा ॥ २ ॥

जो जल पी चुकी हैं, घास खा चुकी हैं, जिनका दूध भी दुह लिया गया है और जिनमें बच्चा

तं ह नचिकेतसं कुमारं [1]प्रथमवयसं सन्तमप्राप्तप्रजननशक्तिं बालमेव श्रद्धाऽऽस्तिक्यबुद्धिः पितुर्हितकामप्रयुक्ताऽऽविवेश प्रविष्टवती । कस्मिन्काल इत्याह—ऋत्विग्भ्यः सदस्येभ्यश्च दक्षिणासु नीयमानासु विभागेनोपनीयमानासु [2]दक्षिणार्थासु गोषु स आविष्टश्रद्धो नचिकेता अमन्यताऽऽलोचितवान् ॥२॥

कथमित्युच्यते—पीतोदका इत्यादिना । दक्षिणार्था गावो विशेष्यन्ते । पीतमुदकं

---

[3]सदसि यज्ञसभायां येऽन्ये मिलिता ब्राह्मणास्तेभ्यश्च ॥२॥

पीतमुदकं प्रागेव नोत्तरकालं पानशक्तिरप्यस्तीत्यर्थः ॥३॥

पुत्र उत्पादन शक्ति जिसे प्राप्त नहीं हुई ऐसी प्रथमावस्था में स्थित उस नचिकेता बालक में पिता को हित कामना से प्रेरित श्रद्धा यानी आस्तिक बुद्धि का प्रवेश हुआ। वह भी किस समय ? जबकि ऋत्विक् और सदस्यों की दक्षिणा के लिये विभागपूर्वक गौएँ लायी जा रही थीं। ऐसे अवसर पर श्रद्धानिष्ठ नचिकेता ने विचार किया ॥२॥

---

१. कुमारमिति—विशुद्धमना बालोऽपि यमर्थं वेत्ति न तं वृद्धोऽपि लोभाद्याक्रान्तचेता इत्यनर्थहेतवस्त्याज्या एव लोभादयः पाप्मान इत्युपदेष्टुं कुमारग्रहणम् । २. प्रथमवयसमिति—पञ्चवर्षीयमित्यर्थः । तथा चोक्तं भा. १० श्रीधरैः "कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधी"ति । यौवनाभावविवक्षणे वा षोडशवर्षादर्वाञ्चम् । वयांसि चत्वारीत्येके । यदाहुः "आद्ये वयसि नाधीतं द्वितीये नार्जितं धनम् । तृतीये न तपसा नप्तं चतुर्थे किं करिष्यसी"ति । त्रीणीत्यन्ये यदाहुः—पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने । पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हतीति । शतायुर्वै पुरुष इति दृष्ट्या वयोविभागे । उपचयापचयलक्षणे द्वे एव वयसी इति मते च युवाऽपि प्रथमवयाः स्यादत आह—अप्राप्तप्रजननशक्तिमिति । क्लीबोऽपि तथाऽत आह—बालमेवेति । ३. पीतोदका इत्यादिवक्ष्यमाणमनुसंधाय दक्षिणापदार्थमाह—दक्षिणार्थासु गोष्विति । ४. सदसि साधवः सदस्याः "तत्र साधु"रिति प्राग्घितीयो यदित्याश्रयेन सदस्यपदार्थमाह—सदसीति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥३॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति । द्वितीयं तृतीयं तꣳ होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥४॥

देने का सामर्थ्य नहीं रहा है; ऐसी गौओं का दान करने में वह दाता उन लोकों में जाता है, जो लोक आनन्द से सर्वथा शून्य हैं ॥ ३ ॥

तब उसने अपने पिता से कहा—हे तात ! आप मुझे (किस ऋत्विज् विशेष) को दक्षिणार्थ दोगे ? इसी प्रकार उसने दूसरी और तीसरी बार भी कहा । तब क्रुद्ध होकर पिता ने उससे कहा—मैं तुझे मृत्यु को दूँगा ॥ ४ ॥

याभिस्ता पीतोदकाः । जग्धं भक्षितं तृणं याभिस्ता जग्धतृणाः । दुग्धो दोहः क्षीराख्यो यासां ता दुग्धदोहाः । निरिन्द्रिया अप्रजननसमर्था जीर्णा निष्फला गाव इत्यर्थः । यास्ता एवंभूता गा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणाबुद्धया ददत्प्रयच्छन्ननन्दा अनानन्दा असुखा नामान इत्येतद्ये ते लोकास्तान्स यजमानो गच्छति ॥३॥

तदेवं क्रत्वसंपत्तिनिमित्तं पितुरनिष्टं फलं मया पुत्रेण सता निवारणीयमात्मप्रदानेनापि क्रतुसंपत्तिं कृत्वेत्येवं मत्वा पितरमुपगम्य स होवाच पितरं हे तत तात कस्मै, ऋत्विग्विशेषाय दक्षिणार्थं मां दास्यसीति 'प्रयच्छसीत्येतत् । एवमुक्तेन पित्रोपेक्ष्यमाणोऽपि

॥४॥

नचिकेता की विचार पद्धति

किस प्रकार विचार किया ? इसे आगे के मन्त्रों से कहते हैं । दक्षिणा के लिये लायी गयी गौएँ ऐसी थीं, जिन्होंने जल पी लिया उन्हें पीतोदका कहते हैं अर्थात् प्यास लगने पर जल के पास जाकर स्वयं जल पीने में असमर्थ हैं । जो घास खा चुकी हैं अर्थात् जिनमें घास खाने की शक्ति नहीं है, ऐसी गौएँ जग्धतृणा कही जाती हैं । जिनका दूध दुहा जा चुका है, उन्हें दुग्धदोहा कहते हैं और जो सन्तान उत्पन्न करने में सर्वथा असमर्थ हों, उन्हें निरिन्द्रिय कहते हैं अर्थात् सर्वथा बूढ़ी और निकम्मी गौएँ हैं, ऐसी गौओं को दक्षिणा बुद्धि से देने वाला यजमान सुख से रहित लोकों को प्राप्त करता है क्योंकि ऐसी गौएँ भारस्वरूप होने के कारण दान ग्रहीता ऋत्विजों को दुःख ही देंगी, जिसके फलस्वरूप दाता यजमान को सुखहीन नरकादि लोकों की प्राप्ति भी सम्भव हो जाती है ॥३॥

पिता-पुत्र सम्वाद

इस परिस्थिति में इस प्रकार यज्ञ की पूर्णता न होने के कारण जो पिता को अनिष्ट फल होगा, उसे मुझ जैसे सुपुत्र को आत्म बलिदान करके रोकना चाहिए । ऐसा विचार कर वह पिता के पास जाकर बोला कि आप मुझे ऋत्विज् विशेष को दक्षिणा के रूप में देंगे । पिता ने नचिकेता को

---

१. भविष्यतो वर्तमानसामीप्यं सूचयन् व्याचष्टे—प्रयच्छसीति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः। किँस्वि-
द्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति ॥५॥**

(नचिकेता एकान्त में विचार करने लगा कि) मैं बहुत से (शिष्यों या पुत्रों) में प्रथम वृत्ति से चलता हूँ और बहुतों में मध्यम वृत्ति से चलता हूँ (अधम वृत्ति से कभी नहीं चलता, फिर भला) यम का कौन ऐसा कार्य है, जिसे आज पिता मेरे द्वारा सम्पन्न करना चाहते हैं ॥ ५ ॥

द्वितीयं तृतीयमप्युवाच कस्मै मां दास्यसि कस्मै मां दास्यसीति। नायं कुमारस्वभाव इति क्रुद्धः सन्पिता तं ह पुत्रं किलोवाच मृत्यवे वैवस्वताय त्वा त्वां ददामीति ॥४॥

स एवमुक्तः पुत्र एकान्ते परिदेवयांचकार। कथमित्युच्यते। बहूनां शिष्याणां पुत्राणां वैमि गच्छामि प्रथमः सन्मुख्यया शिष्यादिवृत्त्येत्यर्थः। मध्यमानां च बहूनां मध्यमो मध्यमयैव वृत्त्यैमि। नाधमया कदाचिदपि। तमेवंविशिष्टगुणमपि पुत्रं मां मृत्यवे त्वा ददामीत्युक्तवान्पिता। स किंस्विद्यमस्य कर्तव्यं प्रयोजनं मया प्रत्तेन करिष्यति यत्कर्तव्यमद्य। नूनं प्रयोजनमनपेक्ष्यैव क्रोधवशादुक्तवान्पिता। तथाऽपि तत्पितुर्वचो मृषा मा

यथावसरं गुरोरिष्टं ज्ञात्वा शुश्रूषणे प्रवृत्तिर्मुख्या। आज्ञावशेन मध्यमा। तदपरिपालनेनाधमा। मया दत्तेन यत्कर्तव्यमद्य यमस्य करिष्यति तत्किं कर्तव्य[1]मासीन्नाऽऽसीदेव [2]विधानाभावात्। कथं तर्हि युक्तवानित्यत आह—नूनमिति ॥५॥

बात की उपेक्षा कर दी और पुत्र नचिकेता ने बार-बार अपनी बात दोहरा दी कि मुझे किसको देंगे, मुझे किसको देंगे, तब पिता ने यह सोचकर कहा कि यह बाल-स्वभाव नहीं है। अतः क्रोधित होकर पिता ने उस पुत्र से कहा—मैं तुझे सूर्य के पुत्र यमराज को देता हूँ ॥४॥

इस घटना से पिता-पुत्र दोनों ही के मन में अनुताप हुआ। अतः पिता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह पुत्र एकान्त देश में बैठकर अनुताप करने लगा। किस प्रकार अनुताप किया? उसे बतलाते हैं। मैं बहुत-से शिष्यों या पुत्रों में मुख्य शिष्यादि वृत्ति से चलता हूँ एवं बहुतों में मध्यम शिष्यादि वृत्ति से चलता हूँ अधम वृत्ति से मैं कभी भी नहीं चलता। ऐसे विशिष्ट गुण सम्पन्न पुत्र को कि मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ। भला यमराज का कौन-सा काम अपूर्ण होगा, जिसे इस प्रकार मुझे यमराज के हाथों सौंपकर मेरे माध्यम से सिद्ध करेंगे अथवा किसी प्रयोजन की अपेक्षा किये बिना ही

---

१. अद्य करिष्यतीति प्रयोजननिष्पत्तेरद्यतनभविष्यत्त्वं प्रयोजनस्य प्राक् सत्त्वं सूचयतीत्याशयेनाह—आसीदिति।

२. विधानाभावादिति—न ह्यग्न्यादिभ्यो हविर्दानवद् त्वगादिभ्यो दक्षिणाप्रदानवच्च यमाय पुत्रप्रदानं यागविधौ विधीयत इति भावः। सति तु विधाने प्रयोजनमुन्नीयतेति च।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे । सस्य-
मिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाऽऽजायते पुनः ॥६॥**

जिस प्रकार पूर्व पुरुष (पितृ-पितामहादि) व्यवहार कर चुके हैं, उसे देखें। उनमें से मृषा-करण किसी का नहीं रहा है क्योंकि) मनुष्य खेती की भाँति पकता है अर्थात् वृद्ध होकर मर जाता है और फिर खेती की भाँति ही उत्पन्न होता है। (ऐसे अनित्य जीव लोक में असद् व्यवहार से क्या लाभ ? अतः मुझे यम के पास भेज कर अपने सत्य का पालन करें) ॥ ६ ॥

भूदित्येवं मत्वा परिदेवनापूर्वकमाह पितरं शोकाविष्टं किं मयोक्तमिति ॥५॥

अनुपश्याऽऽलोचय निभालयानु क्रमेण यथा येन प्रकारेण वृत्ताः पूर्वेऽतिक्रान्ताः पितृ-पितामहादयस्तव । तान्दृष्ट्वा च तेषां वृत्तमास्थातुमर्हसि वर्तमानाश्चापरे साधवो यथा वर्तन्ते तांश्च प्रतिपश्याऽऽलोचय तथा । न च तेषु मृषा करणम् वृत्तं वर्तमानं वाऽस्ति । तद्विपरीतमसतां च वृत्तं मृषा करणम् । न च मृषा कृत्वा कश्चिदजरामरो भवति । यतः सस्यमिव मर्त्यो मनुष्यः पच्यते जीर्णो म्रियते । मृत्वा च सस्यमिवाऽऽजायत आविर्भवति पुनरेवमनित्ये जीवलोके किं मृषाकरणेन । [1]पालयाऽऽत्मनः सत्यम् । प्रेषय मां यमायेत्यभिप्रायः ॥६॥

॥६॥

क्रोधावेश में पिता ने ऐसा कहा है, फिर भी पिता का वचन मिथ्या न हो; ऐसा विचार कर नचिकेता ने उस शोकाविष्ट पिता से कहा—मैंने क्या कह डाला ? ऐसे शोक एवं चिन्ता से आतुर हो रहे थे। उस समय नचिकेता के मन में भी खेद था ॥५॥

आपके पिता-पितामहादि पुरुष जैसा आचरण करते रहे हैं, उनकी ओर देखें; उन्हें देखकर उन्हीं के आचरणों का पालन आपको करना चाहिए और वर्तमान समय में दूसरे साधु लोग जैसा आचरण करते हैं, उनकी ओर भी दृष्टिपात करें। उनमें किसी का भी आचरण अपने कथन को मिथ्या करने में न था और न आज ही है। इसके ठीक विपरीत असत् पुरुषों का आचरण मिथ्या करना ही है। पर अपने आचरण को मिथ्या करके भी कोई अजर-अमर तो हो नहीं सकता, क्योंकि मनुष्य खेती की भाँति पकता है और जीर्ण होकर मर जाता है। वैसे ही मर कर खेती की भाँति पुनः उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में इस अनित्य संसार में असत्य आचरण से क्या लाभ है ? अतः अपने सत्य का पालन करें अर्थात् मुझे यमराज के पास भेज देवें ॥६॥

---

१. पालयाऽऽत्मनः सत्यमिति । सत्यं कृत्वाहि भवत्यजरामरः सत्येन पन्थाः विततो देवयान इति श्रुतेरिति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥७॥
आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्र-

ब्राह्मण अतिथि बनकर अग्नि ही भवन में प्रवेश करता है। (इसीलिये साधु पुरुष) उस अतिथि को यह (अर्घ्य-पाद्य प्रदान रूप) शान्ति किया करते हैं। अतः हे वैवस्वत ! (इस ब्राह्मण अतिथि नचिकेता के लिये) जल ले आओ ॥ ७ ॥

जिसके घर में ब्राह्मण (अतिथि) भोजन किये विना ही निवास करता है, उस मन्दबुद्धि पुरुष

स एवमुक्तः पिताऽऽत्मनः सत्यतायै प्रेषयामास। स च यमभवनं गत्वा तिस्रो रात्रीरुवास यमे प्रोषिते। प्रोष्याऽऽगतं यमममात्या भार्या वा ऊचुर्बोधयन्तो वैश्वानरोऽग्निरेव साक्षात्प्रविशत्यतिथिः सन्ब्राह्मणो गृहान्दहन्निव तस्य दाहं शमयन्त इवाग्नेरेतां पाद्यासनादिदानलक्षणां शान्तिं कुर्वन्ति सन्तोऽतिथेर्यतोऽतो हराऽऽहर हे वैवस्वतोदकं नचिकेतसे पाद्यार्थम्। यतश्चाकरणे प्रत्यवायः श्रूयते ॥७॥

श्रुत्यनुक्तपूर्वभाषणादिकमपि कथायामपेक्षितं पूरयति—स एवमुक्तः पितेति ॥७॥

यमलोक में नचिकेता

नचिकेता-पुत्र के ऐसा कहने पर पिता ने अपनी सत्यता की रक्षा के लिए उसे यमराज के पास भेज दिया। वह नचिकेता यमाचार्य के घर पहुँच कर तीन रात्रि रहा, क्योंकि यमराज उस समय प्रवास में गए हुये थे। प्रवास से लौटने पर यमराज से उनकी पत्नी और मन्त्रियों ने समझाते हुये कहा।

साक्षात् वैश्वानर अग्नि ही ब्राह्मण अतिथि के रूप में दग्ध करता हुआ गृहों में प्रवेश करता है, उस अग्नि के दाह को शान्त करते हुए की भाँति सज्जन गृहस्थ अतिथि के लिए अर्घ्य-पाद्यादि प्रदानरूप शान्ति किया करते हैं। अतः हे यम ! नचिकेता के अर्घ्य-पाद्यादि प्रदान के लिये जल ले आवें क्योंकि ऐसा न करने पर प्रत्यवाय सुना जाता है॥७॥

---

१. गृहान्प्रविशतोऽतिथेर्ब्राह्मणस्योक्तं वैश्वानरत्वमुपपादयति—आशेति। पुत्रेत्यतः प्राक्तना आशादिशब्दा आशादिफलपरास्तत्फलनाशस्यैवानिष्टत्वात्। २. संगतं संयोगो मैत्रीति यावत्। तथा च पाणिनीयं सूत्रम्—"अजर्यं संगतमि"ति। ३. सूनृतं प्रिये सत्ये इत्यमरः। ४. इष्टं च पूर्तं चेष्टापूर्ते पृषोदरादित्वात्पूर्वपददीर्घत्वम्। ५. पाद्येति—पाद्यं पादाय वारिणीत्यमरः। पादार्घाभ्यां चेति यत्। देवतान्तात्तादर्थ्ये यदित्यतोऽनुवर्तमानः। ६. नचिकेतस इति चतुर्थी षष्ठ्यर्था। ७. पाद्यार्थमिति—पादाभ्यां हिता पाद्या प्रक्षालनक्रिया तदर्थमित्यर्थः। तस्मै हितमिति शरीरावयवाद्यत्। दन्त्यमित्यादिवत्। पाद्यत्वेनाद्यर्त इति पाद्यार्थम्। ८. पूर्वभाषणादिकमिति—पूर्वभाषणत्वादिकमित्यर्थस्तथा च नचिकेतः पूर्वभाषणस्य अनुपश्येत्यादिरूपस्य स्वरूपः श्रुत्युक्तत्वेऽपि तत्त्वस्य स एवमुक्त इति भाष्येणैवोच्यमानत्वान्न विरोधः प्रेषणाद्यादिशब्दार्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पशूꣳश्च सर्वान् । एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥८॥

की ज्ञात और अज्ञात वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छाओं, इनके सम्बन्ध से होने वाले फल, (अग्नि-होत्रादि) इष्ट और (वापी-कूप-तडागादि निर्माणरूप) पूर्त कर्मों के फल, समस्त पुत्र तथा पशु आदि को यह नष्ट कर देता है। (अतः सभी अवस्थाओं में अतिथि सत्कार के योग्य है) ॥ ८ ॥

---

[1]आशाप्रतीक्षे अनिर्ज्ञातप्राप्येष्टार्थप्रार्थनाऽऽशा निर्ज्ञातप्राप्यार्थप्रतीक्षणं प्रतीक्षा ते आशाप्रतीक्षे। संगतं [2]सत्संयोगजं फलं सूनृतां च सूनृता हि प्रिया वाक्तन्निमित्तं च। इष्टापूर्ते इष्टं यागादिजं पूर्तमारामादिक्रियाजं फलम्। पुत्रपशूंश्च पुत्रांश्च पशूंश्च सर्वानितत्सर्वं यथोक्तं वृङ्क्त [3]आवर्जयति विनाशयतीत्येतत्। पुरुषस्या[4]ल्पमेधसोऽल्पप्रज्ञस्य। यस्या[5]नश्नन्नभुञ्जानो ब्राह्मणो गृहे वसति। तस्मादनुपेक्षणीयः सर्वावस्थास्वप्यतिथि रित्यर्थः ॥८॥

॥८॥

अज्ञात वस्तु की प्राप्ति की इच्छा को आशा कहते हैं और ज्ञात वस्तु की प्राप्ति की इच्छा को प्रतीक्षा कहते हैं। इन दोनों को और इनके संयोग से प्राप्त होने वाले फल को प्रियभाषण और उससे होने वाले फल यागादि इष्ट कर्म के अनुष्ठान से होने वाला फल, वापी, कूप, तड़ागादि के बनवाने से होने वाला फल पुत्र एवं पशु, इन सभी को नष्ट कर डालता है, जिस मन्दबुद्धि गृहस्थ के घर में अतिथि ब्राह्मण विना भोजन किये रह जाता है। अतः अतिथि सभी अवस्थाओं में उपेक्षा के योग्य नहीं है, यही इसका तात्पर्य है ॥८॥

---

१. यतश्चाकरणे प्रत्यवायः श्रूयत इति प्रत्यवायश्रुतिमवतार्यं व्याचष्टे—आशेति। २. सत्संयोगजमित्यत्र योगजमित्येव पाठो गोपालटीकानुसारतोऽवगन्तव्यम्। ३. वृजी वर्जने इत्यादादिकस्य धातोरिदित्त्वमतेन वृङ्क्त इति रूपमित्याशयेन व्याचष्टे—आवर्जयतीति। आ समन्ताद्वर्जयतीत्यर्थः। एतदेव स्फुटयति—विनाशयतीत्येतदिति। ४. अल्पा मेधा यस्येति विग्रहे "नित्यमसिच्प्रजामेधयो"रिति समासान्तोऽसिजित्याशयेन व्याचष्टे—अल्पप्रज्ञस्येति। यद्यपि तत्र नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्यामित्यतो नञ्दुःसुभ्य इत्यस्यानुवृत्तिरभ्युपगता तथापि "अस्वरितत्वादेवान्यतरस्यां ग्रहणाननुवृत्तिसिद्धौ नित्यग्रहणमन्यतो विधानार्थमिति वृत्तिकारादिभिरास्थीयत इति द्रष्टव्यम्। ५. अनश्नन्नभुञ्जान इति। एवं विजानद्भिर्भार्याऽऽमात्यादिभिर्नूनमनुरुध्यमानोऽपि भोजनाद्यर्थं नचिकेता नूनं मद्वियोगपीडितो मत्पिता न भवेद्भुक्तवान् मामेव प्रतीक्षमाण इति मयापि कथं भुज्येतेति मनीषया नैव भुक्तवानित्यवगम्यते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन्ब्रह्मन्नतिथि-
र्नमस्यः । नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व ।९॥

हे ब्रह्मन् ! तुझे नमस्कार हो, मेरा कल्याण होवे (पूर्व मन्त्रोक्त अनिष्ट न हो) । तुम नमस्कार योग्य अतिथि होते हुए भी मेरे घर पर तीन रात्रि भोजन किये बिना रहे । अतः एक-एक रात्रि अनशन के बदले में मुझसे (एक-एक वरदान) अर्थात् तीन वरदान माँग लो ।। ९.।।

एवमुक्तो मृत्युरुवाच नचिकेतसमुपगम्य पूजापुरःसरम् । तिस्रो रात्रीर्यद्यस्मादवात्सीरुषितवानसि गृहे मे ममानश्नन्हे ब्रह्मन्नतिथिः सन्नमस्यो नमस्कारार्हश्च तस्मान्नमस्ते तुभ्यमस्तु भवतु । हे ब्रह्मन्स्वस्ति भद्रं मेऽस्तु तस्माद्भवतोऽनशनेन मद्गृहवासनिमित्ता-[1]द्दोषात्तत्प्राप्त्युपशमेन । यद्यपि [2]भवदनुग्रहेण [3]सर्वं मम [4]स्वस्ति स्यात्तथाऽपि त्वदधिकप्रसादनार्थमनशनेनोषिता[5]मेकैकां रात्रिं प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्वाभिप्रेतार्थविशेषान्प्रार्थयस्व [6]मत्तः ॥९॥

॥९॥

वर माँगने के लिए यमराज का अनुरोध

पत्नी एवं मन्त्रियों द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर यमराज ने नचिकेता के पास जाकर उसकी पूजा के बाद कहा कि हे ब्राह्मण ! आपने अतिथि और नमस्कार योग्य होकर भी तीन रात्रि पर्यन्त कुछ खाये बिना जो मेरे घर में निवास किया है अतः आपको नमस्कार है । बिना भोजन किये मेरे घर पर आपके निवास निमित्त से होने वाले दोष के कारण जिस अशुभ फल की आशंका की जा सकती है, उसकी निवृत्ति हो जाय और मेरा मंगल हो । यद्यपि आपकी कृपा से मेरा सभी प्रकार कल्याण हो जायगा, फिर भी अपनी अधिक प्रसन्नता के लिये आपसे यह मेरी प्रार्थना है कि बिना भोजन किये मेरे घर पर बिताई गयी एक-एक रात्रि के बदले आप अपने अभीष्ट तीन वर माँग लें ।। ९ ।।

---

१. दोषादिति—प्रत्यवायरूपादित्यर्थः । २. भवदनुग्रहेणेति—स्वाभाविकेन मत्प्रार्थनाप्रयुक्तेन वेत्यर्थः । ३. सर्वं ममाशा प्रतीक्षादि । ४. स्वस्त्यनुकूलं सुखावहमिति यावत् । ५. एकैकां रात्रिं प्रत्येकैकमित्येवं त्रीनित्यर्थः । त्रीनित्यत्र वीप्साऽभावान्न नवप्रसक्तिरिति भावः । ६. प्रार्थयस्व मत्त इति—मत्सकाशाद्याचस्वेत्यर्थः । अपादानस्य विवक्षितत्वादकथितं चेति कर्मत्वाभावः । वराणामवश्यं दास्यमानत्वाविष्करणाय चापादानत्वं विवक्षितमित्यवधेयम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो
माऽभि मृत्यो । त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत्प्रतीत
एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥

हे मृत्यु ! (मेरे पिता) गोतम (वाजश्रवस) मेरे प्रति जैसे शान्त संकल्प, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हों तथा तुम्हारे लौटा देने पर मुझ (पूर्ववत्) पहिचान कर वार्तालाप करें; यही (आपके दिये हुए) तीन वरों में से पहला वर मैं माँगता हूँ ॥ १० ॥

नचिकेतास्त्वाह—यदि दित्सुर्वरान्भगवञ्शान्तसंकल्प उपशान्तः संकल्पो यस्य मां प्रति यमं प्राप्य [1]किनु करिष्यति मम पुत्र इति स शान्तसंकल्पः सुमनाः [2]प्रसन्नमनाश्च यथा स्याद्वीतमन्यु[3]र्विगतरोषश्च गौतमो मम पिता माऽभि मां प्रति हे मृत्यो किंच त्वत्प्रसृष्टं त्वया विनिर्मुक्तं प्रेषितं गृहं प्रति मा मामभिवदेत्प्रतीतो लब्धस्मृतिः स एवायं पुत्रो ममाऽऽगत इत्येवं प्रत्यभिजानन्नित्यर्थः । एतत्प्रयोजनं त्रयाणां वराणां प्रथममाद्यं वरं वृणे प्रार्थये यत्पितुः म परितोषणम् ॥१०॥

प्रेतीभूतोऽयमागतो नावलोकनीय इति मत्वो[4]पेक्षां यथा न करोति तथा प्रसादं कुर्वित्याह—किंच त्वत्प्रसृष्टमिति ॥१०॥

नचिकेता का पितृसन्तोषरूप प्रथम वर

नचिकेता ने कहा—यदि आप वर देना चाहते हो तो प्रथम वर यही देवें कि मेरे पिता के मन में जो संकल्प हो रहा है कि न जाने मेरा पुत्र यमराज के पास जाकर क्या करेगा ? मेरे संबन्ध में मेरे पिता का यह संकल्प शान्त हो जाय, वे प्रसन्न चित्त और क्रोध रहित हो जाएँ । हे यमराज ! मेरा विश्वास है कि आप मुझे यहाँ से अपने पिता के पास जाने के लिये आज्ञा दे देंगे उस समय आपके भेजने पर मेरे पिता, मेरा वही पुत्र नचिकेता लौट आया है, ऐसी लब्ध स्मृति हो मुझसे सम्भाषण करें । बस अपने पिता की प्रसन्नतारूप प्रयोजन वाला वर ही मैं आपके तीन वरों में से पहला वर माँग रहा हूँ ॥ १० ॥

---

१. किनु करिष्यतीति सर्वजनमारकं मृत्युमासाद्यात्माऽमरणाय कं यत्नं करिष्यति न खलु तत्सविधे यत्नः कस्यापि कश्चित् फलतीति भावः । सदयं सस्नेहं चाह—मम पुत्र इति । २. प्रसन्नमना इति पुत्रस्य मे धर्मप्रियत्वाद्यमस्य च धर्मराजत्वाद्धर्मो रक्षति रक्षित इति नियमाज्जीविष्यत्येव मे पुत्र इत्येवं प्रसन्नं मनो यस्येत्यर्थः । ३. विगतरोषश्चेति—ऊहाः पाप पितरं मामेकाकिनमपहाय क्व गतोऽसीति रोषो यस्य विगत इत्यर्थः । मन्युः पुमान् क्रुधि दैन्ये शोके च यज्ञे चेति मेदिनी । ४. उपेक्षां मम त्यागमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणि-
र्मत्प्रसृष्टः। सुखꣳ रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां
ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥११॥

मुझसे प्रेरित हुआ अरुण पुत्र उद्दालक तुझे पूर्ववत् पहिचान कर (प्रेम करेगा) और (शेष जीवन की) रात्रियों में सुख पूर्वक सोएगा, क्योंकि मृत्यु के मुख से छूटा हुआ तुझे देखेगा ॥ ११ ॥

ततो मृत्युरुवाच—यथा बुद्धिस्त्वयि पुरस्तात्पूर्वमासीत्स्नेहसमन्विता पितुस्तव भविता प्रीतिसमन्वितस्तव पिता तथैव [1]प्रतीतः [2]प्रतीतवान्सन्नौद्दालकिः। [3]उद्दालक एवौद्दालकिः। अरुणस्यापत्यमारुणिर्द्व्यामुष्यायणो वा मत्प्रसृष्टो मयाऽनुज्ञातः स [4]इतरा अपि रात्रीः

औद्दालकिरिति तद्धितः स्वार्थे व्याख्यातो[5]ऽपत्यार्थे व्याख्येय इत्याह—द्व्यामुष्यायणो वेति। [6]अमुष्य प्रख्यातस्यापत्यमामुष्यायणः। [7]द्वयोः पित्रोः पूर्वभाषादिना संबन्धी चासावामुष्यायणश्च। न [8]जारज इत्यर्थः ॥११॥

मृत्यु ने कहा—तेरे पिता की बुद्धि तुझ पर जैसी स्नेह सिक्त पहले थी, वैसे ही वह औद्दालिक आगे भी प्रीतियुक्त हो तुझ पर विश्वस्त हो जाएगा। यहाँ पर उद्दालक को ही औद्दालिक शब्द से कहा है, वैसे ही अरुण के पुत्र होने के कारण आरुणि कहते हैं अथवा यह भी सकता है कि वह द्व्यामुष्यायण हो (एक का पुत्र जब दूसरे की गोद में चला जाता है, उस स्थिति में दोनों ही पितरों के पिण्डदानादि का अधिकारी वह हो जाता है। वह दत्तक पुत्र दोनों पिता की सम्पत्ति का स्वामी भी हो जाता है। सम्भव है वाजश्रवस्, उद्दालक एवं अरुण में से एक का औरस पुत्र हो और दूसरे की गोद में गया हो। इसीलिये वाजश्रवस् को औद्दालकि एवं आरुणि दो नाम से श्रुति ने कहा है।

---

१. प्रतीतवानिति—क्तवत्वन्तम्। २. प्रतीत इति—गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्चेत्यनेन कर्तरि क्तान्तमित्याशयेन व्याचष्टे—प्रतीतवानिति। ३. द्वैमातुरस्य प्रसिद्धत्वेऽपि द्वैपित्रस्या तथात्वादेकपित्रं स्वार्थे व्याख्याति—उद्दालक एवौद्दालकिरिति। ४. इतरा अपीति—अनेन पूर्वा अपि तिस्रो रात्रीर्मदनुग्रहात्सुखमेव शयितस्त्वत्पितेति गमयतीति मन्तव्यम्। ५. अपत्यार्थे व्याख्येय इति—तस्य तस्मिन्नेवात इञिति विहितत्वादिति भावः। ६. आमुष्यायणामुष्यपुत्रिकामुष्यकुलिकेति चेति वचनात् षष्ठ्यामलुक् नडादिभ्यः फगित्यपत्यार्थे फगित्याशयेन विगृह्णाति—अमुष्य प्रख्यातस्येति। उद्दालकस्येत्यर्थः। तस्यैव प्रख्यातत्वादपत्यार्थे व्याख्येय इति टीकानुरोधाच्चेत्यवधेयम्। ७. कथं द्वैपित्रत्वं घटतेऽत आह—द्वयोः पित्रोः पूर्वंभाषणादिना संबन्धीति। पूर्वमेकस्मै कन्याप्रदानं भाषित्वा कारणविशेषवशादन्यस्मै प्रदाने संभवति तज्जस्य द्वैपित्रत्वं धृतराष्ट्रादीनामिव वेत्यादिशब्दार्थः। ८. न जारज इति जारस्तूपपतिः समावित्यमरः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न
जरया बिभेति । उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥

हे मृत्यु ! स्वर्गलोक में (रोगादि निमित्तक) कुछ भी भय नहीं है। वहाँ पर आपका भी वश नहीं चलता। न कोई वहाँ पर वृद्धावस्था से ही डरता है बल्कि स्वर्गलोक में पुरुष क्षुधा एवं पिपासा दोनों को पार करके शोक से ऊपर उठ जाता है और आनन्दित होता है ॥ १२ ॥

सुखं प्रसन्नमनाः शयिता स्वप्ता वीतमन्युर्विगतमन्युश्च भविता स्यात्त्वां पुत्रं ददृशिवान्दृष्टवान्सन्मृत्युमुखा[1]न्मृत्युगोचरात्प्रमुक्तं सन्तम् ॥११॥

नचिकेता उवाच—स्वर्गे लोके रोगादिनिमित्तं भयं किंचन किंचिदपि नास्ति । न च तत्र त्वं मृत्यो सहसा प्रभवस्यतो जरया युक्त इह लोकवत्त्वत्तो न बिभेति कश्चित्तत्र। किंचोभे अशनायापिपासे तीर्त्वाऽतिक्रम्य शोकमतीत्य गच्छतीति शोकातिगः सन्मानसेन दुःखेन च वर्जितो मोदते हृष्यति स्वर्गलोके दिव्ये ॥१२॥

---

[2]स्वर्गसाधनमग्निज्ञानं प्रष्टुं स्वर्गस्वरूपं तावदाह—स्वर्गे लोक इति ॥१२॥

भाष्यकार ने इसी अभिप्राय से वाजश्रवस् को द्व्यामुष्यायण कहा)। मुझसे प्रेरित हो वह जीवन की शेष रात्रियों में भी सुखपूर्वक प्रसन्न चित्त से सोएगा और मृत्यु के मुख से छूटा हुआ तुझ पुत्र को देखकर वह क्रोध रहित हो जाएगा ॥ ११ ॥

स्वर्ग के स्वरूप का वर्णन

नचिकेता ने कहा—स्वर्ग लोक में रोगादि के कारण होने वाला थोड़ा भी भय नहीं है। हे मृत्यु ! वहाँ आप भी सहसा प्रभाव नहीं जमा सकते। अतः इस लोक की भाँति वहाँ पर वृद्धावस्था से युक्त हो कोई भी पुरुष आपसे कहीं नहीं डरता, इतना ही नहीं बल्कि वे भूख-प्यास दोनों को पारकर शोक का अतिक्रमण कर मानसिक दुःख से छुटकारा पाकर उस दिव्य स्वर्गलोक में गया हुआ पुरुष सदा प्रसन्न रहता है ॥ १२ ॥

---

१. मृत्युगोचरादिति—भावप्रधानत्वान्मृत्युविषयताया इत्यर्थः । मत्कृतमारणादिति यावत् । मद्दत्तविद्याप्रभावान्मृत्युगोचरात्संसारादिति तु निगूढार्थः । २. स्वर्गसाधनमग्निज्ञानं प्रष्टुमिति । यदेतदग्निकर्मणि पित्रा लोभादिना दक्षिणाङ्गे वैगुण्यमकारितदहमग्निज्ञानं तत्त्वतो यमादेव साक्षात्संमधिगम्य प्रमार्जितास्मि श्रूयते हि सम्प्रति कर्मप्रस्तावे "स य घनेन किंचिदक्ष्णयाऽकृतं भवति तस्मादेनं सर्वस्मात्पुत्रो मुञ्चतीति इति मन्वानो नचिकेता इत्यादिः । अक्ष्णयाकोणाच्छिद्रतो यागैकदेशे इति यावत् । अकृतम् लोभादिना विस्मरणाद्वा अन्यथाकृतं नैव वा कृतमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स त्वमग्निꣳ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तꣳ
श्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्गलोका अमृतत्वं
भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥
प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्नि

हे मृत्यु ! (पूर्वोक्त गुणविशिष्ट) स्वर्ग के साधन भूत अग्नि को आप जानते हैं; उसे मुझ श्रद्धालु को बतलावें (जिसके द्वारा) स्वर्ग को प्राप्त हुए पुरुष अमरत्व (देवत्व) को प्राप्त करते हैं। बस ! मैं द्वितीय वर से यही माँगता हूँ ॥१३॥

हे नचिकेता ! उस स्वर्ग देने वाले अग्नि को अच्छी प्रकार जानता हुआ मैं तेरे लिये उसे

एवंगुणविशिष्टस्य स्वर्गलोकस्य प्राप्तिसाधनभूतमग्निं स्वर्ग्यं स त्वं मृत्युरध्येषि स्मरसि जानासीत्यर्थः । हे मृत्यो यतस्त्वं प्रब्रूहि कथय श्रद्दधानाय श्रद्धावते मह्यं स्वर्गार्थिने । येनाग्निना चितेन स्वर्गलोकाः स्वर्गो लोको येषां ते स्वर्गलोका यजमाना अमृतत्वममरणतां देवत्वं भजन्ते प्राप्नुवन्ति तदेतदग्निविज्ञानं द्वितीयेन वरेण वृणे ॥१३॥

मृत्योः प्रतिज्ञेयम् । प्र ते तुभ्यं प्रब्रवीमि । यत्त्वया प्रार्थितं तदु मे मम वचसो निबोध बुध्यस्वैकाग्रमनाः सन्स्वर्ग्यं स्वर्गाय हितं [1]स्वर्गसाधनमग्निं हे नचिकेतः प्रजानन्वि-

---

॥१३॥

इयं च वक्ष्यमाणा मृत्योः प्रतिज्ञाऽवगन्तव्या । "स त्रेधाऽऽत्मानं [2]व्यकुरुत" इतिश्रुतेरग्निवाख्या-

---

स्वर्ग साधन अग्निविद्यारूप द्वितीय वर

हे मृत्यु ! आप ऐसे गुण विशिष्ट स्वर्गलोक की प्राप्ति के साधन अग्नि को जानते हो। अतः स्वर्गार्थी मुझ श्रद्धालु के प्रति उस अग्नि का वर्णन करो, जिस अग्नि के चयन करने से स्वर्गलोक प्राप्त करने वाले स्वर्गार्थी यजमान अमृतत्व यानी देवभाव को प्राप्त हो जाते हैं। इसी अग्निविद्या को मैं दूसरे वरदान के रूप में आप से माँगता हूँ ॥ १३ ॥

वरदान के लिए यमराज की यह प्रतिज्ञा

हे नचिकेता ! तुमने जिसके लिये प्रार्थना की है, उस स्वर्ग प्राप्ति में हितकर स्वर्ग के साधन-

---

१. स्वर्गाय हितमित्यर्थाभिधानमात्रं तस्मै हितमित्यस्य प्राक्क्रीताच्छ इति छाधिकारे पठितत्वात् उगवादिभ्यो यदित्यपि न गवादिगणे स्वर्गशब्दस्यापठितत्वात् आकृतिगणत्वाभावाच्च किन्तु "तदस्य प्रयोजन"मित्यधिकारे "अनुप्रवचनादिभ्यश्छः" इति सूत्रे स्वर्गादिभ्यो यद्वक्तव्य इति वचनात् स्वर्गः प्रयोजनमस्येत्येव विग्रह इत्याशयेनाह—स्वर्गसाधनमिति । २. व्यकुरुतेत्यनन्तरमग्निं तृतीयं वायुं तृतीयमादित्यं तृतीयमिति श्रुतिशेषो द्रष्टव्यः । स विराडात्मा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां
विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥१४॥
लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका
यावतीर्वा यथा वा । स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्त-
मथास्य मृत्युः पुनरेवाऽऽह तुष्टः ॥१५॥

कहता हूँ। तू उस अग्नि विज्ञान को मुझसे अच्छी प्रकार समझ ले। इसे तू अनन्त लोकों की प्राप्ति का साधन, उसका आधार और बुद्धिरूपी गुफा में उसे स्थित जान। १४।

तदनन्तर यमराज ने लोकों के आदिकारणरूप उस अग्निविद्या को नचिकेता के लिये कह दिया। उस अग्नि के चयन में जैसी और जितनी ईंटें होती हैं एवं जिस प्रकार उसका चयन किया जाता है, उसका भी वर्णन नचिकेता के प्रति कर दिया और उस नचिकेता ने भी जैसे के तैसे उस अग्निविद्या को सुना दिया। इससे प्रसन्न होकर मृत्यु ने फिर कहा ॥१५॥

ज्ञातवानहं सन्नित्यर्थः। प्रब्रवीमि तन्निबोधेति च शिष्यबुद्धिसमाधानार्थं वचनम्। अधुनाऽग्निं स्तौति। अनन्तलोकाप्तिं स्वर्गलोकफलप्राप्तिसाधनमित्येतत्। अथो अपि प्रतिष्ठामाश्रयं जगतो विराड्रूपेण तमेतमग्निं मयोच्यमानं विद्धि जानीहि त्वं निहितं स्थितं गुहायां विदुषां बुद्धौ निविष्टमित्यर्थः ॥१४॥

इदं श्रुतेर्वचनम्। लोकादिं लोकानामादिं प्रथमशरीरित्वादग्निं तं प्रकृतं नचिकेतसा[1] प्रार्थितमुवाचोक्तवान्मृत्युस्तस्मै नचिकेतसे। किंच या इष्टकाश्चेतव्याः[2] स्वरूपेण।

दित्यरूपेण समष्टिरूपो विराडेव व्यवस्थित इति तेन विराड्रूपेणाग्निर्जगतः प्रतिष्ठेत्युच्यते ॥१४॥

सप्रपञ्चमग्निज्ञानं [3]चयनप्रकरणाद्द्रष्टव्यमिति श्रुतिरस्मान्बोधयतीत्याह—इदं श्रुतेर्वचनमिति ॥१५॥

रूप अग्नि को एकाग्रचित्त हो मेरे वाक्य से तू अच्छी प्रकार समझ ले क्योंकि मैं उसे अच्छी प्रकार जानने वाला विशेषज्ञ हूँ। ऐसा अग्निविज्ञानवेत्ता मैं तुझसे कहता हूँ कि उसे समझ ले। शिष्य बुद्धि को समाहित करने के लिए यमाचार्य के ये वाक्य हैं। अब अग्नि की स्तुति करते हैं। स्वर्गलोक में आपेक्षिक अनन्तता है, ऐसे आपेक्षिक अनन्त स्वर्गलोक रूप फल की प्राप्ति का साधन एवं विराट्रूप से जगत् का आश्रय मेरे द्वारा कहा गया अग्नि है, उसे तुम बुद्धिमान् पुरुषों की बुद्धि में स्थित जानो ॥ १४ ॥

---

१. नचिकेतसा प्रार्थितमिति—स्वर्ग्यमित्यर्थः। २. चेतव्या स्वरूपेणेति—द्रोणरथचक्रादिस्वरूपेणोपधातव्या इत्यर्थः। तथा च का. श्री. सू. एतया विकृत्याभिमन्त्र्यैकेऽन्यचितं चिन्वन्ति द्रोणचिद्रथचक्रचिदित्यादि।

३. चयनप्रकरणादिति—शतपथादिब्राह्मणग्रन्थस्थात् कात्यायनादिमहर्षिप्रोक्तश्रौतसूत्रादिगताच्चेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य
ददामि भूयः। तवैव नाम्ना भविताऽयमग्निः
सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥१६॥

महात्मा (यमराज) ने प्रसन्न होकर उस नचिकेता से कहा—अब मैं तुझे एक वरदान और भी देता हूँ, यह अग्नि (लोक में अब) तेरे ही नाम से प्रसिद्ध होगा और तू इस अनेकरूपमयी माला को ग्रहण कर ॥१६॥

---

[2]यावतीर्वा संख्यया। यथा वा [3]चीयतेऽग्निर्येन प्रकारेण सर्वमेतदुक्तवानित्यर्थः। स चापि नचिकेतास्तन्मृत्युनोक्तं यथावत्[4]प्रत्ययेनावदत्प्रत्युच्चारितवान्। अथास्य प्रत्युच्चारणेन तुष्टः सन्मृत्युः पुनरेवाऽऽह वरत्रयव्यतिरेकेणान्यं वरं दित्सुः ॥१५॥

कथं तं नचिकेतसमब्रवीत्प्रीयमाणः शिष्ययोग्यतां पश्यन्प्रीयमाणः प्रीतिमनुभवन्महात्मा[5]ऽक्षुद्रबुद्धिर्वरं तव चतुर्थमिह प्रीतिनिमित्तमद्येदानीं ददामि भूयः पुनः प्रयच्छामि।

॥१६।

श्रुति का यह वचन है कि जिसके लिये नचिकेता ने प्रार्थना की थी और जिसका प्रकरण चल रहा है, उसे प्रथम शरीरी होने के कारण उस अग्नि को यमाचार्य ने नचिकेता से कह दिया। इतना ही नहीं जैसा उसका स्वरूप है, जितनी संख्या में जितनी ईंटों के चयन का विधान है और जैसे अग्नि चयन किया जाता है। उन सभी रहस्यों को यमाचार्य ने नचिकेता से कह डाला और जिस प्रकार नचिकेता से यमाचार्य ने कहा था, उसे सम्यक् प्रकार अवगत कर लेने के कारण मेधावी नचिकेता ने ज्यों का त्यों सुना दिया। तत्पश्चात् उस नचिकेता के प्रत्युच्चारण से प्रसन्न हो यम ने इन तीन वरों के अतिरिक्त वर देने की इच्छा से नचिकेता के प्रति फिर से कहा ॥१५॥

कैसे कहा? इसी को बतलाते हैं—अपने शिष्य की योग्यता को देख प्रसन्नता का अनुभव

---

१. पितुः सौमनस्यं पितुरेव फलं किं तत्र नचिकेतस इति निगूढतरमाशयानः स्वयं वितीर्णवरसंख्यां पूरयितुकामो धर्मराडाह—वर तवेहाद्य ददामि भूय इति। न चैतावता प्रीयमाणत्वस्यात्र प्रतीयमानं कारणत्वं विहन्यते तस्य परम्परया कारणत्वात्। तत्प्रयुक्त एव हि यथोक्तः कामः तत्प्रयुक्तं चेदमित्यवधेयम्।
२. यद्वा स्वरूपेण तिर्यगूर्ध्वादिपरिमाणभेदेन चेतव्या इष्टका या यादृशीरित्यर्थः। ३. चीयते—आधीयते वेद्यां संस्थाप्यत इति यावत्। ४. प्रत्ययेन—संनिश्चयमिति यावत्। प्रत्ययेनावददित्यस्य स्थाने प्रत्यवददित्येव लिखितपुस्तके पाठः स एव च श्रेयान्मूलानुरोधित्वात्। ५. प्रीयमाणत्वे हेतुर्महात्मेति तद्व्याचष्टे—अक्षुद्रबुद्धिरिति। हेतुरिति हेत्वन्तरमित्यर्थः। शिष्ययोग्यतादर्शनस्यापि हेतुत्वात्। क्षुद्रबुद्धिर्हि परकीयं प्रज्ञाद्युत्कर्षं पश्यन्नीर्ष्यया कलुषीभवति। अक्षुद्रधीस्तु 'प्रीयत' एवेति भावः। क्षुद्रः स्यादधमक्रूरकृपणाल्पेषु वाच्यवदिति विश्वः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य संधिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू । ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमाँ शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥

नाचिकेत अग्नि का तीन वार चयन करने वाला मनुष्य (उसका विज्ञान, अध्ययन और अनुष्ठान करने वाला, या माता, पिता एवं आचार्य) इन तीनों से सम्बन्ध को प्राप्त कर जन्म तथा मृत्यु को पार कर जाता है, एवं ब्रह्म से उत्पन्न हुए, ज्ञानवान् और स्तुति के योग्य देव को (शास्त्र से जान कर तथा आत्मभावेन) उसे अनुभव कर इस प्रत्यक्ष आत्यन्तिक शान्ति को प्राप्त करता है ॥१७॥

तवैव नचिकेतसो नाम्नाऽभिधानेन प्रसिद्धो भविता मयोच्यमानोऽमग्निः । किंच सृङ्कां[1] शब्दवतीं[2] रत्नमयीं[3] मालामिमामनेकरूपां विचित्रां गृहाण स्वीकुरु । [4]यद्वा सृङ्कामकुत्सितां गतिं कर्ममयीं गृहाण । अन्यदपि कर्मविज्ञानमनेकफलहेतुत्वात्स्वीकुर्वित्यर्थः ॥१६॥

पुनरपि कर्मस्तुतिमेवाऽऽह—

त्रिणाचिकेत[5]स्त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो येन स त्रिणाचिकेत[6]स्तद्विज्ञानस्तद-

---

करते हुए विशाल बुद्धि महात्मा यम ने नचिकेता से कहा कि इस समय मैं प्रसन्नता के कारण तुझे फिर चौथा अन्य वर देता हूँ । मेरे द्वारा कहा गया यह अग्नि तुझ नचिकेता के नाम से ही प्रसिद्ध होगा । इतना ही नहीं बल्कि शब्द करने वाली अनेक विचित्र वर्ण वाली रत्नमयी माला को भी स्वीकार कर अथवा कर्ममयी अनिन्दिता गति को भी सृंका कहते हैं, इसे तू स्वीकार कर अर्थात् इसके सिवा अनेक फल का कारण होने से तू मेरे द्वारा कर्म विज्ञान को और भी स्वीकार कर ॥१६॥

---

१. तद्यथाऽनः सुसमाहितमुत्सर्जद्यायादेवमेवायं शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मनाऽन्वारूढ उत्सर्जन्याति यत्रैतदूर्ध्वोच्छ्वासी भवतीति श्रुतौ सृजिधातोः शब्दार्थकत्वप्रसिद्धिमाश्रित्य व्याचष्टे—शब्दवतीमिति । २. रत्नमयीमिति—वक्ष्यति हि यमराजो नैतां सृङ्कां वित्तमयीमिति । ३. सृजिधातुनिष्पन्नस्रक्छब्दस्य मालावाचित्वप्रसिद्धिमनुरुध्याह—मालामिति । ४. स्रकिगतावित्यस्मात् सृङ्काशब्दनिष्पत्तिमभिप्रेत्याह—यद्वा सृङ्कामकुत्सितामिति । अकुत्सितत्वं प्रकरणानुरोधादुक्तम् । तत्त्वदृष्ट्या तु स त्वं प्रियानित्यादिवाक्यभाष्ये कुत्सितामिति वक्ष्यतीत्यववेयम् । ५. त्रिणाचिकेत इत्यत्र पूर्वपदात्संज्ञायामग इति णत्वं छान्दसं वेत्याशयेन व्याचष्टे—त्रिःकृत्व इति । अत्र कृत्व इत्यधिकं द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् । इति हि संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुजित्यस्यापवादः किं च नैकार्थकं प्रत्ययद्वयमेकस्याः प्रकृतेः युगपत् प्रयोगमर्हति । तस्माल्लेखकप्रमादोऽयं कृत्वेति क्त्वान्तो वा पाठः कथंचित्स गच्छमानोऽन्यथाकृत इति प्रतिपद्ये । ६. तद्विज्ञानस्तदध्ययन इत्युभयत्र मतुबन्त एव पाठो लिखितपुस्तके दृश्यते । विज्ञानमुपास्तिः शास्त्रोत्थमात्रमेव वा अध्ययनं तत्प्रतिपादकस्थवेदादेः । अनुष्ठानं चयनम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्ययनस्तदनुष्ठानवान्वा । त्रिभिर्मातृपित्राचार्यैरेत्य प्राप्य संधिं संधानं संबन्धं मात्राद्यनुशासनं यथावत्प्राप्येत्येतत् । तद्धि प्रामाण्यकारणं श्रुत्यन्तरादवगम्यते । यथा मातृमान्पितृमानित्यादेः । वेदस्मृतिशिष्टैर्वा प्रत्यक्षानुमागमैर्वा । तेभ्यो हि विशुद्धिः प्रत्यक्षा । त्रिकर्मकृदिज्याध्ययनदानानां कर्ता तरत्यतिक्रामति जन्ममृत्यू । [2]किंच ब्रह्मजज्ञं ब्रह्मणो हिरण्यगर्भाज्जातो ब्रह्मजः । ब्रह्मजश्चासौ ज्ञश्चेति ब्रह्मजज्ञः सर्वज्ञो ह्यसौ । तं देवं द्योतनाज्ज्ञानादिगुणवन्तमीड्यं स्तुत्यं विदित्वा गृहीत्वा शास्त्रतो निचाय्य दृष्ट्वा चाऽऽत्मभावेनेमां [4]स्वबुद्धिप्रत्यक्षां शान्तिमुपरतिमत्यन्तमेत्यतिशयेनेति । वैराजं पदं ज्ञानकर्मसमुच्चयानुष्ठानेन प्राप्नोतीत्यर्थः ॥१७॥

विशुद्धिरिति धर्माद्यवगतिः । दृष्ट्वा चाऽऽत्मभावेनेति । अयमर्थः । विंशत्यधिकानि सप्तशतानीष्टकानां संख्या संवत्सरस्याहोरात्राणि च तावत्संख्यकान्येव संख्यासामान्यात्तैरिष्टकास्थानीयैश्चितोऽग्निरहमित्यात्मभावेन ध्यात्वेति ॥१७॥

नाचिकेत अग्नि चयन करने का फल

यमाचार्य फिर भी कर्म की स्तुति ही करते हैं। तीन बार नाचिकेत अग्नि चयन करने वाले को त्रिणाचिकेत कहते हैं अथवा उसका ज्ञान, अध्ययन एवं अनुष्ठान करने वाला त्रिणाचिकेत कहलाता है। वह त्रिणाचिकेत पुरुष माता, पिता एवं आचार्य इन तीनों से सम्बन्ध प्राप्त कर अर्थात् माता का प्यार, पिता की शिक्षा एवं आचार्य का अनुशासन प्राप्त कर पूर्ण योग्य हो जाता है क्योंकि एक दूसरी श्रुति से भी जाना जाता है कि "माता, पिता तथा आचार्य से शिक्षा प्राप्त पुरुष बोले"। इन तीनों की शिक्षा ही धर्मज्ञान की प्रामाणिकता में कारण मानी गयी है अथवा श्रुति-स्मृति एवं शिष्ट पुरुषों से या प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम से सम्बन्ध प्राप्त कर यज्ञ, अध्ययन और दान इन तीनों कर्मों को करने वाला पुरुष जन्म और मृत्यु को पार कर जाता है क्योंकि उन वेदादि प्रमाणों से अथवा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से प्रत्यक्ष शुद्धि होती देखी जाती है।

ब्रह्मा यानी हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुये को ब्रह्मज कहते हैं। इस प्रकार जो ब्रह्मज हो और ज्ञ भी हो, उसीको ब्रह्मजज्ञ कहते हैं, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। द्योतन आदि के कारण उसे देव कहते हैं और ज्ञानादि गुणों से युक्त होने के कारण उसे स्तुति योग्य भी कहते हैं ऐसे देव को शास्त्र से जानकर तत्पश्चात् आत्मभावेन साक्षात्कार कर अपनी बुद्धि से प्रत्यक्ष होने योग्य इस आत्यन्तिक शान्ति को

---

१. मातृपित्राचार्यैरिति—त्रिपदद्वन्द्वे पितुर्नानङ् आचार्यस्यानृदन्तत्वान्मातुर्नानङ् पितुरनुत्तरपदत्वात् आनङ् ऋतो द्वन्द्वे इत्यत्र हि ऋदन्तानामेव द्वन्द्वे उत्तरपदे एवेति व्याख्यानात् । २. पूर्वार्धेन सफलं कर्मोक्त्वोत्तरार्धेन सफलमुपासनमुच्यत इत्याशयेनाह—किंचेति । ३. ज्ञानादिगुणवन्तमिति—हेतुगर्भितं विशेषणं ज्ञानादिगुणवत्त्वादीड्यमित्यर्थः । ४. इमामितीदं शब्दस्वारस्येनाह—स्वबुद्धिप्रत्यक्षामिति । ननूपरतिरिह वैराजं पदमिति वक्ष्यमाणभाष्यानुरोधाद्वैराजं सुखमेव विवक्षिता तस्य च विराड् बुद्ध्येकगम्यत्वात्स्वबुद्धिप्रत्यक्षामिति कुत इति चेद्देवतात्वेन सर्वज्ञत्वाद्विराडभेदं वा संपाद्य संभवादित्यवधेयम् । ५. उपरतिं—सुखविशेषमिति यावत् । ६. अहोरात्राणीति—"रात्राह्नाहाः पुंसि"त्यनादरात् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम् । स मृत्युपाशान्पुरतःप्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन

जो त्रिणाचिकेत विद्वान् है, (वह) अग्नि के इस त्रय को (अर्थात् ईंटें कौन हैं, कितनी संख्या में हैं और किस प्रकार अग्नि का चयन किया जाय, इसे) जानकर नाचिकेत अग्नि का चयन करता है, वह देहपात से पहले मृत्यु के बन्धन (अधर्म, अज्ञान, राग-द्वेषादि) को नष्ट कर शोक से पार हो स्वर्गलोक में आनन्दित होता है ॥१८॥

हे नचिकेता! तूने जिसे द्वितीय वर से वरण किया था, वह यह स्वर्ग का साधनभूत अग्नि

इदानीमग्नि[1]विज्ञानचयनफलमुपसंहरति [2]प्रकरणं च—

[3]त्रिणाचिकेतस्त्रयं यथोक्तं या इष्टका यावतीर्वा यथा वेत्येतद्विदित्वाऽवगम्य यश्चैवमात्मरूपेणाग्निं विद्वां[4]श्चिनुते निर्वर्तयति नाचिकेतमग्निं क्रतुं स मृत्युपाशानधर्माज्ञानरागद्वेषादिलक्षणान्पुरतोऽग्रतः पूर्वमेव शरीरपातादित्यर्थः । प्रणोद्यापहाय शोकातिगो मानसैर्दुःखैर्वर्जित इत्येतत् । मोदते स्वर्गलोके वैराजे विराडात्मस्वरूपप्रतिपत्त्या ॥१८॥

एष ते तुभ्यमग्नि[5]र्वरो हे नचिकेतः स्वर्ग्यो यमग्निं वरमवृणीथाः प्रार्थितवानसि

॥१८॥

प्राप्त कर लेता है। तात्पर्य यह है कि उपासना और कर्म के समुच्चय अनुष्ठान से वह साधक वैराग्य पद को प्राप्त कर लेता है ॥१७॥

अब अग्नि विज्ञान एवं उसके अनुष्ठान के फल का तथा इस प्रसंग का उपसंहार करते हैं।

इस नाचिकेत अग्नि के चयन में जो ईंटें होनी चाहिये, जितनी संख्या में होनी चाहिये और जैसे इस अग्नि का अनुष्ठान करना चाहिये; इन तीनों पूर्वोक्त बातों को सम्यक् जानकर उस अग्नि को आत्मस्वरूप से जानने वाला जो विद्वान् उपासनीय अग्नि का चयन करता है, वह साधक देहपात से पूर्व ही अधर्म, अज्ञान एवं राग-द्वेषादिरूप मृत्यु के बन्धनों को त्याग कर मानसिक दुःखों से मुक्त हुआ स्वर्ग में यानी वैराजलोक में आनन्दित होता है; क्योंकि उसे विराडात्मा की प्राप्ति हो चुकी ॥१८॥

---

१. विज्ञानचयनेति—उपास्तिकर्मणोरित्यर्थः । २. प्रकरणमिति—स्वर्ग्याग्निप्रकरणमित्यर्थः । कर्मोपास्तिसमुच्चयप्रकरणमिति यावत् । ३. त्रिणाचिकेत इति—पूर्वकृतव्याख्यानमिति नेह व्याख्यायते परं तद्विज्ञान इत्यादि द्वितीयव्याख्यानमेवेहोपयुक्तं चिनुत इत्युच्यमानचयनस्य चतुर्थत्वापत्तिर्मा भूदितीत्ययश्रेयम् । ४. विद्वानुपासीनः । ५. वरो—वरविषयः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वरेण । 'एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं
वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥१९॥

तुझे बतला दिया गया। अब लोग इस अग्नि को तेरे नाम से ही कहेंगे। अतः हे नचिकेता! अब तू तीसरा वर माँग ले (क्योंकि इसे दिये विना मैं तेरा ऋणी हूँ ॥१९॥

द्वितीयेन वरेण सोऽग्निर्वरो दत्त इत्युक्तोपसंहारः। किंचैतमग्निं तवैव नाम्ना प्रवक्ष्यन्ति 'जनासो जना इत्येतदेष वरो दत्तो मया चतुर्थस्तुष्टेन। तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व। तस्मिन्ह्यदत्त ऋणवानहमित्यभिप्रायः ॥१९॥

एतावद्ध्यतिक्रान्तेन विधिप्रतिषेधार्थेन मन्त्रब्राह्मणेनावगन्तव्यं यद्वरद्वयसूचितं वस्तु नाऽऽत्मतत्त्वविषययाथात्म्यविज्ञानम्। अतो विधिप्रतिषेधार्थविषयस्याऽऽत्मनि क्रियाकारक-

---

॥१९॥

'पितापुत्रस्नेहादिस्वर्गलोकावसानं यद्वरद्वयसूचितं संसाररूपं तदेव कर्मकाण्डप्रतिपाद्यमात्मन्यारोपितं तन्निवर्तकं चाऽऽत्मज्ञानमित्यध्यारोपापवाद'भावेन "पूर्वोत्तरग्रन्थयोः संबन्धमाह—एतावद्धीति।

हे नचिकेत! तूने अपने दूसरे वर से जिस अग्नि का वरण किया था अर्थात् जिसके लिये तूने प्रार्थना की थी, उस स्वर्ग की प्राप्ति के साधनभूत इस अग्निविज्ञान रूप वर को मैंने तुझे दे दिया। इस प्रकार पूर्वोक्त अग्निविज्ञान का उपसंहार कर दिया गया। इतना ही नहीं अपितु अब लोग इस अग्नि को तेरे ही नाम से पुकारेंगे। यह चतुर्थ वरदान भी मैंने प्रसन्न होकर तुझे दिया था। हे नचिकेता! अब इसके आगे तू तीसरा वर माँग ले क्योंकि उसे दिए विना मै तुम्हारा ऋणी बना रहूँगा, यह इसका अभिप्राय है ॥१९॥

जिसका प्रयोजन विधि और निषेध है ऐसे अर्थ के प्रतिपादक पूर्वोक्त मन्त्र ब्राह्मण द्वारा इन दो वरों से सूचित ज्ञातव्य वस्तु इतनी ही है अर्थात् ऐहिक और आमुष्मिक अर्थ प्राप्ति के साधन के रूप में इन दो वरों से नचिकेता ने माँगा। इनका प्रतिपाद्य विषय आत्मतत्त्व विषयक यथार्थ ज्ञान नहीं

---

१. प्रसादात् प्रत्तमनुवदति—एतमग्निमिति। सृङ्कां तु नाङ्गीकृतवान्नचिकेता इत्यनेनसूच्यते। वक्ष्यति च नैतां सृङ्कां वित्तमयीत्यवाप्त इतीमवधेयम्। २. अग्निर्वर इति पुनर्ग्रहणं दत्त इत्यन्वयार्थम्। ३. जनास इत्यत्र आज्जसेरसुगित्यनेनच्छन्दसिजसोऽसुगागम इत्याशयेन तदर्थकं लौकिकं पदमर्पयति जना इति। ४. अतिक्रान्तेनेति —पूर्वकाण्डाभिधानेनेति यावत्। ५. मन्त्रब्राह्मणेनेति—तदाख्येन वेदेनेत्यर्थः। ६. विज्ञानमिति—न च तद्याथात्म्यविज्ञानमन्तरेण कृतकृत्यत्वलाभ इति शेषः। ७. कथमात्मज्ञानस्य कृतकृत्यत्वलम्भकत्वं तत्राह—अत इत्यादि। अखिलानर्थ हेतोरज्ञानस्य निवृत्तिद्वारेति भावः। ८. विधिप्रतिषेधार्थविषयस्येति—पूर्वकाण्डप्रतिपाद्यस्येति यावत्। त्रैगुण्यविषयावेदा इति भगवदुक्तेरिति भावः। ९. पितापुत्रेति—"आनङ्ऋतो द्वन्द्वे" इत्यत्र पुत्रेऽन्यतरस्यामित्यतो मण्डूकप्लुत्या पुत्र इत्यनुवृत्तेरानङ्। १०. भावेनसंबन्धमिति तदात्मकं संबन्धमित्यर्थः तत्प्रयुक्तं वा नियमेनाव्यवहितपूर्वोत्तरवृत्तित्वरूपसंबन्धमिति। ११. पूर्वोत्तरग्रन्थयोरिति काण्डयोरप्युपलक्षणम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

[1]येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥२०॥

मरे हुए मनुष्य के विषय में जो यह संशय होता है, कुछ लोग (जीव का) अस्तित्व मानते हैं और कुछ लोग नहीं मानते हैं। आपसे शिक्षित हुआ मैं इसे जानूँ, बस। वरों में से यही मेरा तीसरा वर है ॥२०॥

फलाद्यध्यारोपणलक्षणस्य [2]स्वाभाविकस्याज्ञानस्य संसारबीजस्य निवृत्त्यर्थं तद्विपरीतब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं क्रियाकारकफला[3]ध्यारोपणलक्षणशून्य[4]मात्यन्तिकनिःश्रेयसप्रयोजनं वक्तव्यमित्युत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते । [5]तमेतमर्थं द्वितीयवरं प्राप्त्याऽप्यकृतार्थत्वं तृतीयवरगोचरमात्मज्ञानमन्तरेणेत्याख्यायिकया [6]प्रपञ्चयति—

यतः पूर्वस्मात्कर्मगोचरात्[7]साध्यसाधनलक्षणादनित्या[8]द्विरक्तस्याऽऽत्मज्ञानेऽधिकार इति

प्रथमवल्लीसमाप्तिपर्यन्ताख्यायिकाया [9]अवान्तरसंबन्धमाऽऽह—तमेतमर्थमिति । देह[10]व्यतिरिक्तात्मास्तित्वे

है। अतः विधि और निषेध के विषय जो भी क्रिया, कारक और फलरूप विषय हैं, वे आत्मा में अध्यारोपित हैं, ये संसार के बीजभूत हैं। उस स्वाभाविक अज्ञान की निवृत्ति के लिये उससे विपरीत ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान अब इससे आगे कहना है। क्रिया, कारक और फल के अध्यारोपरूप

---

१. कर्मोपास्त्यनुष्ठानाद्विशुद्धान्तःकरणस्य स्वयमात्मजिज्ञासा प्रवर्तत इति सूचयन्शिष्योक्तिमाह—येयमिति । ननु तयोः श्रवणादेवात्रेयं प्रवर्तमानावलोक्यते नानुष्ठानादिति चेन्न भूयस्या हि श्रद्धया श्रवणमपि क्वचिदधिकरिण्यनुष्ठानायते । तथा च स्मर्यते—"अधिगच्छति शास्त्रार्थः स्मरति श्रद्दधाति च । यत्कृपावशतस्तस्मै नमोऽस्तु गुरवे सदे"ति । नन्वत्र गुरुकृपावशादेव शास्त्राऽभ्यागमाद्युक्तं न श्रद्धया श्रवणादिति चेत्सत्यं गुरुकृपा तु श्रद्धां कटाक्षयत्येव । श्रद्दधानाय मह्यमिति चात्राप्यस्त्येव सेति विज्ञेयम् । २. स्वाभाविकस्येति—स्वभावोऽनादिरविद्या तत्कार्यस्येत्यर्थः । ३. अध्यारोपणलक्षणशून्यमिति—अत इति तत्प्रकारकत्वमध्यारोपणलक्षणं तद्रहितमित्यर्थः । ४. ननु निवृत्तेरभावतया सुखरूपत्वाभावान्न ततः कृतकृत्यत्वं यावत्सुखं हि यतते पुमानत आह—आत्यन्तिकनिःश्रेयसप्रयोजनमिति । निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसम् । अचतुरविचतुरेत्यादिना समासान्तोऽच् । स्वर्गादिव्यवच्छेदायात्यन्तिकेति । ५. उक्तेऽर्थेऽवशिष्टाख्यायिकाभागं प्रमाणयन्नाह—तमेतमर्थमिति तम्—एतावदित्याद्यारभ्यत इत्यन्तभाष्येणोक्तम् । एतम्—द्वितीयेत्यादीत्यन्तभाष्येणानुपदमुच्यमानम् । एतच्छब्दार्थं व्यनक्ति—द्वितीयेति । एतावदित्यादिभाष्योक्तस्यैवायं संक्षेप इति तमेतमिति सामानाधिकरण्यं निर्वहतीत्यवधेयम् । ६. प्रपञ्चयतीति—व्यनक्तीत्यर्थः । पचिव्यक्तीकरण इति स्मरणात् । ७. साध्यसाधनलक्षणादिति—हेतुफलभावेनभासमाना दैहिकामुष्मिकफलभोगादिति यावत् । ८. विरक्तस्येत्यादि—त्यागेनैक इत्यादि श्रुतेरिति भावः । ९. अवान्तरेति—अपवादोत्थापकत्वेन तदुपोद्घाततया तदन्तःपातित्वात्स एव महासंबन्धः अवान्तरस्तु कृतार्थत्वसंपादकत्वाभावविशिष्टतया व्यञ्जकत्वं पूर्वेण । तच्च ज्ञानयोर्हेतुहेतुमद्भावः परम्परया ग्रन्थयोः पर्यवस्यतीत्यवधेयम् । १०. आत्मन आगमैकवेद्यत्वस्थापनाय शङ्कयति—देहव्यतिरिक्तेत्यादिना ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

[1]तन्निन्दार्थं [2]पुत्राद्युपन्यासेन प्रलोभनं क्रियते। [3]नचिकेता उवाच तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्वेत्युक्तः सन्। येयं विचिकित्सा [4]संशयः प्रेते [5]मृते मनुष्ये[6]ऽस्तीत्येकेऽस्ति शरीरेन्द्रिय-मनोबुद्धिव्यतिरिक्तो देहान्तरसंबन्ध्यात्मेत्येके[7] नायमस्तीति चैके नायमेवंविधोऽस्तीति [8]चैकेऽतश्चास्माकं न प्रत्यक्षेण नापि वाऽनुमानेन निर्णयविज्ञानमे[9]तद्विज्ञानाधीनो हि [10]परः

[11]वादिविप्रतिपत्तेः संशयश्चेत्तर्हि [12]प्रत्यक्षादिना [13]स्वस्यैव निर्णयज्ञानसंभवात्तन्निर्णयस्य [14]निष्प्रयोजनत्वाच्च न तदर्थः प्रश्नः कर्तव्य इत्याशङ्क्याऽऽह—अतश्चास्माकमिति। प्रत्यक्षेण स्थाणौ निर्णीते पुरुषो न वेति

लक्षण से सर्वथा शून्य एवं आत्यन्तिक निःश्रेयस जिस ज्ञान का प्रयोजन है, उसी को बतलाने के लिये आगे का ग्रन्थ प्रारम्भ किया जा रहा है। इसी बात को आख्यायिका द्वारा विस्तार से बतलाना अभीष्ट है; क्योंकि तीसरे वर से प्राप्त होने वाले आत्मज्ञान के विना पूर्वोक्त दो वरों से प्राप्त ऐहिक तथा पारलौकिक भोग से भी कोई कृतकृत्य नहीं हो सकता है, साथ ही पूर्वोक्त कर्म विषयक साध्य-साधन रूप तथा अनित्य संसार फलों से जो विरक्त हो गया है, ऐसे मुमुक्षु का ही आत्मज्ञान में अधिकार माना गया है। अतः उनकी निन्दा करने के लिये पुत्रादि के उपन्यासपूर्वक नचिकेता को प्रलोभन दिया जा रहा है।

जब यमाचार्य ने कहा कि हे नचिकेता! तू तीसरा वर माँग ले, इस पर नचिकेता ने कहा—

नचिकेता का तीसरा वर आत्म रहस्य

मरे हुये मनुष्य के सम्बन्ध में जो यह संशय होता है कि शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से भिन्न देहान्तर से सम्बन्ध रखने वाला आत्मा बना रहता है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। इनसे विपरीत दूसरों का कथन है कि शरीर के मर जाने पर इस तरह का कोई आत्मा रह नहीं जाता, ऐसी स्थिति

१. तन्निन्दार्थं प्रलोभनमिति—प्रलोभनमुखेन तत्र जिहासाविषयत्वापादनात्तन्निन्दा फलतीति भावः। श्वोभावा मर्त्यस्येत्यादिश्च स्फुटैव निन्दा। २. पुत्राद्युपन्यासेनेति—शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्वेत्याद्यात्मकेनेत्यर्थः। ३. नचिकेता उवाचेति—परलोकसंबन्ध्यात्मास्तित्वे संशयादेव नूनं पित्रा पारलौकिके कर्मणि च्छलं प्रायोजीति तत्संशयापाकरणाय मया प्रयतितव्यमित्याशयवानित्यादिः। ४. संशय इति—देहातिरिक्तस्तदनतिरिक्तो वाऽऽत्मेति संशयाकारो द्रष्टव्यः। एकधर्मिकविरुद्धभावाभावप्रकारकज्ञानस्यैव संशयत्वात्। ५. प्रेत इति विषयसप्तमीत्याशयेनाचष्टे—मृते मनुष्य इति। केचित्सति सप्तमीं व्याचख्युः नायमस्तीत्ययंशब्देन प्रेतपरामर्शा-द्विषयसप्तमीं युक्तां पश्यामः। ६. संशयोत्थादिकां वादिविप्रतिपत्तिं दर्शयति—अस्तीत्येक इति। ननु वादिविप्रतिपत्तेः प्रेताप्रेतसाधारणत्वेन तज्जसंशयस्यापि तथात्वौचित्यात्प्रेते संशय इत्ययुक्तमिति चेन्न देहान्तर-सम्बन्धासंबन्धयोः प्रेत एव स्फुटोपस्थितिकत्वात्प्रेतग्रहणस्य युक्तत्वात्। किंच नायमस्तीत्येवमिदंतया निर्देशसौलभ्यायापि प्रेत इत्यावश्यकमिति द्रष्टव्यम्। ७. एके—वैदिकाः। ८. पुनरेके—नास्तिकाश्चा-र्वाकादयः। ९. मुक्तेरात्मज्ञानफलत्वं श्रुतवानाह—एतद्विज्ञानाधीनो हि परः पुरुषार्थ इति। १०. परः पुरुषार्थः—कृतार्थत्वम्। ११. वादिविप्रतिपत्तेरिति—वादिनां वैदिकावैदिकानां विप्रतिपत्तिर्विरुद्धकोटि-द्वयोपस्थापकशब्दो विरुद्धार्थप्रतिपादकवाक्यद्वयात्मकस्तस्या इत्यर्थः। १२. प्रत्यक्षादिनेत्यादिनाऽनुमानं गृह्यते। स्थाण्वादौ हि संशये सति प्रत्यक्षादिना निर्णयदर्शनादिति भावः। १३. स्वस्यैवेत्याचार्यापेक्षां वारयति। १४. तद्विज्ञानाधीनो हि परः पुरुषार्थ इति भाष्यमनुसंधाय शङ्कां पुष्णाति—निष्प्रयोजनत्वाच्चेति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयम-
णुरेष धर्मः। अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा
मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२१॥**

इस विषय में पहले देवताओं को भी संदेह हुआ था क्योंकि वह अत्यन्त सूक्ष्म धर्म सरलता से जानने योग्य नहीं है। हे नचिकेता! तू (इसके बदले) दूसरा वर मांगले, मुझे रोक नहीं, इसे तू मेरे लिये छोड़ दे ॥२१॥

पुरुषार्थ इत्यत एतद्विद्यां विजानीयामहमनुशिष्टो ज्ञापितस्त्वया। वराणामेष वरस्तृतीयोऽवशिष्टः ॥२०॥

किम[1]यमे[2]कान्ततो निःश्रेयससाधनात्म[3]ज्ञानार्हो न वेत्येतत्परीक्षणार्थमाह—

[4]देवैरप्यत्रैतस्मिन्वस्तुनि विचिकित्सितं [5]संशयितं पुरा पूर्वं न हि सुविज्ञेयं सुष्ठु विज्ञेयं

संदेहादर्शनाद्व्यतिरिक्तात्मास्तित्वे च संदेहदर्शनान्न प्रत्यक्षेण निर्णयः [6]परलोकसंबन्ध्यात्मना च कस्यचिल्लिङ्गस्या[7]विनाभावादर्शनान्नानुमानेनापि निर्णय इत्यर्थः ॥२०॥

में प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण से आत्मास्तित्व विषयक निश्चित ज्ञान हमें हो नहीं सकता और परम पुरुषार्थरूप मोक्ष इसी आत्मविज्ञान के अधीन है। अतः आप से शिक्षित हो मैं इस रहस्य को भली प्रकार जान सकूँ, बस आपके दिये तीन वरों में से बचा हुआ तीसरा वर मेरा यही है ॥२०॥

नचिकेता की परीक्षा

यह नचिकेता निःश्रेयसरूप मोक्ष के साधन आत्मज्ञान के योग्य है या नहीं, इस बात की परीक्षा करने के लिये यमाचार्य ने कहा—इस आत्मतत्त्व के विषय में पहले देवताओं ने भी संशय किया था। सुन लेने पर भी साधारण प्राकृतिक मनुष्यों के लिये उस आत्मतत्त्व को अच्छी प्रकार से जानना संभव

---

१. अयं—नचिकेताः। २. एकान्तत इति—अतिशयेनेत्यर्थः। नितान्तमिति यावत्। तथा चामरः अथातिशयो भरः। अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम्। तीव्रैकान्तनितान्ता निगाढनाढदृढानि चेति। ३. ज्ञानार्हं इत्यत्र ज्ञानार्थीति पाठः श्रेयान्। तत्त्वपरीक्षणं च देवैरित्यादिना दुःखगाहत्वं श्रुत्वा विरमेच्चेन्नात्यन्तं तदर्थी आलस्यादिमत्वान्नो चेत्तथा तदभावादिति। ४. यद्धि देवैरपि झगिति नावबुद्धं तत्कुतोऽस्मद्बुद्धिसाध्यमित्युपेक्षाबुद्ध्युत्पादानायाह—देवैरपीति। ५. संशयितमिति—संशय्यफलावसानं विचारितमिति भावः। नहि देवाश्च नाम संशय्य न शक्नुवन्ति निर्णेतुमिति साम्प्रतम् देवविचारविषयतया च वस्तुनो महामहिमत्वं ध्वन्यते। मनुष्या अपि शेमुषीकुशला न संदिग्धमनिर्णीय परित्यजन्ति किमुत देवा इति भावः। वस्तुनो महामहिमत्वं ध्वन्यत इति तत्र सुप्रबलां जिज्ञासां जनयितुमिति शेषः। उत्तानतया तु संदिग्धरूपत्वेन निकर्ष इति निष्कर्षः। ६. चक्षुरादिसकर्तृकं करणत्वादित्येवं व्यतिरिक्तात्मनोऽनुमातुं शक्यत्वादाह—परलोकसंबन्धीति। ७. अविनाभावादर्शनादिति—नियतसाहचर्यरूपव्याप्तिनामकसंबन्धसंभवादिति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो
यन्न सुविज्ञेयमात्थ। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न
लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥२२॥

(नचिकेता ने कहा) हे मृत्यु ! इस विषय में निश्चय ही देवताओं को भी सन्देह हुआ था और आप भी इसे सुगमता से जानने योग्य नहीं कहते हैं। (इससे तो यह मुझे अभीष्टतर प्रतीत होता है) इस गहन तत्त्व का वक्ता भी तो आपके समान दूसरा कोई नहीं मिल सकेगा और इसके समान दूसरा कोई वर भी नहीं है ॥२२॥

श्रुतमपि [1]प्राकृतै[2]र्जनैर्यतोऽणुः सूक्ष्म एष [3]आत्माख्यो धर्मो[4]ऽतोऽन्यम[5]संदिग्धफलं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा [6]मां मोपरोत्सीरुपरोधं मा कार्षीर[7]धमर्णमिवोत्तमर्णः। अतिसृज विमुञ्चैनं वरं मा मां प्रति ॥२१॥

[8]एवमुक्तो नचिकेता आह—

देवैरत्राप्येतस्मिन्वस्तुनि विचिकित्सितं किलेति [9]भवत एव नः [10]श्रुतम्। त्वं च मृत्यो

॥२१॥

नहीं है; क्योंकि आत्मा नामक यह धर्म बड़ा ही सूक्ष्म यानी गहन है। अतः हे नचिकेता ! तू कोई दूसरा निःसंदिग्ध फल देने वाला वर माँग ले। इस वर को तू मेरे लिये छोड़ दे "तीसरा वर दिये बिना मैं तुम्हारा ऋणी हूँ"। अतः जैसे धनी ऋणी को दबाता है, इस प्रकार तुम मुझे न दबाओ ॥२१॥

अपनी माँग पर अडिग नचिकेता

यमाचार्य द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर नचिकेता बोला—

इस आत्मतत्त्व के विषय में देवताओं ने भी संशय किया था। यह बात तो अभी-अभी हमने

---

१. प्राकृतैरिति—प्रकृतौ भवैरिति विग्रहः। "विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथग्जनः। निहीनोऽपसदो जाल्मः क्षुल्लकश्चेतरश्च सः" इत्यमरः। विगतो वर्णो यस्य यस्माद्वा स विवर्णः। वर्णो द्विजादौ शुक्लादौ स्तुतौ रूपयशोऽक्षरे इतिः विश्वः। २. प्राकृतैर्जनैरिति—देवैस्तु संशयादूर्ध्वं विचार्य सुज्ञातमिति ध्वन्यते। ३. बालस्य तवार्थकथामपहाय किं धर्मेणेति ख्यापयितुं धर्मत्वेन निर्देश इत्याशयेनाह—आत्माख्यो धर्म इति। धर्मत्वं चात्मनः सर्वानात्मधारकत्वात् तत्त्वं चाक्षरमम्बरान्तधृतेरित्याद्युक्तम्। ४. अत इति—त्वद्वृतवरस्य दुर्ज्ञान विषयतया संदिग्धफलत्वादिति यावत्। प्राकृतादन्यत्वं स्वर्थादेव लभ्यत इति ज्ञेयम्। ५. असंदिग्धफलमिति—त्वद्वरस्य फलमात्मनिश्चयात्मकं तु संदिग्धात्मनो दुःखबोधत्वादिति भावः। ६. मां प्रतीत्यर्थः। ७. अधमर्णमिवोत्तमर्णः इति—अनेनाहमधमर्णस्त्वं चोत्तमर्ण इति त्वया तथैवोपरोधः कर्तव्यो नान्यथाऽयं वरो लभ्य इति सुनिगूढतमं सूचयतीत्यवधेयम्। ८. नचिकेतास्तु ध्वनितार्थज्ञत्वमात्मनो ध्वनयन्वक्तीत्याशयेनाह—एवमुक्तो नचिकेता आहेति। ९. निपातानामनेकार्थत्वात्किलेत्यस्यार्थमाह—भवत एव नः श्रुतमिति। आख्यातोपयोगे इत्यपादानत्वाद्भवत इति पञ्चमी। नः श्रुतमिति कर्तुरेव संबन्धित्वमात्रविवक्षया षष्ठी न तु कर्तृत्वविवक्षया न लोकेत्यादिनिषेधादित्यवधेयम्। १०. श्रुतमिति तेन च तस्य महामहिमतयाऽवश्यावगन्तव्यत्वमवगतमिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्ति-
हिरण्यमश्वान्। भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं
च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥२३॥

हे नचिकेता ! तू सौ वर्ष की आयु वाले (शतायु) बेटे और पोते एवं बहुत से पशु, हाथी, सुवर्ण तथा घोड़े माँग ले। विस्तृत भू-मण्डल का राज्य भी माँग ले और स्वयं भी जितने वर्ष तक जीना चाहे (उतने वर्ष तक) जीवित रह ॥२३॥

यद्यस्मान्न सुविज्ञेयमात्मतत्त्वमात्थ कथयस्य'तः पण्डितैरुपदेशनीयत्वा'द्वक्ता चास्य धर्मस्य त्वादृक्त्वत्तुल्योऽन्यः 'पण्डितश्च न लभ्योऽन्विष्यमाणोऽपि। 'अयं तु वरो 'निःश्रेयसप्राप्ति-हेतुरतो नान्यो वरस्तुल्यः सदृशोऽस्त्येतस्य कश्चिदप्यनित्यफलत्वा'दन्यस्य सर्वस्यैवेत्य-भिप्रायः ॥२२॥

एवमुक्तोऽपि पुनः प्रलोभयन्नुवाच मृत्युः—

शतायुषः शतं वर्षाण्यायूंषि येषां ताञ्शतायुषः पुत्र'पौत्रान्वृणीष्व। किंच गवादि-

---

॥२२॥

आपसे ही सुनी है। साथ ही हे यम ! इस आत्मतत्त्व को सुगमता से जानने योग्य आप भी नहीं कहते हैं। इसे शास्त्र पण्डित भी नहीं जान सकते। ऐसी परिस्थिति में इस आत्मरूप धर्म का उपदेशक आपके समान दूसरा कोई पण्डित ढूंढने पर भी मिल नहीं सकता था। यह वर भी मोक्ष प्राप्ति का कारण है। अतः इसके समान दूसरा कोई वर नहीं क्योंकि और सभी वर अनित्य फल से युक्त हैं, यही इसका अभिप्राय है ॥२२॥

यमराज का पुनः प्रलोभन

यह सुनकर भी उसे लोभ दिखाते हुए यमराज जी बोले—

जिनकी सौ वर्ष की आयु हो ऐसे शतायु पुत्रों और पौत्रों को माँग ले। वैसे ही गौ आदि बहुत

---

१. स्वयं च जीव शरद इति—"कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति द्वितीया। २. यावदिति—यत्कालावधीत्यर्थः। एतेन कदापि न म्रियेयेति निरस्तमसंभवादिति ध्वनितम्। ३. अत इति—देवविचारविषयस्य दुर्ज्ञेयस्य चापण्डितैरुपपदेष्टुमशक्यत्वादित्यर्थः। ४. देवैरित्याद्युक्तेर्यमस्य च देवत्वाद्देवविचारजनिश्चयवत्त्वनिश्चयेन प्रवचनशक्तत्वमनन्यादृक्षत्वं च धर्मदेवत्वादवधार्य वक्तीत्याशयेनाह—वक्ता चेत्यादि। ५. न ह्यबुधो बुध्यते वस्तुनो दुःखबोधत्वमित्यभिप्रायेणाह—पण्डितश्चेति। ६. श्रेयोभागिभिर्देवैर्नूनं निःश्रेयसार्थमेव तद्विचारितमित्यालोच्याह—अयं तु वर इत्यादि। तुना वरान्तरं व्यवच्छिनत्ति। ७. निःश्रेयसेति—निश्चितं श्रेयो नित्यं सुखं निःश्रेयसमित्यर्थोऽत्र। ८. अन्यस्य सर्वस्येति—पशुपुत्रादिविषयवरान्तरजातस्येत्यर्थः। ९. पौत्रानिति—पुत्रस्यापत्यानीत्यर्थः। बिदादित्वादनृषित्वाच्च पुत्रशब्दस्य ततोऽनृष्यानन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्। इत्यनन्तरापत्येऽञ्। अत इञोऽपवादः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिर-
जीविकां च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥**

इसी के समान यदि तुम कोई (अन्य) वर समझते हो (तो उसे भी माँग लो) धन और चिरस्थायी जीवन भी माँग लो। हे नचिकेता! इस विस्तृत भूमि में (तू राजा होकर) वृद्धि को प्राप्त हो। मैं तुझे कामनाओं को इच्छानुसार भोगने वाला बना देता हूँ ॥२४॥

लक्षणान्बहून्पशून्। हस्तिहिरण्यं हस्ती च हिरण्यं च हस्तिहिरण्यम्। अश्वांश्च। किंच भूमेः पृथिव्या महद्विस्तीर्णमायतनमाश्रयं मण्डलसाम्राज्यं वृणीष्व। किंच सर्वमप्येतदनर्थकं स्वयं चेदल्पायुरित्यत आह। स्वयं च जीव त्वं जीव धारय शरीरं समग्रेन्द्रियकलापं शरदो वर्षाणि यावदिच्छसि जीवितुम् ॥२३॥

एतत्तुल्यमेतेन यथोपदिष्टेन सदृशमन्यमपि यदि मन्यसे वरं तमपि वृणीष्व। किंच वित्तं प्रभूतं हिरण्यरत्नादि चिरजीविकां च सह वित्तेन वृणीष्वेत्येतत्। किं बहुना

॥२३॥

एकैकं पुत्रधनादीनां वरत्वेनोपन्यस्य समुच्चितमिदानीमुपन्यस्यति—किंच वित्तं प्रभूतमिति।

से पशु, हाथी, घोड़े, स्वर्ण और पृथिवी का महान् विस्तृत आश्रय यानी राज्य माँग ले। इन सब के होते हुए भी यदि स्वयं अल्पायु हो तो ये सब व्यर्थ ही हैं। इसीलिये यमराज कहते हैं कि तू स्वयं भी जितने वर्षों तक जीना चाहे, उतने वर्ष तक जीवित रह अर्थात् शरीर एवं समग्र इन्द्रिय समुदाय को एकत्रित करके धारण कर ॥२३॥

पूर्वोक्त वर के समान तू यदि किसी अन्य वर को समझता है, तो उसे भी माँग ले। इतना ही नहीं अपितु प्रचुर स्वर्ण, रत्नादि धन एवं उस धन के साथ दीर्घ जीवन भी माँग ले। विशेष क्या

---

१. कामभाजामिति भजो ण्विः। २. अश्वानां हस्तिहिरण्याभ्यामपि श्रैष्ठ्ये विवक्षिते सुतरां पश्वन्तरापेक्षया तेषां तत्त्वमिति पृथग्ग्रहणमित्याशयेनाह—अश्वांश्चेति। ३. शरदो वर्षाणीति। तथा चाहामरः संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समा इति। ४. स्वयं च जीव शरद इति बहूक्त्या शतमेव शरदां गृह्येत शतायुष इत्यनन्तरोक्तिसाहचर्यात्। शतायुर्वै पुरुष इति वचनाच्चेत्यत आह—यावदिच्छसि जीवितुमिति। यावदिति कालसामान्ये नपुंसकं न तु शरद्विशेषणं स्त्रीत्वापातात्। ५. आत्मविद्यावरतुल्यवरान्तरस्य नचिकेतसा प्रत्याख्यातत्वान्नायमेतच्छब्दस्तं परामृशतीत्यतो व्याचष्टे—यथोपदिष्टेनेति। शतायुषा इत्याद्युक्तेन पुत्रपौत्रादिनेत्यर्थः। ६. प्रभूतमिति—प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यमदभ्रं बहुलं बहु पुरुहं पुरु भूमिष्ठं स्फिरं भूयश्च भूरि चेत्यमरः। ७. हिरण्येति—हिरण्यं हेम हाटकमित्यमरः। ८. चिरजीविकामिति—चिरं जीवनमित्यर्थः। धात्वर्थनिर्देशे ण्वुल् वक्तव्य इति स्त्रियां ण्वुल्। ९. पुत्रधनादीनामिति निर्धारणे षष्ठी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाꣳ-श्छन्दतः प्रार्थयस्व। इमा रामाः सरथाः सतूर्या

इस मनुष्यलोक में जो-जो भोग दुर्लभ हैं, उन सभी भोगों को तुम स्वेच्छा से माँग लो। यहाँ पर रथ और वाजों के सहित जो दिव्य अप्सराएँ हैं, ऐसी (स्त्रियाँ हम जैसे देवताओं की कृपा के बिना)

महाभूमौ महत्यां भूमौ राजा नचिकेतस्त्वमेधि भव। किंचान्यत्कामानां दिव्यानां [1]मानुषाणां च त्वा त्वां कामभाजं [2]कामभागिनं कामार्हं करोमि [3]सत्यसंकल्पो ह्यहं देवः ॥२४॥

ये ये कामाः प्रार्थनीया [4]दुर्लभाश्च मर्त्यलोके सर्वांस्तान्कामांश्छन्दत [5]इच्छातः प्रार्थयस्व। [6]किंचेमा दिव्या [7]अप्सरसो [8]रमयन्ति पुरुषानिति रामाः सह रथैर्वर्तन्त इति

---

[9]अस् भुवीति धातोर्लोण्मध्यमपुरुषैकवचनान्तस्य [10]निपात एधीति ततो भवेति व्याख्यातम् ॥२४॥

कहें, हे नचिकेता! इस विशाल भूमि पर तू राजा बनकर वृद्धि को प्राप्त हो और तो क्या मैं तुझे दैवी और मानुषी सभी भोगों को इच्छानुसार भोग भोगने वाला कर रहा हूँ; क्योंकि मैं सत्य संकल्प देव हूँ ॥२४॥

जो-जो प्रार्थनीय भोग्य वस्तु इस मर्त्यलोक में दुर्लभ माने गये हैं, उन सबको इच्छानुसार माँग ले। इसके अतिरिक्त पुरुषों के साथ रमण करने वाली ये दिव्य अप्सरायें जो रथों और तूर्य बाजे-गाजों के सहित विद्यमान दीख रही हैं, ऐसी देवाङ्गनायें मरणशील मनुष्यों को मुझ जैसे देवताओं की कृपा

---

१. मानुषाणां चेति—विषयाणामिति शेषः। २. कामभागिनमिति—कामानां मध्ये त्वदिच्छाविषयीभूतकामभागिनमित्यर्थः। यद्वा कामानामपि काममभिलापं भजते तद्विषयीभवतीति तथा तम्। कामा एव त्वामभिलषन्तु त्वत्प्रयासमन्तरेण ते त्वामागच्छन्त्वित्यर्थः। यद्वा कामानां विषयाणां कामत इच्छातो भागी लब्धा तम्। संकल्पलभ्येष्टकाममिति यावत्। संपृचेत्यादिना घिनुण्। ३. करोमीति वर्तमाननिर्देशान्न देहान्तरापादानव्यवहितं तत्करणमिति गम्यते। तदेतत्कथं संभवतीत्याकाङ्क्षायामाह—सत्यसंकल्पो ह्यहं देव इति। वर्तमान देह एव संकल्पमात्रेण तथा कर्तुं शक्नोमीति भावः। ४. दुर्लभाश्च मर्त्यलोक इति—पीयूषपानादय इत्यर्थः। ५. छन्दत इति व्याचष्टे—इच्छात इति। अभिप्रायश्छन्द आशय इत्यमरः। अभिप्रायवशौ छन्दाविति च। ६. किंचेमा दिव्या इत्यादि—न च बालं प्रत्येवं प्रलोभनमस्थान इति शङ्कितव्यमनेन साकमेव यौवनस्यापि सत्यसंकल्पवशादेव यमेन दातुं शक्यत्वादित्यूह्यम्। ७. अप्सरस इति—स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखा इत्यमरः। ८. रमयन्तीति—अर्थकथनमेवेदं विग्रहस्तु रमन्त इत्येव 'ज्वलितिकसन्तेभ्यो ण" इति ज्वलादित्वाद्रमेरन्तर्गभितण्यर्थाण्णः। णिजन्तस्य तु न ज्वलादित्वं मित्त्वेन वृद्धिश्च दुर्लभेत्यवधेयम्। ९. स्वरूपसादृश्यादेधवृद्धावित्यस्येदमिति मा भूद्भ्रमोऽनभिज्ञानामित्याशयेन धातुं परिचाययति—अस् भुवीत्यादिना। १०. निपात इति—प्रयोग इति यावत्। यथा श्रुतानुपपत्तेः प्रतिकार्यं घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्चेत्यादिसूत्राणामुक्तत्वात् प्रतिकार्यं हि सूत्राण्यनुक्त्वा सिद्धवन्निर्देशे निपातसंकेतो यथा विदाङ्कुर्वन्त्वित्यादेरिति। वस्तुतोऽत्र निपाठ इति पाठः निपाठनिपठौ पाठे इत्यमरः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं माऽनुप्राक्षीः ॥२५॥

मनुष्यों को प्राप्त होने योग्य नहीं होती। मेरे द्वारा दी हुई (इन सेविकाओं) से तू अपनी सेवा करा। पर हे नचिकेता! मरण सम्बन्धी प्रश्न मत पूछ ॥२५॥

सरथाः। सतूर्याः सवादित्रास्ताश्च न हि लम्भनीयाः प्रापणीया ईदृशा एवंविधा मनुष्यैर्मर्त्यैरस्मदादिप्रसादमन्तरेण। आभिर्मत्प्रत्ताभिर्मया दत्ताभिः परिचारिणीभिः परिचारयस्वाऽऽत्मानं पादप्रक्षालनादिशुश्रूषां कारयाऽऽत्मन इत्यर्थः। नचिकेतो मरणं मरणसंबद्धं प्रश्नं प्रेतेऽस्ति नास्तीति काकदन्तपरीक्षारूपं माऽनुप्राक्षीर्मैवं प्रष्टुमर्हसि ॥२५॥

एवं मृत्युना प्रलोभ्यमानोऽपि नचिकेता महाह्रदवदक्षोभ्य आह—

॥२५॥

के बिना प्राप्त हो नहीं सकतीं। मेरे द्वारा दी हुई इन देवाङ्गनारूप दासियों से पाद-प्रक्षालनादि अपनी सेवा करा। पर हे नचिकेता! मरने के बाद जीव का अस्तित्व बना रहता है या नहीं, ऐसे निष्प्रयोजन काकदन्त परीक्षा के तुल्य मरण सम्बन्धी प्रश्न मत पूछ। तुझे ऐसा प्रश्न करना उचित भी नहीं है ॥ २५ ॥

नचिकेता की निस्पृहता

इस प्रकार यमाचार्य के द्वारा प्रलोभित किये जाने पर भी महान् सरोवर के समान अक्षुब्ध रहकर नचिकेता ने कहा—

---

१. लम्भनीया इति—"रभेरशब्लिटोः" लभेश्चेति नुम्। २. ईदृशा इत्यस्य कबन्तस्य रामाविशेषणत्वेऽपि ङीबभावश्छान्दस इत्याशयेनाह—ईदृशा एवंविधा इति। कामा इति वा विशेष्यपदमध्याहर्तव्यमिति भावः। ३. नन्वेवं तर्ह्यहमपि मनुष्य एवेति मयापि ताः कथं लभ्याः किंच मनुष्याय दित्स्यमानानां मनुष्यैरलभ्यत्वोक्तिस्तव विरुद्धा इत्याशङ्क्याऽऽह—अस्मदादीत्यादि। ४. प्रत्ताभिरित्यत्र प्रपूर्वाद्ददातेर्निष्ठायाम् "अच उपसर्गात्तः" इत्यनेन दाधातोराकारस्य व्यञ्जनस्तकारादेश इत्याशयेन व्याख्याति—दत्ताभिरिति। अजन्तादुपसर्गात्परस्य दा इत्यस्य घोरचस्तः स्यात्तादौ कितीति व्याकरणसूत्रार्थः। आदेशे तकारादकार उच्चारणार्थं इति तद्व्याख्यातारः। ५. पादप्रक्षालनादीत्यादिना संभोगादिविवक्षितं सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेज इति वक्ष्यमाणानुरोधादिति बोध्यम्। दासीभावेनैता भजस्वेति यावत्। ६. तित्याजयिषया निन्दन्नाह—काकदन्तपरीक्षारूपमिति। तस्या रूपमिव रूपमस्येति व्युत्पत्त्या तत्सदृशमित्यर्थः। काकस्य कति दन्ता भवन्तीति विचारप्रयत्नो यथा निष्फलः काकस्य दन्ताभावात्तथाऽयं प्रश्नस्तव निःसार इति भावः। ७. बालोऽपि नचिकेता दिव्यानुभवेनैव युवभिरनुभाव्यमर्थं प्रौढिमानमादधद् स्फोरयञ्जगादेत्याशयेनाह—एवं मृत्युना प्रलोभ्यमानोऽपीत्यादि। ८. महाह्रदवदक्षोभ्य इति—यथाऽतिगभीरो जलाशयो वन्यमतंगजेन महता शुण्डादण्डेन भृशं विलोड्यमानोऽपि न कालुष्यं भजते तद्वद्रागकालुष्यमभजमान एवेति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः। अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ।२६॥

हे यमराज ! ये भोग कल तक रहेंगे या नहीं, ऐसे अनित्य हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों के तेज को जीर्ण-शीर्ण कर देते हैं (अनित्य संसार में आपके द्वारा दिया हुआ) यह सारा जीवन भी बहुत थोड़ा है। अतः आपके वाहन और नाच गान आपके पास ही रहें! (हमें उनकी आवश्यकता नहीं) ॥२६।

श्वोभावाः [1]श्वो भविष्यन्ति न भविष्यन्ति वेति संदिह्यमान एव येषां भावो भवनं त्वयोपन्यस्तानां भोगानां ते श्वोभावाः। किंच मर्त्यस्य मनुष्यस्यान्तक हे मृत्यो यदेतत्सर्वेन्द्रियाणां [2]तेजस्तज्[3]जरयन्त्यपक्षयन्त्य[4]प्सरःप्रभृतयो हि भोगा [5]अनर्थायैवैते। धर्मवीर्यप्रज्ञातेजोयशःप्रभृतीनां [6]क्षपयितृत्वात्। यां चापि दीर्घजीविकां त्वं [7]दित्ससि तत्रापि शृणु। सर्वं यद्[8]ब्रह्मणोऽपि जीवितमायुर[9]ल्पमेव किमुतास्मदादिदीर्घजीविका। अतस्तवैव तिष्ठन्तु वाहा रथादयस्तथा नृत्यगीते च ॥२६॥

॥२६॥

कल तक जिनका अस्तित्व रहेगा या नहीं, इस प्रकार सन्देह से युक्त वस्तु को श्वोभावा कहते हैं। आपके द्वारा उल्लेख किये गये भोग ऐसे ही तो हैं। हे यमराज! इतना ही नहीं, ये अप्सरा आदि भोग तो मनुष्य के सम्पूर्ण इन्द्रियों के, तेज को जीर्ण-शीर्ण कर देने वाले हैं। इसीलिये ये भोग धर्म, वीर्य, प्रज्ञा, तेज और यश आदि को नष्ट करने वाले होने से अनर्थ के हेतु माने गये हैं और आप जिस दीर्घ जीवन को देना चाहते हैं, उस विषय में भी मेरा निवेदन सुन लेवें। ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु भी कालावच्छिन्न होने के कारण अल्प ही तो है। फिर भला हम जैसों के दीर्घ जीवन का क्या मूल्य है? अतः आपके रथादि वाहन, नाच और गान आपको ही मुबारक हों ॥२६॥

---

१. वैराग्यतैक्ष्ण्यात्स्त्रीनामाप्यनुच्चिचारयिषन्नाह—नृत्यगीत इति। अन्यथा हि तव सन्तु रामा इति ब्रूयाद्दानप्रत्याख्यानयोः समानविषये त्वस्य युक्तत्वेन दातृप्रत्याख्यात्रोर्वाक्ययोरपि समानशब्दघटितत्वस्यैवौचित्यात्। भावस्तु नृत्यादिकारिण्यो रम्भाद्यप्सरस इति। २. श्व इति—अनागतेऽह्नि श्वः इत्यमरः। ३. तेजः—सुखजीवनप्रयोजकं सामर्थ्यम्। ४. जरयन्तीति—जनीजॄक्नसुरञ्जोमन्ताश्चेति मित्वाद्ध्रस्वत्वम्। ५. अपक्षयन्तीति—क्षि क्षये भ्वा० अकर्मकः अन्तर्भावितण्यर्थस्तु सकर्मक इति कौमुदीकारः। ६. निर्गलितार्थमाह—अनर्थायैवैत इति। असह्यदुःखहेतव इति यावत्। ७. क्षपयितृत्वादिति—घटादौ भोजमतेन "दलिवलिस्खलिरणिध्वनित्रपिक्षपयश्चे"ति पठित्वा क्षै क्षये इति वक्ष्यमाणस्य कृतात्वस्य पुका निर्देश क्षपयतीति कौमुदीकृदाह। ८. दित्ससीति—ददातेः सनि "सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्" इतीस् "सः स्यार्धधातुके" इति तः "अत्र लोपोऽभ्यासस्ये" त्यभ्यासलोपः। ९. ब्रह्मणोऽपीतीममेवापि शब्दं मौलिकं प्रतीमः। १०. अल्पमेवेति—तदिति शेषो यदित्युक्तत्वात् तावतापि भोगेन तृप्तेः संपादयितुमशक्यत्वादेव तस्याल्पत्वमिति भावः। श्रूयते हि ययातिप्रभृतीनामितिवृत्तं तद्गीतं च "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते" इत्यादीति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्त-
मद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि
त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥

मनुष्य (अधिक) धन से भी तृप्त होने योग्य नहीं है। अब यदि आपको हमने देख लिया तो धन को हम प्राप्त कर ही लेंगे एवं जब तक आप (इस याम्य पद पर) शासन करेंगे, हम तब तक जीवित रहेंगे ही। पर हमारा प्रार्थनीय वर तो वही (आत्मविज्ञान ही) है ॥२७॥

किंच न प्रभूतेन वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः। ¹न हि वित्तलाभः लोके कस्यचित्तृप्तिकरो दृष्टः। यदि नामास्माकं वित्ततृष्णा स्याल्लप्स्यामहे ²प्राप्स्यामह इत्येतद्वित्तमद्राक्ष्म ³दृष्टवन्तो वयं चेत्त्वा त्वाम्। ⁴जीवितेऽपि तथैव ⁵जीविष्यामो याव⁶द्याम्ये पदे त्वमीशिष्यसि त्वमी⁷शिष्यसे प्रभुः स्याः। ⁸कथं हि मर्त्यस्त्वया समेत्याल्पधनायुर्भवेत्। वरस्तु ⁹मे वरणीयः स एव यदात्मविज्ञानम् ॥२७॥

॥२७॥

इसके अतिरिक्त मनुष्य को अधिक धन से भी तृप्त नहीं किया जा सकता; क्योंकि लोक में धन लाभ किसी को तृप्तिकर नहीं देखा गया है। जब हमने आपका दर्शन कर लिया, ऐसी स्थिति में यदि हमें धन की लालसा होगी, तो उसे निःसन्देह अब हम प्राप्त कर ही लेंगे। वैसे ही दीर्घ जीवन भी प्राप्त कर लेंगे; क्योंकि जब तक आप इस याम्यपद पर शासन करते रहेंगे, निःसन्देह तब तक हम भी जीवित रहेंगे। भला आप जैसे आचार्य का सान्निध्य एवं कृपा प्राप्त कर कोई भी मनुष्य अल्पायु और अल्प धन वाला कैसे रह सकेगा? किन्तु मेरा वरणीय वर तो वही है, जो आत्मविज्ञानरूप वर हमने माँगा है ॥ २७ ॥

---

१. न हीत्यादि—वित्तलाभस्य तृप्तिकरत्वे लब्धप्रचुरवित्तानामपि पौनःपुन्येन वित्तान्तरप्राप्त्यर्थं एव दृश्यमान उद्योगो नोपपद्येतेति भावः। २. प्राप्स्यामह इत्येतद्वित्तमित्यत्र प्राप्स्यामस्तु वित्तमिति पाठान्तरं रमणीयम्। तच्च लिखितपुस्तके तुशब्दमात्राधिक्यादनुमीयते व्याख्येयस्य स्पष्टार्थत्वादित्येतदिति तावन्नातीवोपयुज्यते। आप्लृधातोश्च परस्मैपदिषु पाठादात्मने पदान्तपाठोऽप्यपप्ठुरित्यनुमितस्य रमणीयत्वम्। ३. अद्राक्ष्मेति दृशेर्लुङ्गि रूपमित्याशयेन व्याचष्टे—दृष्टवन्त इति। तत्र न दृश इति क्साभावात् सिचि सृजिदृशोर्झल्यम-किती॒त्यमागमे वदव्रजेति वृद्धिः। ४. जीवितेऽपि तथैवेति जीवितेऽप्युपपत्तिर्वित्तवदित्यर्थः। जीवनोपपत्ति-रपि वित्तोपपत्तिवद्वरनिरपेक्षैवेति यावत्। ५. जीविष्याम इति भवानेव सर्वेषां जीवनापहारी शिष्यश्चाहं भवतो न चाचार्यः शिष्यं स्वकीयं हिनस्तीति भावः। ६. याम्य इति दित्यदितीत्यत्र यमाच्चेति काशिकायामित्युक्तम्। ७. ईश ऐश्वर्यं इत्यादादिकस्यात्मनेपदित्वादाह—ईशिष्यस इति। ८. कथं हीत्यादि। "दैवतैः सह संगम्य देवतुल्योऽभिजायते। यतो दोषान् गुणाँल्लोके संगमप्रभवान्विदुः। या दृशेन समासक्तो नरो भवति तादृशः। दृत्ययं च न यो लोके रूढिमारूढवान्दृढाम्" इति भावः। ९. मे—मम कृत्यानां कर्तरि वेति षष्ठी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् । अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥

अजर-अमर देवताओं के समीप आकर नीचे धरती पर रहने वाला कौन जराग्रस्त विवेकी मनुष्य होगा (जो केवल शारीरिक अनित्य) सुखों को देखता हुआ भी अतिदीर्घ जीवन में प्रेम करेगा ? ॥२८॥

यतश्चाजीर्यतां [1]वयोहानिमप्राप्नुवताम[2]मृतानां सकाशमुपेत्योपगम्याऽऽत्मन उत्कृष्टं प्रयोजनान्तरं प्राप्तव्यं तेभ्यः प्रजानन्नुपलभमानः [3]स्वयं तु जीर्यन्मर्त्यो जरामरणवा-न्क्वधःस्थः [4]कुः [5]पृथिव्य[6]धश्चान्तरिक्षादिलोकापेक्षया तस्यां तिष्ठतीति [7]क्वधःस्थः [8]सन्कथमेव-मविवेकिभिः प्रार्थनीयं पुत्रवित्तहिरण्याद्यस्थिरं वृणीते । क्व तदास्थ इति वा पाठान्तरम् ।

---

[9]किंचो[10]त्कृष्टपुरुषार्थलाभे संभवत्यधमं कामयमानो मूर्ख एवाहं स्यां ततोऽपि मम स एव वर इत्याह—यतश्चाजीर्यतामित्यादिना ॥२८॥

क्योंकि बुढ़ापा और मरण से रहित देवताओं की सन्निधि प्राप्त कर उनसे प्राप्त होने योग्य अपने दूसरे उत्कृष्ट प्राप्तव्य प्रयोजन को जानता हुआ भी अन्य वस्तुओं को जो जानता है; साथ ही जो स्वयं जीर्ण होने वाला और मरणधर्मा अर्थात् अपने को जरा-मरणशील समझता है, ऐसा अन्त-रिक्षादि लोकों की अपेक्षा अधोभाग में स्थित भूलोक में रहने वाला भी इस प्रकार अविवेकियों द्वारा प्रार्थनीय धन, पुत्र, स्वर्णादि नश्वर पदार्थों को कैसे माँगेगा ? कहीं क्वधस्थः के स्थान में क्व तदास्थ,

---

१. जृष्वयोहानाविति दैवादिकस्य शत्रन्तस्य नञा समस्तस्य प्रयोगोऽजीर्यतामिति । अतो व्याचष्टे – वयोहानिमप्राप्नुवतामिति । जरसं न गच्छतामित्यर्थः । २. अत एवामृतानां मरणविधुराणामित्यर्थः । अमरा निर्जरा देवा इत्यमरोद्घोषात् । ३. ननु स्वयमपि चेदजीर्यन्नमृतश्च किं तदाऽजीर्यद्भ्यः प्रेप्सेदत आह—स्वयं तु जीर्यन्नित्यादि । ४. स्वस्य जीर्यन्मर्त्यत्वे हेतुगर्भं विशेषणं क्वधःस्थ इति तद्व्याचष्टे—कुरित्यादिना । "अनित्यमसुखं लोकमिमम्" इति स्मृतेः । प्रत्यक्षतश्च भूमिष्ठानां जीर्यन्मर्त्यत्वं निश्चितमेवेति भावः । ५. कुशब्दार्थमाह—पृथिवीति । गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी महीत्यमरः । ६. अधोलोकवासिनामन्तरिक्षाद्युपरिलोकवासिभिः सङ्गमो महता भाग्येनैव जायत इति न तादृगवसरो विवेकिनाऽन्यथा नेतव्यं इत्याशयेन ध्वनयन्व्याकरोति—अधश्चान्तरिक्षादीति । ७. क्वधःस्थः सन्निति—अनेन कदा पुनरुपरिलोकवासिना भवादृशेण ममाधोलोकवासिनः संगमो भविता क्व नु भूलोकः क्व च नाम स्वर्लोक इत्यात्मनो विवेचनकौशलं ध्वनयति । एवमत्र पूर्वोत्तरार्धाभ्यामधिकारिविशेषणीभूतो विवेक एव समर्थ्यते इत्यवधेयम् । ८. सन्नित्यनन्तरं मादृशो विवेकीति शेषो द्रष्टव्यः । ९. वैराग्यं द्रढयित्वा विवेकं द्रढयिष्यन्नाहेत्याशयेनावतारयति—किं चेति । यतश्चेत्यर्थः । १०. ततोऽपीति मौर्ख्यस्य मदनिष्टत्वादपीत्यर्थः । मौर्ख्यापत्तिभिया मौर्ख्याभावादेव वा ममाधमकामनाभावादिति वार्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्सांपराये

हे मृत्यु ! जिस (मरे हुए जीव) के सम्बन्ध में (मरने के बाद जीव रहता है या नहीं) ऐसा

अस्मिन्पक्षे [1]चाक्षरयोजना तेषु पुत्रादिष्वास्थाऽऽस्थिति[2]स्तात्पर्येण वर्तनं यस्य स तदास्थस्ततोऽधिकतरं पुरुषार्थं [3]दुष्प्रापमपि प्रापिपयिषुः क्व तदास्थो भवेन्न[4] कश्चित्तदसा-रज्ञस्तदर्थी स्यादित्यर्थः। [5]सर्वो ह्युप[6]पर्युपर्येव बुभूषति लोकस्तस्मान्न पुत्रवित्तादिलाभैः प्रलोभ्योऽहम्। किंचा[7]प्सरःप्रमुखान्वर्णरतिप्रमोदा[8]ननवस्थितरूपतयाऽभिध्यायन्निरूपय[9]न्यथा-वद[10]तिदीर्घे जीविते को विवेकी [11]रमेत ॥२८॥

[12]अतो विहायानित्यैः कामैः प्रलोभनं [13]यन्मया प्रार्थितं यस्मिन्प्रेत इदं विचिकित्सनं

ऐसा भी पाठ है। इस पक्ष में अक्षरों की योजना इस प्रकार करनी चाहिये—उन पुत्रादि में जिसकी तत्परता पूर्वक प्रवृत्तिरूप आस्था है, उसे तदास्थ कहते हैं, जो उनसे भी उत्कृष्टतर और दुष्प्राप्य पुरुषार्थ को पाने का इच्छुक है, वह पुरुष भला उनमें आस्था रखने वाला कैसे हो सकेगा अर्थात् उन्हें असार जानने वाला कोई भी पुरुष उनका इच्छुक नहीं हो सकता क्योंकि सभी लोग आगे-आगे उन्नत ही होना चाहते हैं। अतः पुत्र-वित्तादि प्रलोभनों से मैं प्रलोभित नहीं किया जा सकता एवं वर्ण के राग से प्राप्त होने वाले अप्सरादि सुखों में नश्वरत्व की भावना करता हुआ तथा उन्हें मिथ्यारूप से जानता हुआ कौन विवेकी पुरुष अति दीर्घ जीवन में अनुरक्त होगा ॥ २८॥

अतः मुझे नश्वर भोगों से प्रलोभित न करें किन्तु जिसके लिये मैंने प्रार्थना की है, हे मृत्यु !

---

१. अक्षरयोजना इत्यनन्तरमेवमिति शेषः। २. तेषु तात्पर्येण वर्तनमिति—तदेकाभिलम्पटत्वमिति यावत्। ३. दुष्प्रापमपि प्रापिपयिषुरिति—दुष्प्रापप्राप्तौ लब्धाश इत्यर्थः। संभाव्यमानदुष्प्रापार्थप्राप्तिरिति यावत्। ४. क्वेति प्रथमार्थे सप्तमी छान्दसीत्याशयेनाह—न कश्चिदिति। ५. सर्वो हीत्यादि—किमुत मद्विधः सारासार-विवेकीति भावः। ६. उपर्यु पर्येव बुभूषतीति—उत्कर्षमेवात्मनो लिप्सत इति यावत्। ७. अप्सरःप्रमुखा-न्वर्णरतिप्रमोदानिति। अप्सरःप्रभृतीन्, तत्प्रधानान्, तन्मूलकान् वा वर्णादिशब्दाभेयांस्तान् विषयानित्यर्थः। ८. अभित उभयत उत्पत्तिनाशवत्त्वेनेति निष्कृष्याभिशब्दार्थमाह—अनवस्थितरूपतयेति। अनित्यत्वेनेति यावत्। यद्वाऽऽभिमुख्येनेत्यभ्यर्थस्तथा च शेमुषीचणस्य शेमुष्यास्तदाभिमुख्ये सति तेषामनित्यत्वादिदूषणगण एव पुरःस्फुरतीति भावः। ९. न च तेष्वनित्यत्वादिबोधो भ्रम इत्याह—यथावदिति। याथातथ्येनेत्यर्थः। प्रमाणैरिति यावत्। १०. अतिदीर्घ इत्यादि—न तावद्दीर्घं जीवितमेव रमणायालं तथा सति दीर्घजीविभि-र्नान्यद्रमणायापेक्ष्येत यच्च मूढानां रमणसाधनमप्सरःप्रमुखं तदेतदनित्यत्वादिना दुःखहस्तैव विवेकिनो हेयमिति कथं विवेकी रमतां तादृशे चिरजीवन इति भावः। ११. रमेतेति—न कोऽपीत्यर्थः। परिणामतापसंस्कारै-र्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिन इति। १२. अत इति—विवेकिनो मम विषयेषु रमणासंभवादिति यावत्। १३. यन्मया प्रार्थितं तद्ब्रूहीत्यन्वयः। किं तत्तव प्रार्थितमित्यत्राह—यस्मिन्निति। यस्मिन् प्रेतात्मनि विषये यं प्रेतात्मानमुद्दिश्य तदीयपरलोकसम्बन्धविषये इदं विचिकित्सनं यथा स्यात् तथा विचिकित्सन्तीत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महति ब्रूहि नस्तत् । योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥२९॥

इति काठकोपनिषदि प्रथमाध्याये प्रथमा वल्ली समाप्ता ॥१॥

सन्देह करते हैं तथा महान् परलोक के विषय में जो (निश्चित विज्ञान) है, वह हमें बतलावें । यह जो अत्यन्त गहन और दुर्विवेचनोयता को प्राप्त (मेरा) वर है, इससे भिन्न और कोई वर नचिकेता नहीं माँगता है ॥२९॥

॥ इति प्रथमवल्ली समाप्ता ॥

विचिकित्सन्त्यस्ति[1] नास्तीत्येवंप्रकारं हे मृत्यो सांपराये [2]परलोकविषये महति [3]महत्प्रयोजननिमित्त [4]आत्मनो निर्णयविज्ञानं यत्तद्ब्रूहि कथय नोऽस्मभ्यम् । किं बहुना योऽयं प्रकृत आत्मविषयो वरो गूढं गूहनं [5]दुर्विवेचनं प्राप्तोऽनुप्रविष्टस्तस्माद्वरादन्यमविवेकिभिः प्रार्थनीयमनित्यविषयं वरं नचिकेता न वृणीते [6]मनसाऽपीति श्रुतेर्वचनमिति ॥२९॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्य श्रीमदाचार्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ काठकोपनिषद्भाष्ये प्रथमाध्याये प्रथमवल्लीभाष्यं समाप्तम् ॥१॥

॥२९॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यानन्दज्ञानविरचिते काठकोपनिषद्भाष्यव्याख्याने प्रथमा वल्ली समाप्ता ॥१॥

जिस मरे हुये जीव के विषय में लोग ऐसा सन्देह करते हैं कि मरने के बाद उसका अस्तित्व बना रहता है या नहीं, उस महान् प्रयोजन के निमित्तभूत महान् परलोक के सम्बन्ध में आत्मा का जो निश्चित विज्ञान है, हमें बतलायें । विशेष क्या कहें, जो आत्मविषयक प्रकृत वर है, वह बड़ा ही गहन है एवं

---

१. इदमुक्तं स्फुटयति—अस्ति नास्तीत्येवं प्रकारमिति । २. सांपरायशब्दार्थमाह—परलोकविषय इति । परलोकस्तत्सम्बन्धः । स च संशये विधेयतया विषयः आत्मा तूद्देश्यतयाऽऽत्मा परलोकसम्बन्धवान्न वेत्येवमिति द्रष्टव्यम् । ३. तदुपदेशप्रयोजनमुक्तं महतीति । तद्व्याचष्टे—महत्प्रयोजनमिति । महच्छब्दो महति प्रयोजने लाक्षणिकः सप्तम्यर्थो निमित्तत्वमिति भावः । अत्र प्रयोजनशब्देन लक्षणया महच्छब्दोक्तस्यैकदेशवाचीति वैलक्षण्यादेव तस्मिन् परे "आन्महतः समानाधिकरण समानजातीययो"रित्यात्वं न कृतमित्यूह्यम् । ४. आत्मन इति—तस्येत्यादिः यस्मिन्नित्युक्तत्वात् । ५. दुर्विवेचनमिति—भावप्राधान्याद्दुर्विवेचनत्वमित्यर्थः । यथाश्रुतमेव वा दुःसाध्यं विवेचनमिति । ६. मनसाऽपीति । किमुत वचसेत्यपिशब्दार्थः । कथमन्यमनोगतमन्येनावगम्येतेत्यत आह—श्रुतेर्वचनमिति । तस्याः सर्वज्ञत्वाज्ज्ञानुपत्तिरिति भावः । नचिकेता एव न कुतो वक्ष्यत्येवम् । मैवं नान्यं तस्मादपि मृत्यो वृणेऽहमित्येव स ब्रूयादात्म नाम गुरोर्नमित्यादिस्मृतेः । प्रकृतवरस्य गूढानुप्रवेशोक्तिरपि नचिकेतसो नातीव युज्यत इवेत्यभ्यूहितव्यम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳ सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥१॥

श्रेय (अमृतत्व) भिन्न ही है तथा प्रेय (अभ्युदय) भिन्न ही है। वे दोनों भिन्न-भिन्न प्रयोजन वाले होते हुए ही (वर्णाश्रमादि से विशिष्ट) पुरुष को बाँधते हैं। उन दोनों में से श्रेय के ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है और जो प्रेय का वरण करता है, वह (मूढ पुरुष पारमार्थिक प्रयोजन रूप नित्य) पुरुषार्थ से पतित हो जाता है ॥१॥

---

[1]परीक्ष्य शिष्यं [2]विद्यायोग्यतां चावगम्याऽऽह—

अन्यत्[3]पृथगेव [4]श्रेयो [5]निःश्रेयसं तथाऽन्यदुताप्येव प्रेयः [6]प्रियतरमपि ते प्रेयःश्रेयसी उभे नानार्थे भिन्नप्रयोजने सती पुरुषमधिकृतं वर्णाश्रमादिविशिष्टं सिनीतो बध्नीतस्ताभ्यां विद्याविद्याभ्यामात्मकर्तव्यतया प्रयुज्यते सर्वः पुरुषः। श्रेयःप्रेयसोर्ह्य्यभ्युदयामृतत्वार्थी

---

[7]अभ्युदयनिःश्रेयसविभागप्रदर्शनेन विद्याऽविद्याविभागप्रदर्शनेन च केवलविद्यार्थितया शिष्यं

दुर्विवेचनीयता को प्राप्त हो रहा है। उससे भिन्न अविवेकी पुरुषों द्वारा प्रार्थनीय किसी अनित्य वस्तु विषयक वर नचिकेता मन से भी नहीं चाहता है, यही श्रुति का तात्पर्य है ॥ २९ ॥

प्रथमाध्याय द्वितीय वल्ली

श्रेय-प्रेय की विवेचना

इस प्रकार शिष्य की परीक्षा कर एवं उसमें विद्याग्रहण की योग्यता जानकर यमाचार्य ने कहा—

निःश्रेयसरूप श्रेय वस्तु भिन्न ही है वैसे ही प्रियतररूप प्रेय वस्तु भी भिन्न ही है। वे श्रेय और प्रेय दोनों परस्पर भिन्न प्रयोजन वाले होते हुये भी वर्णाश्रमादि से विशिष्ट, अधिकारी पुरुष को अपने में बाँध लेते हैं अर्थात् सभी पुरुष उन्हीं के द्वारा विद्या और अविद्या सम्बन्धी अपने कर्तव्य से प्रयुक्त

---

१. परीक्ष्येति—वैराग्यादिमत्त्वनिर्धारणानुकूलं व्यापृत्येति यावत्। २. परीक्षाफलमाह—विद्यायोग्यतां चावगम्येति। विवेकादिसम्पत्तिं च निर्धार्येत्यर्थः। ३. पृथगिति—स्वरूपतः फलतश्च विलक्षणमित्यर्थः। ४. श्रेय इति—अतिशयेन प्रशस्यमित्यर्थे ईयसुनि प्रशस्यस्य श्र इति आदेशः प्रकृत्यैकाजिति टिलोपाभावः। ५. किं चातिशयेन प्रशस्यं भवति तदाह—निःश्रेयसमिति। "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" इति स्मृतेः। ६. प्रियशब्दादीयसुनि प्रियस्थिरस्फिरेत्यादिसूत्रेण प्रादेश इत्याशयेनाह—प्रियतरमिति। ७. अभ्युदयेत्यादि—अभ्युदयः श्रेयः स्वर्गाद्यनित्यं सुखम्। निःश्रेयसं नित्यसुखं मोक्षस्तयोर्विभागस्य साधनस्वरूपादिना वैलक्षण्यस्य प्रदर्शनद्वारा अन्यच्छ्रेय इत्यादिना च विद्याविद्ययोस्तथा विभागप्रदर्शनद्वारा शिष्यं स्तौतीत्यन्वयः। स्तुतौ हेतुः—केवलविद्यार्थितयेति विद्यामात्राभिलाषित्वादित्यर्थः। तथा च वक्ष्यति—विद्याभीप्सिनं नचिकेतसमित्यादि। स्तुतिश्च सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टेत्यादिरूपानुसंधेया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरुषः प्रवर्तते । अतः [1]श्रेयःप्रेयःप्रयोजनकर्तव्यतया ताभ्यां बद्ध इत्युच्यते सर्वः पुरुषः । [2]ते यद्यप्येकैकपुरुषसंबन्धिनी [3]विद्याविद्यारूपत्वाद्विरुद्धे । इत्यन्यतरापरित्यागेनैकेन पुरुषेण सहानुष्ठातुमशक्यत्वात्तयोर्हित्वाऽविद्यारूपं प्रेयः श्रेय एव केवलमाददानस्यो[4]पादानं कुर्वतः साधु शोभनं शिवं भवति । यस्त्वदूरदर्शी विमूढो हीयते वियुज्यते कस्मादर्थात्पुरुषार्था-त्पारमार्थिकात्प्रयोजनान्नित्यात्प्रच्यवत इत्यर्थः । कोऽसौ य उ प्रेयो वृणीत उपादत्त इत्येतत् ॥१॥

यद्युभे अपि [5]कर्तुं स्वायत्ते पुरुषेण किमर्थं प्रेय एवाऽऽदत्ते बाहुल्येन लोक [6]इत्युच्यते—

[7]प्रथमं स्तौतीत्याह—परीक्ष्येति । [8]श्रेयःप्रेयसोरन्यतरपरित्यागेनैवान्यतरोपादाने हेतुमाह—ते यद्यपीति । [9]ते यद्यप्येकैकपुरुषसंबन्धिनी तथाऽपि विरुद्धे ॥१॥

होते हैं। उन दोनों में से अभ्युदय चाहने वाला पुरुष प्रेय में और अमरत्वाकांक्षी श्रेय में प्रवृत्त होता है। अत: श्रेय और प्रेय दोनों के प्रयोजनों को कर्तव्यरूप से ग्रहण करने वाला पुरुष उनसे बँध जाता है। यद्यपि वे श्रेय और प्रेय एक-एक पुरुषार्थ से सम्बन्ध रखते हैं, फिर भी विद्या और अविद्यारूप होने के कारण परस्पर विरुद्ध हैं। अतः एक को त्यागे विना एक ही पुरुष द्वारा दोनों का सहअनुष्ठान अशक्य होने के कारण उन दोनों में से अविद्यारूप प्रेय को त्याग कर केवल अमरत्व का साधन केवल श्रेय को ही ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है किन्तु जो मूढ़ अदूरदर्शी है, वह परमार्थ सम्बन्धी नित्य प्रयोजन वाले श्रेय साधन से गिर जाता है। वह कौन है? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं कि जो प्रेय को वरण करता है, यह इसका अभिप्राय है ॥ १ ॥

१. श्रेयःप्रेयःप्रयोजनकर्तव्यतयेति—श्रेयःप्रेयसोस्तत्त्वज्ञानज्योतिष्टोमाद्योर्ये प्रयोजने मोक्षस्वर्गादी तदर्थं या कर्तव्यता श्रेयःप्रेयसोस्तयेत्यर्थः । यद्वा तत्प्रयोजनयोरेव कर्तव्यता संपादयितव्यता संपिपादयिषेति यावत् तयेति विग्रहः तद्द्वारा ताभ्यां विद्याविद्यारूपाभ्यां श्रेयःप्रेयोभ्यां बद्ध इत्यर्थः । २. ते यद्यपीत्यादि—ते श्रेयःप्रेयसी । एकैकपुरुषसंबन्धिनी क्रमशः सर्वपुरुषसंबन्धिनी अपि यस्यैवाभ्युदयार्थित्वे सम्बन्धिश्रेय एवं क्रमशः सर्वपुरुष-सम्बन्धिनी अपि विद्याविद्यारूपत्वाद्विरुद्धे यदि यस्मात् इनि तस्मादिति योज्यम् । अत्र क्रमशोऽप्येकाधिकरणत्वं ययोः संभवति न तयोरत्यन्तं विरोधोऽभ्युपगम्यते यद्यपि गोत्वाश्वत्वयोरिवेति द्योतयितुमपिशब्दः । ३. क्रमशः संभवदेकाधिकरणयोरपि तेजस्तिमिरयोरिव युगपत्सहावस्थानानर्हत्वलक्षणो विरोधो नानुपपन्न इत्याशयेनाह—विद्याविद्येति । जन्मादिबन्धहेतुत्वात्कर्माविद्यारूपं तन्निवर्तकत्वात्तु विद्यारूपं श्रेयोज्ञानमिति भावाभावात्मक-विरुद्धकार्यानुकूलत्वाद् युगपत् सहावस्थित्यनर्हत्वलक्षणविरोधवती ते यस्मात्तस्मादित्यर्थः । ४. उपादान-मिति—श्रेयस इत्यादिः । ५. कर्तुमिति—"शकधृषज्ञाग्लाघटरभलभक्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्" इति तुमुन् । स्वायत्ते इत्यस्य स्वेन शक्ये इत्यत्र पर्यवसानादित्यवधेयम् । ६. इत्युच्यत इति—इत्याशङ्कायां सत्यामुत्तर-मुच्यते श्रेयश्चेत्यादिवाक्येनेत्यर्थः । ७. प्रथमं स्तौति—अभीप्सितदानात्प्राक् स्तौतीत्यर्थः । स्तुत्वा हि दत्तं दत्तं भवति नास्तुत्वेति प्रसिद्धिः खल्वेषेति भावः । यद्वा प्रकारान्तरेण करिष्यमाणस्तुत्यपेक्षया केवलविद्यार्थि-त्वेन रूपेण प्रथमं स्तौतीति योज्यम् । ८. उभयादानमपि चेत्सम्भविष्यदत्रक्ष्यदेव तदोभयमाददानस्य फलं तस्मात्तयोरित्याद्युक्त्याऽन्यतरदेव शक्यमुपादातुमित्येवाभिप्रेतमत्रगम्यत इत्यवगम्य तत्र हेतुमवतारयितु-मवतरति—श्रेयःप्रेयसोरिति । ९. ते यद्यप्येकैकेत्यादि पाठ उपलब्धलिखितपुस्तके नोपलभ्यते ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

[1]श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥२॥

श्रेय और प्रेय (परस्पर मिले हुए के जैसे) मनुष्य के पास आते हैं। उन दोनों को (नीर-क्षीर विवेकी हंस के समान) बुद्धिमान् पुरुष भलो प्रकार विचार कर पृथक्-पृथक् कर लेता है (इस प्रकार श्रेय-प्रेय का) विवेकी प्रेय की अपेक्षा (अभीष्टतम होने के कारण) श्रेय का ही वरण करता है, किन्तु मूढ पुरुष तो योगक्षेम के निमित्त प्रेय का वरण करता है ॥२॥

सत्यं स्वायत्ते तथाऽपि [2]साधनतः फलतश्च मन्दबुद्धीनां दुर्विवेकरूपे सतो [3]व्यामिश्रीभूते इव मनुष्यं पुरुषमा इतः प्राप्नुतः श्रेयश्च प्रेयश्च। [4]अतो हंस इवाम्भसः [5]पयस्तौ श्रेयःप्रेयः [6]पदार्थौ संपरीत्य सम्यक्परिगम्य मनसाऽऽलोच्य [7]गुरुलाघवं विविनक्ति [8]पृथक्करोति धीरो [9]धीमान्।

यदि श्रेय और प्रेय दोनों को ग्रहण करने में मनुष्य स्वतन्त्र है, तो भला अधिकतर लोग प्रेय को ही क्यों स्वीकार करते हैं? इस पर कहा जाता है कि यह बात सर्वथा सत्य है। इन दोनों साधनों में मनुष्य की स्वतन्त्रता है किन्तु उन श्रेय और प्रेय के पार्थक्य को मन्दबुद्धि पुरुष के लिये साधन एवं फलदृष्टि से ग्रहण करना कठिन है। अतः जैसे हंस जल से दूध को पृथक् कर लेता है, ठीक वैसे ही बुद्धिमान् धीर पुरुष उन श्रेय और प्रेय पदार्थों को मन से आलोचना कर उनके गौरव-लाघव का

---

१. श्रेयश्चेत्यादि। अत्रायं निष्कर्षः "सत्सङ्गमे श्रीशकथासुधायाः पानेन तृप्यत्यहनि प्रकामम्। तुष्यत्यथायं मदिरेक्षणानां बिम्बाधराऽऽस्वादवशो निशीथे ॥ एवं सुखत्वेन समानभावाच्छ्रेयस्तथा प्रेय इमे विमिश्रे। मुग्धो न शक्नोति विवेक्तुमेकं धीरोऽवसानेऽमृतकल्पमिच्छेत्" इति। मुग्धो मुग्धत्वादेवैकं श्रेयो न विवेक्तुं शक्नोति किंतु संस्कारप्रचयान्मोहवत्त्वाच्च प्रेयस्येव प्रसज्जत इति भावः। धीरस्तु यदवसाने परिणामेऽमृतोपमं तदेवेच्छेच्छ्रेय इत्यर्थः। २. साधनत इति—अनुष्ठानत इति यावत्। फलत इत्युक्त्या श्रेयःप्रेयसोः साधनरूपत्वादिति विभावनीयम्। ३. व्यामिश्रीभूते इवेति—विचार्यमाणे तमःप्रकाशवद्विरुद्धस्वभावयोर्व्यामिश्रीभावासंभवावगमादिवकारः। व्यामिश्रीभावश्चानयोः सुखसाधनत्वेन सादृश्यम्। सहोपदेशोपलम्भवशात् प्रतीयमानं सहानुष्ठेयत्वं वा। सहानुष्ठेयत्वं च एकफलसाधनत्वधिया युगपदनुष्ठेयत्वम्। ४. नन्वेवं व्यामिश्रीभावेनैवास्तु तयोः पुरुषं प्रत्यागतिः किमेतावता प्रेयस एवादानबाहुल्ये निमित्तमुक्तं भवतीत्याशङ्क्याऽऽह—अत इति। तयोर्व्यामिश्रीभावेनैव प्राप्नुवत्त्वादित्यर्थः। ५. पयः क्षीरं पृथक्करोतीत्यर्थः। ६. ताविति पुंशब्देन क्लीबयोर्ग्रहणायोगादाह—पदार्थाविति। ७. गुरुलाघवमिति—तयोः श्रेयःप्रेयसोः साधनफलयोरित्यादिः। गुरुलघ्वोर्भावो गुरुलाघवम्। इगन्ताच्च लघुपूर्वादित्यनेन हायनान्तयुवादिभ्योऽणित्यनुवर्तमानोऽण्प्रत्ययः। परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोरित्युत्तरपदवृद्धिः। तत्र हि परिमाणशब्देन परिच्छेदकमात्रं गृह्यते शाणपर्युदासादित्यभ्युपगम्यते लघुशब्दोऽपि संभवति परिच्छेदकवाचीति ध्येयम्। ८. पृथक्करोति श्रेयःप्रेयःपदार्थावित्यन्वयः। ९. धीमानिति—स च मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिदिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स त्वं प्रियान्प्रियरूपाꣳश्च कामानभिध्याय-न्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः । नैताꣳ सृङ्कां वित्तमयी-मवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥३॥

हे नचिकेता! (मेरे द्वारा प्रलोभित किये जाने पर भी) उस तूने पुत्र-वित्तादि प्रिय और अप्सरादि प्रिय रूप भोगों को (उनके अनित्यत्व असारत्व रूप दोषों का) चिन्तन करते हुए त्याग दिया है। जिसमें बहुत मूढ मनुष्य डूब जाते हैं, ऐसे इस धन प्रायः कुत्सित गति को तू प्राप्त नहीं हुआ ॥३॥

विविच्य च श्रेयो हि श्रेय एवाभिवृणीते [2]प्रेयसोऽभ्यर्हितत्वात्। कोऽसौ धीरः। [3]यस्तु मन्दोऽल्पबुद्धिः स [4]विवेकासामर्थ्याद्योगक्षेमा[5]द्योगक्षेमनिमित्तं [6]शरीराद्युपचयरक्षणनिमित्त-मित्येतत्प्रेयः पशुपुत्रादिलक्षणं वृणीते ॥२॥

स त्वं [7]पुनः पुनर्मया प्रलोभ्यमानोऽपि प्रियान्पुत्रादीन्प्रियरूपांश्चाप्सरःप्रभृतिलक्षणा-

---

॥२॥

विवेक कर लेता है। इस प्रकार श्रेय का विवेचन करने के पश्चात् प्रेय की अपेक्षा अधिक अभीष्ट होने के कारण वह श्रेय का ही ग्रहण करता है। वह कौन है? ऐसा प्रश्न होने पर श्रुति ने कहा कि ऐसा करने वाला धीर पुरुष बुद्धिमान् है परन्तु इसके विपरीत जो अल्पबुद्धि है, वह विवेक शक्ति न रहने के कारण शरीरादि की वृद्धि और उनकी रक्षा के लिये योग-क्षेम के रूप में पशु-पुत्रादिरूप प्रेय का ही वरण करता है ॥ २ ॥

हे नचिकेता! तेरी बुद्धिमत्ता धन्यवाद के योग्य है क्योंकि तूने मेरे द्वारा बार-बार प्रलोभन

---

१. त्वं तु धीर एव न मन्द इति शिष्यं स्तुवन्नाह—स त्वमित्यादि। २. प्रेयसोऽभ्यर्हितत्वादिति—प्रेयोऽपेक्षया श्रेयसः फलसाधनाभ्यामुत्तमत्वादित्यर्थः। अभ्यर्हितत्वादित्ययमभ्युपसर्गस्यैवार्थः। प्रेयस इति मौलिकपदानन्तरं शेषो वा यदि तु प्रेयस इत्यस्य संबन्धार्थमेव विविच्येति पदं पूर्वमध्याहृत्योक्तमिति विभाव्यते। तदा श्रेयस एव प्रेयोऽपेक्षयाऽभ्यर्हितत्वादित्यार्थिकम्। ल्यब्लोपे पञ्चमीमुपगम्य प्रेयः परित्यज्येत्यपि शक्यमर्थापयितुमिति ध्येयम्। ३. ननु धीर एव वृणीतां श्रेयःप्रेयस आदानबाहुल्ये तु किमायातमिति पूर्वोक्तिभावानवबोधेन शङ्कितारं बुबोधयिषन्नाह—यस्तु मन्द इत्यादि। मन्दो हि भूयान् भवति लोक इति भावः। मन्दानामेव बाहुल्यात् प्रेय आदानबाहुल्यमिति निष्कर्षः। ४. मूलोक्तस्तु योगक्षेमाद्दिति फलात्मको हेतुरिति कारणात्मकं हेतुं स्वयं पूरयति—विवेकासामर्थ्यादिति। ५. निमित्तार्था पञ्चमीफलं चेह निमित्तमित्याशयेनाह—योगक्षेमनिमित्तमिति योगक्षेमार्थमित्यर्थः। ६. अप्राप्तस्य शरीराद्युपचयस्य प्राप्तिर्योगः प्राप्तस्य शरीरादे रक्षणं क्षेमस्तदुभयनिमित्तमित्यर्थमभिप्रेत्याह—शरीरादिति। योगस्य प्राप्तस्य क्षेम इति विग्रहप्रदर्शनं तु टीकयितुश्चं ममूलकमिति पश्यामः। ७. तच्छब्दार्थमाह—पुनः पुनरित्यादिना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति

ये दोनों (प्रकाश और अन्धकार के समान) अत्यन्त विरुद्ध स्वभाव वाली एवं विपरीत रूप

---

[1]न्कामानभिध्यायंश्चिन्तयंस्तेषाम[2]नित्यत्वासारत्वादिदोषान्हे नचिकेतोऽत्यस्राक्षीरतिसृष्टवा-[3]न्परित्यक्तवानस्यहो[4] बुद्धिमत्ता [5]तव नैताम[6]वाप्तवानसि [7]सृङ्कां [8]सृतिं [9]कुत्सितां [10]मूढजनप्रवृत्तां [11]वित्तमयीं [12]धनप्रायाम् । यस्यां [13]सृतौ मज्जन्ति सीदन्ति बहवोऽनेके मूढा मनुष्याः ॥३॥

[14]तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीत इत्युक्तं [15]तत्कस्मा-

---

॥३॥

दिये जाने पर भी पुत्रादि प्रेय का, अप्सरादि प्रियरूप भोगों का उनकी अनित्यता और निःसारता आदि दोषों का विचार कर सर्वथा त्याग कर डाला। इतना ही नहीं, जिसमें मूढ़ पुरुष प्रवृत्त होते हैं, उस धनप्रायः निन्दित जीवन को तू प्राप्त नहीं हुआ। जिस मार्ग में अनेकों मूढ़ पुरुष डूब जाते हैं, उसी में दुःखी होते हैं ॥ ३ ॥

श्रेय और प्रेय से श्रेय को ग्रहण करने वाले का भला होता है और जो प्रेय को वरण करता

---

१. कामानिति—मन्दैः काम्यमानानर्थानित्यर्थः। २. अनित्यत्वासारत्वादिदोषानिति—यथोक्तं "श्वो भावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेज" इति। ३. परित्यक्तवानसीति न कृतवानसीति यावत् परित्यागस्य ग्रहणपूर्वकत्वात्। ४. बालस्यैवं बुद्धिमत्त्वमाश्चर्यं जनयतीत्याशयेनाह—अहो इति। ५. तव बालस्यैव सत इति भावः। ६. अवाप्त इति कर्तरि निष्ठान्तं षष्ठीप्रतिषेधश्च कर्मणि न लोकेत्यादिनेत्याशयेन तत्पर्यायमर्पयति—अवाप्तवानसीति। स्वीकृतवानसीत्यर्थः। ७. सृङ्कां वित्तमयीमिति—प्रचुरवित्तोपार्जनसाधनं द्यूतेन्द्रजालादिविविधकलापथकौशलमित्यर्थान्तरकल्पनमप्यत्र नासङ्गतमापद्यत इत्यवधेयम्। ८. स्रकिं गताविल्यतो निष्पत्तिमाश्रित्याह—सृतिमिति। ९. परमार्थदृष्ट्या विशिनष्टि—कुत्सितामिति। १०. पूर्वं तु लोकदृष्ट्यैव प्रलोभनापेक्षया वाऽकुत्सितामित्युक्तमित्यविरोधः कुतोऽवगतमस्याः कुत्सितत्वं तदाह—मूढजनप्रवृत्तामिति। मूढजनैरेव क्षुण्णामिति यावत्। अकुत्सिता चेत्सेव्येत विद्वद्भिरिति भावः। ११. तदपि कुतोऽत आह—वित्तमयीमिति। १२. प्राचुर्ये मयडित्याशयेन व्याख्याति—धनप्रायामिति। मूढा हि मुह्यन्ति वित्त इति वित्तम्। प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढमिति। यदुक्तं कुत्सितत्वं मूढजनप्रवृत्तत्वं च तदेतन्नोन्मूलमित्याशयेन तत्र मूलमनुकूलयति—यस्यामिति। मज्जकत्वादेवास्याः कुत्सितत्वं मज्जतां बहुत्वोक्त्यैव च मूढत्वं लभ्यते न ह्यमूढा भवन्ति बहव इति प्रसिद्धमेव। उक्तञ्च—"जन्तूनां नरजन्मदुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता। तस्माद्वैदिकधर्ममात्रपरता विद्वत्त्वमस्मात्परमिति"॥ १३. सृतौ मज्जन्ति सीदन्तीति—इह श्रीमतां कुलेष्ववतीर्य भोगान् भुञ्जाना एव कर्माणि करवाम मृत्वा च स्वर्गभोगाननुभवाम ततः पुनः श्रीमतामेव कुलेष्ववतीर्य विविधान् भोगाननुभवन्त एव कर्माण्यनुतिष्ठन्तः स्वर्गं व्रजामेति दृढाभिनिवेशा धनभोगप्रचुरे कर्ममार्ग एव परिभ्रमन्तो भृशं क्लिश्यन्त इति यावत्। १४. सिंहावलोकनेन शङ्कामङ्कयति—तयोरिति। १५. तत्कस्मादिति—उभयोर्वैदिकत्वाविशेषे सत्येवैवं फलविभेदः किं प्रयुक्त इति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञाता। विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥४॥

से जानी गयी है, इनमें से मैं तुझ नचिकेता को विद्याभिलाषी मानता हूँ क्योंकि (मूर्खों को प्रलोभित करने वाले अप्सरादि) बहुत से भोग भी तुझे लुभा न सके। ४॥

यतो दूरं[1] दूरेण महताऽन्तरेणैते विपरीते अन्योन्य[2]व्यावृत्तरूपे [3]विवेकाविवेकात्मकत्वा[4]त्तमःप्रकाशाविव। विषूची विषूच्यौ [5]नानागती भिन्नफले संसारमोक्षहेतुत्वेनेत्येतत्। के ते इत्युच्यते—या चाविद्या प्रेयोविषया विद्येति च श्रेयोविषया ज्ञाता निर्ज्ञाताऽवगता पण्डितैस्तत्र[6] विद्याभीप्सिनं विद्यार्थिनं नचिकेतसं त्वामहं मन्ये। कस्माद्यस्माद[7]विद्वद्बुद्धिप्रलोभिनः कामा अप्सरःप्रभृतयो [8]बहवोऽपि त्वा त्वां नालोलुपन्त [9]न विच्छेदं कृतवन्तः श्रेयोमार्गादात्मोपभोगाभिवाञ्छासंपादनेन। अतो विद्यार्थिनं श्रेयोभाजनं मन्य इत्यभिप्रायः ॥४॥

॥४॥

है, वह परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है, ऐसा जो प्रारम्भ में कहा गया है, वह किसलिये कहा गया? (इस पर यमाचार्य कहते हैं—) क्योंकि ये दोनों श्रेय और प्रेय, प्रकाश और अन्धकार के तुल्य, विवेक और अविवेकरूप होने के कारण परस्पर विरुद्ध हैं। इनका आपस में महान् अन्तर है और संसार एवं मोक्ष के कारण होने से भिन्न-भिन्न फल वाले हैं। वे कौन हैं? इस पर कहते हैं—जो कि पण्डितों द्वारा प्रेय को विषय करने वाली अविद्या तथा श्रेय को विषय करने वाली विद्यारूप से जानी गयी है, उनमें तुझ नचिकेता को मैं विद्याभिलाषी विद्यार्थी मानता हूँ; क्यों मानता हूँ? क्योंकि अविवेकियों की बुद्धि को प्रलोभन में डालने वाले अप्सरा आदि बहुत से भोग भी तुम्हें प्रलुब्ध न कर सके अर्थात् वे तेरे हृदय में अपने भोग की लालसा उत्पन्न कर तुझे श्रेय मार्ग से विचलित न कर सके। इसीलिये मैं तुझे विद्यार्थी अर्थात् श्रेय का पात्र मानता हूँ, यह इसका अभिप्राय है ॥ ४ ॥

---

१. "दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च" एभ्यो द्वितीया स्याच्चात् पञ्चमी तृतीये। प्रातिपदिकार्थमात्रे विधिरयम्। इति द्वितीयां तदर्थंतृतीयया व्याकरोति—दूरेणेति। अनयोर्वैपरीत्यं भूयान् भेद इत्यर्थः। तथा च तयोर्वैदिकत्वेऽपि भूयान् भेदः फलस्वरूपाभ्यामेवेति भावः। २. विभिन्नस्वरूपे। ३. विवेकेत्यादि—कर्मठो हि अर्थी दक्षो द्विजोऽहमिति मिथ्याभिमानवान् भवतीत्यविवेकत्वं कर्मणः। ४. तमःप्रकाशाविवान्योऽन्यव्यावृत्तरूपे इति संबन्धः। ५. विभिन्ने फले सूचयतो जनयत इति यावदिति मत्वा व्याचष्टे—नानेति। ६. शङ्कां पूर्वार्धेन समाधाय पुनः शिष्यं स्तवीति—तत्र विद्याभीप्सिनमिति। ७. अविद्वद्बुद्धीति—अविद्यार्थिबुद्धीति यावत्। ८. बहवोऽपीति—एकैकस्य लोलुपयितृत्वं किमु बहूनामित्यप्यर्थः। ९. लुप्लुच्छेदन इत्यस्माद्यङ्लुकि गणकार्यमनित्यमिति शपोऽलुक् छान्दसमात्मनेपदं शब्लुकि वान्तादेशश्छान्दस इत्यभिप्रेत्य व्याचष्टे—न विच्छेदमिति। तवेत्यादिः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं-
मन्यमानाः । दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥५॥ १

वे (घनीभूत) अविद्या के भीतर रहने वाले अपने आप बड़े बुद्धिमान् बने हुए, अपने को पण्डित मानने वाले मूढ़ पुरुष (अनेक अनर्थ वाले) कुटिल गति को वैसे ही प्राप्त होते हैं—जैसे अन्धे से ही ले जाये जाते हुए अनेक अन्धे महान् अनर्थ को प्राप्त होते हैं ॥५॥

ये तु संसारभाजना अविद्यायामन्तरे मध्ये घनीभूत इव तमसि वर्तमाना वेष्टयमानाः पुत्रपश्वादितृष्णापाशशतैः स्वयं वयं धीराः प्रज्ञावन्तः पण्डिताः शास्त्रकुशलाश्चेति

अविद्या-ग्रस्त पुरुषों की दुर्दशा

किन्तु जो संसार के पात्र हैं, वे घोर अन्धकार के सदृश अविद्या के भीतर पड़े-पड़े पुत्र, पशु आदि सैकड़ों तृष्णारूप पाशों से बंधे हुये (संसार में संलग्न) हैं फिर भी अपने को बड़े धीर बुद्धिमान्

---

१. कामाऽलोलुपत्वाद्यहं विद्याभीप्सी ततश्च श्रेयोभाजनं कीदृशास्तर्ह्यविद्याभीप्सिनो भवन्ति किं भाजनाश्च इति नचिकेतसो मनोगतं विज्ञायाह भगवान्यमराजः—अविद्यायामित्यादि । अविद्यार्थिनो धीरत्वाद्यभिमानोपलक्षितासुरसंपद्वन्तो भवन्ति संसारभाजनाश्चेति भावः । २. वयं धीरा इति मन्यमानाः पण्डितं चात्मानं मन्यमाना इति वा योज्यमध्याहारेण । ३. ये तु संसारभाजना इति—अस्मादेव भाष्याद्भाजनशब्दस्यार्थचादित्वमनुमेयम् । ४. अविद्यायामिति—सप्तम्यर्थो घटकत्वमविद्याघटकं यन्मह्य तत्रेत्यर्थः । ५. अविद्यावर्तमानत्वं विदामपि न हि कश्चित्क्षणमपीति स्मृतेरत उक्तमन्तर इति तद्व्याचष्टे—घनीभूत इति । ६. किं तद्घनीभूततमःस्थानीयमविद्याया अन्तरं तत्राह—वेष्टयमाना इत्यादि । अविद्याऽत्र मूलाज्ञानं कर्म च तन्मध्यवर्ती तृष्णावासनापरपर्यायः कामस्तदन्तरं तद्वेष्टयमानत्वमेव तत्र वर्तमानत्वमिति भावः । यदि तु प्रकरणानुरोधात् कर्मैवाविद्या तदापि कर्मतो वासना ततश्च कर्मेत्येवं क्रमात्तृष्णापर्यायवासनायाः कर्मान्तिरत्वमुन्नेयम् । अनेन चासुरीसंपदुपलक्ष्यते । तथा चोक्तम्—"आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः । ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयानि"ति । ७. नन्वन्धे तमसि वर्तमानोऽपि जनो यथा प्रकाशाभिज्ञाप्तोपदेशमनुसृत्य गच्छंस्ततो निर्याति विमुच्यते चानर्थव्रातात्तद्वदेतेऽपि न कुतो विद्यावदुपदेशादविद्यातो विमुच्यन्त इत्याशङ्कामपाकुर्वन् द्वितीयचरणं व्याचष्टे—स्वयं वयमित्यादि । स्वयं धीरत्वाद्यभिमानित्वादेव नान्यमुपनिषद्विदं ब्रह्मनिष्ठमुपतिष्ठन्त एत इति भावः । यथाह भगवान्—"आत्मसंभाविताः स्तब्धा" इत्यादि । ८. प्रज्ञावन्तो लौकिकाभिज्ञा इति यावत् । ९. पण्डितमिति विभक्तिवचनव्यत्ययश्छान्दस इत्याशयेनाह—पण्डिता इति । यद्वा पण्डितमात्मानं मन्यन्त इति पण्डितंमन्या "आत्ममाने खश्च" तेषां मान इव मानो येषामिति व्युत्पत्तिं मनसिकृत्य व्याचष्टे—पण्डिता इति । अत्र पक्षे वयं धीरा इति मन्यमाना इत्यार्थिकमुन्नेयम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्त-

धन के मोह से (अन्धे हुए पुत्र-पशु आदि में आसक्त) प्रमाद करने वाले मूर्ख को परलोक का

मन्यमानास्ते दन्द्रम्यमाणा अत्यर्थं कुटिलामनेकरूपां गतिं गच्छन्तो जरामरणरोगादिदुःखैः परियन्ति परिगच्छन्ति मूढा अविवेकिनोऽन्धेनैव दृष्टिविहीनेनैव नीयमाना विषमे पथि यथा बहवोऽन्धा महान्तमनर्थमृच्छन्ति तद्वत् ॥५॥

अत एव मूढत्वान्न सांपरायः प्रतिभाति। संपरेयत इति संपरायः परलोकस्तत्प्राप्तिप्रयोजनः साधनविशेषः शास्त्रीयः सांपरायः। स च बालमविवेकिनं प्रति न

॥५॥

पण्डित यानी शास्त्रकुशल मानते हैं। ऐसों के पीछे-पीछे चलने वालों की वही दशा होती है जिस प्रकार दृष्टिहीन अन्धे पुरुष से विषम मार्ग में ले जाये जाते हुये अनेकों अन्धे महान् अनर्थ गर्त में गिरते हैं अर्थात् वे अविवेकी मूढ़ पुरुष नाना प्रकार के अनर्थ में स्वयं भी पड़ते हैं और उनके मार्गदर्शन पर चलने वाले अन्य पुरुष भी जरा-मरणादि दुःखों से घिरे हुये हैं, भवाटवी में भटकते रहते हैं ॥ ५ ॥

---

१. "येयं प्रेते विचिकित्से"त्यादिना पृष्टे "अस्तीत्येक" इत्यस्तिवादं सिद्धान्तयिष्यञ्जुगुप्समानस्तु नायमस्तीति नास्तिवादं चिखण्डयिषन्नाह—न सांपराय इत्यादि। २. नात्र स्तनंधयादिर्बालो विवक्षित इत्याशयेन बालमेव विवृणोति—प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढमिति। ३. भाजनविशेषणत्वेन सामान्यत उद्देश्यकोटावुपदिष्टं संसार विशेषतो विधेयकोटावाह—दन्द्रम्यमाणा इति। द्रम हम्म मी मृ गतौ। "धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्" नित्यं कौटिल्ये गतौ। नुगतोऽनुनासिकान्तस्येत्यादिस्मरणमनुस्मरन् व्याचष्टे—अत्यर्थं कुटिलामिति। नित्यं कौटिल्यमिति नियमाद्यङर्थो भृशत्वं मा भूत् क्रियायां कौटिल्ये तु केन वार्यतेति भावः। ४. कुटिलामिति व्याख्यात्यनेकरूपामिति। गतिं दशां गच्छन्तः प्राप्नुवन्तः। गतेः कौटिल्यं किं प्रयुक्तमत आह—जरेत्यादि। परिगच्छन्ति—परितः संसारचक्रे भ्रमन्तीत्यर्थः। ५. "आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गति"मिति। ६. नन्वेते स्वाचार्योपदिष्टेनैव पथा व्रजन्तोऽपि कथमेवमनर्थभाज इत्याशङ्कां दृष्टान्तेनैव निरसिष्यंश्चतुर्थचरणमाचष्टे—अन्धेनैवेति। न खलु करटानामाचार्यो भवति वरटः किं तर्हि करट एव कश्चिज्जरठ इति भावः। ७. ननु जेगीयमानयोः शास्त्रेषु लोक्यमानयोरपि सत्योर्लोके शुक्लकृष्णयोर्गत्योः किमित्येते तृतीयामेव गतिमृच्छन्ति कुतो न कर्मोपास्तिं वाऽवलम्ब्य स्वर्गं वा सत्यलोकं वच्छन्तीत्याशङ्कापनोदनपरत्वेनोत्तरमवतारयन्नाह—अत एवेति। ८. संपरायः प्रयोजनमस्येत्यर्थे "चूडादिभ्य उपसंख्यान"मित्यनेन "विशाखाषाढादण्मन्थदण्डयो" रित्यत्र पठितेन वार्तिकेनाणित्याशयेनाह—तत्प्राप्तिप्रयोजन इति। वार्तिकोक्तत्वाच्चूडादिराकृतिगण इति विज्ञेयम्। ९. साधनविशेषः—कर्मोपास्त्यन्यतररूपः। १०. अप्रकृतत्वाद्वाक्यवैफल्यापाताच्च नात्र स्तनंधयादिर्बाल इत्याशयेन व्याचष्टे—अविवेकिनमिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोहेन मूढम्। अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥६॥

साधन नहीं दीखता है। यही लोक है, परलोक नहीं है ऐसा मानने वाला (पुरुष) बारम्बार मुझ मृत्यु के वश को प्राप्त होता रहता है ॥६॥

भाति न प्रकाशते [1]नोपतिष्ठत इत्येतत्। [2]प्रमाद्यन्तं प्रमादं कुर्वन्तं पुत्रपश्वादिप्रयोजनेष्वासक्तमनसं तथा वित्तमोहेन वित्तनिमित्तेनाविवेकेन मूढं तमसाऽऽच्छन्नं सन्तम[3]यमेव लोको योऽयं [4]दृश्यमानः [5]स्त्र्यन्नपानादिविशिष्टो नास्ति परो[6]ऽदृष्टो लोक [7]इत्येवं [8]मननशीलो मानी [9]पुनः पुनर्जनित्वा वशं मदधीनतामापद्यते मे मृत्योर्मम [10]जननमरणादिलक्षणदुःखप्रबन्धारूढ

सम्यक्परावकाले देहपातादूर्ध्वमेवेयते गम्यत इति अर्थः ॥६॥

इसीलिये मूढ़तावश उसे परलोक का साधन दीखता ही नहीं। देह छोड़ने के बाद जिसकी प्राप्ति हो, उसे साम्पराय अर्थात् परलोक कहते हैं। उस परलोक प्राप्तिरूप प्रयोजन वाले शास्त्र प्रतिपादित साधन विशेष को साम्पराय कहते हैं, वह साम्पराय अविवेकी पुरुष के लिये प्रकाशित नहीं होता अर्थात् श्रद्धाहीन भोगासक्त पुरुष को परलोक एवं उसकी प्राप्ति के साधन में आस्था नहीं होती।

पुत्र-पशु आदि लौकिक भागों में आसक्ति को प्रमाद कहते हैं। ऐसे प्रमादी एवं धन निमित्तक से न्यून अर्थात् अज्ञानान्धकार आच्छन्न पुरुष को (परलोक का साधन) सूझता ही नहीं, उसे तो स्त्री, पुत्र, अन्न-पानादि युक्त दृश्यमान लोक भासता है। इससे भिन्न कोई स्वर्गादि लोक नहीं भासता। ऐसे मानने वाले पुरुष बारम्बार जन्म लेकर मुझ यमराज की पराधीनता को प्राप्त होते हैं अर्थात् वे जन्म-

---

१. ननु सत्येव तत्प्रकाशके शास्त्रे शिष्टानां चाचारे न प्रकाशते इत्यश्रद्धेयमत आह—नोपतिष्ठत इति। "उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यमि"त्यनेन तङ्। तथा च साधनविशेषो न बालं मित्री-करोतीत्यर्थः। शास्त्राचाराभ्यां प्रकाश्यमानोऽपि नासौ बालाय स्वदत इति यावत्। २. अविवेकित्वमेव स्फुटयन्नाह—प्रमाद्यन्तमित्यादि। ३. सांपरायाभाने निमित्तान्तरमभिप्रयन्नुत्तरार्धं व्याकरोति—अयमेवे-त्यादिना। ४. दृश्यमान इति—हेतुगर्भं दृश्यमानत्वादयमेवास्ति लोक इत्यर्थः। ५. लोक्यते भुज्यत इति लोकः। कथमस्य भोग्यत्वमत आह—स्त्र्यन्नेत्यादि। भोग्यघटितत्वाद्भोग्यत्वमिति भावः। ६. अदृष्ट इति—अदृष्टत्वादेव नास्तीति भावः। ७. ताच्छील्यार्थं णिनिं सूचयन्नाह—इत्येवं मननशील इति। मानीति मूलोक्तानुकरणमात्रमित्यवधेयम्। ८. मननशीलः प्रत्यक्षैकशरणो नास्तिकश्चार्वाकादिरित्यर्थः। ९. नायमस्तीति नास्तिवादिनामहमेवास्मि प्रबलो दण्डयितेत्याशयेनाह—पुनः पुनरित्यादि। जायस्व म्रियस्वेति तृतीया गतिरनेन स्फोरिता भवतीति ध्येयम्। १०. यथोक्तमननशीलो हि न सांपरायमनुतिष्ठति तत एवं भवतीत्याह—जननेति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'श्रवणायापि बहुभिर्यो' न 'लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः। 'आश्चर्यो वक्ता 'कुशलोऽस्य लब्धा'ऽऽश्चर्यो ज्ञाता 'कुशलानुशिष्टः ॥७॥

जो (यह आत्मतत्त्व) बहुतों को सुनने के लिये भी नहीं मिलता, (दूसरे अभागे मलिन बुद्धि वाले) बहुत से सुनते हुए भी जिसे समझ नहीं पाते, उस आत्मतत्त्व का निरूपण करने वाला भी (अनेकों में से विरला ही) कोई आश्चर्य रूप है, इसको प्राप्त करने वाला भी कोई निपुण पुरुष ही होता है तथा कुशल आचार्य से उपदेश प्राप्त किया हुआ ज्ञाता पुरुष भी आश्चर्य रूप ही है ॥७॥

एव भवतीत्यर्थः। 'प्रायेण ह्येवंविध एव लोकः ॥६॥

''यस्तु श्रेयोऽर्थी स सहस्रेषु कश्चिदेवाऽऽत्मविद्भवति त्वद्विधो यस्माच्छ्रवणायापि

मरणादि प्रयुक्त परम्परा पर आरूढ़ रहते हैं। प्रायशः यह लोक ऐसा ही देखा गया है ॥ ६ ॥

आत्मज्ञान का दौर्लभ्य

किन्तु जो तेरे समान कल्याणकामी हैं, ऐसा तो हजारों में कोई विरला ही आत्मवेत्ता पुरुष

---

१. नास्तिवादं तिरस्कृत्यास्तिवादं स्थापयिष्यन् यद्यस्त्यतिरिक्त एव कुतस्तर्हि तत्र लोकानां न प्रमितिरित्याशङ्क्य तत्साधनश्रवणादिदौर्लभ्यादित्याह—श्रवणायापीत्यादि। श्रवणादिदौर्लभ्यं चैतन्मनोऽशुद्धितारतम्यनिमित्तमात्मनो दुर्गमस्वरूपत्वमूलकं चेत्यवधेयम्। २. य इति—यस्त्वया पृष्टः स इत्यर्थः। ३. लभ्य इति—पोरदुपधादिति ण्यतोऽवादो यत्। ४. एवं यमिति यं त्वमप्राक्षीस्तमित्यर्थः। ५. वक्तुर्वैरल्यमपि प्रथमपादार्थे हेतुरित्याशयेनाह—आश्चर्यो वक्तेति। ६. धीनैपुण्यविरलत्वं च द्वितीयचरणार्थे हेतुरित्यभिप्रायेणाह—कुशलोऽस्य लब्धेति। आत्मवेदनलाभयोर्हि नान्तरम्। ७. लाभः स्वायत्तीकरणं तन्निष्ठत्वमिति यावत्। साक्षादनुभवमात्रं तु ज्ञानमित्येतावदन्तरमादायानन्तरोक्ते हेतुमाह—आश्चर्यो ज्ञाते त। ८. निपुणधियोऽप्याश्चर्यज्ञातृत्वकत्वे हेतुगर्भं विशेषणं कुशलानुशिष्ट इति। ९. नन्व"न्यच्छ्रेय" इति वैदिके एव विद्याकर्मणी उपक्रम्य "दूरमेते विपरीते विषूची" इति तयोरेव विभिन्नफलत्वमुक्त्वा विद्याभीप्सिनं श्रेयोभाजनमिति विद्याफलमुक्तं श्रेयः। अनन्तरन्तु वैदिकस्यैव कर्मणोऽविद्याशब्दितस्य प्रेयोरूपे स्वर्गादिफले वक्तव्ये विकर्मिणां तृतीयगतिचर्चेयमसंगतेत्याशङ्क्याऽऽह—प्रायेणेति। कामनया हि वैदिकेऽपि कर्मणि प्रवर्तमानां मध्ये यथोक्तरूपा एव बहवो वाजश्रवस एव तावद्वैदिके वर्तमानोऽपि तत्रच्छलप्रयोगान्नैवंविधत्वमतिलङ्घत इति प्रत्यक्षं तस्मात्प्रायोदृष्ट्या कर्मिणामेव विकर्म्यभेदेनेयमुक्तिस्तन्निन्दातिशयार्था। किंच फलयोरपि नानयोर्भूयिष्ठमन्तरं विकर्मी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे इत्युक्त्या कर्मठानां चिरादपि यमपारवश्यं लभ्यते ततो मरणादिदुःखाक्रान्तत्वानित्यवत्त्वाविशेषणफलसादृश्यमादायापि कर्मविकर्मणोरभेदेनोक्तिर्निन्दातिशयाभिव्यञ्जनायैवेति विभावनीयम्। केचित्तु अविद्यायामन्तरे इत्यनेन कर्मणां शुक्लकृष्णगतिमतां सकामानां गतिरुक्ता निषिद्धकारिणां तु तृतीयगतिभाजां न सांपराय इत्युच्यत इति व्यवस्थापयन्ति। १०. यस्तु श्रेयोऽर्थीत्यादि। सहस्रेषु कश्चिदेव श्रेयोऽर्थी तत्रापि कश्चिदेवात्मविद्भवतीत्यर्थः। "मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चि"दित्यादिभगवदुक्तेरिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कस्मात्—

[1]न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा

(कर्ता-अकर्ता, शुद्ध-अशुद्ध ऐसे) अनेक प्रकार से विकल्पित यह आत्मा साधारण बुद्धि वाले

---

[2]श्रवणार्थं श्रोतुमपि यो न लभ्य आत्मा [3]बहुभिरनेकैः [4]शृण्वन्तोऽपि बहवोऽनेकेऽन्ये यमात्मानं न विद्युर्न[5] विदन्त्य[6]भागिनोऽसंस्कृतात्मानो न विजानीयुः। [7]किंचास्य वक्ताऽप्याश्चर्योऽद्भुतवदेवानेकेषु कश्चिदेव भवति। तथा श्रुत्वाऽप्यस्याऽऽत्मनः कुशलो निपुण एवानेकेषु [8]लब्धा कश्चिदेव भवति। यस्मादाश्चर्यो ज्ञाता कश्चिदेव कुशलानुशिष्टः कुशलेन निपुणेनाऽऽचार्येणा[9]नुशिष्टः सन् ॥७॥

नहि [10]नरेण [11]मनुष्येणावरेण प्रोक्तोऽवरेण हीनेन प्राकृतबुद्धिनेत्येतदुक्त एष आत्मा यं

॥७॥

होता है क्योंकि जो आत्मा बहुतों को सुनने के लिये भी नहीं मिलता, वैसे ही दूसरे अनेकों भाग्यहीन मलिन अन्तःकरण पुरुष आत्मतत्त्व को सुनकर भी समझ नहीं पाते। इतना ही नहीं, इस आत्मतत्त्व का वक्ता भी अनेकों में कोई ही अद्‌भुत-सा होता है और इस आत्मतत्त्व को सुनकर भी ग्रहण करने वाला अनेकों में कोई कुशल पुरुष ही हुआ करता है क्योंकि कुशल आत्मदर्शी आचार्य से उपदेश-ग्रहण कर इस आत्मतत्त्व को जानने वाला पुरुष भी आश्चर्यरूप ही होता है ॥ ७॥

जबकि ऐसी बात है, इसीलिये जिस आत्मा के विषय में तुम मुझसे पूछ रहे हो, यह आत्मा

---

१. ननु बहवोऽवलोक्यन्ते लोके वक्तारो दृष्टं च प्राच्यैः सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्तीत्यादि—तथा चाश्चर्यो वक्तेत्यादि-कथमित्याशङ्क्याऽऽह—न नरेणेत्यादि अवगतिपर्यन्तमुपदेष्टैवाश्चर्यो वक्तेति विवक्षितस्ततोऽन्यथा वक्तॄणां बहुत्वेऽप्यविरोधः। एतेनावरेण प्रोक्त इत्यवरस्य वक्तृत्वानुमतिविरोधोऽप्यपास्तः अवरेण प्रोक्तो न सुविज्ञेयः। वरेणापि प्रोक्तोऽवरेण न सुविज्ञेय इति वाऽन्वयः। नन्ववरेण झटित्यविज्ञेयोऽपि श्रवणमनु चिरं चिन्त्यमानो विज्ञास्यतेऽत आह—बहुधेति। बहुशो विचार्यमाणोऽप्यवरेण न विज्ञेयोऽवरत्वादेवेति भावः। २. चतुर्थी तादर्थ्ये व्याख्याति—श्रवणार्थमिति। तच्च तुमुनोऽर्थोऽत आह—श्रोतुमपीति। ३. बहुभिरिति—कामासक्ता एव हि बहव इति न तेषामात्मश्रवणे प्रवृत्तिरिति भावः। उक्तं हि प्रायेण ह्येवंविध एव लोक इति। ४. मनाक्कामादिवैमुख्येन श्रवणलाभेऽपि दोषान्तरबाहुल्यान्न वेदनमर्हन्तीत्याह—शृण्वन्तोऽपीत्यादिना। ५. न विदन्तीति—यथाह भगवान् "आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चिद्" इत्येतमेव मन्त्रं व्याकुर्वन्। ६. अभागिन इति—भागोरूपार्धके भाग्यैकदेशयोरिति हैमः। ७. श्रवणाद्यलाभे इदमपि हेत्वन्तरमित्याशयेनाह—किंचेति। ८. लब्धेति—तन्निष्ठीभूयस्वानन्दानुभवितेति यावत्। ९. अनुशिष्ट इति—"यद्वाचानभ्युदितमि" त्येवमादिवचोभिः प्रबोधितः सन्नित्यर्थः। १०. नरेणेति—नरत्वोक्त्या न प्रवचने नारीप्रसङ्ग इत्यवधेयम्। ११. मनुष्येणावरेणेति—मारकत्वदृष्ट्या देवानामवरत्वविवक्षयापि यमस्य न क्षतिरिति विज्ञेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चिन्त्यमानः । [1]अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणी-
यान्ह्य[2]तर्क्य[3]मणुप्रमाणात्[4] ॥८॥

पुरुष द्वारा कहे जाने पर अच्छी प्रकार समझा नहीं जा सकता। पर अभेददर्शी आचार्य द्वारा उपदेश किये गये इस आत्मतत्त्व में (पूर्वोक्त विकल्प रूप कोई) गति नहीं है, क्योंकि यह सूक्ष्म परिमाण वालों से भी सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है ॥८॥

त्वं मां पृच्छसि। न हि सुष्ठु सम्यग्विज्ञेयो विज्ञातुं शक्यो यस्माद्बहुधाऽस्ति नास्ति [5]कर्ताऽकर्ता शुद्धो[6]ऽशुद्ध [7]इत्याद्यनेकधा चिन्त्यमानो वादिभिः। कथं पुनः सुविज्ञेय इत्युच्यते—अनन्यप्रोक्तेऽनन्येनापृथग्दर्शिनाऽऽचार्येण [8]प्रतिपाद्यब्रह्मात्मभूतेन प्रोक्त उक्त आत्मनि गतिरनेकधाऽस्तिनास्तीत्यादिलक्षणा [9]चिन्ता गतिरत्रास्मिन्नात्मनि नास्ति [10]न विद्यते [11]सर्वविकल्पगतिप्रत्यस्तमितत्वादात्मनः। अथवा स्वात्मभूतेऽनन्यस्मिन्नात्मनि

किसी साधारण बुद्धि वाले मनुष्य से कहे जाने पर भली प्रकार समझ में नहीं आ सकता क्योंकि वादियों ने अस्ति; नास्ति, कर्ता, अकर्ता, शुद्ध एवं अशुद्ध इस प्रकार नानारूप में चिन्तन किया है। तो फिर यह किस प्रकार सम्यक् जाना जाता है? इस पर श्रुति कहती है। जिसने ब्रह्मस्वरूप को अभेदरूप से आत्मभावेन जाना है, ऐसे अभेददर्शी आचार्य द्वारा उपदेश किये जाने पर इस आत्मा में अस्ति, नास्तिरूप चिन्ता नहीं होती क्योंकि आत्मा सम्पूर्ण विकल्पों की चिन्ता से मुक्त है अथवा अपने स्वरूपभूत अभिन्न आत्मा का आचार्य द्वारा उपदेश किये जाने पर, अन्य जानने योग्य वस्तु रह नहीं

---

१. नन्वात्मा हि नामस्वरूपं तद्विज्ञानेऽन्योपदेशापेक्षैव न घटते नहि यज्ञदत्तपरिचयायान्योपदेशमपेक्षमाणोऽपि देवदत्तोऽयमहमिहास्मि देवदत्त इत्यात्मावबोधाय परोपदेशमपेक्षत इत्याशङ्क्याऽऽह—अनन्येति। अन्यप्रोक्तो न भवतीत्यनन्यप्रोक्तस्तस्मिन्। अन्येनाचार्येणाप्रोक्ते। अत्रात्मनि गतिरवगतिर्नास्ति न भवति "आचार्यवान् पुरुषो वेद" "उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञान"मित्यादिश्रुतिस्मृतिशतेभ्यः। २. कुतोऽत आह—अणीयान् हीति। यतोऽयमात्माऽतीवसूक्ष्मो दुर्ज्ञान इत्यर्थः। दृष्टान्तस्तु स्थूलविषयोऽतो विषम इति भावः। ३. ननु परोपदेशमन्तरेणापि धूमदर्शनाद्वह्निरिव विज्ञास्यते नेत्याह—अतर्क्यमिति। ४. कुतोऽत आह—अणुप्रमाणादिति। अनुमानात्मकात्प्रमाणादपीदमात्मतत्त्वमणु इति न तत्रानुमानं प्रसरति। असङ्गात्मनो लिङ्गादिसम्बन्धाभावान्नानुमानगम्यत्वमिति भावः। ५. कर्ता कृत्याश्रयः। ६. अशुद्धः क्रियाफलदुःखादिमान्। ७. इत्यादीति—अनेकप्रकारेणेत्यनेकधा "संख्याया विधार्थे धा" इत्यादिना अनेकधा इत्याद्यनेकधा सुप्सुपेति समासः। ८. समभिव्याहारात्प्रवचनविषयाभेद एव गृह्यत इत्याशयेनाह—प्रतिपाद्येत्यादि। ९. चिन्ता गतिरिति—यथोक्तवप्रतिपत्तिजन्यं संशयज्ञानमिति यावत्। १०. न विद्यत इति—ब्रह्मात्मभूतेनेत्याचार्यविशेषणाद्ब्रह्माभिन्नः शुद्धोऽकर्तेति सिद्धान्तगतिस्त्ववाध्यैवेत्यवधेयम्। ११. सर्वविकल्पेत्यादि—सर्वविकल्पगत्यभाववत्त्वेन प्रमितत्वादिति यावदिति न हेतुसाध्ययोरभेद इत्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय

हे प्रियतम ! तुम बड़े ही सत्य धैर्य वाले हो, तुम जिस बुद्धि को प्राप्त किये हो, यह तर्क

प्रोक्तेऽनन्यप्रोक्ते गतिरत्रान्याऽवगतिर्नास्ति ज्ञेयस्यान्यस्याभावात् । ज्ञानस्य ह्येषा परा काष्ठा यदात्मैकत्वविज्ञानम् । अतोऽवगन्तव्याभावान्न गतिरत्रावशिष्यते । संसारगतिर्वाऽत्र नास्त्यनन्या आत्मनि प्रोक्ते नान्तरीयकत्वात्तद्विज्ञानफलस्य मोक्षस्य । अथवा प्रोच्यमान-ब्रह्मात्मभूतेनाऽऽचार्येण प्रोक्ते आत्मन्यगतिरनवबोधोऽपरिज्ञानमत्र नास्ति । भवत्येवाव-गतिस्तद्विषया श्रोतुस्तदस्म्यहमित्याचार्यस्येवेत्यर्थः । एवं सुविज्ञेय आत्माऽऽगमव-ताऽऽचार्येणानन्यतया प्रोक्तः । इतरथा [ह्य] णीयानणुप्रमाणादपि संपद्यत आत्मा । अतर्क्यमतर्क्यः स्वबुद्ध्याऽभ्यूहेन केवलेन तर्केण । तर्क्यमाणेऽणुपरिमाणे केनचित्स्थापित आत्मनि ततो ह्यणुतरमन्योऽभ्यूहति ततोऽप्यन्योऽणुतममिति न हि कुतर्कस्य निष्ठा क्वचिद्विद्यते ॥८॥

अतोऽनन्यप्रोक्त आत्मन्युत्पन्ना येयमागमप्रतिपाद्यात्ममतिर्नैषा तर्केण स्वबुद्ध्य-

---

अणुत्वं परोक्षत्वम् ॥८॥

जाती । इसीलिये उसमें कोई दूसरा ज्ञान नहीं होता, क्योंकि आत्मा के एकत्व का जो विज्ञान है, यही ज्ञान की परा निष्ठा है । अतः अभिन्न आत्मबोध हो जाने पर ज्ञेय वस्तु का अभाव हो जाने के कारण फिर यहाँ कोई दूसरी गति नहीं रहती अथवा स्वात्मभूत आत्मतत्त्व के उपदेश कर दिये जाने पर उस आत्म-तत्त्वदर्शी की संसार-गति नहीं रह जाती क्योंकि उसके बाद अति शीघ्र हो आत्मविज्ञान का फलरूप मोक्ष प्राप्त हो जाता है अथवा आगे कहे जाने वाले इस आत्मतत्त्व में ब्रह्मात्मभूत आचार्य द्वारा उपदेश दिये जाने पर फिर अगति अर्थात् अनवबोध नहीं रह जाता । तात्पर्य यह कि अभेद आत्मदर्शी आचार्य के समान ही वह 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार आत्मविषयक ज्ञान उस जिज्ञासु श्रोता को भी अवश्य हो जाता ही है । इस प्रकार श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य द्वारा अभिन्नरूप से कहा हुआ आत्मा को जानना सरल हो जाता है, अन्यथा सूक्ष्म वस्तुओं से भी अति सूक्ष्म इस अतर्क्य आत्मा को अपनी बुद्धि के ऊह-अपोहरूप तर्क से कोई भी नहीं जान सकता । यदि कोई पुरुष तर्क द्वारा उस अणुपरिमाण आत्मा को सिद्ध कर भी दे, तो दूसरा उससे भी सूक्ष्म और तीसरा उससे भी अत्यन्त सूक्ष्मरूप में स्थापित कर देगा क्योंकि निरंकुश कुतर्क की कहीं प्रतिष्ठा नहीं है ॥ ८ ॥

इसीलिये अभेद आत्मदर्शी आचार्यों द्वारा उपदेश किये हुये आत्मा के विषय में जो यह शास्त्र-

---

१. तर्कवतां तर्कावष्टम्भं शिथिलयितुमतर्क्यमित्युक्त्वाऽप्यतुष्यन् पुनराह—नैषा तर्केण मतिरापनेयेति । २. ज्ञेयस्येति—ज्ञेयस्यान्यस्यात्मव्यतिरेकेणासत्त्वादित्यर्थः । "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदि"त्यादिश्रुतिः । ३. परा काष्ठेति—परमोऽवधिरित्यर्थः । ४. अवगन्तव्याभावादिति—यथाह भगवान् "यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यत" इति । ५. अनन्य आत्मनीति—अत्र अनन्यात्मनीति युक्तः पाठः । ६. नान्तरीय-कत्वादिति—विज्ञानव्यापकत्वाद्विज्ञानफलस्येति यावत् । ७. उत्पन्नेति—उत्पत्स्यमाना उत्पत्तुमर्हेति वार्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रेष्ठ । यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा । ९॥

द्वारा प्राप्त होने योग्य नहीं है, क्योंकि इस यथार्थबोध के लिये (आगम से अनभिज्ञ शुष्क) तार्किक से भिन्न शास्त्र के ज्ञाता आचार्य द्वारा बतलाई गयी यह बुद्धि है (जिसे मेरे वरदान से तूने प्राप्त किया)। हे नचिकेता ! हमें तेरे समान पुत्र या शिष्य प्रश्न करने वाला प्राप्त हो ॥९॥

भ्यूहमात्रेणापनेया न [1]प्रापणीयेत्यर्थः। नापनेतव्या वा [2]न हातव्या। [3]तार्किको ह्यनागमज्ञः स्वबुद्धिपरिकल्पितं यत्किंचिदेव कथयति। अत एव च येयमागमप्रसूता मतिरन्येनैवाऽऽगमाभिज्ञेनाऽऽचार्येणैव तार्किकात्प्रोक्ता सती [4]सुज्ञानाय भवति हे प्रेष्ठ प्रियतम। का पुनः सा तर्कागम्या मतिरित्युच्यते। यां त्वं मतिं मद्वरप्रदानेनाऽऽपः प्राप्तवानसि। सत्याऽवितथविषया [5]धृतिर्यस्य तव स त्वं सत्यधृति[6]र्बतासीत्यनुकम्पयन्नाह मृत्युर्नचिकेतसं वक्ष्यमाण[7]विज्ञानस्तुतये। त्वादृक्त्वत्तुल्यो नोऽस्मभ्यं भूयाद्भवत्वन्यः पुत्रः शिष्यो वा प्रष्टा। कीदृग्यादृक्त्वं हे नचिकेतः प्रष्टा ॥९॥

॥९॥

प्रतिपाद्य आत्मविषयिणी बुद्धि उत्पन्न होती है, वह तर्क यानी अपनी बुद्धि के ऊह-अपोहमात्र से प्राप्त होने योग्य नहीं है अथवा ऐसा समझो कि इस आत्मविषयिणी बुद्धि को तर्क-शक्ति द्वारा त्यागना उचित नहीं है; क्योंकि तार्किक अध्यात्मशास्त्र से अनभिज्ञ हुआ करता है। वह अपनी बुद्धि कल्पना से चाहे जो भी कहे, उसमें प्रामाण्य नहीं माना जाता। इसलिये हे प्रियतम नचिकेता ! यह जो शास्त्र-जनित आत्मबुद्धि है, वह तार्किक से भिन्न किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य द्वारा उपदेश किये जाने पर ही यथार्थ ज्ञान के कारण हुआ करती है। अच्छा तो आप ही बतलावें, वह कौन-सी बुद्धि है जो तर्क से प्राप्त होने योग्य नहीं ? इसका उत्तर देते हैं कि मेरे वरदानों द्वारा जिस बुद्धि को तूने प्राप्त किया है। इसीलिये तेरी धृति, सत्य यानी यथार्थ वस्तु को विषय करने वाली है, अतएव वह तू सत्य-धृति है। 'बत्' इस अव्यय से अनुकम्पा करते हुये यमराज आगे कहे जाने वाले विज्ञान की स्तुति करने के लिये नचिकेता के प्रति कहते हैं—हे नचिकेता ! जैसा प्रश्न करने वाला तू है, ऐसा ही तेरे समान प्रश्नकर्ता और भी पुत्र या शिष्य हमें प्राप्त हो (ऐसी हमारी हार्दिक अभिलाषा है) ॥ ९ ॥

---

१. आपनेयेत्यत्र वर्णविकृतिश्छान्दसीत्याशयेन व्याचष्टे—प्रापणीयेति। २. न हातव्येति—तथा चोक्तं खण्डनकाराद्भिः धीघनावाघनायास्यास्तदा प्रज्ञां प्रयच्छत क्षेप्तुं चिन्तामणिहस्तलब्धमलब्धौ यदीच्छथेति। ३. मा भूदप्रसक्तनिषेध इति तर्केण हानयोग्यतां सूचयन्नाह—तार्किको हीति। ४. सुज्ञानायेति—सम्यग्लाभायेति यावत्। मतिर्वा मत्युत्पादकं वाक्यं व्याख्येयम्। ५. धृतिरिति—नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीत इत्यादिना सूचिता धृतिर्धैर्यमित्यर्थः। ६. बतेति निपातोऽनुकम्पां द्योतयति। यथाऽऽहामरः खेदानुकम्पासंतोषविस्मयामन्त्रणे बतेति। तत आह—अनुकम्पयन्निति। ७. विज्ञानस्तुतय इति—त्वादृशः सत्यधृतिरेव तामधिकरोति नेतरः प्राकृत इति शिष्यगणोक्त्या विद्या स्तूयत इति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुनरपि तुष्ट आह—

जानाम्यहꣳ शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्। ततो मया नचिकेतश्चितोऽ-ग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥१०॥

कर्मफल रूप निधि अनित्य है इसे मैं जानता हूँ क्योंकि अनित्य साधनों से (कभी भी) वह नित्य आत्मतत्त्व प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस प्रकार जानते हुए भी मेरे द्वारा नाचिकेत अग्नि का चयन किया गया और उन्हीं अनित्य पदार्थों से मैं (आपेक्षिक) नित्य (स्वर्ग नामक याम्य पद) को प्राप्त हुआ हूँ ॥१०॥

जानाम्यहं शेवधिर्निधिः कर्मफललक्षणो निधिरिव प्रार्थ्यत इति। असावनित्यमनित्य इति जानामि। न हि यस्मादनित्यैरध्रुवैर्नित्यं ध्रुवं तत्प्राप्यते। परमात्माख्यः शेवधिः। यस्त्वनित्यसुखात्मकः शेवधिः स एवानित्यैर्द्रव्यैः प्राप्यते। हि यतस्ततस्तस्मान्मया जानताऽपि नित्यमनित्यसाधनैर्न प्राप्यत इति नचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः पश्वादिभिः स्वर्गसुखसाधनभूतोऽग्निर्निर्वर्तित इत्यर्थः। तेनाहमधिकारापन्नो नित्यं याम्यं स्थानं स्वर्गाख्यं नित्यमापेक्षिकं प्राप्तवानस्मि ॥१०॥

मया जानताऽपि बह्वायासं कर्म कृतं त्वं दीयमानमपि तत्फलं न गृह्णासि मत्तोऽधिकप्रज्ञोऽसीति संतोषात्स्तौतीत्याह—पुनरपि तुष्ट आहेति ॥१०॥

कर्मफल की अनित्यता

नचिकेता के आत्मज्ञान की पिपासा एवं वैराग्य निष्ठा को देख प्रसन्न हो यमराज ने फिर भी कहा—निधि के समान जिसकी प्रार्थना की जाय, ऐसे कर्मफल रूप निधि को ही शेवधि कहते हैं। इस शेवधि को मैं सदा न रहने वाली अनित्य जानता हूँ अर्थात् यह शेवधि न स्वरूपतः नित्य है और न नित्यफल का साधन ही है क्योंकि स्थिर न रहने वाले इन अनित्य साधनों से सदा स्थिर नित्य निधि परमात्मा प्राप्त नहीं हो सकता। अनित्य पदार्थों से अनित्य सुखरूप अनित्य निधि ही प्राप्त हो सकती है, नित्य नहीं। इस बात को जानते हुये भी अनित्य साधनों से आपेक्षिक नित्य स्वर्गप्राप्ति के लिये मैंने प्रयत्न किया अर्थात् नाचिकेत अग्नि का चयन अनित्य पशु आदि पदार्थों से आपेक्षिक नित्य स्वर्ग सुख के साधनस्वरूप उस अग्नि का चयन किया था, उसीसे अधिकार सम्पन्न हो आपेक्षिक नित्य स्वर्ग नामक इस याम्य पद को मैं प्राप्त हुआ हूँ ॥ १० ॥

---

१. पुनरपि तुष्ट आहेत्यनयोक्त्या पूर्वोक्तानुकम्पा तोषात्स्मिकैवेति ध्वन्यतेऽनुकम्पाया दीनविषयत्वाच्चेत्यवधेयम्। २. शेवधिर्निधिरिति—यथाहामरः निधिर्ना शेवधिर्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेरिति। ३. जानामि—अज्ञासिषमिति यावत्। ४. पश्वादिभिरिति—यज्ञियपश्वादिभिरित्यर्थः। आदिनाऽऽज्यादि गृह्यते। ५. निर्वर्तित इति—चयनविधिनाऽनुष्ठित इति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**[1]कामस्याऽऽप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभ-
यस्य पारम् । स्तोमं महदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा
धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥११॥**

हे नचिकेता ! भोगों की पराकाष्ठा (अध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदैवादि) जगत् की प्रतिष्ठा, यज्ञ फल की अनन्तता, अभय की सीमा, स्तुति के योग्य, महती (अणिमादि ऐश्वर्य युक्त) विस्तीर्ण गति तथा अपनी सर्वोत्तम स्थिति को देख कर भी उसे तूने धैर्य से त्याग दिया । अहो ! तुम बड़े ही बुद्धिमान् (एवं उत्कृष्ट गुण से सम्पन्न) हो ॥११॥

त्वं तु कामस्याऽऽप्तिं समाप्तिम्, अत्र हि सर्वे कामाः [2]परिसमाप्ताः, जगतः साध्यात्माधिभूताधिदैवादेः प्रतिष्ठामाश्रयं सर्वात्मकत्वात्, क्रतोः फलं हैरण्यगर्भं पदमनन्त्य[3]मानन्त्यम् । अभयस्य च पारं [4]परां निष्ठाम् । स्तोमं स्तुत्यं महदणिमाद्यैश्वर्याद्यनेकगुणसंहतं स्तोमं च तन्महच्च निरतिशयत्वात्स्तोममहत् । उरुगायं विस्तीर्णगतिम् । प्रतिष्ठां स्थिति[5]मात्मनोऽनुत्तमामपि दृष्ट्वा धृत्या [6]धैर्येण धीरो धीमान्सन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः

नचिकेता का त्याग प्रशंसनीय है

किन्तु हे नचिकेता ! तुम्हारा धैर्य प्रशंसनीय है; क्योंकि सम्पूर्ण भोगों की परिसमाप्ति इस इस हिरण्यगर्भ पद में ही है । यह पद सर्वात्मक होने के कारण अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैव जगत् का आश्रय है । यज्ञ का अनन्त फल हिरण्यगर्भ पद ही है । यह अभय की परानिष्ठा है । स्तुति योग्य अणिमादि ऐश्वर्य आदिक अनेक गुणों के संघात रूप हैं । इस प्रकार जो स्तोम और महान् भी है, ऐसे सर्वोत्कृष्ट होने के कारण स्तोम महत् विस्तीर्ण गति को तथा अपनी सर्वोत्तम स्थिति को देखकर भी तूने उसे धीर होने के कारण धैर्यपूर्वक त्याग दिया । तात्पर्य यह है कि एकमात्र परवस्तु को आकांक्षा

---

१. कामस्येत्यादि । अत्रेयमपरा योजना सोऽश्नुते सर्वान्कामानित्यादि—श्रुतेः कामस्याप्तिमिति मुक्तिपदं विशुद्धं ब्रह्मविवक्षितं जगतः प्रतिष्ठमधिष्ठानं तदेव । अन्त्यते बध्यत इत्यन्त्यं फलं क्रतोर्यज्ञादिकर्मणो यन्न फलम् । अभयस्य पारं स्तोममहदुरुगायमिति समञ्जसमेव ब्रह्मणि तद्ब्रह्मात्मनः प्रतिष्ठां दृष्ट्वा आत्मनस्तदात्मनाऽवस्थितिं संपाद्यां निश्चित्येति यावत् । अत्यस्राक्षीर्हे नचिकेतस्त्वं तु तद्यदहं प्राप्तवानस्म्यनित्यमेव पदमिति । एवं च पूर्ववाक्यान्ते पठितं नित्यमिति पदमस्मिन्नेव वाक्ये ब्रह्मविशेषणत्वेन योजनीयम् । प्राप्तवानस्मीत्यस्य तु तत्र अनित्यमित्येतदेव कर्मपदं भविष्यति । ध्रुवं ध्रुवः शेवधिर्मोक्षोऽध्रुवैर्न प्राप्यत इत्यहं जानामीति योज्यमित्यलम् । २. परिसमाप्ता इति—तत्र हि सर्वेषां (लौकिकानन्दानां) जन्यानन्दानां परमा काष्ठा श्रूयत इति । ३. स्वार्थेष्यञि वृद्ध्यभावश्छान्दस इत्याशयेनाह—आनन्त्यमिति । ४. परां निष्ठां परममवधिम् । ५. आत्मनः—स्वस्य नचिकेतस इति यावत् । ६. धैर्येणेति—तत्राप्यनित्यत्वादिदोषभावनावष्टब्धं तेनानाकर्षणप्रयोजकं चित्तबलं धैर्यं तेनेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्ष-
शोकौ जहाति ॥१२॥

(अतिसूक्ष्म होने के कारण) कठिनता से दीखने वाले (विषय विज्ञान से) छिपे हुए होने से गूढ स्थान में प्रविष्ट. बुद्धि में स्थित, गहन स्थान में रहने वाले उस पुरातन देव को (चित्त को विषयों से हटाकर आत्मा में लगाना रूप) अध्यात्म योग की प्राप्ति द्वारा जानकर बुद्धिमान् पुरुष हर्ष शोक को त्याग देता है ॥१२॥

---

[1]परमेवाऽऽकाङ्क्षन्नतिसृष्टवानसि [2]सर्वमेतत्संसारभोगजातम्। अहो बतानुत्तमगुणोऽसि ॥११॥

यं त्वं ज्ञातुमिच्छस्यात्मानं तं दुर्दर्शं दुःखेन दर्शनमस्येति दुर्दर्शमतिसूक्ष्मत्वात्तम्। गूढं [3]गहनमनुप्रविष्टं प्राकृतविषयविकारविज्ञानैः प्रच्छन्नमित्येतत्। गुहाहितं गुहायां बुद्धौ स्थितं तत्रोपलभ्यमानत्वात्। गह्वरेष्ठं गह्वरे विषमेऽनेकानर्थसंकटे तिष्ठतीति गह्वरेष्ठम्। यत एवं गूढमनुप्रविष्टो गुहाहितश्चातो गह्वरेष्ठः। अतो दुर्दर्शः। तं पुराणं पुरा-

---

॥११॥

यश्च त्वया देहव्यतिरिक्त आत्मा पृष्टस्तस्यैव परमार्थस्वरूपज्ञानं [4]संसारनिवर्तकं परमानन्दप्राप्तिसाधनं [5]धर्म्यं च [6]नातः परं श्रेयःसाधनमस्तीति पृष्टस्य वस्तुनः प्रशंसया च प्रष्टारं प्रशंसति—यं त्वं ज्ञातुमिच्छसीत्यादिना ॥१२॥

करते हुये इस सम्पूर्ण सांसारिक भोगों का तूने परित्याग कर डाला। अहो! बड़ी प्रसन्नता की बात है, तुम बड़े ही उत्कृष्ट गुणों से युक्त हो ॥ ११ ॥

आत्मज्ञान का फल

जिस आत्मा को तुम जानना चाहते हो, वह अतिसूक्ष्म होने के कारण दुर्दर्श है। जिसका दर्शन कठिनाई से हो सके, उसे दुर्दर्श कहते हैं। गहन स्थान में अनुप्रविष्ट होने के कारण इसे गूढ़ कहते हैं अर्थात् शब्दादि बाह्य प्राकृत विषय विज्ञान में उलझे हुये व्यक्ति को आत्मदर्शन होना संभव नहीं हैं। विशुद्ध बुद्धि में उपलब्ध होने से उस आत्मा को गुहा में निहित कहा गया है। काम-क्रोधादि अनेक अनर्थों से व्याप्त स्थान में रहने के कारण उस आत्मा को गह्वरेष्ठ कहते हैं (ऐसे देव को जानकर जीव पुरुष हर्ष एवं शोक को त्याग देता है)। इस प्रकार आत्मा गूढ़ स्थान में अनुप्रविष्ट और बुद्धि में स्थित है। इसीलिये वह गह्वरेष्ठ कहा गया है तथा गह्वरेष्ठ होने के कारण ही दुर्दर्श है। उस पुरातन

---

१. परमेव—परंपदं मुक्तिमेवेत्यर्थः। २. हैरण्यगर्भमुपलक्षणीकृत्याह—सर्वमित्यादि। ३. देशम्। ४. संसारनिवर्तकमित्यन्तेन तं दुर्दर्शमित्यादिमन्त्रार्थः संगृहीतः। एतच्छ्रुत्वेत्यादिमन्त्रार्थं संगृह्णाति—परमेत्यादिना। ५. धर्म्यं परमानन्दसाधनत्वादेव परमधर्मरूपमित्यर्थः। सुखं हि धर्माधीनमिति प्रसिद्धम्। ६. विद्वत्ँ सद्मेत्यादि वीक्ष्याह—नातः परमित्यादि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यम-
णुमेतमाप्य । स मोदते मोदनीयँ हि
लब्ध्वा विवृतँ सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥१३॥

मरणधर्मा मनुष्य (मेरे द्वारा बतलाये गये) इस आत्मतत्त्व को सुनकर उसका भलीभाँति मनन कर धर्म से युक्त इस सूक्ष्म आत्मा को देहादि संघात से पृथक् करके प्राप्त कर तथा इस मोदनीय तत्त्व की उपलब्धि कर अति आनन्दित हो जाता है। मैं तुझ नचिकेता को खुले हुए ब्रह्म भवन वाला (मोक्ष के योग्य) समझता हूँ ॥१३॥

तनमध्यात्मयोगाधिगमेन विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतस आत्मनि समाधानमध्यात्मयोगस्तस्याधिगमस्तेन मत्वा देवमात्मानं धीरो धीमान्हर्षशोकावात्मन उत्कर्षापकर्षयोरभावाज्जहाति ॥१२॥

किंचैतदात्मतत्त्वं यदहं वक्ष्यामि तच्छ्रुत्वाऽऽचार्यप्रसादात्सम्यगात्मभावेन परिगृह्योपादाय मर्त्यो मरणधर्मा [1]धर्मादनपेतं धर्म्यं प्रवृह्यो[2]द्यम्य [3]पृथक्कृत्य शरीरादेरणुं सूक्ष्ममेतमात्मानमाप्य प्राप्य स मर्त्यो विद्वान्मोदते मोदनीयं [4]हर्षणीयमात्मानं लब्ध्वा। तदेवंविधं ब्रह्मसद्म भवनं (?) नचिकेतसं त्वां प्रत्यपावृतद्वारं विवृतमभिमुखीभूतं मन्ये

देव को अध्यात्म-योगादिगम्य द्वारा जानकर धीर पुरुष अपने उत्कर्ष-अपकर्ष का अभाव हो जाने के कारण सदा के लिये हर्ष-शोक को त्याग देता है। विषयों से चित्त को हटाकर आत्मा में लगाना ही अध्यात्म-योग है। इस अध्यात्म-योग प्राप्ति के बाद शरीर एवं शरीर सम्बन्धी भोग्य-विषयों के उत्कर्ष-अपकर्ष से अपना उत्कर्ष या अपकर्ष आत्मनिष्ठ पुरुष नहीं मानता। इसीलिये उसे हर्ष और शोक ही नहीं हुआ ॥ १२ ॥

इतना ही नहीं किन्तु अब मैं जिसका वर्णन करूँगा, उस आत्मतत्त्व को आचार्य कृपा से आत्मभाव से ग्रहण कर मरणधर्मा मनुष्य इस धर्म-विशिष्ट आत्मा को शरीरादि को विवेक द्वारा पृथक् करके अति सूक्ष्म मोदनीय आत्मा को प्राप्त कर वह विद्वान् आनन्दित हो उठता है। इस प्रकार तुझ

---

१. धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते इति व्याकरणवीक्षयाऽऽह—धर्मादनपेतमिति। धर्मकोटावेव प्रविष्टमित्यर्थः। तथा चोक्तम्—"अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शन"मिति। धर्म्यत्वान्वये चात्मतत्त्वशब्देन तज्ज्ञानं लक्षणीयम्। यद्वा धर्मादनपेतमुपेतं धर्मेण प्राप्यमिति यावत्। तथा चात्मतत्त्वस्यैव विशेषणमिदं ज्ञानस्य चार्थाद्धर्मत्वं लभ्यत इति। २. वृहू उद्यमने इति स्मृतिमनुस्मृत्य व्याचष्टे—उद्यम्येति। ३. उद्यतं च पृथग्भवतीति गौण्याऽऽह—पृथक्कृत्येति। ४. मुद हर्षे इत्यतः करणेऽनीयर्। मोदतेऽनेनेति स्नानीयं चूर्णमितिवदित्याशयेन व्याचष्टे—हर्षणीयमिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ।।१४।।

जो (शास्त्रीय धर्मानुष्ठान रूप) धर्म से पृथक् तथा अधर्म से पृथक् और इस कार्य-कारण रूप प्रपंच से भी पृथक् है तथा जो भूत, भविष्यत् (एवं वर्तमान) से भी पृथक् है, ऐसा आप जिसे देखते हों; वही मुझे बतलाओ ।।१४।।

मोक्षार्हं त्वां मन्य इत्यभिप्रायः ।।१३।।

यद्यहं योग्यः प्रसन्नश्चासि भगवन्मां प्रत्यन्यत्र धर्माच्छास्त्रीयाद्धर्मानुष्ठानात्तत्फलात्तत्कारकेभ्यश्च पृथग्भूतमित्यर्थः । तथाऽन्यत्राधर्मात्तथाऽन्यत्रास्मात्कृताकृतात् । कृतं कार्यमकृतं कारणमस्मादन्यत्र । किंचान्यत्र भूताच्चातिक्रान्तात्कालाद्भव्याच्च भविष्यतश्च तथा वर्तमानात् । कालत्रयेण यन्न परिच्छिद्यत इत्यर्थः । यदीदृशं वस्तु सर्वव्यवहारगोचरातीतं पश्यसि [2]जानासि तद्वद मह्यम् ।।१४।।

।।१३।।

यदि देहव्यतिरिक्ततयाऽऽत्मनः प्रथमं पृष्टस्य परमार्थस्वरूपज्ञानमेव श्रेयःसाधनं तर्हि तदेव ब्रूहीत्याह—यद्यहं योग्य इत्यादिना । [3]अत एव वरदानव्यतिरिकेणापूर्वो[4]ऽयं प्रश्न इति नाऽऽशङ्कनीयं [5]पूर्वपृष्टस्यैव याथातथ्यप्रश्नः पृष्टस्य वस्तुनो [6]विशेषणान्तरं ज्ञानसाधनं वक्तुमित्यर्थः ।।१४।।

नचिकेता के लिये ब्रह्म-भवन का द्वार सर्वथा खुला हुआ मैं मानता हूँ अर्थात् तुझे मैं मोक्ष के योग्य समझता हूँ ।। १३ ।।

सर्वातीत वस्तु के विषय में नचिकेता का प्रश्न

नचिकेता ने कहा—भगवन् ! यदि मैं मोक्ष के योग्य हूँ और आप मुझ पर प्रसन्न भी हैं (तो मुझे आप उसी वस्तु का उपदेश करें, जो धर्म से पृथक् है) शास्त्रीय धर्मानुष्ठान, उसके फल तथा कर्ता-करणादि कारकों को धर्म शब्द से कहा गया है । इसके विपरीत शास्त्र निषिद्ध आचरण उसके फल एवं कर्ता-करणादि कारकों को अधर्म शब्द से कहा गया है । स्थूल प्रपंच को कृत शब्द से और सूक्ष्म प्रपंच को अकृत शब्द से कहते हैं । इस प्रकार धर्म, अधर्म, कार्य और कारण से भी जो पृथक् है । इतना ही नहीं, प्रत्युत भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल से भी जो पृथक् है अर्थात् जो तीनों कालों से

---

१. तं दुर्दर्शमित्यादिवर्णनामाकर्ण्य सामान्यतोऽधिगतं तत्त्वबुभुत्समान आह—अन्यत्रेत्यादि । २. जानासि तद्वदेति—ननु सर्वव्यवहारातीतत्वमुक्तं यस्य तस्यैव ज्ञानवदनविषयत्वोक्तिर्विप्रतिषिध्यते ज्ञानवदनयोर्व्यवहाररूपत्वादिति चेन्न सर्वव्यवहारेत्यनेन क्रियाकारकादिव्यवहारस्यैव शुद्धात्मविवक्षया निरस्यमानत्वादित्यवधेयम् । ३. अत एवेति—पृष्टस्यैव पृच्छ्यमानत्वादित्यर्थः । ४. अयं प्रश्न इति—इयमर्थनेति यावत् । ५. ननु सकृत्पृष्टस्यैव पुनः प्रश्नः किमर्थोऽत आह—पूर्वपृष्टस्यैवेत्यादि । ६. विशेषणेत्यादि—नैषेत्यादिपूर्वग्रन्थोक्ताचार्योपदेशादिरूपसाधनापेक्षया भिन्नप्रकारकं प्रणवोपास्त्यादिरूपं ज्ञानसाधनमुपदेष्टुमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इत्येवं [1]पृष्टवते मृत्युरुवाच पृष्टं वस्तु [2]विशेषणान्तरं च विवक्षन्—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१५॥ 2

सभी वेद जिसको बतलाते हैं, जिसकी प्राप्ति के लिये सभी तपों को कहते हैं एवं जिसकी इच्छा करते हुए (गुरुकुल वासादि कठोर) ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं उस पद को मैं तुम्हें संक्षेप में कहता हूं। (जिसे तू जानना चाहता है) ॐ वह पद है ॥१५॥

सर्वे वेदा यत्पदं पदनीयं [3]गमनीयमविभागेनाऽऽमनन्ति प्रतिपादयन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यत्प्राप्त्यर्थानीत्यर्थः। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं गुरुकुलवासलक्षणमन्यद्वा ब्रह्मप्राप्त्यर्थं चरन्ति तत्ते तुभ्यं पदं यज्ज्ञातुमिच्छसि संग्रहेण संक्षेपतो ब्रवीमि, ओमि-

---

सर्वे वेदा इति। वेदैकदेशा उपनिषदः। [4]अनेनोपनिषदो ज्ञानसाधनत्वेन [5]साक्षाद्विनियुक्ता-स्तपांसि [6]तेषां कर्माणि शुद्धिद्वारेणावगतिसाधनानि। मन्दाधिकारिणो विचारासमर्थस्य क्रमेणावगति-साधनं संक्षिप्याऽऽह—संग्रहेणेति। [7]यस्य शब्दस्योच्चारणे यत्स्फुरति तत्तस्य वाच्यं प्रसिद्धं समाहित-चित्तस्योंकारोच्चारणे य[8]द्विषयानुपरक्तं संवेदनं स्फुरति तदोंकारमवलम्ब्य [9]तद्वाच्यं ब्रह्मास्मीति ध्यायेत्त-

---

परिच्छिन्न नहीं है, ऐसी व्यवहारातीत जिस वस्तु को अपरोक्षरूप से आप जानते हो, उसी का उपदेश हमें भी करो ॥१४॥

प्रणव का उपदेश

इस प्रकार पूछने वाले नचिकेता से पूछी हुई वस्तु तथा विशेषणान्तर को बतलाने की इच्छा से यमाचार्य ने कहा—जिस गमनीय स्थानरूप पद का प्रतिपादन एक स्वर से सभी वेद कहते हैं, जिसकी प्राप्ति के साधनरूप से सम्पूर्ण तपों को भी कहते हैं अर्थात् समस्त तप का चरम फल आत्म-प्राप्ति ही है, जिसकी इच्छा से गुरुकुल वास पुरःसर गुरुशुश्रूषादि ब्रह्मचर्य अथवा ब्रह्मप्राप्ति के

---

१. पृष्टवते नचिकेतस इति शेषः। २. विशेषणान्तरमिति—पूर्वोक्तापेक्षया ज्ञानस्य साधनान्तरमिति यावत्। ३. गमनीयमविभागेनेति—अभेदेनैव प्राप्यमित्यर्थः। ४. अनेनेति—"सर्वे वेदा यत्पदमाम-नन्तीति" वचनेनेत्यर्थः। ५. साक्षाद्विनियुक्ता इति—आचार्यद्वाराधिचारिता उपनिषदोऽन्यद्वारयित्वैव ज्ञानं जनयन्तीति भावः ६. तेषां वेदानां (कर्मकाण्डात्मकानाम्) वेदोक्तानीति यावत्। ७. ओंशब्दवाच्यमित्यादि-भाष्यतात्पर्यमाचक्षाण आह—यस्येत्यादि। ७. प्रसिद्धमिति—घट शब्दस्योच्चारणे स्फुरन्त्याः कम्बुग्रीवादि-मद्व्यक्तेर्घटशब्दवाच्यत्वस्य प्रसिद्धत्वादिति भावः। ८. घटादिशब्दोच्चारणेन घटादिविषयावच्छिन्नमेव स्फुरति नेदं तथेत्याह—विषयानुपरक्तमिति—ओङ्कारस्य तु वाचकत्वेनोपरञ्जकविषयकोटावनिवेशान्न तेन विषयो-परक्तताऽमुष्येत्यवधेयम्। ९. तदोङ्कारमवलम्ब्य ध्यायेदित्यन्वयः। ओङ्कारावलम्बेन तद्ध्यानमभिनयति—तद्वाच्यमिति। ओङ्कारवाच्यमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदा-
लम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥ २

यह अक्षर ही अपर ब्रह्म है एवं यह अक्षर ही पर ब्रह्म है, इस अक्षर को ही जानकर (पर या अपर) जिसकी जो इच्छा करता है, उसका वही हो जाता है ॥ १६ ॥

(ब्रह्म-प्राप्ति के आलम्बनों में) यही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही पर-आलम्बन है। इसी आलम्बन को जानकर पुरुष ब्रह्मलोक में (परब्रह्म में स्थित हो) महिमान्वित होता है ॥ १७ ॥

स्येतत् । तदेतत्पदं यद्बुभुत्सितं त्वया यदेतदोमित्योंशब्दवाच्यमोंशब्दप्रतीकं च ॥१५॥

अत एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्मापरमेतद्ध्येवाक्षरं परं च । तयोर्हि प्रतीकमेतदक्षरम्, एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वोपास्य ब्रह्मेति यो यदिच्छति परमपरं वा तस्य तद्भवति । परं चेज्ज्ञातव्य[म]परं चेत्प्राप्तव्यम् ॥१६॥

यत एवमत एतदालम्बनमेतद्ब्रह्मप्राप्त्यालम्बनानां श्रेष्ठं प्रशस्यतमम् । एतदालम्बनं

ध्यसमर्थ ओंशब्द एव ब्रह्मदृष्टिं कुर्यादित्यर्थः ॥१५॥

॥१६॥

उपयोगी किसी अन्य साधनरूप ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस पद को मैं तुझे बतलाऊँगा, जिसे तू जानना चाहता है, वह 'ओं' यही पद है। 'ओं' शब्द वाच्य अर्थ को 'ओं' शब्द से कहा गया है अथवा ब्रह्मप्राप्ति के साधन होने से 'ओं' शब्द को प्रतीकरूप में लिया गया है (उभय प्रकार से ओंकार का उपदेश यहाँ सम्भव है) ॥ १५ ॥

यह ओंकार अक्षर ही अपर ब्रह्म है और यही अक्षर परब्रह्म है; क्योंकि यह अक्षर उन दोनों का प्रतीक है, यही उपास्य ब्रह्म है। ऐसा इस अक्षर को जो भी कोई साधक पर या अपर ब्रह्मप्राप्ति की इच्छा से उपासना करता है, वह उसे ही प्राप्त होगा। यदि उसका उपास्य परब्रह्म है, तो वह केवल जाना जा सकता है ॥ १६ ॥

क्योंकि ऐसी बात है, इसलिये यह (ओंकाररूप) आलम्बन ब्रह्मप्राप्ति के गायत्री आदि सभी आलम्बनों में श्रेष्ठ है। परब्रह्म और अपरब्रह्म विषयक होने के कारण यह आलम्बन पर और अपर

---

१. ज्ञानमुपास्तिरित्याशयेन व्याचष्टे—उपास्येति । २. कथमुपास्येत्यत आह—ब्रह्मेतीति । ३. तत्रापि—यथोक्तध्यानेऽपीत्यर्थः । ओंशब्दप्रतीकमित्येतत्स्फुटयति—तत्रापीत्यादिना । ४. ओंशब्द इत्यादि—अयमेव ब्रह्मेत्येवमोंशब्दं भावयेत्प्रतिमामिव विष्णुधियेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न
बभूव कश्चित् । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं
पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥

(चैतन्य स्वभाव के कारण) यह मेधावी आत्मा न उत्पन्न होता है और न मरता है. यह किसी अन्य कारण से उत्पन्न नहीं हुआ और न स्वतः ही अर्थान्तिर रूप से बना है। अतः यह आत्मा अजन्मा, नित्य शाश्वत (नाशरहित) और पुरातन है तथा शरीर के मारे जाने पर भी स्वयं मरता नहीं है॥ १८॥

परमपरं च परापरब्रह्मविषयत्वात् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते । परस्मिन्ब्रह्मण्य[1]परस्मिंश्च [2]ब्रह्मभूतो ब्रह्मवदुपास्यो भवतीत्यर्थः ॥१७॥

अन्यत्र धर्मादित्यादिना पृष्टस्याऽऽत्मनोऽशेषविशेषरहितस्याऽऽ[3]लम्बनत्वेन प्रतीकत्वेन चोंकारो निर्दिष्टः । अपरस्य च ब्रह्मणो मन्दमध्यमप्रतिपत्तॄन्प्रति । अथेदानीं तस्योंकारालम्बनस्याऽऽत्मनः साक्षात्स्वरूपनिर्दिधारयिषयेदमुच्यते—

न जायते नोत्पद्यते म्रियते वा न म्रियते चोत्पत्तिमतो वस्तुनोऽनित्यस्यानेक-

---

॥१७॥

साधनहीनायोपदेशोऽनर्थक इति मत्वोच्चावच[4]भवगतिसाधनमुक्त्वा [5]वक्तव्यस्वरूपं यत्पृष्टं तदभिधानायोपक्रमत इत्याह—अन्यत्र धर्मादित्यादिनेति । यद्यात्मनोऽन्यद्ब्रह्म स्यात्तत्र जन्मादिप्राप्त्य-

---

मी है। इस आलम्बन को जान कर साधक परब्रह्म में स्थित हो महिमान्वित होता है और अपर ब्रह्म में ब्रह्मत्व को प्राप्त हो, ब्रह्म के समान ही उपास्य हो जाता है, यह इसका अभिप्राय है ॥ १७॥

आत्मतत्त्व का निरूपण

"अन्यत्र धर्मात्" इत्यादि श्लोक से नचिकेता ने जिस सर्वविशेषरहित आत्मा के सम्बन्ध में पूछा था, उस आत्मा के मन्द और मध्यम उपासकों के लिये अपरब्रह्म के प्रतीक और आलम्बन रूप से ओंकार का निर्देश यमाचार्य ने किया, जिसका आलम्बन ओंकार है। अब उस आत्मा के स्वरूप का साक्षात् निश्चय कराने की इच्छा से यह कहा जा रहा है।

यह आत्मा न उत्पन्न होता है और न मरता ही है क्योंकि उत्पन्न होने वाली अनित्य वस्तु में

---

१. अपरस्मिंश्चेति—महीयत इत्यनुषज्यते। २. उक्तं व्याचष्टे—ब्रह्मभूत इत्यादिना। ३. आलम्बनत्वेनेति—वाचकतया ध्यानाङ्गत्वमालम्बनत्वं ध्यानं प्रत्यधिकरणत्वं (आश्रयत्वं) च प्रतीकत्वम्। ४. अवगतिः—परापरब्रह्मोपास्तिरूपम्। ५. वक्तव्यस्वरूपम्—वक्तव्यस्यात्मनः स्वरूपम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विक्रियास्तासामाद्यन्ते जन्मविनाशलक्षणे विक्रिये इहाऽऽत्मनि प्रतिषिध्येते प्रथमं [1]सर्वविक्रियाप्रतिषेधार्थं न जायते म्रियते वेति। विपश्चिन्मेधावी, अविपरिलुप्तचैतन्यस्वभावत्वात्। किंच नायमात्मा कुतश्चित्कारणान्तराद्बभूव। स्वस्माच्चाऽऽत्मनो न बभूव कश्चिदर्थान्तरभूतः। अतोऽयमात्माऽजो नित्यः [2]शाश्वतोऽपक्षयविवर्जितः। यो ह्यशाश्वतः सो[3]ऽपक्षीयते। अयं तु शाश्वतोऽत एव पुराणः पुराऽपि नव एवेति। यो ह्यवयवोपचयद्वारेणाभिनिर्वर्त्यते स इदानीं नवो यथा कुम्भादिस्तद्विपरीतस्त्वात्मा पुराणो [4]वृद्धिविवर्जित इत्यर्थः। यत एवमतो न हन्यते न हिंस्यते हन्यमाने शस्त्रादिभिः शरीरे। तत्स्थोऽप्याकाशवदेव ॥१८॥

भावादप्राप्तनिषेधः स्यादतो जन्मादिप्रतिषेधेन [5]ब्रह्मोपदिशन्नात्मस्वरूपमेवोपदिशतीति गम्यते। [6]मरणनिमित्ता च नास्तित्वाशङ्काऽऽत्मनो मरणाभावेऽस्तित्वविषयप्रश्नस्याप्येतदेव [7]वचनं भवतीति द्रष्टव्यम् ॥१८॥

अनेक विकार होते हैं, उन विकारों में से आत्मा के जन्मरूप आदि विकार और विनाशरूप अन्तिम विकार यहाँ पर आत्मा में निषेध किया जाता है; क्योंकि आदि तथा अन्त विकार के निषेध कर देने पर मध्यवर्ती विकारों का निषेध सुतरां हो जाता है। यह आत्मा कभी भी लुप्त न होने वाले चैतन्य स्वभाव होने के कारण विपश्चित् अर्थात् मेधावी है। (लोक में कभी-कभी कारण से कार्य की उत्पत्ति देखी जाती है और कभी कारण ही कार्यरूप में परिणत होता देखा गया है) किन्तु यह आत्मा किसी अन्य कारण से उत्पन्न नहीं हुआ और न स्वयं ही अर्थान्तररूप से परिणत हुआ है। इसलिये यह आत्मा अजन्मा, नित्य और क्षयरहित शाश्वत है क्योंकि जो अशाश्वत पदार्थ है; वह क्षीण हो जाता है। यह आत्मा तो शाश्वत है। अतएव पुराण भी है अर्थात् प्राचीन होता हुआ भी सदा नवीन है क्योंकि जो पदार्थ अवयवों की वृद्धि से निष्पन्न होता है, वह घटादि के समान इस समय नया है। ऐसा कहा जाता है, पर आत्मा उससे विपरीत स्वभाव वाला है अर्थात् वृद्धिरहित पुराना है। जबकि ऐसा है, इसीलिये शस्त्रादिकों से शरीर के मारे जाने पर भी वह मरता नहीं। तात्पर्य यह है कि शरीर में रहता हुआ भी यह आत्मा आकाश के समान असंग और निर्लिप्त है ॥ १८ ॥

---

१. सर्वविक्रियाप्रतिषेधार्थमिति—अनेन स्फुटतरनिषेधेन कथं शाश्वतादिपदैस्तत्तद्विक्रियाप्रतिषेधाः प्रतीयेरन्नित्येतदर्थमिति यावत्। २. यद्वाऽऽद्यन्तनिषेधस्य सर्वनिषेधार्थत्वं भासयितुं द्वावितरौ कण्ठोक्त्या प्रतिषिध्येते इत्याशयेनाह—शाश्वत इत्यादि। ३. अपक्षीयत इति—विपरिणाम्येत्यादिः। तथा च शाश्वतपदेन विपरिणामापक्षयौ प्रतिषिद्धौ वेदितव्यौ। ४. वृद्धीति—जन्मानन्तरभाव्यस्तित्वविकारपूर्वकेत्यादिः। एवं पुराणत्वेन द्वौ गतौ भवतः। ५. ब्रह्मोपदिशन्निति—अन्यत्रेत्यादिना ब्रह्मण एवं जिज्ञासितत्वादिति भावः। आत्मस्वरूपमेवोपदिशतीति—अन्यत्रेत्यादिना यत्त्वया पृष्टं स तवात्मैवेत्युक्तं भवत्युत्तरमनेनेति भावः। ६. मरणनिमित्तेति—"येयं प्रेत" इति वचनादिति भावः। ७. वचनमिति—अस्तित्वपक्षस्यैव सिद्धान्तत्वसूच्ये तदुत्तरमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥
उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते ॥१९॥

(ऐसे आत्मा को भी, देहमात्र को मैं मानने वाला पुरुष) यदि मारने वाला व्यक्ति आत्मा को मरने का विचार करता है और मारा जाने वाला उसे मारा हुआ जानता है, तो वे दोनों ही (उस आत्मा को) नहीं जानते हैं क्योंकि यह आत्मा न मारता है और न मरता ही है ॥ १९ ॥

एवंभूतमप्यात्मानं शरीरमात्रात्मदृष्टिर्हन्ता चेद्यदि मन्यते चिन्तयति हन्तुं हनिष्याम्येनमिति योऽप्यन्यो हतः सोऽपि चेन्मन्यते हतमात्मानं हतोऽहमित्युभावपि तौ न विजानीतः स्वमात्मानं यतो नायं हन्ति अविक्रियत्वादात्मनस्तथा न हन्यत आकाशवदविक्रियत्वादेव । अतो[1]ऽनात्मज्ञविषय एव धर्माधर्मादिलक्षणः संसारो [2]न ब्रह्मज्ञस्य श्रुतिप्रामाण्यान्न्यायाच्च [3]धर्माधर्माद्यनुपपत्तेः ॥ १९ ॥

यद्यविक्रिय एवाऽऽत्मा तर्हि धर्माद्यधिकार्यभावा[4]त्तदसिद्धौ संसारोपलम्भ एव न स्यादित्याशङ्कयाऽऽह—अनात्मज्ञविषय एवेति । यदज्ञानात्प्रवृत्तिः स्यात्तज्ज्ञानात्सा कुतो भवेदिति न्यायाच्चा[5]ऽऽत्मज्ञस्य धर्मादि नोपपद्यतेऽत आत्मज्ञः सदा मुक्त एवेत्याह—न्यायाच्चेति ।

तदुक्तम्—"[6]विवेकी सर्वदा मुक्तः कुर्वतो नास्ति कर्तृता ।

[7]अलेपवादमाश्रित्य श्रीकृष्णजनकौ यथा" इति ॥१९॥

ऐसे आत्मा को भी, देहमात्र को आत्मा मानने वाला पुरुष यदि ऐसा मानता है कि मै किसी को मारने वाला, मारने का विचार करता हूँ; साथ ही यह भी सोचता है कि मैं इसे मारूँगा, वैसे ही दूसरा मरने वाला भी यह समझ कर कि मैं मारा गया हूँ, इस प्रकार अपनी आत्मा को मरा हुआ मानता है, तो वे मारने और मरने वाले दोनों ही अपनी आत्मा को नहीं जानते; क्योंकि निर्विकार आत्मा क्रियाशून्य होने के कारण वह मार नहीं सकता और आकाश के समान अविकारी होने के कारण ही मारा भी नहीं जा सकता । अतः धर्माधर्मादिरूप संसार अनात्मज्ञों से सम्बन्ध रखता है; ब्रह्मज्ञानियों से नहीं । अनुभव के अतिरिक्त श्रुति प्रमाण और युक्ति से भी ब्रह्मज्ञानी द्वारा धर्माधर्मादि का होना सिद्ध नहीं होता ॥ १९ ॥

---

१. अनात्मज्ञविषयस्तदाश्रित इति यावत् । २. न ब्रह्मज्ञस्य धर्मादिसंसार इत्यन्वयः । ३. धर्माद्यनुपपत्तेर्ब्रह्मज्ञस्येत्यन्वयः । ४. तदसिद्धौ—धर्माद्यसिद्धौ । ५. आत्मज्ञस्येत्यादि—धर्मादिप्रवृत्तिर्हि प्रत्यगज्ञानमूला "यस्त्वात्मरतिरेव स्यादि"त्यादिस्मृतेरिति भावः । ६. विवेकीत्यादि—यथाह भगवान् "यस्य नाहं कृतो भाव" इत्यादि । ७. अलेपवादमिति "नैव किंचित्करोमीति" "यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते । सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते" इत्यादिप्रमाणोत्थं दृढं प्रत्ययमिति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

[1]कथं पुनरात्मानं जानातीत्युच्यते—

अणोरणीयान्महतो महीयानात्माऽस्य जन्तो-
र्निहितो गुहायाम्। तमक्रतुः पश्यति वीत-
शोको [3]धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥ [2]

यह आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर तथा महान् से भी महत्तर इस जीव की हृदय रूपी गुफा में (अन्तरात्मरूप से) स्थित है (दृष्टादृष्ट बाह्य विषयों से उपरत) निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियादि के प्रसाद से आत्मा की उक्त महिमा को देखता है और शोकरहित हो जाता है ॥ २० ॥

अणोः सूक्ष्मादणीयाञ्श्यामाकादेरणुतरः। महतो महत्परिमाणान्महीयान्महत्तरः पृथिव्यादेः। अणु महद्वा यदस्ति लोके वस्तु तत्तेनैवाऽऽत्मना [4]नित्येनाऽऽत्मवत्संभवति। [5]तदात्मना विनिर्मुक्तमसत्संपद्यते। तस्मादसावेवाऽऽत्माऽणोरणीयान्महतो महीया[6]न्सर्वनामरूपवस्तूपाधिकत्वात्। स चाऽऽत्माऽस्य जन्तोर्ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य

---

[7]अकामत्वादिसाधनान्तरविधानार्थमुत्तरवाक्यमवतारयति—कथं पुनरिति। एकस्याणुत्वं महत्त्वं च विरुद्धं कथमनूद्यत इत्याशङ्क्याणुत्वाद्यध्यासाधिष्ठानत्वादणुत्वादिव्यवहारो न तत्त्वत इत्यविरोधमाह—अणु महद्वेति ॥२०॥

फिर भला अधिकारी मुमुक्षु आत्मा को किस प्रकार जानता है? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं—

यह आत्मा श्यामाकादि सूक्ष्म पदार्थों से भी सूक्ष्मतर है और पृथिवी आदि महत् परिमाण वाले महान् पदार्थों से भी महत्तर है। इतना ही नहीं; संसार में अणु या महान् जो कुछ वस्तु है, वह नित्यस्वरूप आत्मा से ही आत्मवान् हो रही है, आत्मा से पृथक् होने पर वह वस्तु सत्ताशून्य हो जाती है। इसीलिये वह आत्मा अणु से अणु महान् से महान् कहा गया है; क्योंकि नाम-रूप वाली सभी वस्तु उसकी उपाधि हैं। ब्रह्मा से लेकर क्षुद्र जन्तु पर्यन्त इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की बुद्धिरूप गुहा

---

१. हन्तृत्वादिना ज्ञानं चेन्नात्मज्ञानं केन तर्हि रूपेण साधनेन च तज्ज्ञानमिति पृच्छति—कथं पुनरिति।
२. अणीयस्त्वाद्युपलक्षितसर्वाधिष्ठानत्वेन अकामत्वादिना च साधनेनेत्याशयेन उत्तरयति—उच्यत इति।
३. धातुप्रसादादिति—धातुः प्रसादादित्याक्षिपाठान्तरे धातुरीश्वरस्य कृपयेति व्याख्येयम्। यमेवैष वृणुत इति वाक्यान्तरानुगुण्यात्। ४. परमाण्वाकाशादौ भासमानं नित्यत्वमपि तदधीनमेवेत्याशयेन विशिनष्टि—नित्येनेति। नित्यो नित्यानामिति श्रुतेः। नित्याधीन एवाऽनित्यानात्मलाभ इति भावः। ५. तदात्मना विनिर्मुक्तमित्यादि—तद्व्यतिरिक्तत्वेन विवक्षितमिति यावत्। तत्सत्त्वे तद्विनिर्मोकासम्भवादित्यवधेयम्।
६. सर्वनामरूपेत्यादि—उपाधिधर्मावभास एवोपहितेऽनूक्त इति भावः। ७. अकामत्वादीत्यादिना नाविरत इत्यादिना वक्ष्यमाणसंग्रहः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

[1]अन्यथा दुर्विज्ञेयोऽयमात्मा कामाभिः प्राकृतपुरुषैः, यस्मात्—

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।

कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥२१॥

वह अचल होता हुआ भी दूर तक जाता है तथा सोता हुआ भी सभी ओर जाता है, वह मद से युक्त और मद (हर्ष) से रहित है, उस देव को मेरे सिवा और कौन जान सकता है ॥ २१ ॥

प्राणिजातस्य गुहायां हृदये निहित आत्मभूतः स्थित इत्यर्थः । तमात्मानं [2]दर्शन-श्रवणमननविज्ञानलिङ्गमक्रतुरकामो [3]दृष्टादृष्टबाह्यविषयोपरतबुद्धिरित्यर्थः । [4]यदा चैवं तदा मनआदीनि करणानि धातवः शरीरस्य धारणात्प्रसीदन्तीत्येषां धातूनां प्रसादादात्मनो महिमानं [5]कर्मनिमित्तवृद्धिक्षय[6]रहितं पश्यत्ययमहमस्मीति साक्षाद्विजानाति । ततो वीतशोको भवति ॥ २० ॥

आसीनोऽवस्थितोऽचल एव सन्दूरं व्रजति शयानो याति सर्वत एवमसावात्मा देवो मदामदः समदोऽमदश्च [7]सहर्षोऽहर्षश्च विरुद्धधर्मवानतोऽशक्यत्वाज्ज्ञातुं कस्तं

विरुद्धानेकधर्मवत्त्वाद्दुर्विज्ञेयश्चेदात्मा कथं तर्हि पण्डितस्यापि सुज्ञेयः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—

में वह आत्मा प्रत्यगात्मरूप से स्थित है । देखना, सुनना, मनन करना और जानना ये जिसके अनुमापक लिंग हैं, उस आत्मा को दृष्टादृष्ट बाह्य विषयों से उपरत बुद्धि वाला निष्काम पुरुष ही जान सकता है । जिस समय दृष्टादृष्ट भोगों से चित्त उपरत होता है, उसी समय शरीर को धारण करने वाले मन आदि इन्द्रियाँरूप धातुएँ प्रसन्न होती हैं । इन धातुओं के प्रसाद से वह अपने आत्मा के कर्म के कारण से होने वाली वृद्धि एवं क्षय से रहित महिमा को सुस्पष्ट देखता है । तात्पर्य यह है, 'यह मैं हूँ' इस बात को साक्षात् रूप से जानता है, तब फिर वह शोक से रहित हो जाता है ॥ २० ॥

इसके विपरीत सकाम प्राकृत पुरुषों के द्वारा इस आत्मा को जानना दुष्कर है—

क्योंकि वह अचल होकर भी दूर चला जाता है, सोता हुआ भी सब ओर पहुँच जाता है । इस

---

१. अन्यथेति—अकामत्वप्रयुक्तधातुप्रसादमन्तरेणेति यावत् । २. तमात्मनो महिमानमित्यन्वये विवक्षितेऽपि महिम्न आत्मानतिरेकं ज्ञापयितुमाह—आत्मानमिति । आत्मस्वरूपमेव महिमानमित्यर्थः । ३. गुहायां निहित इति श्रौतार्थे युक्तिमनुकूलयति—दर्शनेत्यादिना । करणं हि सकर्तृकमित्यादियुक्तिरत्रानुसंधेया । सा च को ह्येवान्यात् कः प्राण्यादित्यादि श्रुत्याऽनुगृह्यत इत्यवधेयम् । ४. कामेन हि प्रवर्तमानस्य रागादयो मलिनयन्ति करणानि अकामस्य तु रागाद्यनुत्पाद एव प्रसादः आच्छ्यं करणानां तदेव चात्मदर्शनोपयोगि, यथाह भगवान् रागद्वेषवियुक्तैस्त्वित्यादीत्यभिप्रयन्नाह—यदा चैवमित्यादि । ५. एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयानिति श्रुतिमाश्रित्य व्याचष्टे कर्मेत्यादि । ६. रहितं स्वरूपमेवेति भावः । ७. सहर्षोऽहर्षश्चेति मनः समुपहितः सन्नेवेति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति । अस्मदादेरेव सूक्ष्मबुद्धेः पण्डितस्य कस्यचिद्विज्ञेयोऽयमात्मा स्थितिगतिनित्यानित्यादिविरुद्धानेकधर्मोपाधिकत्वाद्विरुद्धधर्मवत्त्वाद्विश्वरूप इव चिन्तामणिवदवभासते । अतो दुर्विज्ञेयत्वं दर्शयति कस्तं मदन्यो ज्ञातुमर्हतीति । करणानामुपशमः शयनं करणजनितस्यैकदेशविज्ञानस्योपशमः शयानस्य भवति । यदा चैवं केवलसामान्यविज्ञानत्वात्सर्वतो यातीव यदा विशेषविज्ञानस्थः स्वेन रूपेण स्थित इव सन्मनआदिगतिषु तदुपाधिकत्वाद्दूरं व्रजतीव स चेहैव वर्तते ॥ २१ ॥

स्थितिगतीति । [1]विश्वरूपो मणिर्यथा नानारूपोऽवभासते परं नानाविधोपाधिसंनिधानान्न स्वतो नानारूपः, [2]चिन्तामणौ वा यद्यच्चिन्त्यते तत्तच्चिन्तोपाधिकमेवावभासते [3]न तत्त्वतः, तथा स्थितिगतिनित्यानित्यादयो विरुद्धानेकधर्मा येषां तदुपाधिवशादात्माऽपि विरुद्धधर्मवानिवावभासत इति योजना । [4]इति तस्य सुविज्ञेयो भवति । उपाध्यविविक्तदर्शिनस्तु दुर्विज्ञेय एवेत्यर्थः । [5]स्वतो विरुद्धधर्मवत्त्वं नास्तीत्येतदेव श्रुतियोजनया दर्शयति—करणानामित्यादिना । एकदेशविज्ञानस्येति । [6]मनुष्योऽहं [7]नीलं पश्यामीत्यादिपरिच्छिन्नविज्ञानस्येत्यर्थः ॥२१॥

प्रकार वह आत्मा हर्षरूप मद से युक्त और ऐसे मद से रहित विरुद्ध धर्म वाला है । अतः जो नहीं जाना जा सकता ऐसे मदयुक्त और ऐसे मद से रहित हुए को मेरे सिवा दूसरा कौन प्राकृत बुद्धि पुरुष जान सकता है । यह आत्मा हमारे जैसे सूक्ष्म बुद्धि पण्डितों के लिये ही सुविज्ञेय है । स्थिति, गति, नित्य और अनित्य इत्यादि अनेक विरुद्ध धर्मरूप उपाधि वाला यह आत्मा है । इसीलिये परस्पर विरुद्ध धर्मयुक्त होने के कारण यह आत्मा चिन्तामणि के समान सर्वरूप-सा भासता है । इसीलिये मेरे सिवा उसे कौन जान सकता है ? ऐसा कहकर उस आत्मा की विज्ञेयता को श्रुति बतलाती है । इन्द्रियों के व्यापार का उपशम हो जाने को शयन कहते हैं; क्योंकि सोने वाले पुरुष का इन्द्रियजनित एक देश सम्बन्धी विज्ञान शान्त हो जाता है । जब ऐसी अवस्था होती है, तब केवल सामान्य विज्ञान होने से वह सब ओर जाता हुआ भासता है और जिस समय वह विशेष विज्ञान में स्थित होता है, तो उस समय स्वरूपतः स्थित रहकर भी मन आदि उपाधियों वाला होने के कारण उन मन आदि की गतियों से गतिशील-सा जान पड़ता है । वास्तव में वह यहीं रहता है, अन्यत्र जाता नहीं । (तात्पर्य यह कि निरुपाधिक चैतन्यघन आत्मा सर्वत्र व्यापक और गतिशून्य है, किन्तु परिच्छिन्न गतिशील उपाधियों से उपहित होने के कारण वही आत्मा परिच्छिन्न एवं गतिमान्रूप में भासता है) ॥ २१ ॥

---

१. विश्वरूपो मणिरिति—विश्वं सर्वं स्वसन्निहितं रूपवद्वस्तु रूप्यते प्रतिबिम्बितत्वेनावलोक्यतेऽस्मिन्निति विश्वरूपः काचविशेषादि रूपो मणिरित्यर्थः । २. शक्तिविशेषवत्त्वविवक्षयेदमुदाहरणान्तरमित्याशयेन व्याचष्टे—चिन्तामणौ वेति । ३. न तत्त्वतो न स्वरूपतः उपाधिमन्तरेणेति यावत् । ४. इति तस्येति इति—यथोक्तविचारेण । तस्य—पण्डितस्येत्यर्थः । ५. विरुद्धधर्मवत्त्वस्य स्वतस्त्वे उपाध्युपशमेऽपि भासेत न च भासत इति न तथेत्याशयेनावतारयति—स्वतो विरुद्धधर्मवत्त्वमिति । ६. देहतादात्म्येनात्मनः परिच्छिन्नत्वविज्ञानमाह—मनुष्योऽहमिति । ७. चक्षुरादितादात्म्येन तस्य परिच्छिन्नत्वविज्ञानमुदाहरति—नीलं पश्यामीत्यादिना ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust, Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्विज्ञानाच्च शोकात्यय इत्यपि दर्शयति—

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं
विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥२२॥

जो (देवादि अनित्य) शरीरों में शरीररहित तथा नित्य स्वरूप है, उस महान् सर्वव्यापक आत्मा को (यह मैं हूँ इस प्रकार) जानकर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता ॥ २२ ॥

अशरीरं स्वेन रूपेणाऽऽकाशकल्प आत्मा तमशरीरं शरीरेषु देवपितृमनुष्यादि-शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितिरहितेष्वनित्येष्ववस्थितं नित्यमविकृतमित्येतत् । महान्तं महत्त्वस्याऽऽपेक्षिकत्वशङ्कायामाह—विभुं व्यापिनमात्मानम् । [1]आत्मग्रहणं स्वतोऽनन्यत्व-प्रदर्शनार्थम् । [2]आत्मशब्दः प्रत्यगात्मविषय एव [3]मुख्य[4]स्तमीदृशमात्मानं मत्वाऽयमहमिति धीरो धीमान्न शोचति । न ह्येवंविधस्याऽऽत्मविदः शोकोपपत्तिः ॥ २२ ॥

यद्यपि दुर्विज्ञेयोऽयमात्मा तथाऽप्युपायेन सुविज्ञेय एवेत्याह—

॥२२॥

आत्म-विज्ञान से शोक की निवृत्ति

उस आत्मा के अपरोक्ष अनुभव से शोक-पदोपलक्षित संसार के सम्पूर्ण दुःखों का अन्त हो जाता है। अब इस बात को भी समझाते हैं—

देव, पितृ और मनुष्यादि शरीर अवस्थितिरहित परिणामी हैं, उन अनित्य शरीरों में स्वरूपतः आकाश के तुल्य निरवयव आत्मा नित्य एवं निर्विकार है तथा वह आत्मा महान् है। किसी की अपेक्षा करके आत्मा में महत्त्व है, इस शंका को दूर करने के लिये उसे महान् के साथ-साथ विभु यानी व्यापक है, ऐसा विशेषण दिया। अपने से ब्रह्म को अभिन्न बतलाने के लिये यहाँ आत्मशब्द का प्रयोग किया गया है; क्योंकि आत्म-शब्द प्रत्यगात्मविषय में ही मनुष्य है, ऐसे आत्मा को 'यही मैं हूँ' इस प्रकार अपरोक्ष अनुभव कर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता क्योंकि इस प्रकार के आत्मवेत्ता पुरुष में शोक सम्भव भी नहीं ॥ २२ ॥

यद्यपि यह आत्मा दुर्विज्ञेय है, फिर भी उपाय करने से वह सुविज्ञेय हो ही जाता है। इसी बात को आगे कहते हैं—

---

१. प्रकरणाल्लभ्यमानेऽप्यात्मनि किमर्थमात्मग्रहणमत आह—आत्मग्रहणमिति । २. विभुमीश्वर-मात्मानं मत्वाऽऽत्मत्वेन मत्वेत्येवमीश्वरस्य स्वस्मादभेदप्रदर्शनार्थमित्यर्थः । आत्मशब्दस्य जीवेशसाधारण-त्वात्कथं तेनाभेदप्रदर्शनमत आह—आत्मशब्द इति । ३. मुख्य इति—तथैव लोकशास्त्ररूढत्वादिति भावः । ४. तमीदृशमिति—ईदृशमशरीरत्वादिविशेषणकं तमीश्वरमात्मानं मत्वा योऽशरीरादिलक्षण ईश्वरः समात्मैवेत्येवमपरोक्षीकृत्येति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥२३॥

यह आत्मा (वेदाध्ययन रूप) प्रवचन से प्राप्त होने योग्य नहीं है और न (ग्रन्थार्थ) धारण शक्ति या अधिक श्रवण से प्राप्त हो सकता है, किन्तु यह साधक जिसका वरण करता है उस आत्मा से ही यह प्राप्त किया जा सकता है। उसके समक्ष यह आत्मा अपने स्वरूप को अनावृत कर देता है ॥ २३ ॥

नायमात्मा प्रवचनेनानेकवेदस्वीकरणेन लभ्यो ज्ञेयो नापि मेधया ग्रन्थार्थधारणशक्त्या। न बहुना श्रुतेन केवलेन। केन तर्हि लभ्य इत्युच्यते। यमेव स्वात्मानमेष साधको वृणुते प्रार्थयते तेनैवाऽऽत्मना वरित्रा स्वयमात्मा लभ्यो ज्ञायत इत्येतत्। एवं निष्कामस्याऽऽत्मानमेव प्रार्थयत आत्मनैवाऽऽत्मा लभ्य इत्यर्थः। कथं लभ्य इत्युच्यते। तस्याऽऽत्मकामस्यैष आत्मा विवृणुते प्रकाशयति पारमार्थिकीं तनूं स्वां स्वकीयां स्वयाथात्म्यमित्यर्थः ॥२३॥

न बहुना श्रुतेनेति। आत्मप्रतिपादकोपनिषद्विचारातिरिक्तशास्त्रश्रवणेन न लभ्य। उपनिषद्विचारेणापि केवलेन सिद्धोपदेशरहितेन न लभ्यत इत्यर्थः। परमेश्वराचार्यानुग्रहेण तु लभ्यत इत्याह—यमेवेति। स्वात्मानमेव साधकः श्रवणमननादिभिर्वृणुते संभजते श्रवणादिकालेऽपि सोऽहमित्यभेदेनैवानुसंधत्त इत्यर्थः। तेनैवेति। लक्षणया परमात्मानुग्रहेणैव वरित्राऽभेदानुसंधानवता यथानुसंधानमात्मतयैव परमात्मा लभ्यो भवतीत्यर्थः। वैपरीत्येन वा योजना। आत्मा त्वेष प्रकरणी परमात्माऽन्तर्यामिरूपेणाऽऽचार्यरूपेण वा व्यवस्थितो यमेव मुमुक्षुं वृणुते भजतेऽनुगृह्णाति। तेनैव परमेश्वरानुगृहीतेनाभेदानुसंधानवता लभ्यत इत्यर्थः ॥२३॥

आत्मा की प्राप्ति आत्म-कृपा साध्य है

यह आत्मा अनेक वेदों को स्वीकार कर लेना रूप प्रवचन से जानने योग्य नहीं है और न ग्रन्थ के अर्थ को धारण करने की शक्ति से ही जाना जा सकता है। वैसे ही न केवल बहुश्रुत होने से ही आत्मा प्राप्त किया जा सकता है तो फिर किस प्रकार यह आत्मा प्राप्त किया जा सकता है? इस पर कहते हैं कि यह साधक जिस आत्मा की प्रार्थना करता है, उस वरण करने वाले आत्मा द्वारा यह आत्मा स्वयं ही प्राप्त किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि 'यह ऐसा है' इस प्रकार उस साधक से ही जाना जाता है अर्थात् केवल आत्मप्राप्ति के लिये ही प्रार्थना करने वाले निष्काम पुरुष को आत्मा के द्वारा ही आत्मा की प्राप्ति होती है। आत्मा कैसे उपलब्ध होता है? इस पर कहते हैं—उस आत्माभिलाषी पुरुष के सामने यह आत्मा अपने पारमार्थिक स्वरूप को आवरणरहित प्रकाशित कर डालता है ॥ २३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किंचान्यत्—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।२४।। ९०

जो (श्रुति-स्मृति से अविहित) पाप कर्मों से नहीं हटा है, जिसकी इन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं, जो असमाहित मन वाला है और जिसका चित्त शान्त नहीं है, वह इसे ब्रह्मज्ञान द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता ।। २४ ।।

न दुश्चरितात्प्रतिषिद्धा[1]च्छ्रुतिस्मृत्यविहितात्[2]पापकर्मणोऽविरतोऽनुपरतः । नापीन्द्रियलौल्यादशान्तोऽनुपरतः । नाप्यसमाहितो[3]ऽनेकाग्रमना विक्षिप्तचित्तः । समाहितचित्तोऽपि सन्[4]समाधानफलार्थित्वान्नाप्यशान्तमानसो [5]व्यापृतचित्तः । प्रज्ञानेन [6]ब्रह्मविज्ञानेनैनं प्रकृतमात्मानमाप्नुयात् । यस्तु दुश्चरिताद्विरत इन्द्रियलौल्याच्च समाहितचित्तः समाधानफलादप्युपशान्तमानसश्चाऽऽचार्यवान्[7]प्रज्ञानेन यथोक्तमात्मानं प्राप्नोतीत्यर्थः ।।२४।।

दुश्चरितं कायिकं पापम् ।।२४।।

आत्मानुभूति का अनधिकारी

इसके अतिरिक्त बात यह भी है—

जो श्रुति-स्मृति से अविहित निषिद्ध कर्माचरण को त्यागता नहीं एवं जो इन्द्रियों की चञ्चलता के कारण उपरतिशून्य अशान्त है, ये दोनों ही आत्मा को नहीं जान सकते, इतना ही नहीं, प्रत्युत जिसका चित्त एकाग्र नहीं है, ऐसे विक्षिप्त चित्त वाले पुरुष भी उसे नहीं जान सकते । वैसे ही समाहित चित्त होता हुआ भी उस एकाग्रता के फल का इच्छुक जो अशान्त चित्त होता है अर्थात् जिसका चित्त सदा व्यापार में लगा रहता है, वह पुरुष भी इस प्रकृत आत्मा को केवल ब्रह्मविज्ञानरूप प्रज्ञा से नहीं प्राप्त कर सकता, किन्तु जो निषिद्धाचरण से उपरत हो गया है, जिसकी इन्द्रियों की चंचलता मिट गयी है तथा जो समाहित चित्त और समाधान के फल से भी उपशान्त अन्तःकरण वाला है, वह आचार्यवान् साधक ही ब्रह्मविज्ञान से मुक्त आत्मा को प्राप्त कर सकता है ।। २४ ।।

---

१. न खलु सर्वं शक्यं निषेद्धुमित्याशयेनाह—श्रुतिस्मृत्यविहितादिति । २. विहितमपि श्येनाद्यग्राह्यमित्याशयवानाह—पापकर्मण इति । ३. अनेकाग्रेति एकमग्रे यस्य तदेकाग्रं यन्न तथा तदनेकाग्रम् । एकस्मिन्नग्रमस्येति वा व्युत्पाद्यम् । ४. समाधानफलेति ख्यातिसिद्ध्यादिरूपं समाधानफलम् । ५. व्यापृतेति—समाधानफलादावेकस्मिन् व्यापृतत्वेऽपि चित्तस्य नैकाग्र्यं हीयत इति द्रष्टव्यम् । ६. ब्रह्मविज्ञानेनेति—यथोक्तस्य ब्रह्मविज्ञानमेवनोत्पद्यत इति भावः । ७. प्रज्ञानेनेति—यथानिर्दिष्टसाधनैः प्रज्ञानं लब्ध्वेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यस्य ब्रह्म च क्षत्त्रं च उभे भवत ओदनः ।।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।।२५।।

इति काठकोपनिषदि प्रथमाध्याये द्वितीया वल्ली समाप्ता ।।२।।

जिस आत्मा के (सर्वधर्मरक्षक) ब्राह्मण और क्षत्रिय, ये दोनों भात हैं तथा मृत्यु जिसका शाकादि हैं; वह जहाँ है, उसे कौन (अज्ञानी पुरुष पूर्वोक्त अधिकारी के समान) इस प्रकार जान सकता है ।। २५ ।।

।। इति द्वितीयवल्ली समाप्ता ।।

यस्त्व[1]नेवंभूतो यस्याऽऽत्मनो ब्रह्म च क्षत्त्रं च [2]ब्रह्मक्षत्त्रे [3]सर्वधर्मविधारके अपि सर्वत्राणभूते उभे ओदनोऽशनं भवतः स्याताम् । [4]सर्वहरोऽपि मृत्युर्यस्योपसेचनमिवौदनस्याशनत्वेऽप्यपर्याप्तस्तं प्राकृतबुद्धिर्यथोक्तसाधनरहितः सन्क इत्था इत्थमेवं यथोक्तसाधनवानिवेत्यर्थः। वेद विजानाति यत्र स आत्मेति ।।२५।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमदाचार्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ काठकोपनिषद्भाष्ये प्रथमाध्याये द्वितीयवल्लीभाष्यं समाप्तम् ।।२।।

यस्त्वनेवंभूत उक्तसाधनसंपन्नो न भवति स कथं वेदेति संबन्धः। अशनत्वेऽप्यपर्याप्त इति। अन्नत्वेऽप्यसमर्थः शाकस्थानीय इत्यर्थः। यत्र स्वे महिम्नि स विश्वोपसंहर्ता वर्तते तथाभूतं तं को वेदेति संबन्धः २५।।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यानन्दज्ञानविरचिते काठकोपनिषद्भाष्यव्याख्याने द्वितीया वल्ली समाप्ता ।।२।।

किन्तु जो साधक ऐसा नहीं है, उसके लिये कौतूहलपूर्वक श्रुति कहती है—ब्राह्मण बुद्धि द्वारा और क्षत्रिय बल द्वारा सम्पूर्ण धर्मों को धारण करने वाले कहे गये हैं। ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्ण भी जिस आत्मा के ओदन यानी भोजन हैं तथा सबको हरने वाला होता हुआ भी मृत्यु जिसके भात के लिये शाकादि उपसेचन के समान हैं अर्थात् वह तो भोजन के लिये भी पर्याप्त नहीं है। जहाँ वह है, ऐसे यथोक्त आत्मा को पूर्वोक्त साधनों से दूर साधारण बुद्धि वाला पुरुष साधनसम्पन्न पुरुष के समान कैसे जान सकेगा अर्थात् विवेक-वैराग्यादि साधनसम्पन्न पुरुष की भाँति साधनहीन पुरुष सर्वथा उस आत्मा को नहीं जान सकता है ।। २५ ।।

।। इति द्वितीय वल्ली ।।

---

१. अनेवं भूतो दुश्चरिताविरतादिरूपः। २. ब्रह्मक्षत्त्रे इति—क्षत्रसमभिव्याहाराद्ब्रह्मात्र ब्राह्मणः। ३. सर्वधर्मविधारके इति—सर्वे ये वेदोक्तधर्मास्तेषामुपदेशादिना धारके अन्यत्रधर्मादित्यनेन कटाक्षितं भवति। ४. सर्वहरोऽपीति—अन्यत्राधर्मादिति विभावितम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे(र्ध्ये) । छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥१॥

इस शरीर में बुद्धि-रूप गुफा के भीतर (देहाश्रित आकाश स्थान की अपेक्षा) उत्कृष्ट पर-ब्रह्म के स्थान में दो प्रवेश किये हुए हैं। अपने कर्मफल को भोगने वाला (संसारी और असंसारी होने के कारण) छाया तथा धूप के समान (परस्पर विलक्षण) हैं, ऐसा ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं। यही बात जिन्होंने तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन किया है, वे और पंचाग्नि की उपासना करने वाले भी कहते हैं ॥ १ ॥

ऋतं पिबन्तावित्यस्या वल्ल्याः [1]संबन्धः । विद्याविद्ये नानाविरुद्धफले इत्यु[2]पन्यस्ते न तु सफले ते यथावन्निर्णीते । तन्निर्णयार्था रथरूपककल्पना, तथा च प्रतिपत्ति-सौकर्यम् । एवं च [3]प्राप्तृप्राप्यगन्तृगन्तव्यविवेकार्थं द्वावात्मानावुपन्यस्येते—

ऋतं सत्यमवश्यंभावित्वात्कर्मफलं पिबन्तौ । एकस्तत्र कर्मफलं पिबति भुङ्क्ते नेतरस्तथाऽपि पातृसंबन्धात्पिबन्तावित्युच्यते छत्रिन्यायेन । सुकृतस्य [4]स्वयंकृतस्य कर्मणः

रथरूपककल्पनेति । प्रसिद्धरथसादृश्यकल्पनेत्यर्थः । ऋतपानकर्ता जीवस्तावदेकश्चेतनः सिद्धो द्वितीयान्वेषणायां लोके संख्याश्रवणे समानस्वभावे [5]प्रथमप्रतीतिदर्शनाच्चेतनतया समानस्वभावः

अथ तृतीय वल्ली

औपाधिक आत्मा में भेद निरूपण

"ऋतं पिबन्तौ" इस तृतीय वल्ली का सम्बन्ध इस प्रकार है। इससे पूर्व नाना विरुद्ध धर्म वाली विद्या और अविद्या बतलायी गयी, किन्तु फल के सहित वे यथार्थरूप में निर्णय नहीं किये गये थे। इसी निर्णय के लिये इस वल्ली में रथरूपक की कल्पना की गयी है; क्योंकि ऐसा करने से विद्या और अविद्या का समझना सरल हो जायगा। इसी प्रकार प्रापक और प्राप्य स्थान, गन्ता और गन्तव्य लक्ष्य का विवेक करने के लिये औपाधिक आत्मा में भेद का वर्णन भी करते हैं।

अवश्यंभावी होने के कारण कर्मफल को सत्य कहा गया है, उस कर्मफल का पान करने वाले दो आत्मा हैं। वस्तुतः उनमें एक कर्मफल का भोक्ता है, दूसरा नहीं। फिर भी "छत्रिणो यान्ति" इस छत्रीन्याय से एक कर्मफल भोगने वाले के सम्बन्ध रखने के कारण दोनों के लिये "पिबन्तौ" इस द्विवचन का प्रयोग हुआ है। किस कर्म के फल का भोग अवश्यंभावी है, ऐसी आकांक्षा होने पर श्रुति

---

१. संबन्ध इति—स चोत्थाप्योत्थापकभावात्मकोऽवगन्तव्यः पूर्वस्योत्तरोत्थापकत्वात् । २. उपन्यस्ते इति—दूरमेते विपरीते विषूची इत्यादावुक्ते इत्यर्थः । ३. प्राप्त्रित्यादि—प्राप्तिस्तदात्मनाऽवस्थितिर्गतिस्तत्साक्षात्कार-मात्रमिति विवेक्तव्यम् । ४. स्वेन कृतं हि सुष्ठु कृतं भवतीत्याशयेन व्याचष्टे—स्वयंकृतस्येति । ५. गवा-संभवे महिषोऽपि प्रत्येतुमर्हतीत्यत उक्तम्—प्रथमेति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ॥ अभयं

यजन करने वाले (कर्मी यजमान के लिये) जो सेतु के समान है, उस नाचिकेत अग्नि को

ऋतमिति पूर्वेण संबन्धः। लोकेऽस्मिञ्शरीरे। गुहां गुहायां बुद्धौ प्रविष्टौ। परमे बाह्यपुरुषाकाशसंस्थानापेक्षया परमम्। परस्य ब्रह्मणोऽर्धं स्थानं परार्ध(र्ध्यं?)म्। तस्मिन्हि परं ब्रह्मोपलभ्यते। अतस्तस्मिन्परमे परार्धे(र्ध्ये?) हार्दाकाशे प्रविष्टावित्यर्थः। तौ च च्छायातपाविव विलक्षणौ संसारित्वासंसारित्वेन ब्रह्मविदो वदन्ति कथयन्ति। न केवलमकर्मिण एव वदन्ति। पञ्चाग्नयो गृहस्थाः। ये च त्रिणाचिकेताः, त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो यैस्ते त्रिणाचिकेताः ॥१॥

यः सेतुरिव सेतुरीजानानां यजमानानां कर्मिणां दुःखसंतरणार्थत्वान्नाचिकेतो-

---

परमात्मैव द्वितीयः प्रतीयते। तस्य चोपचाराद्दृतपातृत्वामित्यर्थः। बाह्यपुरुषाकाशसंस्थानं देहाश्रय आकाशप्रदेशः। पञ्चाग्नय इति। गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीयः सभ्य आवसथ्यश्चेत्येते पञ्चाग्नयो येषां ते तथोक्ताः। द्युपर्जन्यपृथिवीपुरुषयोषित्स्वग्निदृष्टिं ये कुर्वते'ऽग्निहोत्राधिकारिणस्ते वा पञ्चाग्नय इत्यर्थः ॥१॥

ननु न सन्ति ब्रह्मविदः पञ्चाग्निविदश्च सांप्रतमनुपलम्भादित्याशङ्क्य पूर्वविद्वदनुभवविरोधमाह—यः सेतुरिवेत्यादिना। पूर्वेषां यद्यपि ब्रह्मवित्वादि संभवति प्रभातिशयात्तथाऽपि नाऽऽधुनिका-

---

ने 'सुकृतस्य' शब्द का प्रयोग किया है। अपना किया हुआ फल सुकृत कहा जाता है। यहाँ पर सुकृतस्य शब्द का सम्बन्ध पूर्ववर्ती 'ऋतं' शब्द के साथ है अर्थात् अपने किये हुये कर्म का फल अज्ञानी जीव को भोगना ही पड़ता है। यह शरीर लोक है, इसमें बुद्धिरूप गुफा है जिसमें बाह्य देहाश्रित आकाश स्थान की अपेक्षा परब्रह्म परमात्मा की उपलब्धि का स्थान होने के कारण उसे परम परार्ध कहा गया है; क्योंकि उसी में परब्रह्म की उपलब्धि होती है। अतः उस परम परार्ध हृदयाकाश में पूर्वोक्त दोनों आत्मा प्रविष्ट हैं। उनमें से एक संसारी और दूसरा असंसारी होने के कारण दोनों छाया और धूप की भाँति परस्पर विलक्षण स्वभाव वाले हैं, ऐसा ब्रह्मवेत्ता पुरुष कहते हैं। न केवल अकर्मी ब्रह्मवित् पुरुष ऐसा कहते हैं, बल्कि जिन्होंने तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन किया और पंचाग्नि विद्या के उपासक हैं, ऐसे त्रिणाचिकेत और पंचाग्नि के उपासक सद्गृहस्थ भी ऐसे ही कहते हैं ॥ १ ॥

दुःख-सन्तरण का साधन होने से जो नाचिकेत अग्नि कर्म-परायण यजमान के लिये सेतु के

---

१. त्रिःकृत्व इति—त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्यसंधिमित्यत्र भाष्यटिप्पण्यां द्रष्टव्यमिदम्। २० इति पृष्ठे।
२. बाह्यो यः पुरुषाकाशस्तत्संस्थानं यद्वा बाह्यपुरुषो देहस्तस्याश्रयभूत आकाशप्रदेश आकाशसंस्थानमिति व्याचष्टे—देहाश्रय आकाशप्रदेश इति। ३. द्युपर्जन्येत्यादि तथाहि श्रुतिः "असौ वै लोकोऽग्निर्गौतम" इति प्रभृतिः बृ. ६।२।९। ४. "ते य एवमेतद्विदुर्ये चामी अरण्ये श्रद्धाँ सत्यमुपासते तेऽर्चिरभिसंभवन्ती"त्यादि वाक्यशेषाद्गृहिण एव पञ्चाग्निविद्यायामधिक्रियन्त इत्यावेदयन्नाह—अग्निहोत्रादिकारिण इति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तितीर्षतां पारं नाचिकेतँ शकेमहि ॥२॥

आत्मानँ रथिनं विद्धि शरीरँ रथमेव तु ॥

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३॥

तथा संसार से पार जाने वालों का जो अभय, परम आश्रय है, उस अक्षर ब्रह्म को जानने में हम समर्थ होवें ॥ २ ॥

(कर्म फल भोगने वाले संसारी) आत्मा को रथ का स्वामी जानो और शरीर को रथ समझो, बुद्धि को सारथि और संकल्पादि रूप मन को लगाम समझो ॥ ३ ॥

ऽग्निस्तं वयं ज्ञातुं चेतुं च शकेमहि शक्नुवन्तः। किंच यच्चाभयं भयशून्यं संसारस्य पारं तितीर्षतां तर्तुमिच्छतां ब्रह्मविदां यत्परमाश्रयमक्षरमात्माख्यं ब्रह्म तच्च ज्ञातुं शकेमहि शक्नुवन्तः। परापरे ब्रह्मणी कर्मब्रह्मविदाश्रये वेदितव्ये इति वाक्यार्थः। एतयोरेव ह्युपन्यासः कृत ऋतं पिबन्ताविति ॥२॥

तत्र य उपाधिकृतः संसारी विद्याविद्ययोरधिकृतो मोक्षगमनाय संसारगमनाय च तस्य तदुभयगमने साधनो रथः कल्प्यते। तत्र तमात्मानमृतपं संसारिणं रथिनं रथस्वामिनं विद्धि जानीहि। शरीरं रथमेव तु [1]रथवद्धहयस्थानीयैरिन्द्रियैराकृष्यमाणत्वाच्छरीरस्य। बुद्धिं तु अध्यवसायलक्षणां सारथिं विद्धि बुद्धिनेतृप्रधानत्वाच्छरीरस्य।

नामल्पप्रज्ञानां संभवतीत्याशङ्क्य चेतनत्वात्स्वाभाविकी ज्ञातृत्वयोग्यताऽस्तीत्यभिप्रेत्य तात्पर्यमाह—परापरे इति ॥२॥

तत्रेति। तयोः प्रथमग्रन्थोक्तयोरात्मनोर्मध्ये ॥३॥

समान कहा गया है, उसे हम जानें और अनुष्ठान करने में समर्थ हों तथा जो भयरहित है एवं संसार से पार जाने के इच्छुक ब्रह्मवेत्ताओं का परम आश्रय अविनाशी आत्मा नामक ब्रह्म है, उसे भी हम जानने में समर्थ हो सकें। तात्पर्य यह है कि कर्मवित् पुरुष का आश्रय अपर ब्रह्म है और ब्रह्मवित् पुरुष का आश्रय परब्रह्म है, ये दोनों ही जानने योग्य हैं; इन्हीं दोनों स्वरूपों का उल्लेख पिछले "ऋतं पिबन्तौ" इत्यादि मन्त्र में किया गया है ॥ २ ॥

शरीरादि उपाधि वाला आत्मा का रथादि रूपक

उनमें औपाधिक आत्मा संसारी है, वही विद्या और अविद्या साधनों का अधिकारी है। मोक्ष के लिये विद्या और संसार जन्म के लिये अविद्या का आश्रय लेता है, उन दोनों के प्रति उसके साधन स्वरूप रथ की कल्पना की जाती है। उनमें कर्मफल भोगने वाले उस संसारी आत्मा को रथ का स्वामी जान और शरीर को तो रथ ही समझ; क्योंकि शरीररूप रथ में बंधे हुये अश्व-स्थानीय इन्द्रियों से यह शरीररूप रथ खींचा जाता है। निश्चय करने वाली बुद्धिवृत्ति को सारथि जाने, रथ में सारथि

१. रथबद्धहयेति—अत्र रथवद्धयेति टीकानुरोधी पाठः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान् ॥
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥४॥

(रथ कल्पना में कुशल विवेकी पुरुष) इन्द्रियों को घोड़े कहते हैं, (उन इन्द्रियों को घोड़े रूप कल्पना करने पर) रूपादि विषयों को उनके मार्ग बतलाते हैं और शरीर, इन्द्रियों एवं मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं ॥ ४ ॥

सारथिनेतृप्रधान इव रथः। सर्वं हि देहगतं कार्यं बुद्धिकर्तव्यमेव प्रायेण। मनः संकल्पविकल्पादिलक्षणं प्रग्रहं रशनां विद्धि। मनसा हि प्रगृहीतानि श्रोत्रादीनि करणानि प्रवर्तन्ते रशनयेवाश्वाः ॥३॥

इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि हयानाहू रथकल्पनाकुशलाः शरीररथाकर्षणसामान्यात्। तेष्विन्द्रियेषु हयत्वेन परिकल्पितेषु गोचरान्मार्गान्रूपादीन्विषयान्विद्धि। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं शरीरेन्द्रियमनोभिः सहितं संयुक्तमात्मानं भोक्तेति संसारीत्याहुर्मनीषिणो विवेकिनः। न हि केवलस्याऽऽत्मनो भोक्तृत्वमस्ति बुद्ध्याद्युपाधिकृतमेव तस्य भोक्तृत्वम्। तथा च श्रुत्यन्तरं केवलस्याभोक्तृत्वमेव दर्शयति—ध्यायतीव लेलायतीवेत्यादि। एवं च सति वक्ष्यमाणरथकल्पनया वैष्णवस्य पदस्याऽऽत्मतया प्रतिपत्तिरुपपद्यते नान्यथा स्वभावानतिक्रमात् ॥४॥

आत्मा रथस्वामी यः कल्पितस्तस्य भोक्तृत्वं च न स्वाभाविकमित्याह—आत्मेन्द्रियमनोयुक्तमिति। औपाधिके भोक्तृत्वेऽन्वयव्यतिरेकौ शास्त्रं च प्रमाणमित्याह—न हि केवलस्येति। वैष्णवपदप्राप्तिश्रुत्यनुपपत्त्याऽपि न स्वाभाविकं भोक्तृत्वं वाच्यमित्याह—एवं च सतीति ॥४॥

प्रधान होता है। ऐसे ही इस शरीररूप रथ में बुद्धि की प्रधानता मानी गयी है; क्योंकि देह के सभी कार्य प्रायशः बुद्धि के ही कर्तव्य हैं एवं संकल्प-विकल्पादिरूप मन को लगाम समझ; क्योंकि जैसे लगाम से नियन्त्रित हो घोड़े चलते हैं, वैसे ही मन से नियन्त्रित हो श्रोत्रादि इन्द्रियाँ अपने विषयों में प्रवृत्त होती हैं ॥ ३ ॥

रथ की कल्पना करने में कुशल पुरुषों ने नेत्रादि इन्द्रियों को घोड़े कहा है; क्योंकि घोड़े रथ को खींचते हैं, इन्द्रियाँ शरीर को खींचती हैं, इस अर्थ में दोनों की समानता है। इस प्रकार उन इन्द्रियों को घोड़े रूप से कल्पना कर लेने पर रूपादि विषयों को उनके विचरने का मार्ग जान तथा शरीर, इन्द्रियाँ और मन के सहित उनसे संयुक्त आत्मा को भोक्ता संसारी रूप में विवेकी पुरुषों ने कहा है क्योंकि शुद्ध आत्मा में भोक्तृत्व नहीं है, उसमें भोक्तृत्व तो बुद्धि आदि उपाधि के कारण ही है। ऐसा ही "ध्यान करता हुआ-सा, चेष्टा करता हुआ-सा" इत्यादि एक अन्य श्रुति भी केवल आत्मा में भोक्तृत्व का अभाव ही बतलाती है। ऐसा होने पर भी आगे कहे जाने वाले रथ कल्पना द्वारा वैष्णव पद की आत्मरूप से प्राप्ति बन सकती है, अन्यथा नहीं। स्वाभाविक भोक्तृत्व मानने पर मोक्ष दशा में भी वह बना रहेगा क्योंकि स्वभाव कभी भी बदलता नहीं ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ॥
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥५॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ॥
यस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ।६॥

किन्तु जो (बुद्धिरूप सारथी रथ-संचालन में) सर्वथा अकुशल (प्रवृत्ति-निवृत्ति के विवेक से रहित है) और जो असंयत चित्त से युक्त है, उसके अधीन इन्द्रियाँ उसी प्रकार नहीं रहतीं, जैसे अन्य सारथि के अधीन दुष्ट घोड़े (काबू में नहीं रहते) ॥ ५ ॥

किन्तु जो (पूर्वोक्त सारथी से विपरीत बुद्धिरूप सारथी) कुशल और सदा नियन्त्रित मन से युक्त होता है, उसके (अश्वस्थानीय) अधीन इन्द्रियाँ इस प्रकार रहती हैं जैसे सारथी के अधीन अच्छे घोड़े (काबू में रहते हैं) ॥ ६ ॥

तत्रैवं सति यस्तु बुद्ध्याख्यः सारथिरविज्ञानवाननिपुणोऽविवेकी प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च भवति यथेतरो रथचर्यायामयुक्तेनाप्रगृहीतेनासमाहितेन मनसा प्रग्रहस्थानीयेन सदा युक्तो भवति तस्याकुशलस्याबुद्धिसारथेरिन्द्रियाण्यश्वस्थानीयान्यवश्यान्यशक्यान्यनिवारणीयानि दुष्टाश्वा अदान्ताश्वा इवेतरसारथेर्भवन्ति ॥५॥

यस्तु पुनः पूर्वोक्तविपरीतः सारथिर्भवति विज्ञानवान्निपुणो विवेकवान्युक्तेन मनसा प्रगृहीतमनाः समाहितचित्तः सदा तस्याश्वस्थानीयानीन्द्रियाणि प्रवर्तयितुं निवर्तयितुं वा शक्यानि वश्यानि दान्ताः सदश्वा इवेतरसारथेः ॥६॥

॥५॥
॥६॥

अज्ञानी की विवशता

ऐसा होने पर भी जो बुद्धिरूप सारथि रथ संचालन में अकुशल है, अन्य सारथि के समान इन्द्रियरूप घोड़ों की प्रवृत्ति और निवृत्ति के विवेक से शून्य है, सर्वदा लगाम स्थानीय असमाहित विक्षिप्त चित्त से युक्त है, उस कौशलहीन बुद्धिरूप सारथि के इन्द्रियरूप घोड़े वैसे ही बेकाबू हो जाते हैं जैसे रथादि के हाँकने वाले अन्य सारथि के दुष्ट घोड़े बेकाबू हो जाते हैं अर्थात् जैसे वह सारथि दुष्ट घोड़ों को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग में नहीं चला सकता, ऐसे ही इस रथ का चालक बुद्धिरूप सारथि भी दुष्ट इन्द्रियों को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग में नहीं चला सकता ॥ ५ ॥

ज्ञानी की स्वाधीनता

किन्तु पूर्वोक्त सारथि से विपरीत जो कुशल बुद्धिरूप सारथि मन को नियन्त्रित रखने वाला समाहित चित्त होता है, उसके अधीन अश्वस्थानीय इन्द्रियाँ वैसे ही स्वाधीन रहती हैं, जैसे सारथि के लिये अच्छे घोड़े; फिर तो वह विवेकशील कुशल सारथि उन इन्द्रियरूप घोड़ों को कुमार्ग से निवृत्त करने और सुमार्ग में प्रवृत्त करने में स्वतन्त्र होता है ॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्र पूर्वोक्तस्याविज्ञानवतो बुद्धिसारथेरिदं फलमाह—

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ॥
न स तत्पदमाप्नोति सꣳसारं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ॥
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ८ ॥

परन्तु जो अविज्ञानवान् अनियन्त्रित चित्त और सदा अपवित्र रहने वाला सारथी होता है (ऐसे सारथि के द्वारा) वह रथी उस परम पद को प्राप्त नहीं कर सकता, बल्कि जन्म-मरणरूप संसार को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

किन्तु जो द्वितीय विज्ञानवान्-सारथी से युक्त संयतचित्त और सदा पवित्र रहने वाला रथी होता है, वह तो उसी पद को प्राप्त करता है जहाँ से फिर (संसार में) उत्पन्न नहीं होता ॥ ८ ॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवति । अमनस्कोऽप्रगृहीतमनस्कः स तत एवाशुचिः सदैव । न सारथी तत्पूर्वोक्तमक्षरं यत्परं पदमाप्नोति तेन सारथिना । न केवलं कैवल्यं नाऽऽप्नोति संसारं च जन्ममरणलक्षणमधिगच्छति ॥७॥

यस्तु द्वितीयो विज्ञानवान्विज्ञानवत्सारथ्युपेतो रथी विद्वानित्येतत् । युक्तमनाः समनस्कः स तत एव सदा शुचिः स तु तत्पदमाप्नोति । यस्मादाप्तात्पदादप्रच्युतः सन्भूयः पुनर्न जायते संसारे ॥८॥

॥ ७ ॥
॥ ८ ॥

अविवेकी की संसारगति

पहले कहे गये उस अविवेकी बुद्धिरूप सारथि वाले रथ के स्वामी के लिये अब श्रुति यह फल बतलाती है—

किन्तु जो अविज्ञानवान् असंयत चित्त सारथि है, इसीलिये सदा वह अपवित्र भी है, ऐसे सारथि के द्वारा संचालित रथ पर बैठा हुआ जीवात्मारूप रथी उस पूर्वोक्त अविनाशी परम पद को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता । न केवल वह रथी परम पद की प्राप्ति से वञ्चित रहता है, बल्कि जन्म-मरण रूप संसार को भी वह प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

विवेकी की परमपद प्राप्ति

किन्तु जो दूसरा कुशल सारथि से युक्त समाहित चित्त है, इसीलिये वह सदा पवित्र रहने वाला है, ऐसे सारथि से संचालित रथ पर बैठा हुआ जीवात्मा रूप रथी उसी पद को प्राप्त कर लेता है; जिस प्राप्त पद से च्युत न होकर फिर संसार में वह जन्म नहीं लेता ॥ ८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किं तत्पदमित्याह—

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।। ९ ।।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।।

जो मनुष्य विवेक बुद्धि वाले सारथी से युक्त और मन रूपी लगाम को अपने अधीन रखने वाला होता है, वह संसार गति से पार होकर व्यापक परमात्मा के परम पद स्थान को प्राप्त कर लेता है ।। ९ ।।

इन्द्रियों की अपेक्षा (उनके आरम्भक भूत सूक्ष्म रूप) विषय श्रेष्ठ हैं, उन विषयों से मन का आरम्भक भूत सूक्ष्म श्रेष्ठ है, मन से भी श्रेष्ठ बुद्धि-शब्द-वाच्य निश्चयादि का आरम्भक भूत सूक्ष्म

विज्ञानसारथिर्यस्तु यो विवेकबुद्धिसारथिः पूर्वोक्तो मनःप्रग्रहवान्प्रगृहीतमनाः समाहितचित्तः सञ्शुचिर्नरो विद्वान्सोऽध्वनः संसारगतेः पारं परमेवाधिगन्तव्यमित्येतदाप्नोति मुच्यते सर्वसंसारबन्धनैः । तद्विष्णोर्व्यापनशीलस्य ब्रह्मणः परमात्मनो वासुदेवाख्यस्य परमं प्रकृष्टं पदं स्थानं सतत्त्वमित्येतद्यदसावाप्नोति विद्वान् ।।९।।

अधुना यत्पदं गन्तव्यं तस्येन्द्रियाणि स्थूलान्यारभ्य सूक्ष्मतारतम्यक्रमेण प्रत्यगात्मतयाऽधिगमः कर्तव्य इत्येवमर्थमिदमारभ्यते—

स्थूलानि तावदिन्द्रियाणि तानि यैरर्थैरात्मप्रकाशनायाथाऽऽरब्धानि तेभ्य इन्द्रियेभ्यः

।। ९ ।।

वह पद क्या है, इसे बतलाते हैं—

जो पहले कहे गये विद्वान् पुरुष विवेकी बुद्धिरूप सारथि से युक्त है, निगृहीत चित्त एकाग्र मन वाला होने के कारण पवित्र है, वह रथी संसार मार्ग के पार अवश्य प्राप्तव्य परमात्मा को प्राप्त कर ही लेता है, फिर तो सम्पूर्ण संसार बन्धनों से वह मुक्त हो जाता है । उस सर्वव्यापक परब्रह्म परमात्मा विष्णु का जो सर्वोत्कृष्ट स्थान अर्थात् स्वरूप है, उसे वह विद्वान् अवश्य प्राप्त लेता है ।। ९ ।।

इन्द्रियादिकों के तारतम्य का वर्णन

जो प्राप्तव्य परमपद है, जिसे अन्तरात्मा रूप में जानना आवश्यक है; उस तत्त्व को बतलाने के लिये स्थूल इन्द्रियों से प्रारम्भ कर सूक्ष्मत्व तारतम्य प्रतिपादन द्वारा ज्ञान प्राप्त कराने के लिये अब आगे का प्रसंग प्रारम्भ किया जाता है ।

जिन शब्द-स्पर्शादि विषयों द्वारा अपने को प्रकाशित करने के लिये इन्द्रियों का निर्माण हुआ है, उन विषयों की अपेक्षा इन्द्रियाँ स्थूल हैं और वे अपंचीकृत पंचमहाभूत सूक्ष्म विषय अपने कार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ १० ॥

है और ऐसी बुद्धि से महान् आत्मा (महत्तत्त्व) उत्कृष्ट है ॥ १० ॥

स्वकार्येभ्यस्ते परा ह्यर्थाः सूक्ष्मा महान्तश्च प्रत्यगात्मभूताश्च । तेभ्योऽप्यर्थेभ्यश्च परं सूक्ष्मतरं महत्प्रत्यगात्मभूतं च मनः । मनःशब्दवाच्यं मनस आरम्भकं भूतसूक्ष्मम् । संकल्पविकल्पाद्यारम्भकत्वान्मनसोऽपि परा सूक्ष्मतरा महत्तरा प्रत्यगात्मभूता च बुद्धिर्बुद्धिशब्दवाच्यमध्यवसायाद्यारम्भकं भूतसूक्ष्मम् । बुद्धेरात्मा सर्वप्राणिबुद्धीनां प्रत्यगात्मभूतत्वादात्मा महान्सर्वमहत्त्वादव्यक्ताद्यत्प्रथमं जातं हैरण्यगर्भं तत्त्वं बोधाबोधात्मकं महानात्मा बुद्धेः पर इत्युच्यते ॥१०॥

प्रत्यगात्मभूताश्चेति । प्रत्यगनपायिस्वरूपभूता इत्यर्थः । नन्वर्थेभ्यो मनस आरम्भकं भूतसूक्ष्मं परम् । तस्माद्बुद्ध्यारम्भकं भूतसूक्ष्मं परमिति न युक्तम् । कार्यापेक्षया ह्युपादानमुपचितावयवं व्यापकमनपायिस्वरूपं च प्रसिद्धम् । यथा घटादेर्मृदादिः । न चेह भूतसूक्ष्माणां परस्परकार्यकारणभावे मानमस्ति । सत्यम्, तथाऽपि विषयेन्द्रियव्यवहारस्य मनोधीनतादर्शनान्मनस्तावद्व्यापकं कल्प्यते । तच्च परमार्थत एवाऽऽत्मभूतमिति केषांचिद्भ्रमस्तन्निरासायोक्तं मनःशब्दवाच्यं भूतसूक्ष्ममिति । अन्नमयं हि सोम्य मन इत्यादिश्रुतेर्भौतिकत्वावगमादन्नभावाभावाभ्यामुपचयापचयदर्शनाद्भौतिकमेव तत् । तस्य च संकल्पादिलक्षणस्याध्यवसायनियम्यत्वाद्बुद्धि(द्धे?)स्ततः पर[त्व?]मिति । बुद्धिश्चाऽऽत्मेति केषांचिदभिमानस्तदपनयार्थमाह—बुद्धिशब्दवाच्यमिति । करणत्वादिन्द्रियबुद्धेर्भौतिकत्वं सिद्धम् । करणत्वं च स्वबुद्ध्याऽहमुपलभ्य इत्यनुभवात्सिद्धम् । ततो भूतावयवसंस्थानेष्वेवार्थादिषूत्तरोत्तरं परापरत्वं (परत्वं) कल्प्यं परमपुरुषार्थं दिदर्शयिषया । न त्वर्थादीनां परत्वं प्रतिपिपादयिषितं प्रयोजनाभावाद्वाक्यभेदप्रसङ्गाच्चेति । सुरनरतिर्यगादिबुद्धीनां विधारकत्वात्तासात्यगमनादात्मोच्यते सूत्रसंज्ञकं हैरण्यगर्भतत्त्वमित्यर्थः । बोधाबोधात्मकमिति । ज्ञानक्रियाशक्त्यात्मकमित्यर्थः । अथवाऽधिकारिपुरुषाभिप्रायेण बोधात्मकत्वमव्यक्तस्याऽऽद्यः परिणाम उपाधिरपञ्चीकृतभूतात्मकस्तेन रूपेणाबोधात्मकत्वं हिरण्यगर्भस्येत्यर्थः ॥ १० ॥

इन्द्रिय वर्ग की अपेक्षा से सूक्ष्म, महान् एवं प्रत्यगात्म स्वरूप होने के कारण पर हैं उन विषयों से भी पर अर्थात् सूक्ष्म, महान् और प्रत्यगात्म स्वरूप मन है, जिसे यहाँ पर मन शब्द से कहा गया। पर वस्तुतः मन का आरम्भक भूत सूक्ष्म है क्योंकि अपंचीकृत पंचमहाभूत के मिले हुये सत्त्व अंश से संकल्प-विकल्पात्मक मन का निर्माण हुआ है। मन से भी पर अर्थात् सूक्ष्मतर, महत्तर एवं प्रत्यगात्मभूत बुद्धि है। जिस भूत सूक्ष्म से बुद्धि की रचना हुई है, उस भूत सूक्ष्म को ही बुद्धि शब्द से ही यहाँ पर कहा गया है, उस बुद्धि से भी सम्पूर्ण प्राणियों की बुद्धि का प्रत्यगात्मभूत होने से महान् आत्मा जो सब से पर कहा गया है अर्थात् सर्वप्रथम अव्यक्त से समष्टि बुद्धि अभिमानी हिरण्यगर्भ तत्त्व ही उत्पन्न हुआ है, जो महान् आत्मा (ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति से युक्त होने के कारण) बोध एवं अबोध रूप है, वह व्यष्टि बुद्धि की अपेक्षा से भी पर कहा गया है ॥ १० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥

महत्तत्त्व से सूक्ष्मतर (सम्पूर्ण जगत् का बीजभूत) अव्यक्त (अव्याकृत प्रकृति) है और अव्यक्त से सूक्ष्मतर श्रेष्ठ पुरुष से परे अन्य कुछ भी नहीं है। वही पराकाष्ठा है एवं वही सर्वोत्कृष्ट गति है ॥ ११ ॥

महतोऽपि परं सूक्ष्मतरं प्रत्यगात्मभूतं सर्वमहत्तरं चाव्यक्तं सर्वस्य जगतो बीजभूतमव्याकृतनामरूपसतत्त्वं सर्वकार्यकारणशक्तिसमाहाररूपमव्याकृताकाशादिनामवाच्यं परमात्मन्योतप्रोतभावेन समाश्रितं वटकणिकायामिव वटवृक्षशक्तिः। तस्मादव्यक्तात्परः सूक्ष्मतरः सर्वकारणत्वात्प्रत्यगात्मत्वाच्च महांश्च, अत एव पुरुषः सर्वपूरणात्। ततोऽन्यस्य परस्य प्रसङ्गं निवारयन्नाह—पुरुषान्न परं किंचिदिति। यस्मान्नास्ति पुरुषाच्चिन्मात्रघनात्परं किंचिदपि वस्त्वन्तरं तस्मात्सूक्ष्मत्वमहत्त्वप्रत्यगात्मत्वानां सा काष्ठा निष्ठा पर्यवसानम्। अत्र हीन्द्रियेभ्य आरभ्य सूक्ष्मत्वादिपरिसमाप्तिः। अत एव च

प्रलये सर्वकार्यकारणशक्तीनामवस्थातमभ्युपगन्तव्यं शब्दार्थसंबन्धस्य शक्तिलक्षणस्य नित्यत्वनिर्वाहाय। तासां शक्तीनां समाहारो मायातत्त्वं भवति ब्रह्मणोऽसङ्गत्वादिति शक्तिसमाहाररूपमव्यक्तमित्यर्थः। "तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीदेतस्मिन्खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतश्च प्रोतश्च" "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्" इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं चाव्यक्तम्। तस्य सांख्याभिमतप्रधानाद्वैलक्षण्यमाह—परमात्मनीति। शक्तित्वेनाद्वितीयत्वाविरोधित्वमाह—वटकणिकायामिवेति। भाविवटवृक्षशक्तिमद्वटबीजं स्वशक्त्या न सद्वि(द्वि)तीयं कथ्यते तद्वद्ब्रह्मापि न मायाशक्त्या सद्वि(द्वि)तीयम्। सत्त्वादिरूपेण निरूप्यमाणे व्यक्तिरस्य नास्तीत्यव्यक्तम्। ततोऽव्यक्तशब्दादप्यद्वैताविरोधित्वं द्रष्टव्यम्। सर्वस्य प्रपञ्चस्य कारणमव्यक्तम्। तस्य परमात्मपरतन्त्रत्वात्परमात्मन उपचारेण कारणत्व-

---

महत् से भी पर यानी सूक्ष्मतर, प्रत्यगात्मभूत और सबसे महत्तर सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण अव्यक्त है। अव्याकृत नामरूप का सत्ता स्वरूप सम्पूर्ण कार्य-करण शक्ति का समाहाररूप जो तत्त्व है, उसे अव्यक्त, अव्याकृत और आकाशादि नामों से कहा गया है। वह परमात्मा में वैसे ही ओत-प्रोत है, जैसे वट बीज में वट वृक्ष की शक्ति ओत-प्रोत है। उस अव्यक्त की अपेक्षा भी पर अर्थात् सूक्ष्म, महान् एवं प्रत्यगात्म रूप होने के कारण पुरुष श्रेष्ठ है। इसीलिये सब में पूरित होने से उसे पुरुष कहते हैं, उसके सिवा किसी दूसरे उत्कृष्टतर वस्तु का प्रसंग न आ जाय, अतः इस प्रसंग को दूर करते हुए श्रुति कह रही है कि पुरुष में पर दूसरा कुछ भी नहीं है। वस्तुतः सच्चिदानन्दघन मात्र पुरुष से भिन्न कोई वस्तु ही नहीं है। अतएव वह पुरुष ही सूक्ष्मत्व, महत्त्व और प्रत्यगात्मत्व की पराकाष्ठा यानी स्थिति है। इन्द्रियों से प्रारम्भ कर सूक्ष्मत्वादिकों की परिसमाप्ति इस आत्मा में ही होती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥

आत्मा सूक्ष्म बुद्धि से ग्राह्य है (ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त) सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ यह आत्मा (किसी को आत्म रूप से) प्रकाशित नहीं होता है। यह तो सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा संस्कृत और सूक्ष्म बुद्धि से ही देखा जाता है ॥ १२ ॥

गन्तॄणां सर्वगतिमतां संसारिणां सा परा प्रकृष्टा गतिः। यद्गत्वा न निवर्तन्त इति स्मृतेः ॥११॥

ननु गतिश्चेदागत्याऽपि भवितव्यं कथं यस्माद्भूयो न जायत इति। नैष दोषः। सर्वस्य प्रत्गात्मत्वादवगतिरेव गतिरित्युपचर्यते। प्रत्यगात्मत्वं च दर्शितमिन्द्रियमनोबुद्धिपरत्वेन। यो हि गन्ता सोऽगतमप्रत्यग्रूपं गच्छत्यनात्मभूतं न विपर्ययेण। तथा च श्रुतिः—"अनध्वगा अध्वसु पारयिष्णवः" इत्याद्या। तथा च दर्शयति प्रत्यगात्मत्वं

मुच्यते न त्वव्यक्तवद्विकारितयाऽनादित्वादव्यक्तस्य पारतन्त्र्यं च पृथक्सत्त्वे प्रमाणाभावादात्मसत्तयैव सत्तावत्त्वाच्चेत्यर्थः ॥११॥

पारयिष्णव इति। संसारपारं गन्तार इत्यर्थः। न प्रकाशते चेर्त्तर्हि नास्त्येवेति न वाच्यं लिङ्गदर्शनादित्याह। दर्शनश्रवणादीनि कर्माण्यस्येति तथोक्तः। जीवस्य प्रकाशत्वे ब्रह्मात्मत्वे सत्यपि योऽयं ब्रह्मस्वरूपानवभासः स केनापि प्रतिबन्धेन कृत इति कल्प्यते। तच्च प्रतिबन्धकं न

है। अतएव सम्पूर्ण गतिशील संसारियों की सर्वोत्कृष्ट गति परमात्मा ही है। इसी बात को "जिसे प्राप्त कर फिर लौटते नहीं" इस गीता स्मृति से भी कहा गया है ॥ ११ ॥

आत्मा सुख-समृद्धि से ग्रहण योग्य है

शंका :—यदि जीव की परमात्मा में गति है, तो वहाँ से अगति भी होनी ही चाहिये। फिर यह कैसे कहा गया कि जिसके पास जाकर फिर जीव जन्म नहीं लेता ?

समाधान :—यह दोष नहीं है; क्योंकि सबका प्रत्यगात्मरूप होने के कारण परमात्मा सदा सबको प्राप्त है। अतः उसके ज्ञान को ही औपचारिक दृष्टि से गति कहा गया है। वैसे ही इन्द्रिय, मन और बुद्धि से आत्मा में परत्व दिखला कर उसका प्रत्यगात्मत्व भी सिद्ध किया क्योंकि जो जाने वाला है, वह अपने से भिन्न अनात्मरूप अप्राप्त स्थान की ओर ही जाया करता है। इससे विपरीत अपनी ही ओर आना-जाना नहीं बनता। इसे दूसरी श्रुति भी बतलाती है कि संसार मार्ग से पार होने की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरुष मार्गरहित होते हैं एवं अग्रिम श्रुति भी पुरुष में सबके प्रत्यगात्मत्व को दिखलाती है।

यह प्रकृत पुरुष ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ (उपाधि का आश्रय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वस्य । एष पुरुषः सर्वेषु ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तेषु भूतेषु गूढः संवृतो दर्शनश्रवणादिकर्माऽविद्यामायाछन्नोऽत एवाऽऽत्मा न प्रकाशत आत्मत्वेन कस्यचित् । अहो अतिगम्भीरा दुरवगाह्या विचित्रा माया चेयं यदयं सर्वो जन्तुः परमार्थतः परमार्थसतत्त्वोऽप्येवं बोध्यमानोऽहं परमात्मेति न गृह्णात्यनात्मानं देहेन्द्रियादिसंघातमात्मनो दृश्यमानमपि घटादिवदात्मत्वेनाहममुष्य पुत्र इत्यनुच्यमानोऽपि गृह्णाति । नूनं परस्यैव मायया मोमुह्यमानः सर्वो लोको बंभ्रमीति । तथा च स्मरणं—"नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः" इत्यादि । ननु विरुद्धमिदमुच्यते मत्वा धीरो न शोचति न प्रकाशत इति च । नैतदेवम् । असंस्कृतबुद्धेरविज्ञेयत्वान्न प्रकाशत इत्युक्तम् । दृश्यते तु संस्कृतयाऽग्रचयाऽग्रमिवाग्रचा तयैकाग्रतयोपेतयेत्येतत्सूक्ष्मया सूक्ष्मवस्तुनिरूपणपरया । कैः । सूक्ष्मदर्शिभिरिन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था इत्यादिप्रकारेण सूक्ष्मतापारम्पर्यदर्शनेन परं सूक्ष्मं द्रष्टुं शीलं येषां ते सूक्ष्मदर्शिनस्तैः सूक्ष्मदर्शिभिः पण्डितैरित्येतत् ॥१२॥

वस्तु ज्ञानान्मुक्तिश्रुतेर्बाधप्रसङ्गात् । ततोऽविद्यैव प्रतिबन्धिकेत्याह—अविद्यामायाच्छन्न इति । निदिध्यासनप्रचयेनैकाग्र्यमापन्नमन्तःकरणं यदा सहकारि संपाद्यते तदा तत्सहकृतान्महावाक्यादहं ब्रह्मास्मीति या बुद्धिवृत्तिरुत्पद्यते तस्यामभिव्यङ्गो ब्रह्मभाव इति स्वतोऽपरोक्षतया व्यवह्रियत इति दृश्यत्वमुपचर्यते । यो हि यत्प्रयुक्तव्यवहारः स तद्दृश्य इति प्रसिद्धम् ॥१२॥

लेकर) दर्शन-श्रवण आदि कर्म करने वाला तथा अविद्या रूप माया से आच्छन्न है । अतः सबका अन्तरात्मा स्वरूप होता हुआ भी 'यही मैं हूँ' इस रूप में किसी के प्रति प्रकाशित नहीं होता । अहो ! यह माया अति गम्भीर, दुःखग्राह्य और विचित्र है, जिससे कि ये संसार के सभी जीव वस्तुतः परमार्थ स्वरूप होते हुए भी शास्त्र एवं आचार्य के द्वारा वैसा बोध कराये जाने पर भी 'मैं परमात्मा हूँ' इस तत्त्व को ग्रहण नहीं कर पाते । इसके विपरीत देह इन्द्रियादि संघात घटादि दृश्य के समान आत्मा के दृश्य होते हुए भी किसी के उपदेश किये हुए विना ही देहात्मबुद्धि कर 'मैं उसका पुत्र हूँ' इत्यादि प्रकार से आत्मबुद्धि करते रहते हैं । निःसन्देह उस परमात्मा की माया से ही यह सारा संसार अत्यन्त विभ्रान्त हो रहा है । ऐसा ही "योगमाया से अच्छी प्रकार आवृत्त हुआ सबके सामने मैं प्रकाशित होता हुआ" यह गीता स्मृति भी है ।

शंका :—"उसे जानकर धीर पुरुष शोक नहीं करता", "वह गूढ़ आत्मा प्रकाशित नहीं होता" इस प्रकार यह परस्पर विरुद्ध कैसे कहा गया है ?

समाधान :—ऐसा कहना ठीक नहीं; क्योंकि मलिन बुद्धि पुरुष के लिये अविज्ञेय होने के कारण वह प्रकाशित नहीं होता, ऐसा कहा गया है और संस्कारयुक्त पैनी बुद्धि से जानने योग्य होने के कारण 'दृश्यते' कहा गया है । सूक्ष्म वस्तु के ग्रहण करने में तत्पर एकाग्रता से युक्त बुद्धि से ही आत्मा का ग्रहण सम्भव है; इस पर भी "इन्द्रियों से उनके आरम्भक विषय सूक्ष्म हैं" इत्यादि रूप से सूक्ष्मता की परम्परा का विचार करते रहने के कारण जिनका स्वभाव सूक्ष्म वस्तु को देखने योग्य हो गया है, ऐसे सूक्ष्मदर्शी पण्डितों को ही वह आत्मा दिखलाई देता है, यही इसका तात्पर्य है ॥ १२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ।। १३ ।।
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।। क्षुरस्य

विवेकी पुरुष वाणी आदि सभी इन्द्रियों को मन में लीन करे, उस मन का प्रकाश स्वरूप बुद्धि को महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व को (निर्विशेष, निर्विकार सर्व बुद्धि के साक्षी) शान्त आत्मा में लीन करे ।। १३ ।।

(अरे ! अनादि अविद्या में सोये हुए जीवो !) उठो, सम्पूर्ण अनर्थों की बीजभूत अज्ञान निद्रा से) जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के पास आकर (परमात्मतत्त्व को आत्मरूप से) अच्छी प्रकार

यच्छेन्नियच्छेदुपसंहरेत्प्राज्ञो विवेकी । किम् । वाग्वाचम् । वागत्रोपलक्षणार्था सर्वेषामिन्द्रियाणाम् । क्व । मनसी मनसीति च्छान्दसं दैर्घ्यम् । तच्च मनो यच्छेज्ज्ञाने प्रकाशस्वरूपे बुद्धावात्मनि । बुद्धिर्हि मनआदिकरणान्याप्नोतीत्यात्मा प्रत्यक्तेषाम् । ज्ञानं बुद्धिमात्मनि महति प्रथमजे नियच्छेत् । प्रथमजवत्स्वच्छस्वभावकमात्मनो विज्ञानमापादयेदित्यर्थः । तं च महान्तमात्मानं यच्छेच्छान्ते सर्वविशेषप्रत्यस्तमितरूपेऽविक्रिये सर्वान्तरे सर्वबुद्धिप्रत्ययसाक्षिणि मुख्य आत्मनि ।।१३।।

तत्प्रतिपत्त्युपायमाह—

एवं पुरुष आत्मनि सर्वं प्रविलाप्य नामरूपकर्मत्रयं यन्मिथ्याज्ञानविजृम्भितं क्रिया-

---

।।१३।।

क्रमेणैवं विषयदोषदर्शनेनाभ्यासेन च बाह्यकरणान्तःकरणव्यापारप्रविलापने सति प्रविलापनं कर्तुः कः पुरुषार्थः सिध्यतीत्यत आह—एवं पुरुष इत्यादिना ।।१४।।

लय चिन्तन प्रकार

अब उसकी प्राप्ति का उपाय बतलाते हैं—

विवेकी पुरुष उपसंहार करे किसका ? वाणी का । यहाँ पर वाक् शब्द सम्पूर्ण इन्द्रियों का उपलक्षण करने के लिये आया है । किसमें उपसंहार करे ? मन में । यहाँ पर 'मनसी' इस पद में ह्रस्व इकार के स्थान पर दीर्घ ईकार का प्रयोग वैदिक है । फिर उस मन को प्रकाशस्वरूप बुद्धि में लीन करे । मन और इन्द्रियों में व्याप्त होने के कारण बुद्धि ही उनका आत्मा यानी प्रत्यक् स्वरूप है, उसके चिदाभास युक्त होने के कारण ज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रथम विकार महान् आत्मा में लीन करे । तात्पर्य यह है कि प्रथम उत्पन्न महत्तत्त्व जैसा स्वच्छ है, वैसा ही आत्मा का स्वच्छ स्वभाव विज्ञान प्राप्त करे । पुनः उस महान् आत्मा को सम्पूर्ण विशेषणों से रहित निर्विकार, सर्वान्तर एवं बुद्धि की सम्पूर्ण वृत्तियों का साक्षीस्वरूप शान्त आत्मा में लीन करे । यही आत्मा मुख्य है और सर्वान्तर है ।। १३ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥

जानो। जैसे पैनी की हुई छूरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्त्वज्ञानी पुरुष उस मार्ग को वैसे ही दुष्प्राप्य बतलाते हैं ॥ १४॥

कारकफललक्षणं स्वात्मयाथात्म्यज्ञानेन मरीच्युदकरज्जुसर्पगगनमलानीव मरीचिरज्जुगगनस्वरूपदर्शनेनैव स्वस्थः प्रशान्तात्मा कृतकृत्यो भवति यतोऽतस्तद्दर्शनार्थमनाद्यविद्याप्रसुप्ता उत्तिष्ठत हे जन्तव आत्मज्ञानाभिमुखा भवत, जाग्रताज्ञाननिद्राया घोररूपायाः सर्वानर्थबीजभूतायाः क्षयं कुरुत। कथम्। प्राप्योपगम्य वरान्प्रकृष्टानाचार्यास्तद्विदस्तदुपदिष्टं सर्वान्तरमात्मानमहमस्मीति निबोधतावगच्छत। न ह्युपेक्षितव्यमिति श्रुतिरनुकम्पयाऽऽह मातृवत्। अतिसूक्ष्मबुद्धिविषयत्वाज्ज्ञेयस्य किमिव सूक्ष्मबुद्धिरित्युच्यते। क्षुरस्य धाराऽग्रं निशिता तीक्ष्णीकृता दुरत्यया दुःखेनात्ययो यस्याः सा दुरत्यया। यथा सा पद्भ्यां दुर्गमनीया तथा दुर्गं दुःसंपाद्यमित्येतत्पथः पन्थानं तत्त्वज्ञानलक्षणं मार्गं कवयो मेधाविनो वदन्ति ज्ञेयस्यातिसूक्ष्मत्वात्तद्विषयस्य ज्ञानमार्गस्य दुःसंपाद्यत्वं वदन्तीत्यभिप्रायः ॥१४॥

उद्बोधन

मृगजल, रज्जुसर्प और आकाश मालिन्यों का बाध उनके अधिष्ठान मृगतृष्णिका रज्जु आकाश के स्वरूप दर्शन से जिस प्रकार हो जाता है, उसी प्रकार मिथ्या ज्ञान से प्रतीत होने वाले समस्त नाम, रूप और कर्मात्मक प्रपंच जो क्रिया, कारक एवं फलरूप है, उनका आत्मतत्त्व के यथार्थ ज्ञान द्वारा पुरुष आत्मा में लय हो जाता है। फिर तो वह मनुष्य स्वस्थ, प्रसन्न चित्त एवं कृत-कृत्य हो जाता है, जबकि ऐसी बात है। इसीलिये सर्वप्रपंच के अधिष्ठान परमात्मतत्त्व साक्षात्कार कराने के लिये श्रुति उद्बोधन करती है—हे अनादि अविद्या में सोये जन्तुओ! उठो अर्थात् आत्मज्ञान के लिये अभिमुख हो जाओ एवं घोर अज्ञान निद्रा से जाग जाओ अर्थात् अनर्थों की बीजभूत उस अज्ञान निंद्रा का विनाश करो।

कैसे? उत्कृष्ट आत्मज्ञानी आचार्यों के पास उपसत्तिपूर्वक पहुँच कर उनके उपदेश किये हुये सर्वनियन्ता परमात्मा को 'वही मैं हूँ', इस प्रकार जानो, उसकी उपेक्षा न करो। ऐसा माता के समान अनुकम्पा करती हुयी श्रुति कह रही है; क्योंकि वह ज्ञेय पदार्थ परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि का ही विषय है। कैसे सूक्ष्म बुद्धि का विषय परमात्मा है? इस पर श्रुति कहती है—जिस प्रकार पैनी की हुयी छुरे की धार के अग्रभाग को पार करना अत्यन्त दुष्कर है, कठिनता से जिसे पार किया जा सके, उसी को दुरत्यय कहते हैं। जिस प्रकार उस पर पैरों से चलना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार आत्मज्ञानरूप मार्ग भी बड़ा दुर्गम है, ऐसा मेधावी पुरुष कहते हैं। तात्पर्य यह है कि ज्ञेयतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है। इसीलिये उससे सम्बन्धित ज्ञानमार्ग को भी मेधावी कवि दुष्प्राप्य कहते हैं। अतः इस मार्ग में अत्यन्त सावधानी के साथ प्रमादरहित हो चलना चाहिये ॥ १४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

जो शब्द से रहित, स्पर्श से रहित, रूप तथा रस-हीन, नित्य एवं गन्ध रहित है, अतएव वह अविनाशी है। जो अनादि, अनन्त, महत्तत्त्व से भी परे (सर्वभूत साक्षी) और निश्चल है उस आत्मतत्त्व को अपरोक्ष रूप से जानकर जीव (अविद्या, काम और कर्म रूप) मृत्यु के पंजे से छूट जाता है ॥ १५ ॥

तत्कथमतिसूक्ष्मत्वं ज्ञेयस्येत्युच्यते। स्थूला तावदियं मेदिनी शब्दस्पर्शरूपरसगन्धोपचिता सर्वेन्द्रियविषयभूता तथा शरीरम्। तत्रैकैकगुणापकर्षेण गन्धादीनां सूक्ष्मत्वमहत्त्वविशुद्धत्वनित्यत्वादितारतम्यं दृष्टमबादिषु यावदाकाशमिति ते गन्धादयः सर्वे एव स्थूलत्वादिकारणाः शब्दान्ता यत्र न सन्ति किमु तस्य सूक्ष्मत्वादिनिरतिशयत्वं वक्तव्यमित्येतद्दर्शयति श्रुतिः—

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्। एतद्व्याख्यातं ब्रह्माव्ययम्। यद्धि शब्दादिमत्तद्व्येतीदं त्वशब्दादिमत्त्वादव्ययं न व्येति न क्षीयते, अत एव

यावद्यावद्गुणापचयस्तावत्तावत्तारतम्येन सौक्ष्म्यं दृष्टं पृथिव्यादिषु परमात्मनि तु गुणानामत्यन्ताभावान्निरतिशयं सौक्ष्म्यं सिध्यतीत्याह—स्थूला तावदित्यादिना ॥१५॥

निर्विशेष आत्मज्ञान ही अमरत्व का साधन है

उस ज्ञेय की अत्यन्त सूक्ष्मता कैसी है? ऐसी आकांक्षा होने पर श्रुति कहती है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँचों विषयों से वृद्धि को प्राप्त हुई तथा सम्पूर्ण इन्द्रियों की विषयभूता पृथिवी स्थूल है। ठीक ऐसा ही शरीर है, उनमें गन्धादि गुणों में से एक-एक का क्षय कर देने पर जल से लेकर आकाशपर्यन्त भूतचतुष्टय में सूक्ष्मत्व, महत्त्व, विशुद्धत्व और नित्यत्वादि का तारतम्य देखा गया है। ये शब्दादि गुण स्वरूपतः स्थूल हैं और अपने आश्रय स्थूलता के द्योतक हैं। अतः स्थूल होने के कारण ये सम्पूर्ण विकार जिसमें नहीं हैं, उसके सूक्ष्मत्वादि निरतिशय के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है, यही अग्रिम श्रुति बतलाती है जो न शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध स्वरूप है और न इनसे युक्त ही है। अतएव वह अव्यय और नित्य भी है। इस प्रकार जिसकी व्याख्या की गयी है, वह ब्रह्म अविनाशी है; क्योंकि जो शब्दादि से युक्त होता है, वह नाशवान् होता है; किन्तु वह ब्रह्मतत्त्व शब्दादि गुणों से युक्त न होने के कारण अविनाशी है। इसीलिये यह नित्य भी है; क्योंकि जो नाशवान् है, वह अनित्य है। इस ब्रह्म का व्यय नहीं होता, इसीलिये यह नित्य है। जिसका आदि-कारण विद्यमान् नहीं है, ऐसा होने से भी वह नित्य है; क्योंकि जो पदार्थ आदि वाला होता है, वह कार्य होने से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तꣳ सनातनम् ॥
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६ ॥

नचिकेता द्वारा प्राप्त किये तथा मृत्यु से कहे हुए (इस तीन वल्ली वाले उपाख्यान रूप) सनातन विज्ञान को कह और ब्राह्मणों से सुनकर बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है ॥ १६ ॥

च नित्यं यद्धि व्येति तदनित्यमिदं तु न व्येत्यतो नित्यम् । इतश्च नित्यमनाद्यविद्यमान आदिः कारणमस्य तदिदमनादि । यद्धचादिमत्तत्कार्यत्वादनित्यं कारणे प्रलीयते यथा पृथिव्यादि । इदं तु सर्वकारणत्वादकार्यमकार्यत्वान्नित्यं न तस्य कारणमस्ति यस्मिन्प्रलीयते । तथाऽनन्तमविद्यमानोऽन्तः कार्यमस्य तदनन्तम् । यथा कदल्यादेः फलादिकार्योत्पादनेनाप्यनित्यत्वं दृष्टं न च तथाऽप्यन्तवत्त्वं ब्रह्मणोऽतोऽपि नित्यम् । महतो महत्तत्त्वाद्बुद्धयाख्यात्परं विलक्षणं नित्यविज्ञप्तिस्वरूपत्वात्सर्वसाक्षि हि सर्वभूतात्मत्वाद्ब्रह्म । उक्तं ह्येष सर्वेषु भूतेष्वित्यादि । ध्रुवं च कूटस्थं नित्यं न पृथिव्यादिवदापेक्षिकं नित्यत्वम् । तदेवंभूतं ब्रह्मात्मानं निचाय्यावगम्य तमात्मानं मृत्युमुखान्मृत्युगोचरादविद्याकामकर्मलक्षणात्प्रमुच्यते वियुज्यते ॥१५॥

प्रस्तुतविज्ञानस्तुत्यर्थमाह श्रुतिः—

नाचिकेतं नचिकेतसा प्राप्तं नाचिकेतं मृत्युना प्रोक्तं मृत्युप्रोक्तमिदमाख्यानमुपाख्यानं वल्लीत्रयलक्षणं सनातनं चिरंतनं वैदिकत्वादुक्त्वा ब्राह्मणेभ्यः श्रुत्वाऽऽ-

---

अनित्य भी होता है और काल पाकर अपने कारण में लीन हो जाता है। जैसे उत्पत्तिशील अनित्य पृथिव्यादि का विलय इनके कारणों में होता देखा गया है किन्तु यह आत्मा सबका कारण होने से किसी का भी कार्य नहीं है। इसीलिये यह नित्य है, इसका कोई कारण नहीं कि जिसमें लीन हो सके।

वैसे ही यह आत्मा अनन्त भी है, जिसका कभी अन्त नहीं होता, उसे अनन्त कहते हैं। जैसे फलादि कार्य उत्पन्न करने के कारण भी केले आदि पौधों की अनित्यता देखी गयी है किन्तु ब्रह्म का वैसा अन्तवत्त्व नहीं देखा गया। इसीलिये भी ब्रह्म नित्य है। नित्य चैतन्यस्वरूप होने से वह ब्रह्म बुद्धि नामक महत्तत्त्व से भी विलक्षण है; क्योंकि समस्त भूतों का आत्मा होने के कारण ब्रह्म सबका साक्षी है। यह बात पिछले "सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता" इत्यादि मन्त्र में कही गई है। वैसे ही वह ब्रह्म ध्रुव यानी कूटस्थ नित्य है, पृथिव्यादि के समान उसमें आपेक्षिक नित्यता नहीं है। इस प्रकार के ब्रह्मस्वरूप आत्मा को जानकर पुरुष अविद्या, काम एवं कर्मरूप मृत्यु के पंजे से सर्वथा छूट जाता है ॥ १५ ॥

प्रकृत आत्मविज्ञान की महिमा

अब प्रकृत विज्ञान की स्तुति के लिये श्रुति कहती है—यमराज के द्वारा कहे हुए और नचिकेता द्वारा प्राप्त किये गये इस तीन वल्लियों वाले वैदिक होने के कारण सनातन उपाख्यान को

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalandhar

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद्ब्रह्मसंसदि ॥ प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७ ॥

इति काठकोपनिषदि प्रथमाध्याये तृतीया वल्ली समाप्ता ॥ ३ ॥

इति काठकोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

जो कोई पुरुष इस परम गोपनीय ग्रन्थ को पवित्र हो ब्राह्मणों की सभा में अथवा श्राद्धकाल में सुनता है, उसका वह श्राद्ध अनन्त फल वाला होता है ॥ १७ ॥

॥ इति तृतीयवल्ली, प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

चार्येभ्यो मेधावी ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकस्तस्मिन्महीयत आत्मभूत उपास्यो भवतीत्यर्थः ॥१६॥

यः कश्चिदिमं ग्रन्थं परमं प्रकृष्टं गुह्यं गोप्यं श्रावयेद्ग्रन्थतोऽर्थतश्च ब्राह्मणानां संसदि ब्रह्मसंसदि प्रयतः शुचिर्भूत्वा श्राद्धकाले वा श्रावयेद्भुञ्जानानां तच्छ्राद्धमस्याऽऽनन्त्यायानन्तफलाय कल्पते संपद्यते । द्विर्वचनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम् ॥१७॥

इति काठकोपनिषदि प्रथमाध्याये तृतीयवल्लीभाष्यं समाप्तम् ॥३॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमदाचार्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ काठकोपनिषद्भाष्ये प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

॥१६॥ ॥१७॥

इति काठकोपनिषद्भाष्यटीकायां प्रथमाध्याये तृतीया वल्ली समाप्ता ॥३॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यानन्दज्ञानविरचिते काठकोपनिषद्भाष्यव्याख्याने प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

ब्राह्मणों के समक्ष कहकर एवं आचार्यों से सुनकर ज्ञानी पुरुष ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है अर्थात् वह तत्त्वज्ञानी सबका आत्मस्वरूप होने के कारण सभी का उपास्य हो जाता है ॥१६॥

जो कोई अधिकारी पुरुष इस प्रकृष्ट गोपनीय ग्रन्थ को पवित्र होकर ब्राह्मणों की सभा में अथवा श्राद्ध के समय भोजन करने के लिये बैठे हुए ब्राह्मणों के समक्ष पाठमात्र करता है या अर्थ करते हुए सुनाता है, उसका वह श्राद्ध अनन्त फल वाला हो जाता है। यहाँ पर अध्याय की समाप्ति के लिये "तदानन्त्याय कल्पते" इस वाक्य को दो बार पढ़ा गया ॥ १७ ॥

इति प्रथम अध्याय की तृतीय वल्ली समाप्त हो गई।

कठोपनिषद् का प्रथम अध्याय भी समाप्त हो गया।

—०—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ द्वितीयाध्याय प्रथम वल्ली

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदा-वृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥

स्वयंभू (परमेश्वर) ने (शब्दादि विषयों को प्रकाशित करने के लिये प्रवृत्त होने वाली) इन्द्रियों को बहिर्मुख करके उनका हनन कर दिया है। अतः (जीव सर्वदा) अनात्मभूत बाह्य विषयों को ही देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। जिसने अमरत्व की इच्छा करते हुए (नदी को उसके प्रवाह के विपरीत दिशा में फेरने के समान) अपनी इन्द्रियों को रोक लिया है, ऐसा कोई विवेकी पुरुष ही अन्तरात्मा को देख पाता है ॥ १ ॥

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्येत्युक्तम् । कः पुनः प्रतिबन्धोऽग्र्याया बुद्धेर्येन तदभावादात्मा न दृश्यत इति तददर्शनकारण-प्रदर्शनार्था वल्ल्यारभ्यते । विज्ञाते हि श्रेयःप्रतिबन्धकारणे तदपनयनाय यत्न आरब्धुं शक्यते नान्यथेति—

पराञ्चि परागञ्चन्ति गच्छन्तीति खानि तदुपलक्षितानि श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि

अनादिरविद्याप्रतिबन्धः प्रागुक्तोऽधुनाऽऽगन्तुकप्रतिबन्धदर्शनायोत्तरवल्ल्यारम्भ इति संबन्धमाह—एष सर्वेष्वित्यादिना । यदीन्द्रियाण्यन्तर्मुखानि (णि) स्युस्तदा तान्यात्मनिष्ठतयाऽमृतत्व-मीयुरत इन्द्रियाणि बहिर्मुखानि(णि) सृष्टानीति यत्तत्तेषां हननमेव कृतमित्यर्थः । आप्लृ व्याप्ताविति

इन्द्रियों की बहिर्मुखता आत्मदर्शन में बाधक

"सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ वह आत्मा प्रकाशित नहीं होता, वह तो केवल सूक्ष्म एवं पैनी की हुई बुद्धि से ही देखा जा सकता है" ऐसा पिछले प्रसंग में कहा गया है। इस पर प्रश्न यह होता है कि पूर्वोक्त पैनी की हुई बुद्धि का प्रतिबन्धक कौन है ? जिस प्रतिबन्धक के कारण बुद्धि एकाग्र नहीं हो पाती, फलतः आत्मा दिखाई नहीं पड़ता। अतः आत्मदर्शन में प्रतिबन्ध के कारण को दिखलाने के लिये यह वल्ली प्रारम्भ की जा रही है; क्योंकि श्रेय प्रतिबन्ध कारण को जान करके ही उसकी निवृत्ति का प्रयत्न प्रारम्भ किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

इन्द्रियगोलकों को 'ख' शब्द से कहा गया है, उनसे उपलक्षित श्रोत्रादि इन्द्रियों को यहाँ पर

---

१. अग्र्याया बुद्धेरिति बुद्धेरग्र्यतायामित्यर्थः । बुद्धेरेकाग्रतोत्पत्ता (अग्र्यबुद्ध्युत्पत्तौ) विति यावत् ।
२. येन—प्रतिबन्धेन । ३. तदभावात्—अग्र्यबुद्ध्यभावादित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खानीत्युच्यन्ते । तानि पराञ्च्येव शब्दादिविषयप्रकाशनाय प्रवर्तन्ते । यस्मादेवं स्वाभाविकानि तानि व्यतृणद्धिंसितवान्हननं कृतवानित्यर्थः । कोऽसौ । स्वयंभूः परमेश्वरः स्वयमेव स्वतन्त्रो भवति सर्वदा न परतन्त्र इति । तस्मात्पराङ्पराग्रूपान- नात्मभूताञ्शब्दादीन्पश्यत्युपलभत उपलब्धा, नान्तरात्मन्नान्तरात्मानमित्यर्थः । एवं- स्वभावेऽपि सति लोकस्य कश्चिन्नद्याः प्रतिस्रोतः प्रवर्तनमिव धीरो धीमान्विवेकी प्रत्यगात्मानं प्रत्यक्चासावात्मा चेति प्रत्यगात्मा । प्रतीच्येवाऽऽत्मशब्दो रूढो लोके नान्यस्मिन् । व्युत्पत्तिपक्षेऽपि तत्रैवाऽऽत्मशब्दो वर्तते ।

"यच्चाऽऽप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह ।
यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्यते ॥"

इत्यात्मशब्दव्युत्पत्तिस्मरणात् । तं प्रत्यगात्मानं स्वं स्वभावमैक्षदपश्यत्पश्य- तीत्यर्थः । छन्दसि कालानियमात् । कथं पश्यतीत्युच्यते । आवृत्तचक्षुरावृत्तं व्यावृत्तं

धात्वर्थानुसारेण व्यापक आत्मशब्दार्थः । यद्यस्मादादत्ते संहरति स्वात्मन्येव सर्वमिति जगदुपादानं लभ्यते । विषयानत्तीत्यात्मेति व्युत्पत्त्या स्वचैतन्याभासेनोपलब्धृत्वमात्मशब्दार्थः । येन कारणे- नास्याऽऽत्मनः संततो निरन्तरो भावः कल्पितस्याधिष्ठानसत्तामन्तरेण सत्ताभावाद्यथा रज्ज्वामध्यस्ते

'खानि' शब्द से कहते हैं । ये श्रोत्रादि इन्द्रियाँ अपने शब्दादि विषयों को प्रकाशित करने के लिये सदा बाहर की ओर भागती रहती हैं । इसीलिये इन्हें बहिर्मुख एवं बाहर की ओर भागने वाली कहा गया है । जबकि ऐसी बात है, अतः स्वभाव से बहिर्मुख इन्द्रियों को हिंसित कर दिया है । उनका हनन करने वाला वह है कौन ? ऐसी आकांक्षा होने पर श्रुति उसे स्वयम्भू शब्द से कहती है, जो स्वतः ही सर्वदा स्वतन्त्र रहता है, किसी के परतन्त्र नहीं, ऐसे परमात्मा को स्वयम्भू शब्द से श्रुति ने कहा है । इसीलिये वह उपलब्धा जीवात्मा पूर्वोक्त बहिर्मुख इन्द्रियों द्वारा सदा बाह्य अनात्मभूत शब्दादि विषयों को ही देखा करता है, अन्तरात्मा को नहीं देखता ।

यद्यपि लोक का स्वभाव ऐसा ही है, फिर भी धीर विवेकी पुरुष ही नदी के प्रवाह को विपरीत दिशा में मोड़ने के समान श्रोत्रादि इन्द्रियों को शब्दादि विषयों से हटा कर पूर्वोक्त अपने प्रत्यगात्मा को देखता है, जो सम्पूर्ण पदार्थों के अन्तःस्वरूप होकर आत्मा हो, उसीको प्रत्यगात्मा भी कहते हैं; क्योंकि लोक में आत्म शब्द प्रत्यगर्थ में ही रूढ़ है; अन्य अर्थ में नहीं । व्युत्पत्ति पक्ष में भी आत्म शब्द की प्रवृत्ति उस प्रत्यगर्थ में ही देखी जाती है । जैसा कि "क्योंकि यह सबको व्याप्त करता है, ग्रहण करता है, इस लोक में विषयों को भोगता है तथा इसका सद्भाव सदा विद्यमान है, इसीलिये यह आत्मा कहा जाता है" इस प्रकार आत्मशब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में स्मृति है, उस अपने स्वरूप प्रत्यगात्मा को देखता है । छन्द में काल का नियम न होने के कारण यहाँ पर वर्तमान अर्थ में भूत- कालिक ऐक्षत् क्रिया का प्रयोग किया गया है । वह कैसे देखता है ? इस पर कहते हैं—जिसने अपने चक्षुरादि इन्द्रिय समुदाय को सम्पूर्ण विषयों से पृथक् कर लिया है, वह पुरुष आवृत्त चक्षु कहा गया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् । अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥

अल्पज्ञ पुरुष बाह्य भोगों के पीछे दौड़ते हैं, इसी से वे (अविद्या, काम, कर्म के समुदाय रूप) मृत्यु के विस्तृत पाश में पड़ जाते हैं। किन्तु विवेकी पुरुष अन्तरात्मा के अमरत्व को निश्चल जानकर संसार के अनित्य पदार्थों में से किसी की इच्छा नहीं करते, (क्योंकि वे सब परमात्म दर्शन के विरोधी हैं) ॥ २ ॥

चक्षुः श्रोत्रादिकमिन्द्रियजातमशेषविषयाद्यस्य स आवृत्तचक्षुः । स एवं संस्कृतः प्रत्यगात्मानं पश्यति । न हि बाह्यविषयालोचनपरत्वं प्रत्यगात्मेक्षणं चैकस्य संभवति । किमर्थं पुनरित्थं महता प्रयासेन स्वभावप्रवृत्तिनिरोधं कृत्वा धीरः प्रत्यगात्मानं पश्यतीत्युच्यते । अमृतत्वममरणधर्मत्वं नित्यस्वभावतामिच्छन्नात्मन इत्यर्थः ॥१॥

यत्तावत्स्वाभाविकं परागेवानात्मदर्शनं तदात्मदर्शनस्य प्रतिबन्धकारणमविद्या तत्प्रतिकूलत्वाद्या च पराक्ष्वेवाविद्योपदर्शितेषु दृष्टादृष्टेषु भोगेषु तृष्णा ताभ्यामविद्यातृष्णाभ्यां प्रतिबद्धात्मदर्शनाः पराचो बहिर्गतानेव कामान्काम्यान्विषयाननुयन्ति अनुगच्छन्ति, बाला अल्पप्रज्ञास्ते तेन कारणेन मृत्योरविद्याकामकर्मसमुदायस्य यन्ति गच्छन्ति विततस्य विस्तीर्णस्य सर्वतो व्याप्तस्य पाशं पाश्यन्ते बध्यन्ते येन तं पाशं

सर्पे रज्ज्वाः सातत्यं तथा कल्पितं सर्वं येन स्वस्वरूपवत्स आत्मेत्यर्थः ॥१॥

है। इस प्रकार वह संस्कारयुक्त पुरुष ही प्रत्यगात्मा को देखता है, बाह्य विषयों की आलोचना परायण रहना तथा प्रत्यगात्मा का साक्षात्कार करना, ये दोनों ही बात एक साथ एक पुरुष में सम्भव नहीं। फिर भला यह बतलावें कि इस प्रकार घोर परिश्रम से इन्द्रियों को स्वाभाविक प्रवृत्ति को रोक कर धीर पुरुष प्रत्यगात्मा को क्यों देखता है? इस पर कहते हैं कि आत्मा के नित्य स्वभाव स्वरूप अमरत्व प्राप्ति की अभिलाषा से उसे देखता है ॥ १ ॥

विवेकी और अविवेकी का भेद

जो स्वाभाविक बाह्य अनात्म दर्शन है, वही आत्मदर्शन के प्रतिबन्ध की बीजभूता अविद्या है; क्योंकि वह आत्मज्ञान के प्रतिकूल है। इसके अतिरिक्त अविद्या के कारण इस लोक एवं परलोक के बाह्य भोगों में जो तृष्णा है, उन्हीं अविद्या और तृष्णारूप दोनों ही प्रतिबन्धों से जिनका आत्मदर्शन प्रतिबद्ध हो गया है, ऐसे बाल तुल्य मन्दबुद्धि पुरुष बाह्य काम्य विषयों का ही अनुगमन किया करते हैं अर्थात् भोगों के पीछे दौड़ते रहते हैं। इसीलिये वे अज्ञानी अविद्या, काम और कर्म के समुदायरूप मृत्यु के सर्वत्र फैले हुए पाश में बन्ध जाते हैं। देह-इन्द्रिय के संयोग-वियोग को पाश कहते हैं। इसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै
तत् ॥ ३ ॥

जिस विज्ञान स्वरूप आत्मा के द्वारा रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, और मैथुन जन्य सुखों को विस्पष्ट रूप से सब लोक जानता है (उस आत्मा से अविज्ञेय) इस लोक में क्या अन्य कोई रह सकता है ? (तुम नचिकेता का पूछा हुआ) वह तत्त्व निश्चयरूप से यही है ॥ ३ ॥

देहेन्द्रियादिसंयोगवियोगलक्षणम् । अनवरतजन्ममरणजरारोगाद्यनेकानर्थव्रातं प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः । यत एवमथ तस्माद्धीरः विवेकिनः प्रत्यगात्मस्वरूपावस्थानलक्षणममृतत्वं ध्रुवं विदित्वा । देवाद्यमृतत्वं ह्यध्रुवमिदं तु प्रत्यगात्मस्वरूपावस्थानलक्षणं न कर्मणा वर्धते नो कनीयानिति ध्रुवम् । तदेवंभूतं कूटस्थमविचाल्यममृतत्वं विदित्वाऽध्रुवेषु सर्वपदार्थेष्वनित्येषु निर्धार्य ब्राह्मणा इह संसारेऽनर्थप्राये न प्रार्थयन्ते किंचिदपि प्रत्यगात्मदर्शनप्रतिकूलत्वात् । पुत्रवित्तलोकैषणाभ्यो व्युत्तिष्ठन्त्येवेत्यर्थः ॥२॥

यद्विज्ञानान्न किंचिदन्यत्प्रार्थयन्ते ब्राह्मणाः कथं तदधिगम इति । उच्यते—

येन विज्ञानस्वभावेनाऽऽत्मना रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान्मिथुननिमित्तान्सुखप्रत्ययान्विजानाति विस्पष्टं जानाति सर्वो लोकः । ननु नैवं प्रसिद्धि-

---

॥२॥

कथं तदधिगम इति किं वैदिकत्वाद्धर्मवत्परोक्षत्वेन किंवा घटादिवत्सिद्धत्वादपरोक्षत्वेनापीत्याकाङ्क्षायामात्मत्वाद्ब्रह्मणोऽपरोक्षत्वेनैवावगमः सम्यगवगम इत्युच्यते—येनेत्यादिना । मूढानां

फन्दे से जीव बांधा जाता है, फलतः निरन्तर जन्म, मरण, बुढ़ापा और रोग आदि अनेकों अनर्थ समूह को प्राप्त होते हैं।

जबकि ऐसी बात है, इसीलिये विवेकी पुरुष प्रत्यगात्म स्वरूप में स्थितिरूप अमरत्व को निश्चल जानकर देवभाव आपेक्षिक अमरत्व की इच्छा नहीं करता । देवता आदि का अमरत्व निश्चल नहीं है। (वह सातिशय एवं अनित्य है) किन्तु यह प्रत्यगात्म में स्वरूप स्थितिरूप अमरत्व ध्रुव है । उसे "यह कर्म से बढ़ता नहीं और घटता भी नहीं । इस श्रुति में भी कहा गया है" इस प्रकार के अमरत्व को कूटस्थ और अविचाल्य समझकर वे ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण लोग इस अनर्थप्राय: संसार के सम्पूर्ण नश्वर पदार्थों में से किसी की भी इच्छा नहीं करते क्योंकि बाह्य पदार्थों की तृष्णा प्रत्यगात्मदर्शन की विरोधी ही तो है । तात्पर्य यह कि वे ब्रह्मजिज्ञासु पुरुष पुत्रैषणा, वित्तैषणा एवं लोकैषणा से ऊपर उठ जाते हैं ॥ २ ॥

आत्मज्ञानी की सर्वज्ञता

जिसके ज्ञान हो जाने पर ब्राह्मण लोग किसी अन्य वस्तु को नहीं चाहते हैं, उस ब्रह्म का ज्ञान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकस्याऽऽत्मना देहादिविलक्षणेनाहं विजानामीति । देहादिसंघातोऽहं विजानामीति तु सर्वो लोकोऽवगच्छति । न त्वेवम् । देहादिसंघातस्यापि शब्दादिस्वरूपत्वाविशेषाद्विज्ञेयत्वविशेषाच्च न युक्तं विज्ञातृत्वम् । यदि हि देहादिसंघातो रूपाद्यात्मकः सन्रूपादीन्विजानीयाद्बाह्या अपि रूपादयोऽन्योन्यं स्वं स्वं रूपं च विजानीयुः । न चैतदस्ति । तस्माद्देहादिलक्षणांश्च रूपादीनेतेनैव देहादिव्यतिरिक्तेनैव विज्ञानस्वभावेनाऽऽत्मना विजानाति लोकः । यथा येन लोहो दहति सोऽग्निरिति तद्वत् । आत्मनो विज्ञेयं किमत्रास्मिँल्लोके परिशिष्यते न किंचित्परिशिष्यते । सर्वमेव त्वात्मना विज्ञेयम् । यस्यात्मनोऽविज्ञेयं न किंचित्परिशिष्यते स आत्मा सर्वज्ञः । एतद्वै तत् । किं तद्यन्नचिकेतसा पृष्टं देवादिभिरपि विचिकित्सितं धर्मादिभ्योऽन्यद्विष्णो परमं पदं यस्मात्परं नास्ति तद्वा एतदधिगतमित्यर्थः ॥ ३ ॥

व्यतिरिक्तेनाऽऽत्मना देहादेर्वेद्यत्वं यद्यपि न प्रसिद्धं तथाऽपि विचारकाणां व्यतिरिक्तेनैव वेद्यत्वं प्रसिद्धं ततो यच्छब्देन प्रसिद्धवत्परामर्शो न विरुध्यत इति परिहरति—न त्वेवं देहादीत्यादिना । देहिकाः शब्दादयो न स्वात्मानमन्यं च विजानीयुः शब्दादित्वाद्दृश्यत्वाच्च बाह्यवत् । विपक्षे बाधकमाह—यदि हीति ॥३॥

किस प्रकार होता है ? इस पर कहते हैं कि जिस विज्ञान स्वरूप आत्मा के द्वारा सभी लोग रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श और मैथुन जनित सुखों को स्पष्टरूप से जानते हैं (वही ब्रह्मतत्त्व है) । परन्तु लोक में ऐसी प्रसिद्धि नहीं है कि मैं देह आदि से विलक्षण आत्मा द्वारा पूर्वोक्त शब्दादि विषयों को जानता हूँ । इसके विपरीत सब लोग यही समझते हैं कि मैं देहादि संघातरूप हूँ और यहीं मैं सबको जानता हूँ ?

उत्तर :—ऐसी बात नहीं है; क्योंकि देहादि संघात भी अविशेष रूप से शब्दादिरूप तथा विज्ञेय स्वरूप ही तो हैं, उनमें विज्ञातृत्व मानना उचित नहीं है; क्योंकि रूप-रसादि स्वरूप होता हुआ भी देहादि संघात, यदि रूपादि को जान सके तो बाह्य रूपादि भी परस्पर एक-दूसरे को एवं अपने-अपने रूप को भी जान सकेंगे, किन्तु बात ऐसी नहीं है । अतः देहादि संघात भी रूप-रसादि स्वरूप ही है । बाह्य विषयों की भाँति इसको भी लोग देहादि से विलक्षण विज्ञान स्वभाव आत्मा के द्वारा ही जानते हैं । जिस प्रकार जिस अग्नि के तादात्म्य हो जाने पर लोहपिण्ड जलाता है, वह दाहकता लोहपिण्ड की नहीं, अपितु अग्नि की ही है, जलाने वाला तत्त्व अग्नि ही है । ठीक उसी प्रकार (जिस नित्य विज्ञान द्वारा देहादि विषयों को लोग जानते हैं, उसी को आत्मा कहते हैं) उस देहादि विलक्षण आत्मा द्वारा न जानने योग्य वस्तु इस संसार में क्या रह जाती है अर्थात् कुछ भी नहीं रहती, सभी वस्तु आत्मा से ही तो जानी जाती हैं । इस प्रकार जिस आत्मा से अविज्ञेय कोई वस्तु शेष नहीं रहती, वह आत्मा सर्वज्ञ है और यही वह है । वह कौन है ? जिसके सम्बन्ध में नचिकेता ने पूछा था, जो देवादिकों का भी सन्देहास्पद है एवं जो धर्माधर्म आदि से विलक्षण विष्णु का परम पद है और जिससे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है, वही यह ब्रह्मपद है, जो अब अधिगत हो गया है । यह इसका तात्पर्य है ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ।। ४ ।।
य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ।। ५ ।।

जिसके द्वारा मनुष्य स्वप्न में प्रतीत होने वाले तथा जाग्रत् में दीखने वाले दोनों प्रकार के पदार्थों को देखता है । उस महान् और व्यापक आत्मा को (आत्मरूप से) प्रत्यक्ष अनुभव कर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता ।। ४ ।।

जो पुरुष इस कर्म फल के भोक्ता और (प्राणादि समुदाय को धारण करने वाले) आत्मा को सान्निध्यमात्र से भूत, भविष्यत् और वर्तमान के शासक रूप में जानता है । (वह वैसे विज्ञान के) बाद उस आत्मा की रक्षा करने की इच्छा नहीं करता । निश्चय वही यह (आत्मतत्त्व) है ।। ५ ।।

अतिसूक्ष्मत्वाद्दुर्विज्ञेयमिति मत्वैतमेवार्थं पुनः पुनराह—

स्वप्नान्तं स्वप्नमध्यं स्वप्नविज्ञेयमित्यर्थः । तथा जागरितान्तं जागरितमध्यं जागरितविज्ञेयं च । उभौ स्वप्नजागरितान्तौ येनाऽऽत्मनाऽनुपश्यति लोक इति सर्वं पूर्ववत् । तं महान्तं विभुमात्मानं मत्वाऽवगम्याऽऽत्मभावेन साक्षादहमस्मि परमात्मेति धीरो न शोचति ।। ४ ।।

किंच—

यः कश्चिदिमं मध्वदं कर्मफलभुजं जीवं प्राणादिकलापस्य धारयितारमात्मानं वेद विजानात्यन्तिकादन्तिके समीप ईशानमीशितारं भूतभव्यस्य कालत्रयस्य, ततस्तद्विज्ञानादूर्ध्वमात्मानं न विजुगुप्सते न गोपायितुमिच्छत्यभयप्राप्तत्वात् । यावद्धि

।४।।

ब्रह्मज्ञानी की शोक निवृत्ति

अति सूक्ष्म होने के कारण ब्रह्म को जानना अत्यन्त कठिन है । ऐसा समझकर उसी बात को बारम्बार कहते हैं । स्वप्नावस्था में जानने योग्य तथा जाग्रदवस्था में जानने योग्य इन दोनों स्वप्न और जाग्रत् के अन्तवर्ती पदार्थों को जिसके द्वारा लोग देखते हैं (वही ब्रह्म है) इस वाक्य की शेष व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान समझनी चाहिये । उस महान् व्यापक आत्मा को जानकर अर्थात् वह मैं ही हूँ । इस प्रकार आत्मभावेन साक्षात् अनुभव कर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता ।। ४ ।।

आत्मज्ञानी की निर्भीकता

जो कोई इस कर्म, फल, भोक्ता एवं प्राणादि समुदाय को धारण करने वाले जीवात्मा को समीपवर्ती भूत, भविष्य आदि तीनों कालों के शासक रूप से जानता है । ऐसा ज्ञान हो जाने के बाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ॥ गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत । एतद्वै तत् ॥ ६ ॥

जो मुमुक्षु जल आदि भूतों की अपेक्षा पहले उत्पन्न हुए ज्ञान रूप तप से पैदा होने वाले (हिरण्य गर्भ) को भूतों के सहित बुद्धि रूपी गुफा में स्थित हुआ देखता है, वही उस ब्रह्म को देखता है। निश्चय वही यह ब्रह्म है ॥ ६ ॥

भयमध्यस्थोऽनित्यमात्मानं मन्यते तावद्गोपायितुमिच्छत्यात्मानम् । यदा तु नित्यमद्वैतमात्मानं विजानाति तदा किं कः कुतो वा गोपायितुमिच्छेदेतद्वै तदिति पूर्ववत् ॥५॥

यः प्रत्यगात्मेश्वरभावेन निर्दिष्टः स सर्वात्मेत्येतद्दर्शयति--

यः कश्चिन्मुमुक्षुः पूर्वं प्रथमं तपसो ज्ञानादिलक्षणाद्ब्रह्मण इत्येतज्जातमुत्पन्नं हिरण्यगर्भम् । किमपेक्ष्य पूर्वमित्याह—अद्भ्यः पूर्वमप्सहितेभ्यः [1]पञ्चभूतेभ्यो न केवलाभ्योऽद्भ्य इत्यभिप्रायः । अजायत, उत्पन्नो यस्तं प्रथमजं देवादिशरीराण्युत्पाद्य सर्वप्राणिगुहां हृदयाकाशं प्रविश्य तिष्ठन्तं शब्दादीनुपलभमानं भूतेभिर्भूतैः कार्यकरण-

---

॥५॥

यः कश्चित्पूर्वं तपसो जातं पश्यति स प्रकृतं ब्रह्मैव पश्यतीति संबन्धः । [2]अद्भ्यः पूर्वमित्यादिना हिरण्यगर्भस्य विशेषण।[3]न्तःकरणांशेन [4]जीवावच्छेदकत्वाज्जीवतादात्म्यविवक्षया विशेषणं शब्दादीनुपलभ-

---

वह उस आत्मा का रक्षण नहीं करना चाहता; क्योंकि वह अभय को प्राप्त हो गया है। जब तक भय के अन्तर्गत रहता हुआ अपने आपको अनित्य समझता है, तभी तक उसकी रक्षा करना चाहता है, किन्तु जब आत्मा को नित्य अद्वैत जान लेता है, उस समय कौन किससे किसकी रक्षा करना चाहता है। निःसन्देह यही वह आत्मतत्त्व है। इस प्रकार पूर्ववत् समझ लेना चाहिये ॥ ५ ॥

ब्रह्मज्ञानी का सर्वत्र आत्मदर्शन

जो प्रत्यगात्मा यहाँ पर ईश्वररूप से बतलाया गया, वह सबका अन्तरात्मा है। अब इस बात को अग्रिम मन्त्र से दिखलाते हैं। जो जल सहित पाँचों तत्त्वों से पूर्व उत्पन्न हुआ है न कि केवल जल से ही पूर्व उत्पन्न हुआ, जिसका उपादान कारण ज्ञानादि लक्षण ब्रह्मस्वरूप तप है। ऐसे ब्रह्मस्वरूप तप से सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ, उस प्रथमज हिरण्यगर्भ को देवादि शरीरों को उत्पन्न कर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदयाकाश में प्रविष्ट हो देह-इन्द्रियरूप भूतों के सहित शब्दादि विषयों को अनुभव करते

---

१. पञ्चभूतेभ्य इति पञ्चीकृतेभ्य इत्यवधेयम् । २. स्वाभिमानविषयसमष्टिलिङ्गकदेवो नैव तस्य तदवच्छेदकत्वमिति भावः । जीवत्वमेव कुतो नेत्यत आह—अद्भ्य इत्यादि । विशेषणविशेषणेनेत्यर्थः । न ह्येतज्जीवस्य संभवतीति भावः । ३. चिदश्चिदवच्छेदकत्वमसंभवीत्यत आह—अन्तःकरणांशेनेति । ४. हिरण्यगर्भस्य जीवत्वमाशङ्क्य तदन्तरेणैव विशेषणमुपपादयति—जीवावच्छेदकत्वादित्यादिना ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी ॥ गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत । एतद्वै तत् ॥ ७ ॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः । दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

जो सर्वदेवस्वरूपा अदिति हिरण्यगर्भरूप से परब्रह्म से उत्पन्न होती है और जो बुद्धि रूप गुफा में प्रवेश कर रहने वाली है तथा भूतों के साथ ही उत्पन्न है, (उसी को देखो) निश्चय वही यह तत्त्व है ॥७॥

जैसे गर्भिणी स्त्रियों के (शुद्ध अन्नपानादि से अपने) गर्भ की अच्छी प्रकार रक्षा की जाती है वैसे ही (अधियज्ञ रूप से) जो अग्नि दोनों अरणियों के बीच स्थित है तथा प्रमादशून्य कर्म परायण होम सामग्री से युक्त याचकों और ध्यान भावना युक्त योगियों द्वारा यज्ञ एवं हृदय देश में नित्य प्रति स्तुति किये जाने योग्य है, यही वह ब्रह्म है ॥८॥

लक्षणैः सह तिष्ठन्तं यो व्यपश्यत यः पश्यतीत्येतत् । य एवं पश्यति स एतदेव पश्यति यत्तत्प्रकृतं ब्रह्म ॥ ६ ॥

किंच—

या सर्वदेवतामयी सर्वदेवतात्मिका प्राणेन हिरण्यगर्भरूपेण परस्माद्ब्रह्मणः संभवति शब्दादीनामदनाददितिस्तां पूर्ववद्गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीमदितिम् । तामेव विशिनष्टि—या भूतेभिर्भूतैः समन्विता व्यजायत, उत्पन्नेत्येतत् ॥ ७ ॥

किंच—

योऽधियज्ञ उत्तराधरारण्योर्निहितः स्थितो जातवेदा अग्निः पुनः सर्वहविषां

मानमिति । यदिति । यस्माल्लोके सुवर्णाज्जातं कुण्डलं सुवर्णमेव भवति तद्वद्ब्रह्मणो जातो हिरण्यगर्भोऽपि ब्रह्मात्मक एवेत्यर्थः ॥६॥

हिरण्यगर्भस्यैव विशेषणान्तरमाह—किंचेति ॥७॥

हुए, जिस किसी मुमुक्षु ने देखा है अर्थात् जो इस प्रकार देखता है, वस्तुतः वही देखता है अर्थात् वही देखता है । जो ऐसा अनुभव करता है, वही इस प्रकृत ब्रह्म को देखता है ॥ ६ ॥

जो सब देवस्वरूपा अदिति हिरण्यगर्भरूप परब्रह्म से उत्पन्न होती है, शब्दादि विषयों का भक्षण करने के कारण उसे अदिति कहते हैं एवं बुद्धिरूप गुफा में प्रवेश कर जो स्थित है, उस अदिति को देखा । उस अदिति में विशेषता बतलाते हैं; जो भूतों से समन्वित ही उत्पन्न हुई है (वही तेरा पूछा हुआ तत्त्व है) ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ॥ तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥ ९ ॥

जहाँ से (नित्य प्रति) सूर्य उदित होता है और जिसमें वह अस्त होता है। उस प्राणात्मा में (स्थिति के समय अग्नि आदि अधिदेव और वागादि अध्यात्म) सभी देवता अर्पित हैं, उसका अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता, वही यह सर्वात्मक ब्रह्म है। ९॥

भोक्ताऽध्यात्मं च योगिभिर्गर्भं इव गर्भिणीभिरन्तर्वत्नीभिरगर्हितान्नपानभोजनादिना यथा गर्भः सुभृतः सुष्ठु सम्यग्भृतो लोक इतीत्थमेवर्त्विग्भिर्योगिभिश्च सुभृत इत्येतत्। किंच दिवे दिवेऽहन्यहनीड्यः स्तुत्यो वन्द्यश्चः कर्मिभिर्योगिभिश्चाध्वरे हृदये च जागृवद्भिर्जागरणशीलवद्भिरप्रमत्तैरित्येतद्ध विष्मद्भिराज्यादिमद्भिर्ध्यानभावनावद्भिश्च मनुष्येभिर्मनुष्यैरग्निरेतद्वै तत्तदेव प्रकृतं ब्रह्म ॥ ८ ॥

किंच—

यतश्च यस्मात्प्राणादुदेत्युत्तिष्ठति सूर्योऽस्तं निम्लोचनं यत्र यस्मिन्नेव च प्राणेऽहन्यहनि गच्छति तं प्राणमात्मानं देवा अग्न्यादयोऽधिदैवं वागादयश्चाध्यात्मं सर्वे विश्वेऽरा इव रथनाभावर्पिताः संप्रवेशिताः स्थितिकाले। सोऽपि ब्रह्मैव। तदेतत्सर्वात्मकं ब्रह्म। तदु नात्येति नातीत्य तदात्मकतां तदन्यत्वं गच्छति कश्चन कश्चिदपि। एतद्वै तत् ॥ ९ ॥

॥८॥ ॥९॥

अरणिस्थ अग्नि में ब्रह्मदृष्टि

जैसे गर्भवती स्त्रियाँ शुद्ध अन्न-पानादि द्वारा अपने गर्भ की भलीभाँति रक्षा करती हैं। वैसे ही यज्ञ करने वाले तथा योगीजन जिसे धारण करते हैं, जो ऊपर और नीचे की अरणियों में अधियज्ञ रूप से स्थित हुआ सम्पूर्ण हविष्य पदार्थों का भोक्ता अध्यात्मरूप जातवेदा अग्नि है एवं घृत आदि होम सामग्रीयुक्त कर्म परायण एवं जागरणशील प्रमादशून्य याजकों और ध्यान भावनायुक्त योगियों द्वारा जो यज्ञ और हृदय देश में स्तुति करने योग्य है, ऐसा अग्नि है, वही निःसन्देह यह प्रकृत ब्रह्म है॥ ८॥

प्राण में ब्रह्मदृष्टि

जिस प्राण से प्रतिदिन सूर्य उदित होता है और जिस प्राण में ही वह नित्यप्रति लीन हो जाता है, उस प्राण आत्मा में स्थिति के समय अग्नि आदि अधिदेव और वागादि अध्यात्म सभी देवता वैसे ही प्रविष्ट किये गये हैं, जैसे रथ की नाभि में समस्त अरे प्रविष्ट होते हैं। वह भी ब्रह्म ही है, वही यह सर्वात्मक ब्रह्म है, जिसका अतिक्रमण कोई कर नहीं सकता अर्थात् उस ब्रह्म के तादात्म्य भाव को पार कर कोई भी उससे भिन्नत्व को प्राप्त नहीं होता, यही वह ब्रह्म है॥ ९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ॥ मृत्योः स
मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥

जो इस (देह इन्द्रिय संघात रूप लोक) में भास रहा है। वही ब्रह्म अन्यत्र (इस देहादि से से परे नित्य विज्ञानघन रूप) भी है, तथा जो अन्यत्र है वही इस संघात में है। (ऐसा होने पर भी) जो मनुष्य इस तत्त्व में नानात्व देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात् बारम्बार जन्मता मरता है ॥१०॥

यद्ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु वर्तमानं तत्तदुपाधिकत्वादब्रह्मवदवभासमानं संसार्यन्यत्परस्माद्ब्रह्मण इति मा भूत्कस्यचिदाशङ्केतीदमाह—

यदेवेह कार्यकरणोपाधिसमन्वितं संसारधर्मवदवभासमानमविवेकिनां तदेव स्वात्मस्थममुत्र नित्यविज्ञानघनस्वभावं सर्वसंसारधर्मवर्जितं ब्रह्म। यच्चामुत्रामुष्मिन्नात्मनि स्थितं तदेवेह नामरूपकार्यकारणोपाधिमनु विभाव्यमानं नान्यत्। तत्रैवं सत्युपाधिस्वभावभेददृष्टिलक्षणयाऽविद्यया मोहितः सन्य इह ब्रह्मण्यनानाभूते परस्मादन्योऽहं मत्तोऽन्यत्परं ब्रह्मेति नानेव भिन्नमिव पश्यत्युपलभते स मृत्योर्मरणान्मरणं

सर्वात्मकं ब्रह्मोक्तं तदसत्, उपाध्यवच्छिन्नचैतन्यस्य जीवस्य संसारित्वाद्विरुद्धधर्माक्रान्तयोरैक्यायोगादित्याशङ्क्य विरुद्धधर्मत्वस्योपाधिनिबन्धनत्वात्स्वभावैक्ये न किंचिदनुपपन्नमित्याह—यद्ब्रह्मादीत्यादिना। अमुष्मिन्[1]जगत्कारणत्वोपाधौ। उपाधिस्वभावश्च भेददृष्टिश्च ताभ्यां कारणतया लक्ष्यत इत्युपाधिस्वभावभेददृष्टिलक्षणा। न ह्यन्तःकरणाद्युपाधेर्भेददृष्टेश्चानिर्वाच्याविद्यामन्तरेण संभवः, कार्यकारणभावस्य संवित्संबन्धस्य च दुर्निरूपत्वात्। नानेवेत्युपमार्थ इवशब्दः। यथा स्वप्ने नानास्वाभावेऽपि नानात्वमध्यारोप्य सत्यत्वाभिनिवेशेन व्यवहरति तथा जागरितेऽपि नानात्वमध्यारोप्य

भेद दर्शन की निन्दा

जो ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों में विद्यमान है तथा भिन्न-भिन्न उपाधियों का कारण अब्रह्मवद् भासता है, वह संसारी जीव परब्रह्म से भिन्न है। इस प्रकार की शंका किसी को न हो जाय; इसीलिये यमराज आगे कहते हैं—इस लोक में कार्यदेह और करण इन्द्रियरूप उपाधि से युक्त हो अविवेकियों का संसार धर्मयुक्त भासता है। अपने स्वरूप में अवस्थित वही ब्रह्म इन देहादिकों से परे नित्य विज्ञानघन स्वरूप और सम्पूर्ण संसार धर्मों से रहित हैं एवं जो उस परमात्मभाव में स्थित है, वही इस लोक में नाम, रूप एवं कार्य-कारणरूप उपाधि के अनुरूप भासने वाला आत्मतत्त्व है, कोई दूसरा नहीं। ऐसा होने पर भी जो पुरुष उपाधि के स्वभाव और भेद दृष्टिरूप अविद्या से मोहित होकर इस एकरूप ब्रह्म में 'मैं परमेश्वर से भिन्न हूँ और परमेश्वर मुझसे भिन्न है' इस प्रकार भिन्न की

---

१. जगत्कारणत्वोपाधाविति—ईश्वरोपाधाविति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन ॥ मृत्योः
स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति । ईशानं

मन से ही यह (एकरस ब्रह्म) प्राप्त करने योग्य है, इस ब्रह्मतत्त्व में नाना अणुमात्र कुछ भी कुछ भी नहीं है। जो पुरुष (अविद्या रूप तिमिर दोषदृष्टि को न त्याग कर) इसमें नानात्व सा देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥११॥

जो अङ्गुष्ठ परिणाम पुरुष (अङ्गुष्ठ मात्र परिणाम वाले हृदय कमल के) मध्य में स्थित

मृत्युं पुनः पुनर्जन्ममरणभावमाप्नोति प्रतिपद्यते । तस्मात्तथा न पश्येत् । विज्ञानैकरसं नैरन्तर्येणाऽऽकाशवत्परिपूर्णं ब्रह्मैवाहमस्मीति पश्येदिति वाक्यार्थः ॥ १० ॥

प्रागेकत्वविज्ञानादाचार्यागमसंस्कृतेन मनसेदं ब्रह्मैकरसमाप्तव्यमात्मैव नान्यदस्तीति । आप्ते च नानात्वप्रत्युपस्थापिकाया अविद्याया निवृत्तत्वादिह ब्रह्मणि नाना नास्ति किंचनाणुमात्रमपि । यस्तु पुनरविद्यातिमिरदृष्टिं न मुञ्चतीह ब्रह्मणि नानेव पश्यति स मृत्योर्मृत्युं गच्छत्येव स्वल्पमपि भेदमध्यारोपयन्नित्यर्थः ॥ ११ ॥

पुनरपि तदेव प्रकृतं ब्रह्माऽऽह—

सत्यत्वाभिनिवेशेन यो व्यवहरति, तस्य निन्दितत्वादेकरसं ब्रह्मैवास्मीति प्रतिपत्तव्यमित्यर्थः ॥१०॥

एकरसं चेद्ब्रह्म कथं ज्ञातृज्ञेयविभाग इत्याशङ्क्याज्ञं प्रति कल्पितभेदेनेत्याह—प्रागेकत्वविज्ञानादिति ॥११॥

अङ्गुष्ठपरिमाणं जीवमनूद्य ब्रह्मभावविधानाद्विधीयमानविरोधादङ्गुष्ठमात्रस्याविवक्षितत्वाद्ब्रह्मपरमेव वाक्यमित्याह—पुनरपि तदेवेति ॥१२॥

भाँति देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात् बारम्बार जन्म-मरण भाव को प्राप्त होता रहता है। अतः ऐसी दृष्टि का परित्याग कर देना चाहिये। इतना ही नहीं बल्कि मैं नित्य निर्बाधरूप से आकाश के सदृश परिपूर्णरूप और विज्ञानघनैक रसस्वरूप ब्रह्म ही हूँ, इस प्रकार देखे। बस ! यही इस वाक्य का तात्पर्य अर्थ है ॥ १० ॥

एकत्व विज्ञान से पूर्व आचार्य और शास्त्र के उपदेश से मन संस्कारयुक्त होना चाहिये। ऐसे संस्कारयुक्त मन के द्वारा ही यह एकरस ब्रह्म सब कुछ आत्मा ही है, भिन्न कुछ भी नहीं। इस प्रकार प्राप्त करने योग्य है। उसकी प्राप्ति हो जाने पर भेद उपस्थापिका अविद्या के निवृत्त हो जाने से इस ब्रह्मतत्त्व में लेशमात्र भी भेद नहीं रह जाता। किन्तु जो पुरुष अविद्यारूप तिमिर रोगग्रस्त का परित्याग नहीं करता; प्रत्युत नानात्व को देखता ही रहता है ! इस प्रकार थोड़ा भी भेद का आरोप करता हुआ अज्ञानी जीव पुनः-पुनः मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता ही रहता है ॥ ११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥ १२ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ॥ ईशानो

भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः । एतद्वै तत् ॥ १३ ॥

है उसे भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान का शासक समझ कर ज्ञानी पुरुष अपने शरीर रक्षा की इच्छा नहीं करता । निश्चय यही वह ब्रह्मतत्त्व है ॥ १२ ॥

यह अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष धूम रहित ज्योति के समान है । यह भूत, भविष्यत् का शासक है यही आज है और यही कल भी रहेगा । निश्चय ही वह यही ब्रह्मतत्त्व है ॥ १३ ॥

अङ्गुष्ठमात्रोऽङ्गुष्ठपरिमाणः । अङ्गुष्ठपरिमाणं हृदयपुण्डरीकं तच्छिद्रवर्त्यन्तःकरणोपाधिरङ्गुष्ठमात्रोऽङ्गुष्ठमात्रवंशपर्वमध्यवर्त्यम्बरवत् । पुरुषः पूर्णमनेन सर्वमिति । मध्य आत्मनि शरीरे तिष्ठति यस्तमात्मानमीशानं भूतभव्यस्य विदित्वा न तत इत्यादि पूर्ववत् ॥ १२ ॥

किंच—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकोऽधूमकमिति युक्तं ज्योतिष्परत्वात् । यस्त्वेवं लक्षितो योगिभिर्हृदय ईशानो भूतभव्यस्य स एव नित्यः कूटस्थोऽद्येदानीं प्राणिषु वर्तमानः स उ श्वोऽपि वर्तिष्यते नान्यस्तत्समोऽन्यश्च जनिष्यत इत्यर्थः । अनेन नायम-

॥१३॥

हृदयस्थ ब्रह्मदर्शन का फल

फिर भी उसी प्रकृत ब्रह्म का वर्णन करते हैं—हृदय कमल अंगुष्ठ के समान परिमाण वाला है, उसके छिद्र में रहने वाला जो अन्तःकरण औपाधिक अंगूठे के बराबर परिमाण वाले बाँस के पर्व में स्थित आकाशतुल्य अंगुष्ठ परिमाण वाला पुरुष शरीर के मध्य में स्थित है, सम्पूर्ण शरीर में परिपूर्ण होने के कारण उसे पुरुष कहा गया है, वही आत्मा भूत भविष्यत् काल का शासक है, उस आत्मा को जानकर (तत्त्ववेत्ता पुरुष अपनी सुरक्षा की चिन्ता नहीं करता) इत्यादि शेष पदों की व्याख्या पूर्व की भाँति कर लेना चाहिये ॥ १२ ॥

वह अंगुष्ठ परिमाण वाला पुरुष निर्धूम वह्नि के समान है । मूलमन्त्र में आया हुआ 'अधूमकः' पद नपुंसक लिंग ज्योति शब्द का विशेषण होने से 'अधूमकम्' ऐसा लिंग का विपर्यय कर लेना चाहिये । इस प्रकार हृदय में जो योगियों द्वारा लक्षित होता है, वह भूत और भविष्यत् का शासक, नित्य कूटस्थ चैतन्यघन आत्मा सम्पूर्ण प्राणियों में आज भी विद्यमान है और वही कल भी रहेगा अर्थात् उसके समान दूसरा पुरुष उत्पन्न नहीं होता । इससे यह सिद्ध हुआ कि कुछ लोग देह के मर जाने पर आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता, ऐसा कहते हैं । उनका यह पक्ष युक्ति-युक्त न होता हुआ भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ॥ एवं
धर्मान्पृथक्पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥
यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ॥
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५ ॥

इति काठकोपनिषदि द्वितीयाध्याये प्रथमवल्ली समाप्ता ॥१॥(४)

जैसे ऊंचे पर्वतीय स्थान में बरसा हुआ जल पर्वतीय निम्न प्रदेशों में (फैलकर) नष्ट हो जाता है, वैसे ही आत्माओं को (प्रत्येक शरीर में) पृथक्-पृथक् देखकर जीव उन्हीं को (बारम्बार शरीर भेद को) प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

जैसे स्वच्छ जल में डाला हुआ स्वच्छ जल (मिलकर) वैसा ही स्वच्छ हो जाता है। हे गौतम! एकत्व आत्मदर्शी पुरुष का आत्मा भी वैसा ही हो जाता है ॥ १५ ॥

स्तीति चैक इत्ययं पक्षो न्यायतोऽप्राप्तोऽपि स्ववचनेन श्रुत्या प्रत्युक्तस्तथा क्षणभङ्गवादश्च ॥ १३ ॥

पुनरपि भेददर्शनापवादं ब्रह्मण आह—

यथोदकं दुर्गे दुर्गमे देश उच्छ्रिते वृष्टं सिक्तं पर्वतेषु [1]पर्ववत्सु निम्नप्रदेशेषु विधावति विकीर्णं सद्विनश्यति एवं धर्मानात्मनो भिन्नान्पृथक्पश्यन्पृथगेव प्रतिशरीरं पश्यंस्तानेव शरीरभेदानुवर्तिनोऽनुविधावति । शरीरभेदमेव पृथक्पुनः पुनः प्रतिपद्यत इत्यर्थः ॥ १४ ॥

यस्य पुनर्विद्यावतो विध्वस्तोपाधिकृतभेददर्शनस्य विशुद्धविज्ञानघनैकरसमद्वयमात्मानं पश्यतो विजानतो मुनेर्मननशीलस्याऽऽत्मस्वरूपं कथं भवति—

॥१४॥

श्रुति ने स्ववचन से खण्डित कर दिया; साथ ही बौद्धों के क्षणभंगुरवाद का भी खण्डन श्रुति ने कर दिया ॥ १३ ॥

भेद दर्शन की निन्दा

ब्रह्म में भेद देखने वाले के भेद दर्शन की निन्दा श्रुति फिर भी करती है। जैसे ऊँचे स्थान पर बरसा हुआ जल पर्वतीय निम्न देशों में फैलकर नष्ट हो जाता है, वैसे ही प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न आत्माओं को देखने वाला मनुष्य उन्हीं शरीर भेद का अनुसरण करने वालों की ओर ही भागता जाता है। तात्पर्य यह है कि भेददर्शी बारम्बार भिन्न-भिन्न शरीर भेद को ही प्राप्त होता रहता है ॥ १४॥

अभेद दर्शन की प्रशंसा

जिस विद्वान् की औपाधिक भेददृष्टि नष्ट हो गई है, अतएव जो एकमात्र विशुद्ध विज्ञानघनैकरस अद्वय आत्मा को ही देखता है, उस तत्त्ववेत्ता मननशील पुरुष का आत्मा कैसा होता है? यही बात

---

१. तप्पर्वमरुद्भूधामिति सूचयन्नाह—पर्ववत्स्विति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वै तत् ॥ १ ॥

जन्मादि विकार रहित उस नित्य विज्ञान स्वरूप आत्मा का (पुर के समान होने से यह शरीर रूप) पुर ग्यारह दरवाजों वाला है। ऐसे आत्मा का सम्यक् ज्ञान पूर्वक अनुष्ठान कर पुरुष शोक नहीं करता है और वह इस शरीर के रहते हुए ही अविद्याकृत काम और कर्म के बन्धनों से सर्वथा जीवन मुक्त हुआ ही विदेह कैवल्य को प्राप्त करता है ॥ १ ॥

यथोदकं शुद्धे प्रसन्ने शुद्धं प्रसन्नमासिक्तं प्रक्षिप्तमेकरसमेव नान्यथा तादृगेव भवत्यात्माऽप्येवमेव भवत्येकत्वं विजानतो मुनेर्मननशीलस्य हे गौतम । तस्मात्कुतार्किकभेददृष्टिं नास्तिककुदृष्टिं चोज्झित्वा मातृपितृसहस्रेभ्योऽपि हितैषिणा वेदेनोपदिष्टमात्मैकत्वदर्शनं शान्तदर्पैरादरणीयमित्यर्थः ॥ १५ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमदाचार्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ काठकोपनिषद्भाष्ये द्वितीयाध्याये प्रथमवल्लीभाष्यं समाप्तम् ॥ १ ॥ (४)

पुनरपि प्रकारान्तरेण ब्रह्मतत्त्वनिर्धारणार्थोऽयमारम्भो दुर्विज्ञेयत्वाद्ब्रह्मणः—पुरं पुरमिव पुरम् । द्वारपालाधिष्ठात्राद्यनेकपुरोपकरणसंपत्तिदर्शनाच्छरीरं

॥१५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यानन्दज्ञानविरचिते काठकोपनिषद्भाष्यव्याख्याने द्वितीयाध्याये प्रथमवल्ली समाप्ता ॥१॥ (४)

पौनरुक्त्यं परिहरन्संबन्धमाह—पुनरपीति । भूयोऽपि पथ्यं वक्तव्यमिति न्यायेनोपायान्तरेण

आगे बतलायी जा रही है—

जैसे स्वच्छ जल में डाला हुआ स्वच्छ जल मिलकर एकरस हो जाता है उससे विपरीत अवस्था में नहीं रहता, हे गौतम ! वैसे ही एकत्वदर्शी मननशील पुरुष का आत्मा भी ठीक उसी प्रकार हो जाता है। इसलिये कुतार्किकों की भेददृष्टि और नास्तिकों की कुदृष्टि को त्याग कर सहस्रों माता-पिता से भी अधिक हित चाहने वाले वेद के द्वारा उपदेश किये गये आत्मैकत्व दर्शन का ही निरभिमान होकर आदर करना चाहिये ॥ १५ ॥

॥ इति प्रथम वल्ली ॥

अथ द्वितीय वल्ली

अन्य प्रकार से ब्रह्म का अनुसन्धान

दुर्विज्ञेय होने के कारण पूर्वोक्त ब्रह्मतत्त्व का अन्य प्रकार से निश्चय कराने के लिये फिर भी यह आगे का ग्रन्थ प्रारम्भ किया जा रहा है। पुर के समान होने से यह शरीर भी पुर कहा गया है;

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथि-

वह गमन कर्ता होने से हंस है, आकाश में सूर्य रूप से चलने के कारण शुचिषत् है। व्यापक होने से वसु है। वायु रूप से आकाश में चलने के कारण अन्तरिक्षसत् है। वेदी (पृथिवी) में स्थित

पुरम्। पुरं च सोपकरणं स्वात्मनाऽसंहतस्वतन्त्रस्वाम्यर्थं दृष्टम्। तथेदं पुरसामान्यादनेकोपकरणसंहतं शरीरं स्वात्मनाऽसंहतराजस्थानीयस्वाम्यर्थं भवितुमर्हति। तच्चेदं शरीराख्यं पुरमेकादशद्वारमेकादशद्वाराण्यस्य सप्त शीर्षण्यानि नाभ्या सहार्वाञ्चि त्रीणि शिरस्येकं तैरेकादशद्वारं पुरं कस्याजस्य जन्मादिविक्रियारहितस्याऽऽत्मनो राजस्थानीयस्य पुरधर्मविलक्षणस्य। अवक्रचेतसोऽवक्रमकुटिलमादित्यप्रकाशवन्नित्यमेवावस्थितमेकरूपं चेतो विज्ञानमस्येत्यवक्रचेतास्तस्यावक्रचेतसो राजस्थानीयस्य ब्रह्मणः। यस्येदं पुरं तं परमेश्वरं पुरस्वामिनमनुष्ठाय ध्यात्वा। ध्यानं हि तस्यानुष्ठानं सम्यग्विज्ञानपूर्वकम्। तं सर्वैषणाविनिर्मुक्तः सन्समं सर्वभूतस्थं ध्यात्वा न शोचति। तद्विज्ञानादभयप्राप्तेः शोकावसराभावात्कुतो भयेक्षा। इहैवाविद्याकृतकामकर्मबन्धनैर्विमुक्तो भवति। विमुक्तश्च सन्विमुच्यते पुनः शरीरं न गृह्णातीत्यर्थः॥ १॥

ब्रह्म ज्ञाप्यते तत्रोपाया एव भिद्यन्ते नोपेयस्यं भेदोऽस्तीति। पुरेणासंहतत्वं स्वामिनः पुरोपचयापचयाभ्यामुपचयापचयराहित्यम्। तत्सत्ताप्रतीतिमन्तरेण सत्ताप्रतीतिमत्त्वं स्वातन्त्र्यम्॥१॥

क्योंकि इस शरीर रूपी पुर में भी द्वारपाल अधिष्ठाता रूप न्यायाधीश आदि नगर सम्बन्धी अनेकों सामग्री इस शरीररूप पुर में दीखती हैं और जैसे सम्पूर्ण उपकरणों के सहित पुर अपने से भिन्न किसी स्वतन्त्र उपभोक्ता के उपभोग के लिये देखा गया है, वैसे ही पुर से सादृश्य होने के कारण अनेक उपकरणों के सहित यह शरीर भी अपने से भिन्न राजस्थानापन्न अपने स्वामी के उपभोग के लिये होना चाहिये।

यह शरीर नाम वाला पुर (दो आँखें, दो कान, दो नाक और एक मुख) ऐसे सात मस्तक सम्बन्धी एवं नाभि के सहित (शिश्न और गुदा मिलाकर) तीन निम्नभागीय तथा (ब्रह्म स्कन्ध रूप) इस प्रकार मस्तकस्थ एक द्वार, इन सभी द्वारों से युक्त होने के कारण एकादश द्वार वाला है। वह पुर है किसका? इसका उत्तर देते हैं—अज का अर्थात् जो पुर के धर्मों से विलक्षण जन्मादि विकारों से रहित राजस्थानीय आत्मा है, साथ ही जो अवक्रचेता है। जैसे सूर्य नित्य प्रकाशस्वरूप है, वैसे ही जिसका विज्ञान नित्य अकुटिल है, उसी अवक्रचेता, अजन्मा, राजस्थानापन्न ब्रह्म का यह पुर है।

जिसका यह पुर है, उसका सम्यग्विज्ञानपूर्वक ध्यानरूप अनुष्ठान करके सम्पूर्ण एषणाओं से सर्वथा मुक्त होकर सम्पूर्ण भूतों में समभाव से स्थित उस ब्रह्म का ध्यान कर पुरुष शोक नहीं करता। ब्रह्म के विज्ञान से अभय की प्राप्ति हो जाती है, फिर शोक का अवसर नहीं रह जाता तो भला भय-दर्शन भी कैसे हो सकता है। अतः वह यहाँ पर जीवितावस्था में ही अविद्याकृत काम और कर्म के बन्धनों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। इस प्रकार वह जीवन्मुक्त हुआ पुरुष ही प्रारब्ध क्षय के अनन्तर विदेहकैवल्य को प्राप्त करता है। तात्पर्य यह कि वह पुनः शरीर ग्रहण नहीं करता॥ १॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ २ ॥

होने से होता (अग्नि) है, कलश में स्थित अतिथि (सोम) है, या अतिथि रूप से घर में आने के कारण वह अतिथि दुरोणसत् कहलाता है। (ऐसे ही वह) मनुष्यों में गमन करने वाला नृषत् कहलाता है। देवताओं में गमन शील वरसत् है। सत् या यज्ञ में जाने से वह ऋतसत् कहा जाता है। आकाश में चलने से व्योमसत् है। जल में शंखादि रूप से रहने के कारण अब्जा और पृथिवी में यावादि रूप से उत्पन्न होने के कारण गोजा कहा गया है। यज्ञाग्नरूप से उत्पन्न ऋतजा है और नदी आदि रूप में पर्वतों से उत्पन्न होने के कारण अद्रिजा है। त्रिकालाबाध्य होने से सत्य स्वरूप और सबका कारण होने से महान् है ॥ २ ॥

स तु नैकशरीरपुरवर्त्येवाऽऽत्मा किं तर्हि सर्वपुरवर्ती । कथम्—

हंसो हन्ति गच्छतीति, शुचिषच्छुचौ दिव्यादित्यात्मना सीदतीति । वसुर्वासयति सर्वानिति । वाय्वात्मनाऽन्तरिक्षे सीदतीत्यन्तरिक्षसत् । होताऽग्निः, अग्निर्वै होतेति श्रुतेः । वेद्यां पृथिव्यां सीदतीति वेदिषत्, इयं वेदिः परोऽन्तः पृथिव्या इत्यादिमन्त्र-वर्णात् । अतिथिः सोमः सन्दुरोणे कलशे सीदतीति दुरोणसत् । ब्राह्मणोऽतिथिरूपेण वा दुरोणेषु गृहेषु सीदतीति । नृषन्नृषु मनुष्येषु सीदतीति नृषत् । वरसद्वरेषु देवेषु सीदतीति । ऋतसदृतं सत्यं यज्ञो वा तस्मिन्सीदतीति । व्योमसद्व्योम्न्याकाशे सीदतीति व्योमसत् । अब्जा अप्सु शङ्खशुक्तिमकरादिरूपेण जायत इति । गोजा गवि पृथिव्यां व्रीहियवादिरूपेण जायत इति । ऋतजा यज्ञाङ्गरूपेण जायत इति । अद्रिजाः

या यज्ञे प्रसिद्धा वेदिः पृथिव्याः परोऽन्तः 'परः स्वभाव इति वेद्याः पृथिवीस्वभावत्वसंकीर्तना-त्पृथिवी वेदिशब्दवाच्या भवतीत्यर्थः । असौ वा आदित्यो हंसः शुचिषदिति ब्राह्मणेनाऽऽदित्यो

किन्तु वह आत्मा केवल एक ही शरीररूप पुर में नहीं रहता, प्रस्युत सभी पुरों में रहता है। कैसे ? इसे बतलाते हैं—वह गमन करता है इसीलिये हंस है। आकाश में सूर्यरूप से चलता है, अतः शुचिषत् है। सबको व्याप्त कर रखा है, इसीलिये वसु है। आकाश में वायुरूप से चलता है, अतः अन्तरिक्ष में सत् है। "अग्नि ही होता है" इस श्रुति के अनुसार अग्नि को 'होता' कहते हैं। पृथिवी में गमन करता है, इसलिए वेदिषत् है। "यह वेदि पृथिवी का उत्कृष्ट मध्य भाग है" इस मन्त्र वर्ण से प्रमाणित होता है कि पृथिवी को वेदिशब्द से भी कहा जाता है। यह अतिथि अर्थात् सोम होकर कलश में स्थित होता है। इसीलिये इसको दुरोणसत् कहते हैं अथवा अतिथिरूप से ब्राह्मण घरों में रहता है। इसलिये अतिथि को दुरोणसत् कहते हैं। वह मनुष्यों में रहता है, इसलियें नृषत् कहा गया है। देवताओं में रहता है, अतः उसे वरसत् कहा गया है। ऋत शब्द का अर्थ सत् और यज्ञ भी है, उसमें रहने के कारण उसे ऋतसत् कहते हैं। आकाश में चलता है, इसलिये व्योमसत् है। जल में शंख,

१. परः स्वभावः—अपरं रूपमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ॥ मध्ये
वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥

(जो हृदय देश से) प्राण वृत्ति को ऊपर की ओर ले जाता है और अपान को नीचे की ओर धकेलता है; हृदय कमल में रहने वाले उस सम्भजनीय की सभी देव उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

पर्वतेभ्यो नद्यादिरूपेण जायत इति । सर्वात्माऽपि सन्नृतमवितथस्वभाव एव । बृहन्महान्सर्वकारणत्वात् । यदाऽप्यादित्य एव मन्त्रेणोच्यते तदाऽप्यस्याऽऽत्मस्वरूपत्वमादित्यस्याङ्गी(त्यस्येत्यङ्गी)कृतत्वाद्ब्राह्मणव्याख्यानेऽप्यविरोधः । सर्वव्याप्येक एवाऽऽत्मा जगतो नाऽऽत्मभेद इति मन्त्रार्थः ॥ २ ॥

आत्मनः स्वरूपाधिगमे लिङ्गमुच्यते—

ऊर्ध्वं हृदयात्प्राणं प्राणवृत्तिं वायुमुन्नयत्यूर्ध्वं गमयति । तथाऽपानं प्रत्यगधोऽस्यति क्षिपति य इति वाक्यशेषः । तं मध्ये हृदयपुण्डरीकाकाश आसीनं बुद्धावभिव्यक्तविज्ञानप्रकाशं वामनं संभजनीयं विश्वे सर्वे देवाश्चक्षुरादयः प्राणा रूपादिविज्ञानं

मन्त्रार्थतया व्याख्यातः कथं तद्विरुद्धमिदं व्याख्यातमित्याशङ्क्याऽऽह—यदाऽप्यादित्य एवेति । सूर्य आत्मा 'जगतस्'तस्थुषश्चेति मन्त्रान्मण्डलोपलक्षितस्य चिद्धातोरिष्यत एव सर्वात्मत्वमित्यर्थः ॥२॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्य इति या पूर्वं विचिकित्सा प्रश्नमूलत्वेनोद्भाविता साऽपि निर्मूलेत्येतद्दर्शयितुं देहव्यतिरिक्तात्मास्तित्वं साधयति—आत्मनः स्वरूपाधिगम इत्यादिना । सर्वे प्राणकरण-

---

सीपी और मकर आदि रूपों से उत्पन्न होता है, इसलिये उसे अब्जा कहा है। पृथिवी में व्रीहि-यवादि रूप से उत्पन्न होता है, इसलिये उसे गोजा कहते हैं। यज्ञांग को ऋत शब्द से कहा गया है, अतः यज्ञांगरूप से उत्पन्न होने के कारण उस ब्रह्म को ऋतजा कहते हैं। नदी आदि रूप के रूप में पर्वतों से उत्पन्न है, इसलिये उसे अद्रिजा कहते हैं। इस प्रकार सर्वात्मा होकर भी वह परमात्मा अवितथ स्वभाव ही है एवं सबका कारण होने से महान् है। असौ वाऽऽदित्यो हंसः इत्यादि ब्राह्मण मन्त्र के अनुसार यदि इस मन्त्र द्वारा आदित्य का वर्णन किया गया है, ऐसा माना जाय तो भी (सूर्यः आत्मा जगतस्तस्थुषश्च) इस चराचर जगत् का आत्मा आदित्य है, ऐसा मानने के कारण इसका ब्राह्मण ग्रन्थ की व्याख्या से कोई विरोध नहीं आता। अतः इस मन्त्र का तात्पर्य अर्थ यही है कि जगत् का आत्मा एक ही सर्वव्यापक तत्त्व है, उन आत्माओं में भेद नहीं है ॥ २ ॥

आत्मा का स्वरूप ज्ञान करने में ज्ञापक कहा जाता है। प्राणवृत्तिरूप वायु को जो हृदय से ऊपर की ओर ले जाता है तथा अपान को नीचे की ओर ले जाता है, "यह पदवाक्य का शेष है"। हृदय-कमलवर्ती आकाश के भीतर रहने वाली बुद्धि में विज्ञानरूप से प्रकट होने वाले भजनीय वामन देव की उपासना चक्षुरादि सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों के ज्ञान के उपहार भेंट करती हुई कहती

---

१. जगतो जङ्गमस्य। २. तस्थुषः स्थावरस्येत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ॥ देहा-
द्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥४॥

इस शरीरस्थ देही आत्मा के भ्रष्ट हो जाने पर इस प्राणादि समुदाय में क्या शेष रह जाता है ? अर्थात् कुछ भी शेष नहीं रहता । यही वह ब्रह्म है ॥ ४ ॥ ९८

बलिमुपाहरन्तो विश इव राजानमुपासते तादर्थ्येनानुपरतव्यापारा भवन्तीत्यर्थः । यदर्था यत्प्रयुक्ताश्च सर्वे वायुकरणव्यापाराः सोऽन्यः सिद्ध इति वाक्यार्थः ॥ ३ ॥

किंच—

अस्य शरीरस्थस्याऽऽत्मनो विस्रंसमानस्यावस्रंसमानस्य भ्रंशमानस्य देहिनो देहवतः । विस्रंसनशब्दार्थमाह—देहाद्विमुच्यमानस्येति । किमत्र परिशिष्यते प्राणादिकलापे न किंचन परिशिष्यतेऽत्र देहे पुरस्वामिनो विद्रवण इव पुरवासिनां यस्याऽऽत्मनोऽपगमे क्षणमात्रात्कार्यकरणकलापरूपं सर्वमिदं हतबलं विध्वस्तं भवति विनष्टं भवति सोऽन्यः सिद्धः ॥ ४ ॥

स्यान्मतं प्राणापानाद्यपगमादेवेदं विध्वस्तं भवति न तु तद्व्यतिरिक्तात्मापगमात्प्राणादिभिरेव हि मर्त्यो जीवतीति । नैतदस्ति—

व्यापाराश्चेतनार्थास्तत्प्रयुक्ता भवितुमर्हन्ति जडचेष्ट(ष्टा)त्वाद्रथचेष्टावदित्यर्थः ॥३॥

शरीरं चेतनशेषं तद्विगमे भोगानर्हत्वाद्राजपुरवदित्यर्थः । विध्वस्तमिति ॥४॥

अन्यथासिद्धिं शङ्कते—स्यान्मतमिति । ननु जीव प्राणधारण इति धातुस्मरणाच्छरीरस्य

हैं—जैसे व्यापारी वर्ग वैश्य लोग शुल्क देते हुए अपने शासक राजा की उपासना करता है । तात्पर्य यह है कि उस आत्मा के लिये ही चक्षुरादि करण अपना व्यापार नहीं छोड़ते । अतः जिसकी प्रेरणा से प्राण और इन्द्रियों के समस्त व्यापार जिसके लिये होते हैं, वह प्रेरक एवं स्वामी उस करण समुदाय से भिन्न सिद्ध हुआ, यही इस वाक्य का तात्पर्य है ॥ ३ ॥

आत्मा ही जीवन

इस शरीर में स्थित देही आत्मा के देह से पृथक् हो जाने पर इस प्राणादिकरण समुदाय में भला क्या शेष रह जाता है, अर्थात् कुछ भो नहीं रहता । यहाँ पर विस्रंसन शब्द का अर्थ देह से जीवात्मा का वियोग जैसे नगर के स्वामी के चले जानें पर नागरिकों की स्थिति दयनीय हो जाती है, वैसे ही इस शरीर में जिस आत्मा के चले जाने पर तत्क्षण ही यह भूत और इन्द्रियों का समुदाय सब के सब बलहीन विध्वस्त अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं; वह आत्मा इस संघात से भिन्न ही सिद्ध होता है ॥ ४ ॥

यदि ऐसा माना जाय कि प्राण और अपानादि वायु के शरीर से निकल जाने पर ही शरीर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ ५ ॥

कोई भी देहधारी मानव न तो प्राण से न अपान से ही जीता है, किन्तु जिसमें ये दोनों आश्रित हैं ऐसे किसी अन्य से ही जीवित रहते हैं ॥ ५ ॥

न प्राणेन नापानेन चक्षुरादिना वा मर्त्यो मनुष्यो देहवान्कश्चन जीवति न कोऽपि जीवति । न ह्येषां परार्थानां संहत्यकारित्वाज्जीवनहेतुत्वमुपपद्यते । स्वार्थेनासंहतेन परेण केनचिदप्रयुक्तं संहतानामवस्थानं न दृष्टं गृहादीनां लोके, तथा प्राणादीनामपि संहतत्वाद्भवितुमर्हति । अत इतरेणैव संहतप्राणादिविलक्षणेन तु सर्वे संहताः सन्तो जीवन्ति प्राणान्धारयन्ति । यस्मिन्संहतविलक्षण आत्मनि सति परस्मिन्नेतौ प्राणापानौ चक्षुरादिभिः संहतावुपाश्रितौ, यस्यासंहतस्यार्थे प्राणापानादिः स्वव्यापारं कुर्वन्वर्तते संहतः सन्स ततोऽन्यः सिद्ध इत्यभिप्रायः ॥ ५ ॥

जीवनं नाम प्राणधारणं प्राणसंयोगश्च प्राणधारणं कुण्डे दधिधारणवत्तत्र च प्राणस्यैव हेतुत्वं [1]संयोगाश्रयत्वात् । कथमुच्यते जीवनहेतुत्वं प्राणादीनां न संभवतीति तत्राऽऽह—स्वार्थेनासंहतेनेति । कादाचित्कस्य प्राणशरीरसंयोगस्य स्वभावतोऽनुपपत्तेः संघातस्य च लोके परप्रयुक्तस्यैव दर्शनाद्भवितव्यमन्येन संघातप्रयोजकेनेत्यर्थः ॥ ५ ॥

नष्ट हो जाता है, उनसे भिन्न किसी आत्मा के निकलने से नहीं; क्योंकि प्राणादि के कारण से ही मनुष्य जीवित रहता है ।

ऐसा कहना ठीक नहीं; क्योंकि कोई भी देहधारी पुरुष न तो प्राण से जीवित रहता है और न अपान या चक्षुरादि इन्द्रियों से ही; क्योंकि परस्पर मिल-जुलकर प्रवृत्त होने वाले और किसी दूसरे के सहायक रूप इन इन्द्रिय आदि को जीवन-हेतुत्व कहना उचित नहीं । लोक में देखा गया है कि संघात से पृथक् किसी स्वतन्त्र चेतन की प्रेरणा बिना गृहादि संघात पदार्थों की स्थिति नहीं रह जाती, वैसे ही प्राणादि-संघात रूप हैं, इनकी स्थिति स्वतन्त्र नहीं हो सकती है । इसलिये ये प्राणादि-संघात मिलकर अपने से भिन्न किसी चेतन के द्वारा ही जीवित रहते हैं अर्थात् प्राण धारण करते हैं । संघात से विलक्षण जिस चेतनस्वरूप परमात्मा के रहते हुए ही प्राणापान चक्षुरादि करणों के साथ मिल-जुलकर आश्रित हैं, वह आत्मा उनसे भिन्न सिद्ध होता है । तात्पर्य यह है कि आत्मा प्राण-अपानादि-संघात से विलक्षण स्वभाव और भिन्न है, उसी के लिये प्राण-अपानादि मिल-जुलकर अपने-अपने व्यापार को करते हुये विद्यमान रहते हैं ॥ ५ ॥

---

१. संयोगाश्रयत्वादिति—प्रतियोगितासम्बन्धेन संयोगाश्रयत्वादित्यर्थः । संयोगप्रतियोगित्वादिति यावद् । प्रतियोगी हि निरूपकत्वाद्भवति हेतुरिति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥

हे गौतम ! अब मैं तुम्हें फिर भी इस गोपनीय सनातन ब्रह्म को अच्छी प्रकार बतलाऊँगा, तथा (ब्रह्म को न जानने से) मरकर आत्मा जैसा होता है वैसा ही मैं बतलाऊँगा ॥ ६ ॥

(अज्ञानी देहाभिमानी) अपने कर्म और चिन्तन के अनुरूप कितने ही शरीर धारण करने के लिये किसी योनि में चले जाते हैं और कुछ लोग स्थावर भाव को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

हन्तेदानीं पुनरपि ते तुभ्यमिदं गुह्यं गोप्यं ब्रह्म सनातनं चिरंतनं प्रवक्ष्यामि। यद्विज्ञानात्सर्वसंसारोपरमो भवति, अविज्ञानाच्च यस्य मरणं प्राप्य यथाऽऽत्मा भवति यथा संसरति तथा शृणु हे गौतम ॥ ६ ॥

योनिं योनिद्वारं शुक्रबीजसमन्विताः सन्तोऽन्ये केचिदविद्यावन्तो मूढाः प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय शरीरग्रहणार्थं देहिनो देहवन्तः, योनिं प्रविशन्तीत्यर्थः। स्थाणुं वृक्षादि-स्थावरभावमन्येऽत्यन्ताधमा मरणं प्राप्यानुसंयन्त्यनुगच्छन्ति । यथाकर्म यद्यस्य कर्म तद्यथाकर्म यैर्यादृशं कर्मेह जन्मनि कृतं तद्वशेनेत्येतत् । तथा च यथाश्रुतं यादृशं च

येयं प्रेत इति प्रष्टुः 'परलोकेऽस्तित्वेऽपि संदेह आसीत् । विशेषतस्तन्निवृत्त्यर्थमुच्यत इत्याह— हन्तेदानीमिति ॥६॥

मरण के बाद जीव की गति

अहो ! अब मैं तुम्हें फिर भी इस गोपनीय चिन्तन ब्रह्म को बतलाऊँगा, जिसके अपरोक्षानुभव से सम्पूर्ण संसार मिट जाता है और जिसके न जानने से मरकर आत्मा जैसा भी होता है अर्थात् जिस प्रकार जन्म-मरणादि संसार को प्राप्त होता है, हे गौतम ! अब उसे सुन ॥ ६ ॥

कुछ एक अज्ञानी प्राणी शुक्ररूप बीज से संयुक्त हो देह धारण के लिये योनिद्वार को प्राप्त होते हैं अर्थात् किसी योनि में प्रविष्ट हो जाते हैं। दूसरे अत्यन्त अधम जीव मरकर (अपने कर्म और वासना के अनुरूप) वृक्षादि स्थावर भाव का अनुगमन करते हैं अर्थात् जिसका जैसा कर्म या इस जन्म में जिसने जैसा कर्म किया है और जिसने जैसे विज्ञान का उपार्जन किया है, उसके अधीन तदनुरूप

---

१. परलोकेऽस्तित्वेऽपीति—परलोके देहातिरिक्तस्यात्मनोऽस्तित्वेऽपीत्यर्थः । स्थाण्वादिविशेषरूपेणास्तित्वे तु किमु वक्तव्यमित्यर्थः । परलोकास्तित्वेऽपीति वा पाठः । परलोके संदेह आसीदिति लिखितपुस्तके पाठः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मि-
माणः ॥ तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥
एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

प्राण आदि के सो जाने पर (अविद्या के बल से स्त्री आदि) अपने-अपने अभीष्ट पदार्थों की रचना करता हुआ जो यह जागता रहता है वही शुद्ध है वह ब्रह्म है और वही (सभी शास्त्रों में) अमृत कहा जाता है। उसमें ही पृथिव्यादि सम्पूर्ण लोक आश्रित हैं। उसका कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। यही वह ब्रह्म है ॥ ८ ॥

विज्ञानमुपार्जितं तदनुरूपमेव शरीरं प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः। यथाप्रज्ञं हि संभवा इति श्रुत्यन्तरात् ॥ ७ ॥

यत्प्रतिज्ञातं गुह्यं ब्रह्म वक्ष्यामीति तदाह—

य एष सुप्तेषु प्राणादिषु जागर्ति न स्वपिति। कथम्। कामं कामं तं तमभिप्रेतं स्त्र्याद्यर्थमविद्यया निर्मिमाणो निष्पादयञ्जागर्ति पुरुषो यस्तदेव शुक्रं शुभ्रं शुद्धं तद्ब्रह्म नान्यद्गुह्यं ब्रह्मास्ति। तदेवामृतमविनाश्युच्यते सर्वशास्त्रेषु। किंच पृथिव्यादयो लोकास्तस्मिन्नेव सर्वे ब्रह्मण्याश्रिताः सर्वलोककारणत्वात्तस्य। तदु नात्येति कश्चनेत्यादि पूर्ववदेव ॥ ८ ॥

॥ ७ ॥
॥ ८ ॥

शरीर को ही प्राप्त होते हैं। "अपनी बुद्धिजनित वासना के अनुरूप ही जन्म होते हैं" ऐसी एक अन्य श्रुति से भी यही बात सिद्ध होती है ॥ ७ ॥

गुह्य ब्रह्म का उपदेश

जिस गोपनीय ब्रह्म को मैं तुझे बतलाऊँगा, ऐसी प्रतिज्ञा की थी, उसे कहते हैं—प्राणादि इन्द्रियों के सो जाने पर जो यह जागता रहता है तथा उनके साथ सोता नहीं है। किस प्रकार जागता है? उसे भी बतलाते हैं—अविद्या के बल से स्त्री आदि उन-उन अपने अभीष्ट पदार्थों की रचना करता हुआ जो पुरुष जागता रहता है, वही शुद्ध वह ब्रह्म है, उससे भिन्न कोई गोपनीय ब्रह्म नहीं है। सभी शास्त्रों में वही अमृत अर्थात् मधुर और अविनाशी कहा गया है। इतना ही नहीं—प्रत्युत उस ब्रह्म में ही पृथिव्यादि सम्पूर्ण लोक आश्रित हैं; क्योंकि वह सभी लोकों का कारण है। इसीलिये कोई भी उसका अतिक्रमण कर नहीं सकता। निःसन्देह यही वह ब्रह्म है, इत्यादि व्याख्या पूर्व की भाँति समझ लेनी चाहिये ॥ ८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ॥
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९ ॥

जैसे एक ही प्रकाशस्वरूप अग्नि सम्पूर्ण भुवन में प्रविष्ट हुआ काष्ठादि भिन्न-भिन्न दाह्य पदार्थ के अनुरूप हो जाता है, वैसे ही एक ही सम्पूर्ण भूतों का अन्तरात्मा उनके रूप के अनुरूप हो रहा है तथा (आकाश के समान अपने अविकारी रूप से उनसे) बाहर भी है ॥ ९ ॥

अनेकतार्किककुबुद्धिविचालितान्तःकरणानां प्रमाणोपपन्नमप्यात्मैकत्वविज्ञानमसकृदुच्यमानमृजुबुद्धीनां ब्राह्मणानां चेतसि नाऽऽधीयत इति तत्प्रतिपादन आदरवती पुनः पुनराह श्रुतिः—

अग्निर्यथैक एव प्रकाशात्मा सन्भुवनं भवन्त्यस्मिन्भूतानीति भुवनमयं लोकस्त-

---

'जन्ममरणकरणानां प्रति[प्राणि]नियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चेति नानात्मानो व्यवस्थिता इत्यनेकतार्किकबुद्धिविरोधात्सर्वपुरवर्त्येक एवाऽऽत्मेत्यत्र न चित्तस्थैर्यं संभवतीत्याशङ्क्यौपाधिकभेदसाधने सिद्धसाधनं स्वाभाविकभेदसाधने चानैकान्तिकत्वं दर्शयितुं प्रक्रमत इत्याह—अनेकतार्किकेत्यादिना । प्रतिरूप उपाधिसदृशश्चतुष्कोणत्वादिधर्मके हि दारुणि

आत्मा में औपाधिक प्रतिरूपत्व

जिनका अन्तःकरण अनेक तार्किकों की कुबुद्धि द्वारा विचलित कर दिया गया है इसीलिये जिनकी बुद्धि सरल नहीं है, उन ब्रह्मजिज्ञासु ब्राह्मणों के चित्त में प्रमाण सिद्ध होने पर भी आत्मैकत्व-विज्ञान बारम्बार कहे जाने पर भी स्थिर नहीं होता। अतः ऐसे साधक के लिये उस आत्मैकत्व-विज्ञान प्रतिपादन में आदर रखने वाली श्रुति बार-बार कहती है। जिसमें सभी जीव उत्पन्न होते हैं;

---

१. पुरुषनानात्वाभिमतिं सांख्यानां तत्कारिकयाऽऽह—जन्मेत्यादिना । एवेत्यार्यान्त्यशेषः । आत्मन एकत्वे सत्येकस्मिञ्जाते मृते वा सर्वे एव जाता मृता वा स्युः । एकस्मिन् स चक्षुषि सर्वे एव स चक्षुषः स्युरेकेन दृष्टे सर्वे द्रष्टारः स्युर्न च तथा, तस्माद्बहवः पुरुषा इति भावः । किं च एकस्य धर्मेऽन्यस्य ज्ञानोऽपरस्य वैराग्य इतरस्यैश्वर्ये परस्य कामदावित्येवं प्रवृत्तिभेदादप्यात्मनानात्वमन्यथा हि सर्वेषामेकस्मिन्नेवार्थे युगपत्प्रवृत्तिः स्यादिति—किं च त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव । एवकारो भिन्नक्रमः सिद्धमित्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । त्रयो गुणास्त्रैगुण्यं तस्य विपर्ययः परिणामभेदः क्वचित्सुखमेव क्वचिद्दुःखमेव क्वचिन्मोह एवेत्येवंविधस्तस्मात् । यद्वा त्रैगुण्येन विपर्ययो भेदः सात्त्विकराजसतामसानां पुरुषाणां तस्मात् । एकत्वे हि सर्वे सुखिनो दुःखिनो वा स्युः । एवं त्रैगुण्यभेदेन नीचोत्तममध्यमव्यवस्थाऽपि न स्यात् । न चान्तःकरणभेदात्तथेति वाच्यमन्तःकरणभेदे पुरुषभेदस्यैव बीजत्वादन्यथा तद्भेदस्याप्रमाणकत्वादिति सांख्यवचनार्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥

जैसे एक ही वायु प्राण रूप से इस लोक (देह) में प्रविष्ट हुआ प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है। वैसे ही सम्पूर्ण भूतों का अन्तरात्मा एक ही प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है॥ १०॥

मिमं प्रविष्टोऽनुप्रविष्टः। रूपं रूपं प्रति दार्वादिदाह्यभेदं प्रतीत्यर्थः। प्रतिरूपस्तत्र तत्र प्रतिरूपवान्दाह्यभेदेन बहुविधो बभूव। एक एव तथा सर्वभूतान्तरात्मा सर्वेषां भूतानामभ्यन्तर आत्माऽतिसूक्ष्मत्वाद्दार्वादिष्विव सर्वदेहं प्रति प्रविष्टत्वात्प्रतिरूपो बभूव बहिश्च स्वेनाविकृतेन[स्व]रूपेणाऽऽकाशवत् ॥ ६ ॥

तथाऽन्यो दृष्टान्तः—

वायुर्यथैक इत्यादि। प्राणात्मना देहेष्वनुप्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो [1]बभूवेति स(वेत्यादि स)मानम् ॥१०॥

एकस्य सर्वात्मत्वे संसारदुःखित्वं परस्यैव तदिति प्राप्तमत इदमुच्यते—

तद्रूपो वह्निरपि लक्ष्यत इत्यर्थः ॥ ६ ॥

॥ १० ॥

परमात्मा दुःखी स्याद्दुःखा(ख्य)भिन्नत्वाल्लोकवदित्याह—एकस्य सर्वात्मकत्व इति।

ऐसे भुवन में जिस प्रकार एक ही प्रकाश-स्वरूप अग्नि उसी इस लोक में अनुप्रविष्ट हुआ काष्ठादि भिन्न-भिन्न प्रत्येक दाह पदार्थों के अनुरूप हो जाता है एवं उस-उस पदार्थ के अनुरूप हुआ दाह्य भेद से अनेक प्रकार का हो जाता है; वैसे ही सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण काष्ठादि में प्रविष्ट अग्नि की भाँति सम्पूर्ण देहों में प्रविष्ट रहने के कारण उन देहरूप उपाधियों के अनुरूप हो गया है, पर वास्तव में आकाश के समान अपने निर्विकार स्वरूप से उन उपाधियों के बाहर भी है ॥ ६ ॥

ऐसा ही एक अन्य दृष्टान्त भी है। जिस प्रकार एक ही वायु प्राणरूप से देहों में अनुप्रविष्ट होता रहता है प्रत्येक देह उपाधि के अनुरूप हो रहा है, (वैसे ही सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप होता है) इत्यादि व्याख्या पूर्व के समान ही समझनी चाहिये ॥ १० ॥

आत्मा की अलिप्तता

इस प्रकार सबकी आत्मा एक ही है। ऐसी स्थिति में संसार दुःख से उस परमात्मा का दुःखी होना भी सिद्ध होता है। अतः अग्रिम मन्त्र से उसकी असंगता बतलाते हैं—जैसे सूर्य आलोक द्वारा चक्षु

---

१. बभूवेति समानमित्येव लिखितपुस्तकस्य पाठः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषै-र्बाह्यदोषैः ॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥

जैसे (अपने प्रकाश से लोक का उपकार करता हुआ) सूर्य सम्पूर्ण लोक का नेत्र होकर भी) आध्यात्मिक पाप दोष तथा अपवित्र पदार्थों के संसर्ग से होने वाले नेत्र सम्बन्धी वाह्य दोषों से लिप्त नहीं होता वैसे ही सम्पूर्ण भूतों का अन्तरात्मा एक ही (भ्रमजन्य) संसार के दुःख से लिप्त नहीं होता, बल्कि (रज्जु आदि के समान भ्रमबुद्धि जन्य अध्यास से) बाहर ही रहता है ॥ ११ ॥

सूर्यो यथा चक्षुष आलोकेनोपकारं कुर्वन्मूत्रपुरीषाद्यशुचिप्रकाशनेन तद्दर्शिनः सर्वलोकस्य चक्षुरपि सन्न लिप्यते चाक्षुषैरशुच्यादिदर्शननिमित्तैराध्यात्मिकैः पापदोषै-र्बाह्यैश्चाशुच्यादिसंसर्गदोषैः । एकः संस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः । लोको ह्यविद्यया स्वात्मन्यध्यस्तया कामकर्मोद्भवं दुःखमनुभवति । न तु सा परमार्थतः स्वात्मनि । यथा रज्जुशुक्तिकोखरगगनेषु सर्परजतोदकमलानि न रज्ज्वा-दीनां स्वतो दोषरूपाणि सन्ति । संसर्गिणि विपरीतबुद्धयध्यासनिमित्तात्तद्दोषवद्वि-भाव्यन्ते । न तद्दोषैस्तेषां लेपो विपरीतबुद्धयध्यासबाह्या हि ते । तथाऽऽत्मनि सर्वो

अविद्यायां प्रतिबिम्बितश्चिद्धातुरज्ञो भ्रान्तो भवति । भ्रान्तश्च कामादिदोषप्रयुक्तः कर्म कुरुते तन्निमित्तं च दुःखं स्वात्मन्यध्यस्यति । परमात्मा तु निरविद्यत्वाद्दुःखसाधनशून्यत्वान्न दुःखी ततो न प्रयोजको हेतुरित्याह—लोको ह्यविद्ययेति । स्वरूपेण भ्रमाविषयत्वं विपरीतबुद्धयध्यासबाह्यत्वं रज्ज्वादीनां तथा चैतन्यस्योपाधिस्वरूपेणाध्यासाश्रयत्वेऽपि निरुपाधिकबिम्बकल्पब्रह्मरूपेणाध्यासानाश्रयत्वान्न

का उपकार करता हुआ मल-मूत्रादि अपवित्र वस्तुओं को प्रकाशित करने के कारण उसे बाह्य दोष से लेप का प्रसंग नहीं आता और न अपवित्र वस्तु के दर्शन जन्य आध्यात्मिक पाप दोष से ही उसका संसर्ग होता है; ठीक उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा भी लोकों के दुःख से लिप्त नहीं होता किन्तु लोक दुःख से बाहर ही रहता है ।

अपने आत्मा में आरोपित अविद्या के कारण ही इच्छा और कर्म जनित दुःख का अनुभव लोक करता है किन्तु परमार्थतः वह अविद्या आत्मा में है नहीं । जैसे रज्जु, शुक्ति, मरुभूमि एवं आकाश में प्रतिभासित सर्प, जल और मलिनता अपने अधिष्ठान रज्जु आदि में स्वाभाविक दोषरूप नहीं है; क्योंकि ये कल्पित पदार्थ अपने अधिष्ठान को दूषित नहीं कर सकते, प्रत्युत उनके संसर्ग में आये हुए पुरुष में विपरीत बुद्धिरूप अध्यास होने के कारण ही वे अधिष्ठान उन-उन दोषों से लिप्त प्रतीत होते हैं । वास्तव में उन दोषों से उनका लेप होता ही नहीं; क्योंकि वे अधिष्ठान विपरीत बुद्धि जन्य अध्यास से बाहर ही तो हैं । इसी प्रकार सम्पूर्ण लोक भी रज्ज्वादि में कल्पित सर्पादि की भाँति अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ॥ तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

जो एक स्वतन्त्र सम्पूर्ण भूतों का अन्तरात्मा अपने एक विशुद्ध विज्ञान स्वरूप को ही अनेक प्रकार से कर लेता है। अपनी बुद्धि में चैतन्य रूप से अभिव्यक्त उस आत्मदेव को जो धीर पुरुष देखते हैं, उन्हीं को नित्य सुख होता है; अन्य को नहीं ॥ १२ ॥

लोकः क्रियाकारकफलात्मकं विज्ञानं सर्पादिस्थानीयं विपरीतमध्यस्य तन्निमित्तं जन्ममरणादिदुःखमनुभवति न त्वात्मा सर्वलोकात्माऽपि सन्विपरीताध्यारोपनिमित्तेन लिप्यते लोकदुःखेन। कुतः। बाह्यः। रज्ज्वादिवदेव विपरीतबुद्ध्यध्यासबाह्यो हि स इति ॥११॥

किंच—

स हि परमेश्वरः सर्वगतः स्वतन्त्र एको न तत्समोऽभ्यधिको वाऽन्योऽस्ति। वशी सर्वं ह्यस्य जगद्वशे वर्तते। कुतः। सर्वभूतान्तरात्मा। यत एकमेव सदैकरसमात्मानं विशुद्धविज्ञानरूपं नामरूपाद्यशुद्धोपाधिभेदवशेन बहुधाऽनेकप्रकारं यः करोति स्वात्मसत्तामात्रेणाचिन्त्यशक्तित्वात्। तमात्मस्थं स्वशरीरहृदयाकाशे बुद्धौ चैतन्या-

---

दुःखित्वप्राप्तिरित्यर्थः ॥ ११ ॥

परोत्कर्षदर्शनं पारतन्त्र्यं च स्वस्य हीनत्वं दुःखकारणं प्रसिद्धं तदभावान्न परमात्मा दुःखी ततस्तत्प्राप्तिः परः पुरुषार्थो भविष्यतीत्याह—किंच स हीत्यादिना ॥ १२ ॥

आत्मा में क्रिया, कारक और फलरूप विपरीत ज्ञान का आरोप कर उसके निमित्त से होने वाले जन्म-मरणादि दुःखों का अनुभव करता है, किन्तु आत्मा सम्पूर्ण लोकों का अन्तरात्मा होता हुआ भी विपरीत कल्पना से होने वाले लौकिक दुःख से लिप्त नहीं होता। क्यों नहीं लिप्त होता है? क्योंकि वह आत्मा रज्जु आदि के समान विपरीत बुद्धि एवं अध्यास से बाहर ही रह जाता है ॥ ११ ॥

आत्मज्ञानी को ही नित्य सुख प्राप्त होता है

तथा वह स्वतन्त्र और सर्वव्यापक परमेश्वर एक है। उसके समान या उससे बड़ा दूसरा कोई नहीं, सम्पूर्ण जगत् उसके अधीन है। इसलिये वह वशी कहा जाता है। उसके अधीन सम्पूर्ण जगत् कैसे है? क्योंकि वह सम्पूर्ण भूतों का अन्तरात्मा है। इस प्रकार अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न होने के कारण अपने एक नित्य सदा एकरस विशुद्ध विज्ञानस्वरूप आत्मा को ही नाम-रूपादि अशुद्ध उपाधि भेद से से अपनी सत्तामात्र द्वारा जो अनेक प्रकार कर लेता है, उस अपने शरीरान्तवर्ती हृदयाकाशगत बुद्धि में चैतन्यरूप से अभिव्यक्त हुए (आत्मा को जो लोग देखते हैं, उन्हीं को नित्य सुख प्राप्त होता है)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2.

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ॥ तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३ ॥

जो अनित्य पदार्थों में नित्य ब्रह्मादि चेतन प्राणियों का भी चेतन है और जो अकेला ही (संकल्प मात्र से सांसारिक) अनेकों की कामनाएँ पूर्ण करता है, जो धीर पुरुष अपनी बुद्धि में स्थित चैतन्य आत्मा को देखते हैं, उन्हीं को नित्य शाश्वत शान्ति मिलती है, औरों को नहीं ॥ १३ ॥

कारेणाभिव्यक्तमित्येतत् । न हि शरीरस्याऽऽधारत्वमात्मनः । आकाशवदमूर्तत्वात् । आदर्शस्थं मुखमिति यद्वत् । तमेतमीश्वरमात्मानं ये निवृत्तबाह्यवृत्तयोऽनुपश्यन्ति आचार्यागमोपदेशमनु साक्षादनुभवन्ति धीरा विवेकिनस्तेषां परमेश्वरभूतानां शाश्वतं नित्यं सुखमात्मानन्दलक्षणं भवति नेतरेषां बाह्यासक्तबुद्धीनामविवेकिनां स्वात्मभूतमप्यविद्याव्यवधानात् ॥१२॥

किंच—

नित्योऽविनाश्यनित्यानां विनाशिनाम् । चेतनश्चेतनानां चेतयितृणां ब्रह्मादीनां प्राणिनामग्निनिमित्तमिव दाहकत्वमनग्नीनामुदकादीनामात्मचैतन्यनिमित्तमेव चेत-

---

इदानीं परमात्मन्युपपत्तिदर्शनार्थमाह—किंच नित्य इति । सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयदित्यादिश्रुतेरकृताभ्यागमकृतविप्रणाशप्रसङ्गपरिहाराच्च कल्पान्तरीयभावानां प्रलीनानां कल्पान्तरे सजातीयरूपेणोत्पादः प्रतीयते स तदा स्याद्यदि विनाशिनां भावानां शक्तिशेषो लयः स्यात् । ततः प्रलये विनश्यत्सर्वं यत्र शक्तिशेषं विलीयते सोऽभ्युपगन्तव्य इत्यर्थः । बुद्धिमतामपि ब्रह्मेन्द्रादीनां परमानन्दाभिमुख्यं हित्वा यां बहिर्मुखा चेतनोपलभ्यते साऽपि नियन्तारं गमयतीत्याह—चेतनश्चेतना-

---

आकाश के समान अमूर्त होने के कारण आत्मा का आधार शरीर नहीं हो सकता, जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्बित मुख का आधार दर्पण नहीं है।

जिनकी बाह्य वृत्तियाँ निवृत्त हो गयी हैं, ऐसे जो धीर विवेकी पुरुष उस ईश्वर स्वरूप आत्मा को देखते हैं अर्थात् आचार्य और शास्त्र के उपदेश के अनन्तर साक्षात् अनुभव करते हैं, परमात्मा के साथ अभिन्नता को प्राप्त हुए उन पुरुषों को निजानन्दरूप शाश्वत सुख प्राप्त होता है, दूसरे बाह्य विषयों में आसक्त चित्त अविवेकी पुरुषों को नहीं मिलता; क्योंकि यह सुख आत्मस्वरूप होता हुआ भी उन्हें अविद्यारूप व्यवधान के कारण व्यवहित प्रतीत होता है । १२ ॥

इसके अतिरिक्त जो नाशवान् पदार्थों में अविनाशी है, ब्रह्मादि अन्य चेतन प्राणियों का भी चेतन है, जैसे जल आदि दाह शक्ति शून्य पदार्थों में प्रतीत होने वाली दाहकता दाहक अग्नि के निमित्त से होती है; ठीक वैसे ही दूसरे प्राणियों में चेतनता आत्मचैतन्य के निमित्त से ही है। इतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ॥ कथं नु
तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥

उस इस (आत्म विज्ञान) को ही (प्राकृत पुरुषों के) मन वाणी के अविषय, परम सुख विवेकी मानते, हैं उसे मैं कैसे जान सकूँगा। क्या वह (वह हमारी बुद्धि का विषय होकर) प्रकाशित होता है या नहीं ॥ १४ ॥

यितृत्वमन्येषाम्। किंच स सर्वज्ञः सर्वेश्वरः कामिनां संसारिणां कर्मानुरूपं कामान्कर्मफलानि स्वानुग्रहनिमित्तांश्च कामान्य एको बहूनामनेकेषामनायासेन विदधाति प्रयच्छतीत्येतत्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिरुपरतिः शाश्वती नित्या स्वात्मभूतैव स्यान्नेतरेषामनेवंविधानाम् ॥१३॥

यत्तदात्मविज्ञानं सुखमनिर्देश्यं निर्देष्टुमशक्यं परमं प्रकृष्टं प्राकृतपुरुषवाङ्मनसयोरगोचरमपि सन्निवृत्तैषणा ये ब्राह्मणास्ते तदेतत्प्रत्यक्षमेवेति मन्यन्ते, कथं नु केन प्रकारेण तत्सुखमहं विजानीयाम्। इदमित्यात्मबुद्धिविषयमापादयेयं यथा निवृत्तैषणा यतयः। किमु तद्भाति दीप्यते प्रकाशात्मकं तद्यतोऽतोऽस्मद्बुद्धिगोचरत्वेन विभाति विस्पष्टं दृश्यते किंवा नेति ॥१४॥

मिति। ब्रह्मादिशब्दवाच्यानां संघातानां वा चेतयितृत्वं यच्चैतन्यनिमित्तं सोऽस्ति पर आत्मेत्यर्थः। विमतं कर्मफलं तत्स्वरूपाद्यभिज्ञेन दीयमानं व्यवहितफलत्वात्सेवाफलवदित्याह—किंच स इति ॥१३॥

विद्वदनुभवोऽपि परमानन्दे प्रमाणमित्याह—यत्तदात्मविज्ञानमिति। तस्मादसंभावितया न जिहासितव्यं परमात्मदर्शनं किंतु श्रद्दधानतया विचारयितव्यमेवेत्याह—कथं न्विति ॥१४॥

ही नहीं बल्कि वह सर्वज्ञ और सर्वेश्वर भी है; क्योंकि वह अकेला ही किसी परिश्रम के बिना ही अनेक सकाम संसारी पुरुषों के कर्मानुसार भोग अर्थात् कर्म, फल एवं अपने अनुग्रह निमित्त से होने वाले भोग का भी विधान करता है। जो धीर विवेकी पुरुष अपने हृदयस्थ बुद्धि में स्थित उस आत्मदेव को देखते हैं, उन्हीं को स्वात्मभूता शाश्वती शान्तिरूप उपरति प्राप्त होती है, इनसे भिन्न लोगों को नहीं ॥ १३ ॥

यह जो आत्मविज्ञान रूप सुख है। वह वाणी से निर्देश करने योग्य नहीं और परम है अर्थात् साधारण प्राकृत पुरुषों के वाणी और मन का विषय नहीं। फिर भी जो सभी प्रकार की एषणाओं से ऊपर उठे ब्राह्मण लोग हैं, वे उसे प्रत्यक्ष ही मानते हैं। उस आत्मसुख को मैं कैसे जान सकूँगा अर्थात् निवृत्त-एषणा यतियों के समान "वह यही है" इस प्रकार अपनी बुद्धि का विषय उसे कैसे बनाऊँगा? क्योंकि जो स्वयं प्रकाश स्वरूप है, क्या वह हमारी बुद्धि का विषय होकर विस्पष्ट दीखता है या नहीं ॥ १४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १५ ॥

इति काठकोपनिषदि प्रथमाध्याये द्वितीया वल्ली समाप्ता ॥२॥ (५)

वहाँ (आत्मस्वरूप ब्रह्म में) सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा तारे वहाँ प्रकाशित नहीं होते और यह विद्युत् भी नहीं चमकती है तो फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या है ? उसके प्रकाशित होने पर ही सब कुछ प्रकाशित होता है तथा उसके प्रकाश से ही यह सब भासता है ॥१५॥

॥ इति द्वितीयवल्ली ॥

अत्रोत्तरमिदं भाति च विभाति चेति। कथम्—

न तत्र तस्मिन्स्वात्मभूते ब्रह्मणि सर्वावभासकोऽपि सूर्यो भाति तद्ब्रह्म न प्रकाशयतीत्यर्थः। तथा न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमस्मद्गोचरोऽग्निः। किं बहुना यदिदमादित्यादिकं सर्वं भाति तत्तमेव परमेश्वरं भान्तं दीप्यमानमनुभात्यनुदीप्यते। यथा जलोल्मुकाद्यग्निसंयोगादग्निं दहन्तमनु दहति न स्वतस्तद्वत्। तस्यैव भासा दीप्त्या सर्वमिदं सूर्यादि विभाति। यत एवं तदेव ब्रह्म भाति च विभाति च। कार्यगतेन [1]विविधेन भासा तस्य ब्रह्मणो भारूपत्वं स्वतोऽवगम्यते। न हि स्वतोऽविद्यमानं भासनमन्यस्य कर्तुं शक्यम्। घटादीनामन्यावभासकत्वादर्शनाद्भासनरूपाणां

आत्मा सबका प्रकाशक होता हुआ अप्रकाश्य है

इस प्रश्न का उत्तर यही है कि वह भासता है (इतना ही नहीं, विशेषरूप से भासता है) कैसे ? इस पर कहते हैं, उस अपने आत्मस्वरूप ब्रह्म में सबका प्रकाशक भी सूर्य प्रकाशित नहीं होता अर्थात् उस ब्रह्म को सूर्य प्रकाशित नहीं करता। ऐसे ही चन्द्रमा, तारे और ये विद्युत् भी उसको प्रकाशित नहीं करता। फिर भला, हमारी दृष्टि के विषय यह अग्नि उसे कैसे प्रकाश कर सकती है। बहुत क्या कहें जो ये सूर्यादि प्रकाशित होते हैं, वे उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा के पीछे-पीछे प्रकाशित होते हैं। जैसे दाहक अग्नि के संयोग से जल और जलते हुए काष्ठादि (अन्य पदार्थों को) जलाते हैं, अग्नि संयोग के बिना स्वयं नहीं जला सकते; ठीक उसी प्रकार ब्रह्म के तेज से ही सूर्य आदि सभी प्रकाशित हो रहे हैं। जबकि ऐसी बात है, अतएव वही ब्रह्म प्रकाशित होता है और विशेषरूप से ही प्रकाशित होता है। जो स्वतः प्रकाशस्वरूप नहीं, वह दूसरे को भी प्रकाशित नहीं कर सकता। जैसे घटादि दूसरे के अवभासक नहीं देखे गये है, किन्तु प्रकाशस्वरूप आदित्यादि दूसरे को प्रकाशित करते हुए

---

१. विविधेन भासेति प्रयोगद्भास्शब्दस्य पुंल्लिङ्गत्वमनुमेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ॥
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥ तस्मिँ-

जिसका मूल (व्यापक परमात्मा के परमपदरूप) ऊपर की ओर तथा (देव, नर, तिर्यगादि शरीर रूप) शाखाएँ नीचे की ओर हैं, ऐसा यह अश्वत्थ वृक्ष अनादि होने से सनातन है। वही (संसार

चाऽऽदित्यादीनां तद्दर्शनात् ॥१५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमदा-
चार्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ काठकोपनिषद्भाष्ये द्वितीयाध्याये
द्वितीयवल्लीभाष्यं समाप्तम् ॥२॥ (५)

तूलावधारणेनैव मूलावधारणं वृक्षस्य क्रियते लोके यथैवं संसारकार्यवृक्षावधारणेन तन्मूलस्य ब्रह्मणः स्वरूपावदिधारयिषयेयं षष्ठी वल्ल्यारभ्यते—

ऊर्ध्वमूल ऊर्ध्वं मूलं यत्तद्विष्णोः परमं पदमस्येति सोऽयमव्यक्तादिस्थावरान्तः संसारवृक्ष ऊर्ध्वमूलः । वृक्षश्च व्रश्चनात् । जन्मजरामरणशोकाद्यनेकानर्थात्मकः

॥१५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यानन्दज्ञानविर-
चिते काठकोपनिषद्भाष्यव्याख्याने द्वितीयाध्याये द्वितीयवल्ली-
भाष्यटीका समाप्ता ॥२॥ (५)

शाल्मल्यादितूलदर्शनेनादृष्टमपि वृक्षमूलं यथाऽस्तीत्यवधार्यते तद्वददृष्टस्यापि ब्रह्मणोऽवधारणाय प्रक्रमत इत्याह—तूलावधारणेनेति । वृक्षशब्दे प्रवृत्तिनिमित्तमाह—व्रश्चनादिति । "ओव्रश्चू छेदने" अस्य धातोः सप्रत्ययान्तस्य रूपं वृक्ष इति । छेद्यत्वे युक्तिमाह—जन्मजरेत्यादिना । प्रसिद्धवृक्षसाम्याद्वा

देखे गये हैं। अतः कार्यगत नाना प्रकार के प्रकाश से उस ब्रह्म की प्रकाशरूपता स्वतः अवगत हो जाती है ॥ १५ ॥

॥ इति द्वितीय वल्ली ॥

अथ तृतीय वल्ली

अश्वत्थ वृक्ष के समान संसार का वर्णन

जिस प्रकार लोक में कार्य के निश्चय से ही वृक्ष के मूल कारण का निश्चय किया जाता है; ऐसे ही संसाररूप कार्यवृक्ष के निश्चय से उसके मूल कारण ब्रह्म के स्वरूप का निश्चय कराने की इच्छा से यह छठी वल्ली प्रारम्भ की जाती है। भगवान् विष्णु का जो वह परम पद है, वही जिसका मूल है ऐसा यह अव्यक्त से लेकर सागर पर्यन्त संसार वृक्ष ऊपर की ओर मूल वाला है। इसका छेदन हो जाने के कारण यह वृक्ष कहलाता है, जो जन्म, जरा, मरण और शोक आदि अनेक अनर्थरूप हैं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥
एतद्वै तत् ॥ १ ॥

वृक्ष का मूल कारण चैतन्य आत्म-स्वभाव) विशुद्ध ज्योति स्वरूप है। वही ब्रह्म और वही अमृत कहा जाता है। उसी ब्रह्म में सभी लोक (शुक्तिरजत की भाँति) आश्रित हैं उसका अतिक्रमण कोई कर नहीं सकता, निश्चय यही वह ब्रह्म है ॥१॥

प्रतिक्षणमन्यथास्वभावो मायामरीच्युदकगन्धर्वनगरादिवद्दृष्टनष्टस्वरूपत्वादवसाने च वृक्षवदभावात्मकः कदलीस्तम्भवन्निःसारोऽनेकशतपाखण्डबुद्धिविकल्पास्पदस्तत्त्वविजिज्ञासुभिरनिर्धारितेदंतत्त्वो वेदान्तनिर्धारितपरब्रह्ममूलसारोऽविद्याकामकर्माव्यक्तबीजप्रभवोऽपरब्रह्मविज्ञानक्रियाशक्तिद्वयात्मकहिरण्यगर्भाङ्कुरः सर्वप्राणिलिङ्गभेदस्कन्धस्तत्तृष्णाजलासेकोद्भूतदर्पो बुद्धीन्द्रियविषयप्रवालाङ्कुरः श्रुतिस्मृतिन्यायविद्योपदेशपलाशो यज्ञदानतपआद्यनेकक्रियासुपुष्पः सुखदुःखवेदनानेकरसः प्राण्युपजीव्यानन्तफलस्तत्तृष्णा-

---

वृक्षशब्दप्रयोग इत्यभिप्रेत्याऽऽह—अवसाने चेत्यादिना। प्रसिद्धो वृक्षः स्थाणुर्वा पुरुषो वेतिविकल्पास्पदो दृष्टस्तथाऽयमपि संघातो वा परिणामो वाऽऽरब्धो वा सद्वाऽसद्वेत्यादीनामनेकेषां शतसंख्याकपाखण्डबुद्धिविकल्पानां विषय इत्यर्थः। किंसंज्ञकोऽयं वृक्ष इत्यनध्यवसायगोचरः कश्चिद्वृक्षो दृष्टस्तथाऽयमपीति साम्यान्तरमाह—तत्त्वविजिज्ञासुभिरिति। अपरब्रह्मणो विज्ञानक्रियाशक्तिद्वयात्मको हिरण्यगर्भः प्रथमोऽवस्थाभेदोऽङ्कुरोऽस्येति तथोक्तः। बुद्धीन्द्रियाणां विषयाः शब्दादयः प्रवालाङ्कुराः किसलयान्यस्येति स तथोक्तः। श्रुत्यादीनि पलाशानि पत्राण्यस्येति सुखदुःखे प्राणिवेदना एवानेको रसोऽस्येति। फलतृष्णैव सलिलावसेकस्तेन प्ररूढानि कर्मवासनादीनि सात्त्विकादिभावेन मिश्रीकृतानि

प्रतिक्षण परिवर्तनशील है, माया मृगतृष्णा के जल और गन्धर्व नगर आदि के समान देखते-देखते नष्ट हो जाने के कारण अन्त में वृक्ष के समान अभाव हो जाने वाला, केले के समान निःसार तथा सैकड़ों पाखण्डियों के बुद्धि के विकल्पों का आश्रय है, तत्त्वजिज्ञासुओं द्वारा 'इदम्' रूप से जिसका स्वरूप निर्धारित नहीं किया गया (सत्य पूछो तो) निर्णीत परब्रह्म जिसका मूल और सार है, जो अविद्या कामना, कर्म, एवं अव्यक्तरूप बीज से उत्पन्न होता है, ज्ञान और क्रिया ये दो जिसकी स्वरूपतः शक्तियाँ हैं, ऐसे शक्ति द्वय से विशिष्ट अपरब्रह्म हिरण्यगर्भ ही जिसका अंकुर है, सभी प्राणियों के सूक्ष्म शरीर ही जिसके स्कन्ध हैं, जो तृष्णारूप जल के सेचन से बढ़े हुए तेजवाला है, बुद्धि, इन्द्रियाँ और विषयरूप नूतन पल्लवरूप अंकुरवाला है श्रुति, स्मृति, न्याय और ज्ञानोपदेशरूप पत्ते जिसके हैं, यज्ञ, दान, तप आदि अनेक क्रिया जिसके सुन्दर पुष्प हैं, सुख, दुःख और वेदनारूप अनेक रस जिसमें हैं, प्राणियों की आजीविकारूप अनन्त फल जिसमें हैं तथा फलों के तृष्णारूप जल के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सलिलावसेकप्ररूढजडीकृतदृढबद्धमूलः सत्यनामादिसप्तलोकब्रह्मादिभूतपक्षिकृतनीडः प्राणिसुखदुःखोद्भूतहर्षशोकजातनृत्यगीतवादित्रक्ष्वेलितास्फोटितहसिताकृष्टरुदितहाहामुञ्चमुञ्चेत्याद्यनेकशब्दकृततुमुलीभूतमहारवो वेदान्तविहितब्रह्मात्मदर्शनासङ्गशस्त्रकृतोच्छेद एष संसारवृक्षोऽश्वत्थोऽश्वत्थवत्कामकर्मवातेरितनित्यप्रचलितस्वभावः । स्वर्गनरकतिर्यक्प्रेतादिभिः शाखाभिरवाक्शाखः । सनातनोऽनादित्वाच्चिरं प्रवृत्तः । यदस्य संसारवृक्षस्य मूलं तदेव शुक्रं शुभ्रं शुद्धं ज्योतिष्मच्चैतन्यात्मज्योतिःस्वभावं तदेव ब्रह्म सर्वमहत्त्वात् । तदेवामृतमविनाशस्वभावमुच्यते कथ्यते सत्यत्वात् । वाचारम्भणं विकारो नामधेयमनृतमन्यदतो मर्त्यम् । तस्मिन्परमार्थसत्ये ब्रह्मणि लोका गन्धर्वनगरमरीच्युदकमायासमाः परमार्थदर्शनाभावावगमनाः श्रिता आश्रिताः सर्वे समस्ता उत्पत्तिस्थितिलयेषु । तदु तद्ब्रह्म नात्येति नातिवर्तते मृदादिमिव घटादिकार्यं कश्चन कश्चिदपि विकारः । एतद्वै तत् ॥१॥

दृढबन्धनान्यवान्तरमूलान्यस्य वटवृक्षस्येव तथोक्तः । सत्यनामादिषु सप्तलोकेषु ब्रह्मादीनि भूतान्येव पक्षिणस्तैः कृतं नीडं यस्मिन् । प्राणिनां सुखदुःखाभ्यामुद्भूतौ हर्षशोकौ ताभ्यां यथासंख्येन जातानि नृत्यादीनि रुदितादिशब्दाश्चैतैः कृतस्तुमुलीभूतो महारवो यस्मिन्निति विग्रहः ॥१॥

सेचन द्वारा बढ़े हुए और सात्त्विक आदि भावों से वे निःसृत तथा दृढ़तापूर्वक स्थिर (कर्म वासनादिरूप अवान्तर) मूल जिसके हैं, ब्रह्मा आदि पक्षियों में जिसमें सत्यादि नामक सातलोकरूप घोंसले रखे हैं। प्राणियों के सुख-दुःख जनित हर्ष-शोक से उत्पन्न होने वाले नृत्य, गीत, वाद्य, वीणा, आस्फोटन, हँसी, आक्रन्दन, रोदन तथा हाय-हाय, छोड़दे-छोड़दे इत्यादि अनेक प्रकार के शब्दों की तुमल ध्वनि से जो अत्यन्त गुंजायमान है, वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म और आत्मा का अभेद दर्शनरूप असंग शस्त्र से जिसका उच्छेद सम्भव है, ऐसा यह संसार वृक्ष अश्वत्थ नामक है। तात्पर्य यह कि कामना और कर्मरूप वायु से सदा विचलित किया गया यह संसार वृक्ष अश्वत्थ के समान चञ्चल स्वभाव वाला है। स्वर्ग, नरक, तिर्यक् और प्रेतादि अधोगामी शाखाओं के कारण यह संसार वृक्ष नीचे की ओर फैली हुई शाखाओं वाला है। अनादि होने के कारण चिरकाल से प्रवर्तमान यह संसार वृक्ष सनातन है। इस ससार वृक्ष का जो मूल है, वही सूत्र, शुभ्र, शुद्ध ज्योतिर्मय अर्थात् चैतन्यात्म ज्योति स्वभाव वाला है। सबसे महान् होने के कारण वही ब्रह्म है। त्रिकालाबाधित होने के कारण वही अमृत अविनाशी स्वभाव वाला कहा जाता है। विकार वाणी का विलासमात्र केवल कहने के लिये है। इसीलिये ब्रह्म से भिन्न सभी नाशवान् वस्तुएँ मिथ्या हैं। उसी परमार्थ सत्य ब्रह्म में गन्धर्वनगर, मृग तृष्णिका का जल और माया के समान उत्पत्ति, स्थिति, लय के समय सभी लोक आश्रित हैं, परमार्थ दर्शन से उन लोकों का बाध हो जाता है। जैसे घटादि कोई भी कार्य अपने कारण मृत्तिका का अतिक्रमण नहीं कर सकते, ठीक वैसे ही ब्रह्म कार्य सम्पूर्ण जगत् उस ब्रह्म का अतिक्रमण नहीं कर सकता। निःसन्देह यही ब्रह्म है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ॥
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २ ॥

यह जो कुछ जगत् है, वह सब प्राणरूप ब्रह्म से प्रकट होकर (नियम से) चेष्टा कर रहा है। वह ब्रह्म महान् भयरूप और उठे हुए वज्र के समान है। (अपने अन्तःकरण की प्रत्येक प्रवृत्ति के साक्षीभूत) इस ब्रह्म को जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं ॥२॥

यद्विज्ञानादमृता भवन्तीत्युच्यते जगतो मूलं तदेव नास्ति ब्रह्मासत एवेदं निःसृतमिति तन्न। यदिदं किंच यत्किंचेदं जगत्सर्वं प्राणे परस्मिन्ब्रह्मणि सत्येजति कम्पते तत एव निःसृतं निर्गतं सत्प्रचलति नियमेन चेष्टते। यदेवं जगदुत्पत्त्यादिकारणं ब्रह्म तन्महद्भयम्। महच्च तद्भयं च बिभेत्यस्मादिति महद्भयम्। वज्रमुद्यतमुद्यतमिव वज्रम्। यथा वज्रोद्यतकरं स्वामिनमभिमुखीभूतं दृष्ट्वा भृत्या नियमेन तच्छासने वर्तन्ते तथेदं चन्द्रादित्यग्रहनक्षत्रतारकादिलक्षणं जगत्सेश्वरं नियमेन क्षणमप्यविश्रान्तं वर्तत इत्युक्तं भवति। य एतद्विदुः स्वात्मप्रवृत्तिसाक्षिभूतमेकं ब्रह्मामृता अमरणधर्माणस्ते भवन्ति ॥२॥

कथं तद्भयाज्जगद्वर्तत इत्याह—

कार्यस्य शून्यतापर्यन्तं नष्टस्यासत्त्वपूर्वकमेव जन्म ततो नास्ति मूलमिति शङ्कते—यद्विज्ञानादिति। तन्न। शशविषाणादेरसतः समुत्पत्त्यदर्शनात्सत्पूर्वकत्वप्रसिद्धेश्चास्ति सद्रूपं वस्तु जगतो मूलं तच्च प्राणपदलक्ष्यं प्राणप्रवृत्तेरपि हेतुत्वादित्यर्थः ॥२॥

परमेश्वर का ज्ञान अमरत्व का साधन है

शंका :—जिसके अपरोक्ष अनुभव से अमर हो जाते हैं, ऐसा कहा जाता है, वह जगत् का मूल कारण ब्रह्म है। यह भी नहीं। यह जगत् तो असत् से ही उत्पन्न हुआ है।

समाधान :—ऐसा कहना ठीक नहीं; क्योंकि यह जो कुछ जगत् है, वह प्राणरूप परब्रह्म के होने पर भी उसी से प्रादुर्भूत होकर एजन, कम्पन, गमन अर्थात् नियम से चेष्टा करता है। इस प्रकार जो ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति आदि का कारण है, वह महान् भयावह है। इसीलिये इससे सब भयभीत होते हैं, वह उठाये हुए वज्र के समान प्रतीत होता है। तात्पर्य यह है जैसे अपने स्वामी को वज्र उठाये हुए सामने देख सेवक नियमानुसार उसके शासन में प्रवृत्त होते हैं। उसी प्रकार यह चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह तारा आदि सम्पूर्ण जगत् अपने अधिष्ठातृदेव के सहित क्षण भर भी विश्राम के लिये बिना ही नियमतः उसके शासन में प्रवृत्त होते रहते हैं। अपने अन्तःकरण की प्रवृत्ति के साक्षीभूत इस अद्वय ब्रह्म को जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं ॥ २ ॥

उसके भय से जगत् किस प्रकार होता है, इस पर कहते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः ॥
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥
इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः ॥
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥

इस (परमेश्वर) के भय से अग्नि तपता है, इसी के भय से सूर्य तप रहा है तथा इसी के भय से इन्द्र, वायु और पाँचवाँ मृत्यु (नियम से) दौड़ता है ॥३॥

यदि इस (जीवित शरीर) में नाश से पूर्व ही (इन सूर्यादि के भय हेतुभूत) ब्रह्म को न जान सका, तो उन जन्म-मरणादिशील लोकों में वह शरीर धारण कर लेता है। (अतः मरने से पूर्व आत्मा को जानकर संसार बन्धन से मुक्त हो जाना चाहिये ॥ ४ ॥

भयाद्भीत्याऽस्य परमेश्वरस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यो भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः। न हीश्वराणां लोकपालानां समर्थानां सतां नियन्ता चेद्वज्रोद्यतकरवन्न स्यात्स्वामिभयभीतानामिव भृत्यानां नियता प्रवृत्तिरुपपद्यते ॥३॥

तच्चेह जीवन्नेव चेद्यद्यशकच्छक्नोति शक्तः सञ्ज्ञानात्येतद्भयकारणं ब्रह्म बोद्धुमवगन्तुं प्राक्पूर्वं शरीरस्य विस्रसोऽवस्रंसनात्पतनात्संसारबन्धनाद्विमुच्यते। न चेदशकद्बोद्धुं ततोऽनवबोधात्सर्गेषु सृज्यन्ते येषु स्रष्टव्याः प्राणिन इति सर्गाः पृथिव्यादयो लोकास्तेषु सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय शरीरभावाय कल्पते समर्थो भवति शरीरं

॥३॥

सूर्यादीनां नियतप्रवृत्त्यनुपपत्त्या नियामकत्वेन संभावितं यत्पारमेश्वरं रूपं तदवगमायैवेह यत्नः कर्तव्य इत्याह—तच्चेति। इहैव बोद्धुं शक्तः सन्निहैव चेज्जानाति तदा मुच्यत एवेति

परमेश्वर सबका शासक है

उस परमेश्वर के भय से अग्नि तपता है, उसी के भय से सूर्य तपता है एवं उसी के भय से इन्द्र वायु और पाँचवाँ मृत्यु भी दौड़ता है। यदि समर्थ लोकपालों का लोकपाल, शासकों का नियामक हाथ में वज्र उठाये हुए के समान कोई नहीं होता तो स्वामी के भय से अपने कर्तव्य में लगे हुए सेवकों की भाँति पूर्वोक्त लोकपालों की नियमित प्रवृत्ति नहीं हो सकती थी ॥ ३ ॥

परमेश्वर को जाने बिना पुनर्जन्म होना अनिवार्य है

यदि इस देह में जीवित रहते ही अर्थात् शरीर-पतन से पूर्व साधक ने सूर्यादिकों के भय के के कारण उस ब्रह्म को जान लिया तो वह संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है और यदि उसे नहीं जान सका तो उसी अज्ञान के कारण उन पृथिव्यादि लोकों में शरीर प्राप्त करने के लिए समर्थ होता है अर्थात् शरीर ग्रहण कर लेता है, जिन सर्गों में सृष्टि के योग्य प्राणियों की रचना की जाती है। अतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातप-
योरिव ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥

जैसे दर्पण में (प्रतिबिम्बित अपने मुख को स्पष्ट देखता है) वैसे ही निर्मल बुद्धि में (आत्मा का स्पष्ट दर्शन होता है) तथा जैसे स्वप्न में (जाग्रद्वासना से उद्भूत दृश्य को अस्पष्ट देखता है) वैसे ही पितृलोक में। जैसे जल में, वैसे ही गन्धर्व लोक में भी (अस्पष्ट रूप से आत्मा का दर्शन होता है, किन्तु) ब्रह्म लोक में तो छाया और प्रकाश की भांति अत्यन्त स्पष्ट रूप से आत्मदर्शन होता है। अतः इस मनुष्य लोक में ही आत्मदर्शन के लिये प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि यह प्राप्त है, ब्रह्मलोक तो दुष्प्राप्य है ॥ ५ ॥

गृह्णातीत्यर्थः। तस्माच्छरीरविस्रंसनात्प्रागात्मबोधाय यत्न आस्थेयः ॥४॥

यस्मादिहैवाऽऽत्मनो दर्शनमादर्शस्थस्येव मुखस्य स्पष्टमुपपद्यते न लोकान्तरेषु ब्रह्मलोकादन्यत्र। स च दुष्प्रापः। कथमित्युच्यते—

यथाऽऽदर्शे प्रतिबिम्बभूतमात्मानं पश्यति लोकोऽत्यन्तविविक्तं तथेहाऽऽत्मनि स्वबुद्धावादर्शवन्निर्मलीभूतायां विविक्तमात्मनो दर्शनं भवतीत्यर्थः। यथा स्वप्नेऽविविक्तं जाग्रद्वासनोद्भूतं तथा पितृलोकेऽविविक्तमेव दर्शनमात्मनः कर्मफलोपभोगासक्तत्वात्। यथा चाप्स्वविभक्तावयवमात्मरूपं परीव ददृशे परिदृश्यत इव तथा गन्धर्वलोकेऽविविक्तमेव दर्शनमात्मनः। एवं च लोकान्तरेष्वपि शास्त्रप्रामाण्यादवगम्यते। छायातपयो-

---

सम्बन्धः ॥४॥

शरीरपात से पूर्व आत्मज्ञान के लिये अवश्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ ४ ॥

परमेश्वर दर्शन में स्थान भेद का तारतम्य

क्योंकि दर्पण में प्रतिबिम्बित मुख की भांति इस मनुष्य शरीर में ही आत्मा का सुस्पष्ट दर्शन संभव है, वैसा दर्शन ब्रह्मलोक को छोड़ किसी भी लोक में संभव नहीं किन्तु उस ब्रह्मलोक का मिलना अत्यन्त दुष्कर है। कैसे? इस पर कहते हैं—

जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित अपने आपको अत्यन्त सुस्पष्टरूप से लोक देखता है, ठीक वैसे ही दर्पण के तुल्य स्वच्छ हुई अपनी बुद्धि में अत्यन्त सुस्पष्ट दर्शन आत्मा का होता है, यही इसका तात्पर्य है। जैसे स्वप्न में जाग्रत् वासना से उद्भूत पदार्थ स्पष्ट नहीं दीखता, वैसे ही पितृलोक में आत्मा का दर्शन स्पष्ट नहीं होता क्योंकि पितृलोक में जीव कर्मफल के उपभोग करने में आसक्त रहता है और जैसे जल में अपना स्वरूप जिस प्रकार दीखता है मानो उसके अवयव विभक्त नहीं हों, वैसे ही गन्धर्वलोक में भी आत्मा का दर्शन अस्पष्टरूप से ही होता है। इनके अतिरिक्त लोकों में भी शास्त्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ॥
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६ ॥

(अपने कारण के गुण को ग्रहण करने के लिये आकाशादि भूतों से) पृथक्-पृथक् उत्पन्न होने वाली श्रोत्रादि इन्द्रियों का आत्मवैलक्षण्यरूप पृथक् भाव को तथा उनके उत्पत्ति और प्रलय को जानकर विवेकशील पुरुष शोक नहीं करता (क्योंकि नित्य चैतन्य स्वभाव आत्मा का किसी भी अवस्था में व्यभिचार नहीं होता ॥ ६ ॥

रिवात्यन्तविविक्तं ब्रह्मलोक एवैकस्मिन् । स च दुष्प्रापोऽत्यन्तविशिष्टकर्मज्ञान-साध्यत्वात् । तस्मादात्मदर्शनायेहैव यत्नः कर्तव्य इत्यभिप्रायः ॥५॥

कथमसौ बोद्धव्य किं वा तदवबोधे प्रयोजनमित्युच्यते—

इन्द्रियाणां श्रोत्रादीनां स्वस्वविषयग्रहणप्रयोजनेन स्वकारणेभ्य आकाशादिभ्यः पृथगुत्पद्यमानानामत्यन्तविशुद्धात्केवलाच्चिन्मात्रात्मस्वरूपात्पृथग्भावं स्वभावविलक्षणात्मकतां तथा तेषामेवेन्द्रियाणामुदयास्तमयौ चोत्पत्तिप्रलयौ जाग्रत्स्वापावस्थापेक्षया नाऽऽत्मन इति मत्वा ज्ञात्वा विवेकतो धीरो धीमान्न शोचति । आत्मनो नित्यैकस्व-

---

॥५॥

प्रमाण से ऐसा ही माना जाता है । केवल ब्रह्मलोक में ही छाया और आतप की भाँति अत्यन्त सुस्पष्टरूप से आत्मा का दर्शन होता है । पर अत्यन्त विशिष्ट कर्म और उपासना से साध्य होने के कारण वह ब्रह्मलोक सब किसी के लिये प्राप्त होना कठिन ही है किन्तु मनुष्यलोक तो अभी-अभी प्राप्त है । अतः इस मनुष्यलोक में ही आत्मदर्शन के लिये प्रयत्न करना चाहिये, यही इसका अभिप्राय है ॥ ५ ॥

फल सहित आत्मज्ञान का प्रकार

वह आत्मा किस प्रकार जानने योग्य है और उसके जानने पर क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? इस पर कहते हैं (पंचीकरण प्रक्रिया के अनुसार आकाशादि भूतों के पृथक्-पृथक् सात्त्विक अंश से श्रोत्रादि इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई है । जिस भूत के सात्त्विक अंश से जो ज्ञान इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं, वे इन्द्रियाँ उसी भूत के तमो अंश से उत्पन्न शब्दादि गुणों को ग्रहण करने में समर्थ होती हैं) इस नियम के अनुसार श्रोत्रादि इन्द्रियाँ अपने-अपने कारण आकाशादि भूतों से पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुईं, उस भूत के गुणों को ग्रहण करती हैं, वे इन्द्रियाँ अत्यन्त विशुद्ध स्वरूप केवल चिन्मात्र स्वरूप आत्मा से अत्यन्त विलक्षण हैं । इन्द्रियों की इस विलक्षणता और जाग्रत् एवं स्वप्न की अपेक्षा से उनकी उत्पत्ति और प्रलय को जानकर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता अर्थात् वह समझता है कि जाग्रदादि अवस्थाएँ इन्द्रियों की हैं, आत्मा की नहीं हैं (जाग्रदादि अवस्थाओं में इन्द्रियादिकों का व्यभिचार हो जाता है) किन्तु सदा एक स्वभाव में रहने वाले आत्मा का किसी भी अवस्था में व्यभिचार नहीं होता । अतः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७ ॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥

इन्द्रियों से पर (उत्कृष्ट) मन है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से श्रेष्ठ महत्तत्त्व है और महत्तत्त्व से उत्तम अव्यक्त है ॥ ७ ॥

अव्यक्त से भी श्रेष्ठ पुरुष है (वह आकाशादि के कारण होने से) व्यापक है (तथा सर्व-संसार-धर्मरहित होने से) अलिङ्ग ही है। जिसे आचार्य एवं शास्त्र द्वारा जानकर जीवनमुक्त हो जाता है और वह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है ॥ ८ ॥

भावस्याव्यभिचाराच्छोककारणत्वानुपपत्तेः । तथा च श्रुत्यन्तरं तरति शोकमात्मविदिति ॥६॥

यस्मादात्मन इन्द्रियाणां पृथग्भाव उक्तो नासौ बहिरधिगन्तव्यो यस्मात्प्रत्यगात्मा स सर्वस्य, तत्कथमित्युच्यते—

इन्द्रियेभ्यः परं मन इत्यादि । अर्थानामिहेन्द्रियसमानजातीयत्वादिन्द्रियग्रहणेनैव ग्रहणम् । पूर्ववदन्यत् । सत्त्वशब्दाद्बुद्धिरिहोच्यते ॥७॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापको व्यापकस्याप्याकाशादेः सर्वस्य कारणत्वात् ।

॥६॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था इति पूर्वमुक्तमिह त्वर्थानामग्रहणात्सर्वप्रत्यगात्मत्वं न संभवतीत्याशङ्क्याऽऽह—अर्थानामिहेति ॥७॥

बुद्धिसुखदुःखादिः साश्रयो गुणत्वाद्रूपवदिति वैशेषिका अनुमिमते तदसत् । साश्रयत्वमात्रसाधने सिद्धसाधनत्वान्मनस एव कामादिगुणवत्त्वश्रवणादात्माश्रयत्वकल्पने च निर्गुणत्वशास्त्रविरुद्धत्वादात्मना

शोक का कारण उसे दीखता ही नहीं। इसी बात को "आत्मज्ञानी शोक को पार कर जाता है" ऐसी दूसरी श्रुति भी कह रही है। ६ ॥

जिस आत्मा से इन्द्रियों का पार्थक्य दिखलाया गया, वह कहीं बाहर जानने योग्य नहीं है; क्योंकि वह सबका अन्तरात्मा है। कैसे ? इसपर कहते हैं—इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है (मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से महत्तत्त्व श्रेष्ठ है और महत्तत्त्व से अव्यक्त उत्तम है, इत्यादि) इन्द्रियाँ और विषय समान जाति वाले हैं। अतः इन्द्रियों के ग्रहण से ही विषयों का भी ग्रहण हो जाता है। अन्य पदों की व्याख्या पहले हो चुकी है। यहाँ पर सत्त्व शब्द से बुद्धि कही गई है ॥ ७ ॥

अव्यक्त से भी पुरुष श्रेष्ठ है। वह व्यापक आकाशादि सभी पदार्थों का कारण होने से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ॥ हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥

इस प्रत्यगात्मा का रूप दृष्टि में स्थिर नहीं होता। अतः इसे कोई नेत्र से नहीं देख सकता, यह आत्मा तो संकल्पादिरूप मन की नियामिका हृदयस्थ बुद्धि द्वारा मननरूप यथार्थ-दर्शन से प्रकाशित होता है। इस रूप में इसे जो जानते हैं; वे अमर हो जाते हैं॥ ९॥

अलिङ्गो लिङ्ग्यते गम्यते येन तल्लिङ्गं बुद्ध्यादि तदविद्यमानमस्येति सोऽयमलिङ्ग एव। सर्वसंसारधर्मवर्जित इत्येतत्। यं ज्ञात्वाऽऽचार्यतः शास्त्रतश्च मुच्यते जन्तुरविद्यादिहृदयग्रन्थिभिर्जीवन्नेव पतितेऽपि शरीरेऽमृतत्वं च गच्छति। सोऽलिङ्गः परोऽव्यक्तात्पुरुष इति पूर्वेणैव संबन्धः ॥८॥

कथं तर्ह्यलिङ्गस्य दर्शनमुपपद्यत इत्युच्यते—

न संदृशे संदर्शनविषये न तिष्ठति प्रत्यगात्मनोऽस्य रूपम्। अतो न चक्षुषा सर्वेन्द्रियेण। चक्षुर्ग्रहणस्योपलक्षणार्थत्वात्। पश्यति नोपलभते कश्चन कश्चिदप्येनं प्रकृतमात्मानम्। कथं तर्हि तं पश्येदित्युच्यते। हृदा हृत्स्थया बुद्ध्या। मनीषा मनसः

सह बुद्ध्यादेरविनाभावाग्रहणाच्च बुद्ध्यादि नाऽऽत्मलिङ्गमित्याह—लिङ्ग्यते गम्यते येनेति ॥८॥

कथं दर्शनमुपपद्यत इति प्रष्टुः कोऽभिप्रायः किं विषयतया दर्शनं वक्तव्यमुताविषयतयैव दर्शनोपायो वाच्यः। प्रथमं प्रत्याह—न संदृश इति। रूपादिमत्त्तद्विशेषणं[1] च दर्शनविषययोग्यं भवति तदभावादित्यर्थः। द्वितीयं प्रत्याह—कथं तर्हीति। बाह्यकरणग्रामोपरमेऽपि यदा मनो विषयान्संकल्पयते तदा मुमुक्षोर्बुद्धिस्तस्य नियन्त्री भवति। हे मनः किमर्थं त्वं पिशाचवत्प्रधावसि। न तावत्स्वप्रयोजनार्थम्। तव जडत्वात्प्रयोजनसंबन्धानुपपत्तेर्विषयाणां च क्षयिष्णुत्वादिदोषदुष्टानां संबन्धेन प्रयोजना-

---

व्यापक कहा गया है। वह पुरुष अलिङ्ग है। जिससे कोई वस्तु जानी जाती है, वह बुद्धि आदि लिङ्ग कहे जाते हैं। ऐसा कोई भी संसार धर्मरूप लिङ्ग उस पुरुष में है नहीं। इसीलिये वह अलिङ्ग कहा गया है अर्थात् सम्पूर्ण संसार धर्म से रहित है। जिसे शास्त्र और आचार्य के द्वारा जानकर पुरुष जीवित दशा में ही अविद्या आदि हृदय ग्रन्थियों से मुक्त हो जाता है। फिर तो प्रारब्ध क्षयान्तर शरीर गिर जाने पर भी विदेह कैवल्य रूप अमरत्व को प्राप्त होता है। वह पुरुष अलिङ्ग है एवं अव्यक्त से भी पर है। इस प्रकार पिछले वाक्य में ही संवन्ध समझना चाहिये॥ ८॥

तो ज्ञापक चिह्न से रहित अलिङ्ग आत्मा का दर्शन होना किस प्रकार सम्भव है? इसपर कहते हैं, इस अन्तरात्मा का रूप दृष्टि के विषय में ठहरता नहीं। इसीलिये कोई भी पुरुष इस प्रकृत

---

१. तद्विशेषणमिति—रूपादिमतो विशेषणं रूपाद्येवेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation; Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥१०॥ 22.

जब मन के सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ (आत्मा में) स्थिर हो जाती हैं और निश्चयात्मिका बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती, उस अवस्था को ही परम गति कहते हैं ॥ १० ॥

संकल्पादिरूपस्येष्टे नियन्तृत्वेनेति मनीट् तया हृदा मनीषाऽविकल्पयित्र्या। मनसा मननरूपेण सम्यग्दर्शनेन। अभिक्लृप्तोऽभिसमर्थितोऽभिप्रकाशित इत्येतत्। आत्मा ज्ञातुं शक्यत इति वाक्यशेषः। तमात्मानं ब्रह्म तद्ये विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥९॥

सा हृन्मनीट्कथं प्राप्यत इति तदर्थो योग उच्यते—

यदा यस्मिन्काले स्वविषयेभ्य निर्वर्तितान्यात्मन्येव पञ्च ज्ञानानि। ज्ञानार्थत्वाच्छ्रोत्रादीन्द्रियाणि ज्ञानान्युच्यन्ते। अवतिष्ठन्ते सह मनसा यदनुगतानि तेन

नुपपत्तेः। नापि चेतनार्थम्। तस्यासङ्गत्वात्परमानन्दस्वभावत्वाच्चेति नियन्तृत्वेन बुद्धिर्मनीडुच्यत इत्याह—मनस इति। अविकल्पयित्र्येति। विषयकल्पनाशून्यया ब्रह्मास्मीत्यविषयतयैव ब्रह्मभावव्यञ्जिकया महावाक्योत्थया बुद्धिवृत्त्या ज्ञातुं शक्यत इति संबन्धः। कथंभूत आत्मेत्यत आह—मनसेति। यद्यन्मया दृश्यते बाह्यं घटादि तत्तदहं यथा न भवामि तथाऽस्मिन्नपि संघाते यद्यद्दृश्यं तत्तदहं न भवामि किंतु योऽत्र ज्ञोऽशः सोऽस्मि सर्वशरीरेष्वेकलक्षणलक्षितत्वादेक एवेति विचारेण प्रथमं संभावित इत्यर्थः ॥९॥

श्रुतवेदान्तानामपि केषांचिद्ब्रह्मास्मीतिबुद्धिस्थैर्यादर्शनादस्ति किंचित्प्रतिबन्धकान्तरं तदपनयोपायोऽप्यन्यो वक्तव्य इत्यभिप्रेत्याऽऽह—सा हृदिति। श्रवणमननाभ्यां प्रमाणप्रमेयासंभावनानिरासेऽपि चित्तस्यानेकाग्रतादोषः प्रतिबन्धकः संभवति तदपनयाय योगोऽनुष्ठातव्य उपदिश्यत इत्यर्थः। यद-

---

आत्मा को चक्षुरादि सभी इन्द्रियों से ग्रहण नहीं कर सकता अर्थात् उपलब्ध करना सम्भव नहीं है। यहाँ पर चक्षुः पद सम्पूर्ण इन्द्रियों के ग्रहण करने के लिये उपलक्षण है,-तो फिर भला उसे किस प्रकार देखें ? इस पर कहते हैं, हृदय में स्थित बुद्धि से देखे जो बुद्धि संकल्पादिरूप मन को नियामिका होकर मन पर शासन करती है। इसीलिये बुद्धि को मनीट् कहते हैं। उस विकल्पना से शून्य बुद्धि द्वारा मनन रूप सम्यक् दर्शन से सभी प्रकार समर्थित अर्थात् प्रकाशित हुआ वह आत्मा जाना जा सकता है। यहाँ पर आत्मा जाना जा सकता है, इतना वाक्य शेष है। यह ब्रह्म है, इस प्रकार उस आत्मा को जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं ॥ ९ ॥

परमपद प्राप्ति का प्रकार

वह हृदयस्थ बुद्धि कैसे प्राप्त होती है ? इसे बतलाने के लिये योग का उपदेश किया जाता है। जिस समय अपने-अपने विषयों से निवृत्त हुई पाँचों ज्ञान इन्द्रियाँ मन के सहित आत्मा में स्थित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2.

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥११॥

उस अचल इन्द्रिय धारण को ही योगी लोग योग कहते हैं। उस समय (चित्त समाधान के लिए) साधक प्रमादरहित हो जाता है, क्योंकि योग ही प्रभव और अप्यय रूप है अर्थात् प्रमाद छोड़ने से कैवल्य का प्रादुर्भाव और प्रमाद करने से परमार्थ का नाश हो जाता है॥ ११॥

संकल्पादिव्यावृत्तेनान्तःकरणेन। बुद्धिश्चाध्यवसायलक्षणा न विचेष्टति स्वव्यापारेषु न विचेष्टते न व्याप्रियते तामाहुः परमां गतिम् ॥१०॥

तामीदृशीमवस्थां योगमिति मन्यन्ते वियोगमेव सन्तम्। सर्वानर्थसंयोगवियोगलक्षणा ह्येयमवस्था योगिनः। एतस्यां ह्यवस्थायामविद्याध्यारोपणवर्जितः स्वरूपप्रतिष्ठ आत्मा। स्थिरामिन्द्रियधारणां स्थिरामचलामिन्द्रियधारणां बाह्यान्तःकरणानां धारणमित्यर्थः। अप्रमत्तः प्रमादवर्जितः समाधानं प्रति नित्यं यत्नवांस्तदा तस्मिन्काले

नुगतानीति। [१]येन येन मनसाऽधिष्ठितानि तेन तेन सहावतिष्ठन्ते [२]निवृत्तव्यापाराणि भवन्तीत्यर्थः ॥१०॥

वियोगमेव सन्तं योगमिति विरुद्धलक्षणया मन्यन्त इत्युक्तं तत्स्फुटयति—सर्वानर्थेति। उपसंहृतं मनो यदि सुषुप्तिं गच्छेत्तदा साऽनर्थबीजावस्था भवति। तद्व्यावृत्तये पूर्णं ब्रह्मास्मीत्यावृत्तौ योजयेदावृत्तौ नियुक्तं विषयेषु विक्षिप्तं चेत्स्यात्तद्दोषदर्शनेन ततोऽपि व्यावर्तयेत्। व्यावृत्तमपि ततस्तटस्थं चेत्स्यात्साऽपि [३]यावत्कषायावस्था ततो निरुद्धं मनो यदा न जागर्ति न स्वपिति न चान्तरालावस्थं भवति पूर्णब्रह्मावभासकतयैव क्षीणं भवति तदा सर्वानर्थवियोगलक्षणा साऽवस्था भवतीत्यर्थः।

हो जाती हैं, यहाँ पर ज्ञान के साधन होने से श्रोत्रादि इन्द्रियाँ ज्ञान शब्द से कही गयी हैं, वे सदा मन के पीछे-पीछे चलती हैं। अतः संकल्पादि के व्यापार से उपरत वे अन्तःकरण के सहित इन्द्रियाँ आत्मा में स्थित हो जाती हैं और निश्चयात्मिका बुद्धि अपने व्यापारों में चेष्टा नहीं करती अर्थात् व्यापार नहीं करती। उस अवस्था को ही परमगति कहते हैं॥ १०॥

जो वास्तव में वियोग है, उस ऐसी अवस्था को ही जो योग मानते हैं; क्योंकि यह अवस्था योगी की सभी प्रकार के अनर्थ संयोग की योगरूपा है। इसी अवस्था में आत्मा अविद्यादि आरोप से रहित अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। इसी अवस्था को वाह्य और आन्तरिक वरणरूप इन्द्रियों की अचल धारणा कहा गया है। उस समय साधक पुरुष प्रमाद रहित हो जाता है अर्थात् चित्त समाधान के लिये सदा प्रयत्नशील रहता है। जब वह योग साधना में प्रवृत्त होता है (उसी समय की

---

१. मनस ऐक्येऽपि राजसादिभेदेन नानात्वमादायाह—येन येनेति। यादृशेनेति यावत्। २. निवृत्तेति—मनसस्तु तादृक्त्वं निवर्तत्वमित्यवधेयम्। ३. यावत्कषायेति—यावतां सर्वेषां रागादिकषायाणामवस्थेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदैव प्रवृत्तयोगो भवतीति सामर्थ्यादवगम्यते । न हि बुद्ध्यादिचेष्टाभावे प्रमादसंभवोऽस्ति । तस्मात्प्रागेव बुद्ध्यादिचेष्टोपरमादप्रमादो विधीयते । अथवा यदैवेन्द्रियाणां स्थिरा धारणा तदानीमेव निरङ्कुशमप्रमत्तत्वमित्यतोऽभिधीयतेऽप्रमत्तस्तदा भवतीति । कुतः । योगो हि यस्मात्प्रभवाप्ययावुपजनापायधर्मक इत्यर्थोऽतोऽपायपरिहारायाप्रमादः कर्तव्य इत्यभिप्रायः ॥११॥

बुद्ध्यादिचेष्टाविषयं चेद्ब्रह्मेदं तदिति विशेषतो गृह्येत बुद्ध्याद्युपरमे च ग्रहणकारणाभावादनुपलभ्यमानं नास्त्येव ब्रह्म । यद्धि करणगोचरं तदस्तीति प्रसिद्धं लोके विपरीतं चासदित्यतश्चानर्थको योगोऽनुपलभ्यमानत्वाद्वा नास्तीत्युपलब्धव्यं ब्रह्मेत्येवं प्राप्त इदमुच्यते ।

सत्यम्—

योगारम्भकाले प्रमादवर्जनं विधेयतया व्याख्यायानुवादपरतया व्याचष्टे—अथवेति । विधिपक्षे हेतुं पृच्छति—कुत इति ॥११॥

उत्तरमन्त्रमवतारयितुं शङ्कामुद्भावयति—बुद्ध्यादिचेष्टाविषयं चेदिति । घटोऽस्तीति प्रतिपन्नस्य घटस्य मुद्गराभिघाताद्विलापने घटाकार एव विलीयते नास्तित्वांशस्तस्य कपालादावप्यनुवृत्तिदर्शनाद् । अतः कार्यप्रविलापनस्यास्तित्वनिष्ठत्वान्न शून्यतापर्यवसायी लय इत्युक्तमेतत्स्फुटयति—

बात यहाँ पर कही गयी है) ऐसा इस वाक्य के सामर्थ्य से जान पड़ता है; क्योंकि बुद्धि आदि की चेष्टा का अभाव हो जाने पर प्रमाद होना संभव नहीं है। अतः बुद्धि आदि की चेष्टा का अभाव होने से पूर्व ही (समाधि के लिये यत्न करने वाले साधक को) अप्रमाद का विधान किया जाता है। अथवा जिस समय इन्द्रियों की धारणा स्थिर होती है, उसी समय निरंकुश प्रमाद का अभाव होता है। इसलिये "उस समय साधक अप्रमत्त हो जाता है" ऐसा कहा गया है। क्यों ऐसा कहा गया ? क्योंकि योग ही उत्पत्ति और लयरूप धर्म वाला है (अर्थात् अनात्माकार का प्रभव और निद्रारूप लय इन दोनों के अभाव को योग कहते हैं) अतः तात्पर्य यह है कि लयरूप उपाय की निवृत्ति के लिये प्रमाद का अभाव करना ही चाहिये ॥ ११ ॥

आस्तिक बुद्धि आत्मोपलब्धि का साधन है

यदि बुद्धि आदि की चेष्टा का विषय ब्रह्म होता, तो यही 'वह ब्रह्म है' इस प्रकार विशेषरूप से गृहीत होता। (अन्ततः किसी भी वस्तु के ग्रहण का साधन बुद्धि ही तो है) बुद्धि आदि के निवृत्त हो जाने पर उसके ग्रहण का कारण न रहने से वह ब्रह्म उपलब्ध नहीं होता। अतः यह कहना ही उचित है कि वस्तुतः ब्रह्म है ही नहीं; क्योंकि लोक में जो वस्तु इन्द्रियों से जानी जाती है, वही है; इस प्रकार प्रसिद्ध मानी गयी है। इसके विपरीत वस्तु असत् कही जाती है। अतः पूर्वोक्त उपदेश किया गया योग व्यर्थ है अथवा उपलब्धि के योग्य न होने से ब्रह्म "नहीं है" ऐसा जानना चाहिये। ऐसी आशंका होने पर यह कहा जा सकता है। ठीक है। यद्यपि वह ब्रह्म न वाणी से, न मन से, न नेत्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ॥
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥१२॥

वह आत्मा न तो वाणी से, न तो मन से, न नेत्र से (और न अन्य इन्द्रियों से ही प्राप्त किया जा सकता है); वह आत्मा है, इस प्रकार कहने वाले (शास्त्रानुसारी श्रद्धालु आस्तिक) पुरुषों से भिन्न नास्तिकों को कैसे वह उपलब्ध हो सकता है! अर्थात् किसी प्रकार उपलब्ध नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

नैव वाचा न मनसा न चक्षुषा नान्यैरपीन्द्रियैः प्राप्तुं शक्यत इत्यर्थः। तथाऽपि सर्वविशेषरहितोऽपि जगतो मूलमित्यवगतत्वादस्त्येव कार्यप्रविलापनस्यास्तित्वनिष्ठत्वात्। तथा हीदं कार्यं सूक्ष्मतारतम्यपारम्पर्येणानुगम्यमानं सद्बुद्धिनिष्ठामेवावगमयति। यदाऽपि विषयप्रविलापनेन प्रविलाप्यमाना बुद्धिस्तदाऽपि सा सत्प्रत्ययगर्भैव विलीयते। बुद्धिर्हि नः प्रमाणं सदसतोर्याथात्म्यावगमे। मूलं चेज्जगतो न स्यादसदन्वितमेवेदं कार्यमसदित्येवं गृह्येत न त्वेतदस्ति सत्सदित्येव तु गृह्यते। यथा मृदादि-

---

तथा हीति। स्थूलस्य कार्यस्य विलये सूक्ष्मं तत्कारणमवशिष्यते तस्यापि विलये ततः सूक्ष्ममिति यावद्दर्शनं व्याप्तिमुपलभ्य यत्र न दृश्यते तत्रापि [1]मूर्तविलयस्यावश्यंभावित्वात्सन्मात्रमेवामूर्तमवतिष्ठत इति कार्यमेव सौ(सू)क्ष्मतारतम्यपारम्पर्येणानुस्त्रियमाणं सद्बुद्धिनिष्ठां पुरुषस्य ग(षस्यावग)मयतीत्यर्थः। ननु यदृदृश्यं तदसद्यथा स्वप्नदर्शनमिति व्याप्तिदर्शनादस्तित्वेन दृश्यस्यासत्त्वात्सद्बुद्धिरपि नास्त्येवेत्याशङ्कयाऽऽह—यदाऽपीति। सद्बुद्धिरपि नास्तीत्येवंभूतः प्रत्ययोऽवश्यमस्तीत्यभ्युपगन्तव्यम्। अन्यथा निषेधव्यवहारायोगात्। अतोऽन्ततो गत्वा सद्बुद्धिः स्वीकृता स्यादित्यर्थः। ततः किमित्यत आह—बुद्धिर्हीति। व्यभिचारिष्वपि विषयेषु सन्मात्रबुद्धेरव्यभिचारदर्शनाद्बुद्धेश्च [2]स्वतः प्रामाण्यात्सन्मात्रं वस्त्वभ्युपगन्तव्यमित्यर्थः। इतश्च सदेव मूलं जगतो वाच्यमित्याह—मूलं चेदिति। नास्ति

से और न किन्हीं अन्य इन्द्रियों से ही प्राप्त किया जा सकता है तथापि सम्पूर्ण विशेषों से रहित होने पर भी वह जगत् का मूल है। इस प्रकार अवगत होने के कारण उसका अस्तित्व प्रसिद्ध है; क्योंकि कार्य का विलय किसी अस्तित्व के आधार पर ही हो सकता है।

ऐसे हो सूक्ष्मता की तारतम्य परम्परा से होने वाला यह सम्पूर्ण कार्यवर्ग भी सद्बुद्धि निष्ठा का बोध कराता है। जिस समय विषय के विलय द्वारा बुद्धि का विलय किया जाता है, उस समय भी बुद्धि सद्वस्तु को अपने गर्भ में लेकर ही लीन होती है; क्योंकि सत् और असत् का यथार्थरूप जानने में हमारे पास बुद्धि ही तो प्रमाणरूप है।

जैसे मृत्तिका आदि के कार्य घटादि "मृद्घटः" इस प्रकार अपने कारण मृत्तिकादि से अन्वित

---

१. मूर्तविलयस्येति—अत्रामूर्तविषयस्येति पाठं युक्तं पश्यामः। २. स्वतस्त्वं तु प्रामाण्यस्य ज्ञानग्राहकसामग्रीग्राह्यत्वमित्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ॥
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥१३॥

वह आत्मा है, इस प्रकार ही उपलब्ध करना चाहिये और तत्त्वरूप से उसे जानना चाहिये (सोपाधिक अस्तित्व और निरुपाधिक तत्त्वरूप) इन दोनों में से जिसे पहले उसकी अस्ति-भाव से उपलब्धि हुई है, उसी को तत्त्व रूप से भी साक्षात्कार होता है ॥ १३ ॥

कार्यं घटादि मृदाद्यन्वितम् । तस्माज्जगतो मूलमात्मास्तीत्येवोपलब्धव्यः । कस्मात् । अस्तीति ब्रुवतोऽस्तित्ववादिन आगमार्थानुसारिणः श्रद्दधानादन्यत्र नास्तित्ववादिनि नास्ति जगतो मूलमात्मा निरन्वयमेवेदं कार्यमभावान्तं प्रविलीयत इति मन्यमाने विपरीतदर्शिनि कथं तद्ब्रह्म तत्त्वत उपलभ्यते न कथंचनोपलभ्यत इत्यर्थः ॥१२॥

तस्मादपोह्यासद्वादिपक्षमासुरमस्तीत्येवाऽऽत्मोपलब्धव्यः सत्कार्यो बुद्ध्याद्युपाधिः । यदा तु तद्रहितोऽविक्रिय आत्मा कार्यं च कारणव्यतिरेकेण नास्ति वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमिति श्रुतेस्तदा तस्य निरुपाधिकस्यालिङ्गस्य

जगतो मूलं ब्रह्मेत्यवगमेऽपि प्रतियोगितया ब्रह्मज्ञानसंभवात्किमिति मुमुक्षुणा ब्रह्मज्ञानकामेनास्तीत्येवोपलब्धव्यमित्याह—कस्मादिति । प्रतियोगितया ज्ञानस्य निषेध्यत्वादात्मनयाा ज्ञानं न स्यादतो ब्रह्मज्ञानकामेनास्ति जगन्मूलमित्यवगन्तव्यमेवेत्याह—अस्तीति ब्रुवत इत्यादिना ॥१२॥

सोपाधिकस्याऽऽत्मनो ज्ञानान्मुक्त्यसंभवान्निरुपाधिकज्ञानायापि प्रयतितव्यमित्याह—यदा त्विति । सोपाधिके प्रथमं स्थिरीभूतस्य तद्द्वारेण लक्ष्यपदार्थावगमे सति क्रमेण वाक्यार्थावगतिः

ही देखा गया है, वैसे ही यदि जगत् का कोई मूल न होता अर्थात् जगत् का कारण असत् होता, तो यह सम्पूर्ण कार्यवर्ग असाम्य होने के कारण असत् है, ऐसा ग्रहण होना चाहिये था किन्तु बात ऐसी नहीं है । यह जगत् तो "यह-यह" इस प्रकार ही प्रतीत होता है । अतः जगत् का मूल आत्मा "है" इस प्रकार ही उपलब्ध करना चाहिये क्योंकि आत्मा "है" इस प्रकार बोलने वाले शास्त्रानुसारी श्रद्धालु पुरुष से भिन्न नास्तिकवादियों को आत्मा की उपलब्धि किसी प्रकार भी नहीं हो सकती; क्योंकि उनके सिद्धान्तानुसार जगत का मूल आत्मा नहीं है ऐसा मानने वालों के सिद्धान्तानुसार इस दृश्यमान कार्यवर्ग का विलय अभाव में ही होगा । असत् से उत्पन्न और असत् में लीन होने वाले कार्यवर्ग वर्तमानकाल में ही असत् से ही अन्वित होंगे । ऐसे उन नास्तिक विपरीतदर्शियों को ब्रह्म किसी प्रकार भी उपलब्ध नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

अतः असद्वादियों के आसुरीपक्ष का तिरस्कार कर (सद्वादपक्ष का ही अनुसरण करना चाहिये) जिसकी उपाधि बुद्धि आदि हैं और जिसका अस्तित्व उसके कार्य में अनुगत है, उस आत्मा को "है" इस प्रकार ही जानना चाहिये । जिस समय उन बुद्धि आदि उपाधियों से रहित निर्विकार जाना जाता है तथा कार्यवर्ग "विकार वाणी का विलास और नाममात्र ही है, सत्य तो केवल मिट्टी ही है" इस श्रुति के अनुसार अपने कारण से अभिन्न निश्चित हो जाता है, उस समय जिस निरुपाधिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।।१४।।

साधक के हृदय में स्थित जो कामनाएँ हैं, वे सब की सब (प्रारब्ध से भिन्न) जब छूट जाती हैं; उस समय (आत्मसाक्षात्कार से पूर्व अपने को) मरणशील मानने वाला पुरुष अमर हो जाता है और इसी वर्तमान शरीर से ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है ।। १४ ।।

सदसदादिप्रत्ययविषयत्ववर्जितस्याऽऽत्मनस्तत्त्वभावो भवति । तेन च रूपेणाऽऽत्मोपलब्धव्य इत्यनुवर्तते । तत्राप्युभयोः सोपाधिकनिरुपाधिकयोरस्तित्वतत्त्वभावयोः । निर्धारणार्था षष्ठी । पूर्वमस्तीत्येवोपलब्धस्याऽऽत्मनः सत्कार्योपाधिकृतास्तित्वप्रत्ययेनोपलब्धस्येत्यर्थः । पश्चात्प्रत्यस्तमितसर्वोपाधिरूप आत्मनस्तत्त्वभावो विदिताविदिताभ्यामन्योऽद्वयस्वभावो नेति नेतीत्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयन इत्यादिश्रुतिनिर्दिष्टः प्रसीदत्यभिमुखी भवती । आत्मप्रकाशनाय पूर्वमस्तीत्युपलब्धवत इत्येतत् ।।१३।।

एवं परमार्थदर्शिनो यदा यस्मिन्काले सर्वे कामाः कामयितव्यस्यान्यस्याभावा-

---

संभाव्यत इत्याह—तत्राप्युभयोरित्यादिना । सदुपलभ्यमानं कार्यमुपाधिर्यस्य कारणत्वस्य तत्कृतो योऽस्तित्वप्रत्ययः कारणत्वादस्ति पर आत्मेति तेनोपलब्धस्येति योजना । १३।।

सर्वे कामा इति । प्रवृत्तफलकर्मोपस्थापिते शरीरस्थितिनिमित्तान्नपानादौ प्रवृत्तिकारणेच्छाव्यतिरिक्ताः सर्वे कामाः काम्येन ज्योतिष्टोमादिना स्वर्गं प्राप्स्यामि त्रैपुर्या(रा?)राधनेन जनं

अलिङ्ग और सत्-असदादि प्रतीति के अविषय आत्मा का तत्त्वभाव होता है, उस तत्त्व स्वरूप से ही आत्मा को उपलब्ध करना चाहिये यहाँ पर 'उपलब्धव्यः' इस पद की अनुवृत्ति की जाती है ।

सोपाधिक का 'अस्तित्व' और निरुपाधिक का 'तत्त्वभाव' इन दोनों में से यहाँ पर 'उभयोः' इस पद में षष्ठी विभक्ति निर्धारण के लिये है अर्थात् पहले है, इस प्रकार उपलब्ध करना चाहिये। सत् कार्यरूप उपाधि के द्वारा अस्तित्व की प्रतीति से उपलब्ध आत्मा का पुनः (वह तत्त्वभाव प्रकाशित हो जाता है) जिसकी सम्पूर्ण उपाधि निवृत्त हो गयी है और जो ज्ञात एवं अज्ञात से भिन्न अद्वय स्वभाव है, उस "नेति नेति" यह नहीं "स्थूल नहीं, सूक्ष्म नहीं, ह्रस्व नहीं" "इन्द्रियों के अविषय अहंता ममता से रहित वाणी के अविषय और आधार रहित में" इत्यादि श्रुतियों से निर्दिष्ट आत्मा का सात्त्विक स्वरूप प्रकाशित हो जाता है अर्थात् जिसे पहले है, इस प्रकार से उपलब्ध किया है, उसे अपना स्वरूप प्रकट करने के लिये अभिमुख होना पड़ता है ।।१३।।

साधक अमरत्व का अनुभव कब करता है

इस प्रकार परमार्थदर्शी भी सम्पूर्ण कामनाएँ, कामना योग्य अन्य पदार्थ का अभाव हो जाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।। अथ
मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ।।१५।।

जिस समय इस वर्तमान जीवन में ही हृदय को अविद्याजन्य सम्पूर्ण ग्रन्थियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, उस समय मरणधर्मा अमर हो जाता है, बस, इतना ही सम्पूर्ण वेदान्तों का अनुशासन है (इससे अधिक आदेश नहीं है) ।। १५ ।।

त्प्रमुच्यन्ते विशीर्यन्ते येऽस्य प्राक्प्रतिबोधाद्विदुषो हृदि बुद्धौ श्रिता आश्रिताः । बुद्धिर्हि कामानामाश्रयो नाऽऽत्मा । कामः संकल्प इत्यादिश्रुत्यन्तराच्च । अथ तदा मर्त्यः प्राक्प्रबोधादासीत्स प्रबोधोत्तरकालमविद्याकामकर्मलक्षणस्य मृत्योर्विनाशादमृतो भवति, गमनप्रयोजकस्य मृत्योर्विनाशाद्गमनानुपपत्तेरत्रैहैव प्रदीपनिर्वाणवत्सर्वबन्धनोपशमाद्ब्रह्म समश्नुते ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः ।।१४।।

कदा पुनः कामानां मूलतो विनाश इत्युच्यते—

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते भेदमुपयान्ति विनश्यन्ति हृदयस्य बुद्धेरिह जीवत एव ग्रन्थयो ग्रन्थिवद्दृढबन्धनरूपा अविद्याप्रत्यया इत्यर्थः । अहमिदं शरीरं ममेदं धनं सुखी दुःखी चाहमित्येवमादिलक्षणास्तद्विपरीतब्रह्मात्मप्रत्ययोपजननाद्ब्रह्मैवाहमस्म्यसंसारीति विन-

---

वशी करिष्यामीत्येवमादयः स्वर्गादिदेहेष्वप्यहमेव तिष्ठामि तद्भोगाश्च प्राप्ता एव प्राप्तविषयश्च कामो व्यर्थो मिथ्या चासाविति विचारेण विशीर्यन्त इत्यर्थः । कामाश्रय आत्मेति वैशेषिकमतं श्रुतिबाह्यत्वान्नाऽऽदरणीयमेवेत्याह—बुद्धिर्हीति ।।१४।।

कामप्रविलयस्य सुषुप्तेऽपि भावादमृतत्वचिह्नत्वं न भवतीति मत्वाऽऽह—कदा पुनरिति ।।१५।।

के कारण जब छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, जो तत्त्वज्ञान से पहले इस विद्वान् की बुद्धि में छाई हुई थीं; क्योंकि बुद्धि ही कामनाओं का आश्रय है; आत्मा नहीं । जैसा कि कामना और संकल्प ये सब मन ही हैं, इत्यादि एक दूसरी श्रुति से भी सिद्ध होता है । अतः उस समय जो आत्मसाक्षात्कार से पूर्व मरणधर्मा था, वही जीव आत्मज्ञान के बाद अविद्या, काम और कर्मरूप मृत्यु का नाश हो जाने से अमर हो जाता है । परलोक में गमन के हेतु या परलोक में ले जाने वाले पूर्वोक्त अविद्यादिरूप मृत्यु का विनाश हो जाने के कारण वहाँ जाना सम्भव नहीं है । अतः वह तत्त्ववेत्ता इस लोक में ही दीपक बुझ जाने के समान सम्पूर्ण बन्धनों के नाश हो जाने से ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्म ही हो जाता है ।।१४।।

कामनाओं का समूल विनाश कब होता है ? इस पर कहते हैं कि जिस समय जीवित दशा में ही बुद्धिस्थ ग्रन्थि के समान मिथ्या प्रतीतिरूप इसके सभी दृढ़ बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, मैं शरीर हूँ, मेरा धन है, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि अनुभव अविद्याजन्य अध्यास के कारण हो रहे हैं; उसके विपरीत ब्रह्मात्मभाव के अनुभव की उत्पत्ति से मैं असंसारी ब्रह्मस्वरूप ही हूँ, ऐसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥

पुरुष के हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ हैं, उसमें से मूर्धा को भेदकर बाहर की ओर निकलने वाली सुषुम्ना नाड़ी है, उसके द्वारा ऊपर की ओर जाने वाला जीव सूर्य मार्ग से आपेक्षिक अमरत्व को प्राप्त करता है। इससे भिन्न विविध गति वाली नाड़ियाँ संसार प्राप्ति के लिये होती हैं ॥ १६ ॥

ष्टेष्वविद्याग्रन्थिषु तन्निमित्ताः कामा मूलतो विनश्यन्ति। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्येतावदेवैतन्मात्रं नाधिकमस्तीत्याशङ्का कर्तव्या। अनुशासनमनुशिष्टिरुपदेशः सर्ववेदान्तानामिति वाक्यशेषः ॥१५॥

निरस्ताशेषविशेषव्यापिब्रह्मात्मप्रतिपत्त्या प्रभिन्नसमस्ताविद्यादिग्रन्थेर्जीवत एव ब्रह्मभूतस्य विदुषो न गतिर्विद्यत इत्युक्तमत्र ब्रह्म समश्नुत इत्युक्तत्वान्न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येतीति श्रुत्यन्तराच्च। ये पुनर्मन्दब्रह्मविदो विद्यान्तरशीलिनश्च ब्रह्मलोकभाजो ये च तद्विपरीताः संसारभाजस्तेषामेष गतिविशेष उच्यते प्रकृतोत्कृष्टब्रह्मविद्याफलस्तुतये। किंचान्यदग्निविद्या पृष्टा प्रत्युक्ता च। तस्याश्च फलप्राप्तिप्रकारो वक्तव्य इति मन्त्रारम्भः। तत्र—

शतं च शतसंख्याका एका च सुषुम्ना नाम पुरुषस्य हृदयाद्विनिःसृता नाड्यः

प्रकरणविच्छेदेनोत्तरस्य संबन्धं दर्शयति—निरस्ताशेषेत्यादिना। यदभाणि भास्करेण

तत्त्वज्ञान द्वारा अविद्या रूप ग्रन्थियों के नष्ट हो जाने पर उस अविद्या निमित्तक सम्पूर्ण कामनाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं, तब वह मरणधर्मा जीव अमर हो जाता है। बस सम्पूर्ण वेदान्तों का अनुशासन इतना ही तो है, इसमें कुछ अधिक को आशंका नहीं करनी चाहिए। अनुशासन का मतलब उपदेश है। यहाँ पर 'सर्ववेदान्तानाम्' यह वाक्य शेष है ॥१५॥

जिसमें सम्पूर्ण विशेषणों का अभाव है, उस निर्विशेष सर्वव्यापक ब्रह्म को आत्मरूप से प्रत्यक्ष अनुभव कर लेने के कारण जिसकी अविद्या आदि सम्पूर्ण ग्रन्थियाँ छिन्न-भिन्न हो गयी हैं और जो जीवनकाल में ही ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गया है, उस ब्रह्मज्ञानी का कहीं गमन नहीं होता। ऐसा "इस शरीर में ही ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है" इस मन्त्र से पहले कह आये हैं। "उस तत्त्वज्ञानी के प्राण उत्क्रमण नहीं करते, वह ब्रह्मरूप हुआ ही ब्रह्म में लीन हो जाता है", इस दूसरो श्रुति से भी यही अर्थ निश्चित होता है किन्तु जिनका ब्रह्मज्ञान मन्द (अदृढ़) है और जो अन्य उपासना का परिशीलन करने वाले हैं, ऐसे साधक ब्रह्मलोक प्राप्ति के अधिकारी माने जाते हैं तथा जो इसके विपरीत जन्म-मरणरूप संसार के भागी हैं, उन्हीं की किसी गति विशेष का वर्णन इस प्रकृत ब्रह्मविद्या उत्कृष्ट फल की स्तुति के लिये किया जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।। तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मु-

अंगुष्ठ मात्र, अन्तरात्मा पुरुष सदा जीवों के हृदय में स्थित है उसे धैर्यपूर्वक मूँज से सींक

शिरास्तासां मध्ये मूर्धानं भित्त्वाऽभिनिःसृता निर्गता सुषुम्ना नाम । तयाऽन्तकाले हृदय आत्मानं वशीकृत्य योजयेत् । तया नाड्योर्ध्वमुपर्यायन्गच्छन्नादित्यद्वारेणामृतत्वममरण-धर्मत्वमापेक्षिकम् । आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाष्यत इति स्मृतेः । ब्रह्मणा वा सह कालान्तरेण मुख्यममृतत्वमेति भुक्त्वा भोगाननुपमान्ब्रह्मलोकगतान् । विष्वङ्ना-नाविधगतयोऽन्या नाड्य उत्क्रमणे निमित्तं भवन्ति संसारप्रतिपत्त्यर्था एव भवन्तीत्यर्थः ।।१६।।

इदानीं सर्ववल्ल्यर्थोपसंहारार्थमाह—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां संबन्धिनि हृदये संनिविष्टो यथाव्या-

---

[1]प्रकरणाद्ब्रह्मविद्विषयैवेयं गतिरिति तद्रसद्गतिश्रवणेन [2]लिङ्गेन परिच्छिन्ने गमनयोग्येऽस्या गतेः संबन्धावगमे सति [3]दुर्बलेन प्रकरणेन प्रकृतब्रह्मवित्संबन्धानुपपत्तेः । [4]नाड्यन्तराणामपि तत्संबन्ध-प्रसङ्गाच्छ्रु[5]तिविरुद्धत्वप्रसङ्गाच्च । विस्तरश्च प्रकटार्थे द्रष्टव्यः ।।१६।।

इसके सिवाय नचिकेता के पूछने पर यमाचार्य ने पहले अग्नि विद्या का भी वर्णन किया था, उस विद्या के फल की प्राप्ति का प्रकार बतलाना चाहिये । इसीलिये यह मन्त्र प्रारम्भ किया जाता है। वहाँ पर (यह कहना अभीष्ट है कि) पुरुष के हृदय से सौ संख्या वाली दूसरी और एक सुषुम्ना नाम की नाड़ी द्वारा मन को वश में करके हृदय में समाहित हो करे । पुनः उस नाड़ी द्वारा ऊपर की ओर जाने वाला जीवात्मा सूर्य मार्ग से आपेक्षिक अमरण धर्मकरूप अमृतत्व को प्राप्त होता है । "सम्पूर्ण भूतों के प्रलय तक रहने वाला स्थान अमृतत्व कहा जाता है" इस स्मृति से भी ब्रह्मलोक में अमरत्व सिद्ध होता है अथवा (जिसका ऐसा अभिप्राय समझे कि) कालान्तर में ब्रह्मा के चार ब्रह्मलोक में अनुपम भोगों को भोगकर मुख्य अमृतत्व को भी प्राप्त कर लेता है । इसके अतिरिक्त जिनकी गति नाना प्रकार की है, ऐसी अन्य सब नाड़ियाँ (शरीरान्त ग्रहण के लिए) उत्क्रमण में हेतु हैं । तात्पर्य यह कि सुषुम्ना नाड़ी से भिन्न सभी नाड़ियाँ संसार प्राप्ति के लिये ही हैं, ये ही होती हैं ।। १६ ।।

उपसंहार

अब सभी वल्लियों के तात्पर्य अर्थ का उपसंहार करने के लिए कहते हैं, जिसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है, ऐसा अंगुष्ठ परिमाण वाला पुरुष जीवों के हृदय में सदा स्थित और उनका अन्तरात्मा

---

१. प्रकरणादिति परस्पराकांक्षा प्रकरणं तद्बलादित्यर्थः । २. अर्थप्रकाशनसामर्थ्यं लिङ्गं तेनेत्यर्थः ।
३. दुर्बलेनेति—"श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षादिति"न्यायादिति भावः । ४. नाड्यन्तराणामपीति—विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्तीति वाक्यस्यापि तन्मते प्रकरणाद्ब्रह्म-विद्विषयत्वाविशेषादिति भावः । ५. श्रुतीति—"न तस्य प्राणाः" "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेती"त्यादिश्रुतीत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ञ्जादिवेषीकां धैर्येण ॥ तं विद्याच्छुक्रममृतं
तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥१७॥

मृत्युप्रोक्तां नाचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां
योगविधिं च कृत्स्नम् ॥ ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभू-
द्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥१८॥

की भाँति अपने शरीर से पृथक् करे। (शरीर से पृथक् किये हुए) उस आत्मा को विशुद्ध और अमृतमय समझे, उसे शुद्ध और अमर समझे ॥ १७ ॥

मृत्यु की कही हुई पूर्वोक्त ब्रह्मविद्या और सम्पूर्ण योग विधि को प्राप्त कर नचिकेता मुक्त हो गया। वह धर्माधर्म रूपी रज से रहित तथा अविद्या एवं काम से छूट गया। जो कोई दूसरा व्यक्ति भी अध्यात्मतत्त्व को इस प्रकार जानेगा; वह भी नचिकेता की भाँति ब्रह्मप्राप्ति द्वारा मृत्यु से छूट जायगा ॥ १८ ॥

ख्यातस्तं स्वादात्मीयाच्छरीरात्प्रवृहे[2]दुद्यच्छेन्निष्कर्षेत्पृथक्कुर्यादित्यर्थः। किमिवेत्युच्यते। मुञ्जादिवेषीकामन्तस्थां धैर्येणाप्रमादेन। तं शरीरान्निष्कृष्टं चिन्मात्रं विद्याद्विजानीयाच्छुक्रममृतं यथोक्तं ब्रह्मेति। द्विर्वचनमुपनिषत्परिसमाप्त्यर्थमितिशब्दश्च ॥१७॥

विद्यास्तुत्यर्थोऽयमाख्यायिकार्थोपसंहारोऽधुनोच्यते—

मृत्युप्रोक्तां यथोक्तामेतां ब्रह्मविद्यांयोगविधिं च कृत्स्नं समस्तं सोपकरणं सफलमित्येतत्। नाचिकेतो वरप्रदानान्मृत्योर्लब्ध्वा प्राप्येत्यर्थः। किम्। ब्रह्मप्राप्तोऽभून्मुक्तोऽभव-

॥१७॥

है, उसे अपने शरीर से विवेक द्वारा पृथक् करे। कैसे? इस पर कहते हैं—मूँज से उसकी अन्तर्वर्ती सीप पृथक् की जाती है। इस प्रकार शरीर से पृथक् किये हुए उस अंगुष्ठ परिमाण पुरुष को ही पूर्वोक्त चिन्मात्र विशुद्ध अमृत स्वरूप को ही ब्रह्म समझे। यहाँ पर "तं विद्याच्छुक्रममृतम्" इस पद की द्विरावृत्ति और इति शब्द का प्रयोग इस उपनिषत् की समाप्ति के लिये है ॥ १७ ॥

इस आख्यायिका के अर्थ का अब उपसंहार विद्या की स्तुति के लिये कहा जाता है। यमाचार्य द्वारा कही गया इस पूर्वोक्त ब्रह्मविद्या और सम्पूर्ण योगविधि फल के सहित ब्रह्मविद्या के साधन को वर प्रदान के रूप में यमाचार्य से नचिकेता प्राप्त कर क्या हो गया? इस पर कहते हैं—ब्रह्म को प्राप्त हो गया अर्थात् मुक्त हो गया। कैसे? पहले विद्या की प्राप्ति

१. तं स्वादित्यादिना त्वं पदार्थशोधनं विधाय शोधितं तमनूद्य तस्य तथाविधतत्पदार्थभिदावगमं विवक्षितं ब्रवीति—तं विद्यादित्यादिना। २. वृहू उद्यमने इति धातुप्रयोगं सूचयन्व्याचष्टे—उद्यच्छेदिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।।१९।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

इति काठकोपनिषदि द्वितीयाध्याये तृतीया वल्ली समाप्ता ।।३।। (६)

इति काठकोपनिषदि द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ।।२।।

पूर्ववत् ।।१९।।

।। इति तृतीया वल्ली समाप्ता ।।

दित्यर्थः । कथम् । विद्याप्राप्त्या विरजो विगतधर्माधर्मो विमृत्युर्विगतकामाविद्यश्च सन्पूर्वमित्यर्थः । न केवलं नाचिकेत एवान्योऽपि नाचिकेतवदात्मविदध्यात्ममेव निरुपचरितं प्रत्यक्स्वरूपं प्राप्य तत्त्वमेवेत्यभिप्रायः । नान्यद्रूपमप्रत्यग्रूपम् । तदेवमध्यात्ममेवमुक्तप्रकारेण यो वेद विजानातीत्येवं वित्सोऽपि विरजः सन्ब्रह्मप्राप्त्या विमृत्युर्भवतीति वाक्यशेषः ।।१८।।

शिष्याचार्ययोः प्रमादकृतान्यायेन विद्याग्रहणप्रतिपादननिमित्तदोषप्रशमनार्थेयं शान्तिरुच्यते—

सह नावावामवतु पालयतु विद्यास्वरूपप्रकाशनेन । कः । स एव परमेश्वर

आत्मानं देहमधिकृत्य वर्तत इत्यध्यात्मम् । प्रत्यक्स्वरूपमेव ब्रह्म प्राप्य विमृत्युर्भवति नान्यद्रूपमर्चिरादिमार्गगम्यं प्राप्य संयोगस्य वियोगावसानत्वादित्यर्थः । एवंशब्दस्य विच्छब्देन सह संबन्ध एवं विदिति ।।१८।।

द्वारा धर्माधर्मरूप रज से रहित हो कामना और अविद्या से सर्वथा छूटकर मुक्त हो गया, यह इसका अभिप्राय है । न केवल नचिकेता मुक्त हुआ, प्रत्यत नचिकेता के समान दूसरा आत्मज्ञानी भी; अर्थात् (जिसकी दृष्टि में) अपने देहादि का अधिष्ठाता उपचार शून्य (मुख्य) प्रत्यक् स्वरूप ही वास्तविक तत्त्व है; अन्य अनात्मवस्तु तत्त्व नहीं, इस प्रकार जो पूर्वोक्त उसी अध्यात्मरूप को जानता है । इस प्रकार नचिकेता के समान अन्य ब्रह्मवित् पुरुष भी धर्माधर्म से रहित होकर ब्रह्मप्राप्ति द्वारा मृत्यु रहित हो जाता है, इतना वाक्य शेष है ।। १८ ।।

प्रमाद के कारण अन्याय से विद्या के ग्रहण और प्रतिपादन निमित्त से होने वाले शिष्य और आचार्य के दोषों की निवृत्ति के लिए अब यह शान्ति कही जाती है—

विद्या के स्वरूप का प्रकाशन कर हम (शिष्य और आचार्य) दोनों की रक्षा साथ-साथ करें ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपनिषत्प्रकाशितः। किंच सह नौ भुनक्तु तत्फलप्रकाशनेन नौ पालयतु। सहैवाऽऽवां विद्याकृतं वीर्यं सामर्थ्यं करवावहै निष्पादयावहै। किंच तेजस्विनौ तेजस्विनोरावयोर्यदधीतं तत्स्वधीतमस्तु। अथवा तेजस्वि नावावाभ्यां यदधीतं तदतीव तेजस्वि वीर्यवदस्त्वित्यर्थः। मा विद्विषावहै शिष्याचार्यावन्योन्यं प्रमादकृतान्यायाध्ययनाध्यापनदोषनिमित्तं द्वेषं मा करवावहा इत्यर्थः। शान्तिः शान्तिः शान्तिरिति त्रिर्वचनं सर्वदोषोपशमनार्थमित्योमिति ॥१९॥

इति काठकोपनिषद्भाष्ये द्वितीयाध्याये तृतीया वल्ली समाप्ता ॥३॥ (६)

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्य-श्रीमदाचार्यश्रीशंकरभगवतः कृतौ काठकोपनिषद्भाष्ये द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥२॥

॥१९॥

इति काठकोपनिषद्भाष्यटीकायां द्वितीयाध्याये तृतीया वल्ली समाप्ता ॥३॥ (६)

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यानन्दज्ञानविरचिते काठकोपनिषद्भाष्यव्याख्याने द्वितीयाध्यायः समाप्तः ॥२॥

कौन रक्षा करे ? उपनिषत् प्रकाशित वह परमेश्वर ही हमारी रक्षा करे तथा उसके फल को प्रकाशित कर वह परमेश्वर हम लोगों का एक साथ पालन करे। हम दोनों विद्याकृत सामर्थ्य को साथ-साथ प्राप्त करें और हम दोनों तेजस्वियों का जो अध्ययन किया हुआ है, वह सुपठित हो जावे अथवा हम दोनों का जो अध्ययन किया हुआ शास्त्र ज्ञान है, अत्यन्त सामर्थ्यशाली होवे और हम शिष्य एवं आचार्य परस्पर विद्वेष न करें अर्थात् प्रमादकृत अन्याय से अध्ययन और अध्यापन में होने वाले दोषों के कारण हम दोनों परस्पर एक दूसरे से द्वेष न करें। शान्ति शब्द का तीन बार उच्चारण आध्यात्मिकादि समस्त त्रिविध दोषों की शान्ति के लिये किया गया है। इत्योम्।

॥ श्रीशंकरः प्रीयताम् ॥

इति परिसमाप्तेयं सटिप्पणटीकाद्वयसंवलितशाङ्करभाष्यसमेता काठकोपनिषत् ॥

अधीत्याचार्यपादेभ्यो विष्णुदेवाख्यभिक्षुणा। गिरिणा स्वमनस्तुष्ट्यै निरमायि सुटिप्पणम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काठकोपनिषदन्तर्गतमन्त्रप्रतीकानां वर्णानुक्रमणिका

मन्त्रप्रतीकानि		अ.	व.	मं.	पृ.
अ.					
अग्निर्यथैको भुवनम्	...	२	२	९	१०५
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः	...	२	१	१२	९४
,, ,,	...	२	१	१३	९५
,, ,,	...	२	३	१७	१२९
अजीर्यताममृतानाम्	...	१	१	२८	३४
अणोरणीयान्महतः	...	१	२	२०	६१
अनुपश्य यथा पूर्वे	...	१	१	६	१०
अन्यच्छ्रेयोऽन्यत्	...	१	२	१	३७
अन्यत्र धर्मादन्यत्र	...	१	२	१४	५५
अरण्योर्निहितः	...	२	१	८	९१
अविद्यायामन्तरे	...	१	२	५	४३
अव्यक्तात्तु परः	...	२	३	८	११९
अशब्दमस्पर्शम्	...	१	३	१५	८१
अशरीरꣳ शरीरेषु	...	१	२	२२	६४
अस्तीत्येवोपलब्धव्यः	...	२	३	१३	१२५
अस्य विस्रंसमानस्य	...	२	२	४	१०१
आ.					
आत्मानꣳ रथिनम्	...	१	३	३	७०
आशाप्रतीक्षे संगतꣳ	...	१	१	८	११
आसीनो दूरं व्रजति	...	१	२	२१	६२
इ.					
इन्द्रियाणां पृथग्भावम्	...	२	३	६	११८
इन्द्रियाणि हयानाहुः	...	१	३	४	७१
इन्द्रियेभ्यः परं मनः	...	२	३	७	११९
इन्द्रियेभ्यः पराः	...	१	३	१०	७४
इह चेदशकद्बोद्धुम्	...	२	३	४	११६
उ.					
उशन्ह वै वाजश्रवसः	...	१	१	१	५
उत्तिष्ठत जाग्रत	...	१	३	१४	७९
ऊ.					
ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखः	...	२	३	१	११२

मन्त्रप्रतीकानि		अ.	व.	मं.	पृ.
ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयति	...	२	२	३	१००
ऋ.					
ऋतं पिबन्तौ सुकृत०	...	१	३	१	६८
ए.					
एको वशी सर्वभूता०	...	२	२	१२	१०८
एतच्छ्रुत्वा संपरि०	...	१	२	१३	५४
एतत्तुल्यं यदि मन्यसे	...	१	१	२४	२९
एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठम्	...	१	२	१७	५७
एतद्ध्येवाक्षरम्	...	१	२	१६	५७
एष तेऽग्निर्नचिकेतः	...	१	१	१९	२२
एष सर्वेषु भूतेषु	...	१	३	१२	७७
क.					
कामस्याऽऽप्तिं जगतः	...	१	२	११	५२
ज.					
जानाम्यहꣳ शेवधिः	...	१	२	१०	५१
त.					
तꣳ ह कुमारꣳ सन्तम्	...	१	१	२	७
तदेतदिति मन्यन्ते	...	२	२	१४	११०
तमब्रवीत्प्रीयमाणः	...	१	१	१६	१९
तं दुर्दर्शं गूढम्	...	१	२	१२	५३
तां योगमिति मन्यन्ते	...	२	३	११	१२२
तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीः	...	१	१	९	१३
त्रिणाचिकेतस्त्रयम्	...	१	१	१८	२२
त्रिणाचिकेतस्त्रिभिः	...	१	१	१७	२०
द.					
दूरमेते विपरीते	...	१	२	४	४१
देवैरत्रापि विचि०	...	१	१	२१	२६
,, ,,	...	,,	,,	२२	२७
न.					
न जायते म्रियते वा	...	१	२	१८	५८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि	अ.	व.	मं.	पृ.
न तत्र सूर्यो भाति ...	२	२	१५	१११
न नरेणावरेण ...	१	२	८	४७
न प्राणेन नापानेन ...	२	२	५	१०२
न वित्तेन तर्पणीयः ...	१	१	२७	३३
न संदृशे तिष्ठति ...	२	३	९	१२०
न सांपरायः प्रति ...	१	२	६	४४
ना.				
नाचिकेतमुपाख्यानम् ...	१	३	१६	८२
नायमात्मा प्रवचनेन ...	१	२	२३	६५
नाविरतो दुश्चरितात् ...	१	२	२४	६६
नि.				
नित्योऽनित्यानाम् ...	२	२	१३	१०९
नै.				
नैव वाचा न मनसा ...	२	३	१२	१२४
नैषा तर्केण मतिः ...	१	२	९	४९
प.				
पराचः कामाननु ...	२	१	२	८६
पराञ्चि खानि व्यतृणत् ...	२	१	१	८४
पी.				
पीतोदका जग्धतृणा ...	१	१	३	७
पु.				
पुरमेकादशद्वारम् ...	२	२	१	९७
प्र.				
प्र ते ब्रवीमि तदु ...	१	१	१४	१७
ब.				
बहूनामेमि प्रथमः ...	१	१	५	९
भ.				
भयादस्याग्निस्तपति ...	२	३	३	११६
म.				
मनसैवेदमाप्तव्यम् ...	२	१	११	९४
महतः परमव्यक्तम् ...	१	३	११	७६
मृ.				
मृत्युप्रोक्तां नाचिकेतः ...	२	३	१८	१३०
य.				
य इमं परमम् ...	१	३	१७	८३

मन्त्रप्रतीकानि	अ.	व.	मं.	पृ.
य इमं मध्वदम् ...	२	१	५	८९
य एष सुप्तेषु जागर्ति ...	२	२	८	१०४
यच्छेद्वाङ्मनसी ...	१	३	१३	७९
यतश्चोदेति सूर्यः ...	२	१	९	९२
यथाऽऽदर्शे तथा ...	२	३	५	११७
यथा पुरस्ताद्भविता ...	१	१	११	१५
यथोदकं दुर्गे वृष्टम् ...	२	१	१४	९६
यथोदकं शुद्धे शुद्धम् ...	२	१	१५	९६
यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ...	२	३	१०	१२१
यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते ...	२	३	१५	१२७
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते ...	२	३	१४	१२६
यदिदं किंच जगत्सर्वम् ...	२	३	२	११५
यदेवेह तदमुत्र ...	२	१	१०	९३
यस्तु विज्ञानवान् ...	१	३	६	७२
,, ,, ...	१	३	८	७३
यस्त्वविज्ञानवान् ...	१	३	५	७२
,, ,, ...	१	३	७	७३
यस्मिन्निदं विचि० ...	१	१	२९	३५
यस्य ब्रह्म च क्षत्रम् ...	१	२	२५	६७
यः पूर्वं तपसः ...	२	१	६	९०
यः सेतुरीजानानाम् ...	१	३	२	६९
या.				
या प्राणेन संभवति ...	२	१	७	९१
ये.				
येन रूपं रसम् ...	२	१	३	८७
येयं प्रेते विचिकित्सा ...	१	१	२०	२४
ये ये कामा दुर्लभाः ...	१	१	२५	३०
यो.				
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते ...	२	२	७	१०३
लो.				
लोकादिमग्निम् ...	१	१	१५	१८
वा.				
वायुर्यथैको भुवनम् ...	२	२	१०	१०६
विज्ञानसारथिर्यस्तु ...	१	३	९	७४
वैश्वानरः प्रविशति ...	१	१	७	११
श.				
शतं चैका च हृदयस्य ...	२	३	१६	१२८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि		अ.	व.	मं.	पृ.
शतायुषः पुत्रपौत्रान्	...	१	१	२३	२८
शान्तसंकल्पः सुमनाः	...	१	१	१०	१४
श्र.					
श्रवणायापि बहुभिः	...	१	२	७	४६
श्रेयश्च प्रेयश्च	...	१	२	२	३९
श्वोभावा मर्त्यस्य	...	१	१	२६	३२
स.					
स त्वमग्निꣳ स्वर्ग्यम्	...	१	१	१३	१७
स त्वं प्रियान्प्रियरूपा	...	१	२	३	४०
सर्वे वेदा यत्पदम्	...	१	२	१५	५६
सह नाववतु	...	२	३	१९	१/१३१

मन्त्रप्रतीकानि		अ.	व.	मं.	पृ.
स होवाच पितरम्	...	१	१	४	८
सू.					
सूर्यो यथा सर्वलोक०	...	२	२	११	१०७
स्व.					
स्वप्नान्तं जागरिता०	...	२	१	४	८९
स्वर्गे लोके न भयम्	...	१	१	१२	१६
ह.					
हꣳसः शुचिषद्वसुः	...	२	२	२	९८
हन्त त इदं प्रव०	...	२	२	६	१०३
हन्ता चेन्मन्यते	...	१	२	१९	६०

समाप्ता चेयं मन्त्रप्रतीकवर्णानुक्रमणी ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१६

हरिॐ

॥ श्री अभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतमाम् ॥

श्रीकैलासविद्यालोकस्य सप्तत्रिंशः (३७) सोपानः

प्रश्नोपनिषत्

आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशाङ्करभाष्यसमेता

'गोविन्दप्रसादिनी' टिप्पणीकार विद्यावाचस्पति

महामण्डलेश्वर स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज

•

'विद्यानन्दीमिताक्षरा' व्याख्याकार वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य यतीन्द्रकुलतिलक श्रीकैलासपीठाधीश्वर

महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज

•

सम्पादक

डॉ० उमेशानन्द शास्त्री

एम. ए., एल-एल. बी., पी. एच. डी., व्याकरणाचार्य

•

श्री कैलास आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति, ऋषिकेश ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हरिॐ

॥ श्री अभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतमाम् ॥

श्रीकैलासविद्यालोकस्य सप्तत्रिंशः (३७) सोपानः

प्रश्नोपनिषत्

आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशाङ्करभाष्यसमेता

'गोविन्दप्रसादिनी' टिप्पणीकार विद्यावाचस्पति

महामण्डलेश्वर स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज

•

'विद्यानन्दीमिताक्षरा' व्याख्याकार वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य यतीन्द्रकुलतिलक श्रीकैलासपीठाधीश्वर

महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज

•

सम्पादक

डॉ० उमेशानन्द शास्त्री

एम. ए., एल-एल. बी., पी. एच. डी., व्याकरणाचार्य

•

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक—
श्री कैलाश आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति
मुनि की रेती, ऋषिकेश (उ० प्र०)

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

प्रथम संस्करण २००० मूल्य ६ रुपये पुरुषोत्तमी एकादशी वि० सं० २०३१

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

१. श्री कैलास आश्रम मुनि की रेती, ऋषिकेश—२४९२०१
२. श्री कैलास आश्रम, उजेली, उत्तरकाशी—२४९१९३
३. श्री दशनाम संन्यास आश्रम, भूपतवाला, हरिद्वार—२४९४०१
४. श्री राम आश्रम, समानामण्डी, पटियाला—१४७१०१
५. श्री दक्षिणामूर्ति सं० म० विद्यालय, मिश्रपोखरा, वाराणसी—२२१०१०
६. श्री चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी—२२१००१
७. श्री चौखम्बा विश्वभारती, चौक, वाराणसी—२२१००१
८. श्री मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी—२२१००१

मुद्रक— श्री कैलास विद्या प्रेस, श्री ब्रह्मानन्द आश्रम, मुनि की रेती, ऋषिकेश (उ० प्र०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पादकीय

श्री कैलास आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति द्वारा पारित उद्देश्यों में 'दुर्लभ ग्रन्थों का प्रकाशन' ही एक ऐसा उद्देश्य था जो समयसाध्य एवं मुमुक्षुओं के लिए परम उपयोगी सिद्ध हुआ। इस प्रकाशन की शृङ्खला में सम्प्रति प्रश्नोपनिषत् को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे पर्याप्त सन्तोष हो रहा है। श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ यतीन्द्रकुलतिलक कैलास-पीठाधीश्वर आचार्य-महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज के सत्य संकल्पों का ही यह मूर्त रूप है।

अन्य उपनिषदों की भाँति प्रश्नोपनिषत् में दुर्वेद्य अध्यात्म विद्या को गुरु-शिष्य सम्वाद रूप प्रश्नोत्तर द्वारा सरल ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है। महर्षि पिप्पलाद अपने समय के अद्वितीय ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष रहे हैं, उनके पास ब्रह्मविद्या प्राप्ति हेतु छः जिज्ञासु एक-साथ मिलकर समित्पाणि होकर गये। उन महानुभावों के नाम थे :—(१) भारद्वाज का पुत्र सुकेशा, (२) शिबि का पुत्र सत्यकाम, (३) सूर्य का पौत्र गर्ग-गोत्रोत्पन्न गार्ग्य, (४) अश्वल का पुत्र कौशल्य, (५) भृगु गोत्रोत्पन्न विदर्भदेशीय वैदर्भी एवं (६) कत्य का प्रपोत्र कबन्धी।

प्रश्न पूछने में विपरीत क्रम चला सबसे पहले कात्यायन कबन्धी ने प्रश्न किया एवं अन्त में भारद्वाज के पुत्र सुकेशा ने अपनी जिज्ञासा शान्त की। प्रश्न तो सीधे-सादे हैं किन्तु उत्तर गहन चिन्तन की दिशा देते हैं। सृष्टि स्थिति एवं प्रलय, उनके नियामक की चर्चा व उसका स्वरूप क्या है, इन्हीं बातों का समाधान किया है। संक्षेप में छः प्रश्न व उनके उत्तर इस प्रकार वर्णित किये गए हैं :—

प्रथम प्रश्न—ये प्रजा किससे उत्पन्न होती हैं (कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति १-३)।

समाधान—अन्न ही प्रजापति है, वह वीर्य होता है और उस वीर्य से यह प्रजा उत्पन्न होती है (अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजा प्रजायन्त इति १-१४)।

द्वितीय प्रश्न—प्रजा को कितने देवता धारण करते हैं, कौन इसे प्रकाशित करते हैं और इन देवों में कौन प्रधान है (कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति २-१)।

समाधान—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक्, मन, चक्षु और श्रोत्र वे देव हैं किन्तु सब कुछ प्राण के अधीन है (आकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च २-२ प्राणस्येदं वशे सर्वम् २-१३)।

तृतीय प्रश्न—यह प्राण किस कारण विशेष से उत्पन्न होता है, किस व्यापार विशेष से किस शरीर में आता है, उत्क्रमण क्यों करता है और किस प्रकार बाह्य तथा आभ्यान्तर शरीर को धारण करता है (कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा विभज्य कथं प्रतिष्ठिते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ३-१)।

समाधान—आत्मा से यह प्राण उत्पन्न होता है (आत्मन एष प्राणो जायते ३-३)।

चतुर्थ प्रश्न—इस पुरुष में कौन इन्द्रियाँ सोती हैं, कौन इसमें जागती हैं, किसे यह सुख होता है, किसमें ये सभी इन्द्रियाँ प्रतिष्ठित होती हैं (एतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ४-१)।

समाधान—यह सब कुछ आत्मा में संप्रतिष्ठित है (तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ४-७)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंचम प्रश्न—मरणपर्यन्त ओंकार का चिन्तन करे तो किस लोक को जीतता है (स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत। कतमं वाव लोकं जयतीति ५-१)।

समाधान—इस लोक को प्राप्त होता है जो स्थूल, सूक्ष्म, प्रपञ्च से रहित अजर, अमर, अभय एवं सबसे परे है (तमोंकारेणैवाऽऽयतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ५-७)।

षष्ठ प्रश्न—सोलह कला वाले पुरुष को जानते हो, (षोडशकलां पुरुषं वेत्थ ६-१)।

समाधान—सब कलाएं जिसमें स्थिति रहती हैं, उस ज्ञातव्य पुरुष को जानो (कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद ६-६)।

भाष्यकार भगवान् शंकराचार्य ने उपरोक्त सारगर्भित मन्त्रों के भाष्य में प्रसन्न एवं गम्भीर गुण की उत्तरोत्तर उत्कर्षता दिखाई है। सिद्धान्त की पुष्टि के लिए अन्य श्रुतियों का पर्याप्त आश्रय लिया है। शान्त प्रपञ्च रहित साम्राज्य में तर्क का प्रवेश उन्हें अब ज्यादा अच्छा नहीं लगता। "न तार्किकचाटभटप्रवेशो वेदान्तराजप्रमाणबाहुगुप्त इहात्मैकत्वविषय इति" तार्किकों के विवाद में न पड़ कर अपनी बुद्धि को निश्चयात्मिका बनाये रखने में ही भलाई है। उन्हीं के शब्दों में—

"विवदत्स्वेव निक्षिप्य विरोधोद्भवकारणम्। तै संरक्षितसद्बुद्धिः सुखं निर्वाति वेदवित्"॥

आनन्द गिरि टीकाकार भी आचार्य शंकर के अद्वैत सिद्धान्त को व्यवहार एवं परमार्थ का सामञ्जस्य करते हुए ग्रन्थ-ग्रन्थि भेदन में अपनी ब्रह्मनिष्ठा का सहज परिचय देते हैं। "कल्पनया स्वव्यतिरिक्तस्य जीवस्य सत्त्वात्तस्य संसारो नात्मनः। तदीयकर्मफलदानार्थं चाऽऽप्तकामस्यापि सृष्ट्यादिप्रवृत्तिः संभवति। सर्वव्यवहारस्यापि स्वप्नतुल्यत्वाद्वा स्वप्न इव सर्वमप्युपपद्यत इति"(पृ.१०४)

पूज्य स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज की टिप्पणी तो स्थल-स्थल पर वेदान्त तत्त्व-रसिकों को आह्लादित करती है। ब्रह्मवेत्ताओं की उपनिषत् काल में भी कमी थी तभी तो राजकुमार हिरण्यनाभ तत्त्ववेत्ता की तलाश में भारद्वाज के पास गया किन्तु वे उनकी जिज्ञासा शान्त नहीं कर पाए। भारद्वाज बोले—यदि मैं षोडशकल पुरुष को जानता होता तो तुझ सर्वगुणसम्पन्न शिष्य को अवश्य बताता "समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुम्"। इस भोग-प्रधान समय में भी निवृत्तिपरायण श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ की सुलभता का श्रेय श्री कैलास आश्रम ऋषिकेश को ही है। इनकी अद्वैत निष्ठा एवं ब्रह्मात्मैक्य अनुभूति की झलक इनके विचारों में पद-पद पर दृष्टिगोचर होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादन में पूर्व-प्रकाशित उपनिषद् ग्रन्थों का ही क्रम रखा गया है। पृष्ठ के शिरोभाग में मन्त्र उसके नीचे मन्त्र की हिन्दी, शांकर भाष्य, आनन्दगिरि टीका, भाष्य की हिन्दी व्याख्या एवं सबसे नीचे टिप्पणी जिनके प्रतीक ऊपर दिए हुए हैं। श्री कैलास आश्रम के मनीषियों की इस सुरक्षित धरोहर को सर्वसाधारण की सेवा में लाकर हम उस दुर्लभ ब्रह्मविद्या को सर्वजनोपयोगी बना पाए हैं। हालांकि इसके अधिकारी बहुत कम देखे जाते हैं किन्तु जिन्हें इसके रसास्वादन का आनन्द मिलने लगता है वे पूर्णता की ओर उत्तरोत्तर बढ़ने के लिए कृतसंकल्प हो जाते हैं। सम्पादन में अनवधानता वशात् जो भी त्रुटियाँ रह गई हों उसे विज्ञजन क्षमा करेंगे। भगवती मन्दाकिनी के आश्रय में रहने का प्रलोभन एवं आशुतोष भगवान् शंकर की कृपा से ही इतनी जल्दी यह प्रकाशन संभव हुआ और अन्त में त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये। श्री कृष्णार्पणमस्तु

भगवदीय

डॉ० उमेशानन्द शास्त्री

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तावना

दिशन्तु शम्मे गुरुपादपांसवः

"नवधा भेदितोऽथर्वः" इस सूतसंहिता के वाक्यानुसार अथर्ववेद की नव शाखायें मानी गयी हैं, जिनमें मुण्डकशाखीय मन्त्रभाग की मुण्डकोपनिषत् है । इसमें परा और अपरा विद्या का विशद वर्णन किया गया है। इन्हीं दोनों विद्याओं में प्रवेश की योग्यता प्राप्त कराने के लिए अथर्ववेदीय ब्राह्मणभाग के अन्तर्गत प्रश्नोपनिषत् कही गयी है। ऐसा प्रश्नोपनिषत् का भाष्य प्रारम्भ करते समय आद्य शंकराचार्य भगवत्पाद ने कहा है।

इस प्रश्नोपनिषद् में सभी छः खण्ड हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में सुकेशादि छः ऋषिकुमारों ने महर्षि पिप्पलाद के पास जाकर ब्रह्मविद्या के लिये प्रश्न किये। महर्षि पिप्पलाद ने एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरुकुल वास करने की आज्ञा दी, जिससे एक तो यह अर्थ सिद्ध होता है कि सहसा प्रश्नोत्तर द्वारा यथार्थतत्त्व का वोध नहीं होता; किन्तु संयम पूर्वक गुरुशुश्रूषा से शिष्य में विद्या ग्रहण की योग्यता आती है। दूसरी बात यह है कि शिष्य की परीक्षा के बिना गुरु को विद्या का उपदेश नहीं करना चाहिये। अनधिकारी को किया हुआ उपदेश व्यर्थ जाता है; इतना ही नहीं, प्रत्युत कभी-कभी हानिकारक भी हो जाता है। अतः शिष्य के अधिकार को समझकर योग्यतानुसार उसे उपदेश करना चाहिये। सम्वत्सर पर्यन्त गुरुकुल वास के पश्चात् ऋषिकुमारों ने पृथक्-पृथक् प्रश्न किया और महर्षि पिप्पलाद के समाधान से वे सभी कृत-कृत्य हो गये। इन्हीं ६ सम्वादों को प्रश्नोपनिषत् के नाम से कहा गया है।

उनमें से प्रथम प्रश्न में प्रजापति से रयि और प्राण के द्वारा चराचर जगत् की उत्पत्ति कही गयी है। प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति उसके अनुरूप दो कारणों के संयोग से होती है, ऐसा आज भी देखा जाता है। इस रहस्य को जानने वाला पुरुष ही प्रजापति व्रत का आचरण करते हैं और उन्हें दृष्टफल पुत्र-पुत्री की प्राप्ति एवं पितृयाणमार्ग द्वारा चन्द्रलोक की प्राप्ति कही गयी है; किन्तु जो उत्तरमार्गावलम्बी होते हैं, उन्हें विशुद्ध ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। जिनमें कुटिलता, मिथ्या भाषण और कपट नहीं है, उन्हीं को विशुद्ध ब्रह्मलोक मिलता है।

दूसरे प्रश्न में स्थूलदेह के प्रकाशक तथा धारण प्राण का निरूपण किया गया है। प्राणोपासना की स्तुतिरूप में प्राणसम्वाद नामक आख्यायिका द्वारा इन्द्रियों की अपेक्षा मुख्य प्राण को श्रेष्ठ कहा गया है।

तीसरे प्रश्न में प्राण की उत्पत्ति, स्थिति और लय का विचार किया गया है। पुरुष की छाया की भाँति आत्मा से प्राण की अभिव्यक्ति होती है और जैसे सम्राट् विभिन्न स्थानों में अधिकारियों को नियुक्त कर उनके अधिपतिरूप से स्वयं स्थित रहता है, ठीक वैसे ही विभिन्न अङ्गों में अपने ही स्वरूपभूत अन्य प्राणों को नियुक्त कर प्राण स्वयं उनका शासन करता है। साथ ही यह भी कहा गया है कि मरण काल में मनुष्य के संकल्पानुसार प्राण ही जीव को विभिन्न लोक में ले जाता है। प्राण के इस रहस्य को जानकर उसकी उपासना करने वाले ब्रह्मलोक में जाकर क्रममुक्ति को प्राप्त करते हैं।

चतुर्थ प्रश्न में स्वप्नावस्था का वर्णन है। स्वप्न काल में सूर्य की किरणों की भाँति सभी इन्द्रियाँ मन में लीन हो जाती हैं, केवल प्राण जागता रहता है। वहाँ पर प्राण के विभिन्न भेदों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गार्हपत्यादि की कल्पना की गयी है और उसमें अग्निहोत्र की भावना बतलायी गयी है। उस स्वप्नावस्था में पूर्ववासनानुसार मन ही अपनी महिमा का अनुभव करता है। तत्पश्चात् पित्त नामक सौर तेज से अभिभूत हो स्वप्नावस्था से निवृत्त होकर सुषुप्ति में प्रविष्ट हो जाता है। आत्मा का सोपाधिक-रूप द्रष्टा-श्रोता इत्यादि है और निरुपाधिक स्वरूप परब्रह्म से अभिन्न है, उस परब्रह्म को जानकर पुरुष परब्रह्मरूप ही हो जाता है।

पञ्चम प्रश्न में पर और अपर ब्रह्म के प्रतीकरूप से ओंकार का वर्णन किया गया है। अपर-ब्रह्म की उपासना से क्रममुक्ति और परब्रह्म की उपासना से सद्योमुक्ति कही गयी है। साथ ही एक, दो अथवा तीन मात्राओं की उपासना से भिन्न-भिन्न फल की प्राप्ति भी कही गयी है।

अन्तिम षष्ठ प्रश्न में मुक्तावस्था में प्राप्त होने वाले निरुपाधिक ब्रह्म का प्राणादि सोलह कलाओं के आरोप पूर्वक प्रत्यगात्मरूप से प्रतिपादन किया गया है। इस प्रसंग में भगवान् भाष्यकार आचार्य शंकर ने आत्मा के सम्बन्ध में विभिन्न मतावलम्बियों की कल्पनाओं का खण्डन कर वेदान्तमत की स्थापना की है। इस प्रकार परब्रह्म की अपेक्षा अपरब्रह्म के स्वरूप का विवेचन विशेषरूप से इस उपनिषद् में किया गया है जो मन्त्रभाग की मुण्डकोपनिषद् में विशदरूप से बतलाये गये परब्रह्म के तत्त्वज्ञान की योग्यता कराने के लिये है। यही प्रश्नोपनिषद् का संक्षिप्त तात्पर्य है।

* प्रकृत संस्करण की विशेषता *

प्रश्नोपनिषत् शांकरभाष्य आनन्दगिरि टीका सहित कई वार प्रकाशित हो चुकी है, जिनमें आनन्दाश्रम पुणे से प्रकाशित संस्करण सर्वोत्तम माना जाता है; किन्तु उसमें शांकर भाष्य की हिन्दी व्याख्या न होने के कारण सामान्य जिज्ञासुओं के लिए वह प्रकाशन उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ और अब तो आनन्द आश्रम का प्रकाशन भी दुर्लभ हो गया है, ऐसी स्थिति में पाठकों की ओर से बार-बार यह माँग आ रही थी कि अन्य उपनिषदों की भाँति प्रश्नोपनिषत् का भी अभिनव संस्करण कैलास विद्या प्रकाशन की ओर से निकाला जाय। तदनुसार मूल मन्त्र, उसकी हिन्दी विद्यानन्दी मिताक्षरा, शांकरभाष्य, उसकी आनन्दगिरि टीका तथा हिन्दी व्याख्या और कैलास आश्रम की प्राचीनतम गोविन्द प्रसादिनी टिप्पणी के सहित यह अभिनव संस्करण हम पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। इस गौरव पूर्ण कार्य में कैलास आश्रम की प्राचीनतम टिप्पणियों की प्रेस कापी करने तथा भाष्य की हिन्दी व्याख्या करते समय हमारे विचारों को लिपिवद्ध करने में वेदान्ताचार्य श्री ब्रह्मचारी रामानन्द शास्त्री जी ने अक्लान्त परिश्रम किया है। डाँ श्री उमेशानन्द शास्त्री जी ने इसके सम्पादन में सफल प्रयत्न करते हुए अपनी कार्यक्षमता का अपूर्व परिचय दिया है। हम इन सभी महानुभावों की हृदय से मंगल कामना करते हैं। साथ ही पाठकों से यह आशा करते हैं कि प्रश्नोपनिषत् के इस अपूर्व संस्करण को अपनाकर अपने जीवन को सफल बनायें। इत्यों शम्।

भगवत्पादीय
महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि
कैलास आश्रम, ऋषिकेश (उ० प्र०)

महात्मा गान्धी जयन्ती
वि० सं० २०३९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रश्नोपनिषत् विषयानुक्रमणिका

प्रथम प्रश्न

प्रस्तावना भाष्य	१
सुकेशादि ऋषियों का महर्षि पिप्पलाद के पास जाना	२
प्रजा उत्पत्ति के विषय में कबन्धी का प्रश्न	४
प्रजापति से सर्वप्रथम रयि और प्राण की उत्पत्ति	५
सूर्य और चन्द्र में प्राण तथा रयि दृष्टि	६
सम्वत्सरादि में प्रजापति की दृष्टि	९
आदित्य सर्वाधिष्ठान है	१३
मासादियों में प्रजापति आदि की दृष्टि	१५
मासरूप प्रजापति की दिन-रात्रि में समाप्ति	१६
अन्न में प्रजापति दृष्टि	१७
प्रजापति व्रत का फल	१८
उत्तरमार्गगामी की गति	१९

द्वितीय प्रश्न

प्रजा को धारण करने वाले देवगण कौन-कौन हैं	२०
आकाशादि शरीर के आधार हैं	२२
प्राण के प्राधान्य में दृष्टान्त	२३
प्राण सबका आश्रय है	२६
प्राण की स्तुति	२६

तृतीय प्रश्न

प्राण के सर्गादि प्रकार का प्रश्न	३२
महर्षि पिप्पलाद का उत्तर	३३
प्राण की उत्पत्ति	३४
इन्द्रियों का अधिष्ठाता प्राण	३४
पंच प्राण की स्थिति	३५
सूक्ष्म देह की स्थिति	३६
मरणोत्तर प्राणोत्क्रम का प्रकार	३८
अधिदैवत रूप बाह्य प्राणादि का वर्णन	३८
मरणकालिक संकल्प का परिणाम	४१
परमात्मा से प्राण की उत्पत्ति	४३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थ प्रश्न

सुषुप्ति में सोने वाला और जागने वाला कौन है ? ४४
आत्मा ही इन्द्रियों का लय स्थान है ४९
सुषुप्ति काल में जागने वाले प्राणादि गार्हपत्यादि अग्नि तुल्य हैं ५०
प्राणाग्नि के ऋत्विक् ५१
स्वप्नद्रष्टा की महिमा ५३
सुषुप्ति में जीव परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ६५
अक्षर ब्रह्म के ज्ञान का फल ६७

पंचम प्रश्न

ओंकार उपासक किस लोक को प्राप्त करता है ६८
ओंकार उपासना से पर और अपर ब्रह्म की प्राप्ति ७०
एक मात्रा विशिष्ट ओंकार उपासना का फल ७१
द्विमात्रा विशिष्ट ओंकार उपासना का फल ७३
त्रिमात्रा विशिष्ट ओंकार उपासना का फल ७४
ओंकार की तीन मात्राओं का वैशिष्ट्य ७७
ऋगादि वेद तथा ओंकार से प्राप्त होने वाले लोकों का वर्णन ७८

षष्ठ प्रश्न

सोलह कला वाला पुरुष कौन है ८०
षोडशकल पुरुष शरीर में रहता है ८३
ईक्षणपूर्वक जगत् की सृष्टि ९५
सृष्टि का क्रम १०५
समुद्र के समान सम्पूर्ण जगत् का आश्रय परमात्मा है १०७
मरणदुःख की निवृत्ति में ब्रह्मज्ञान का उपयोग ११०
उपसंहार ११०
आचार्य की वन्दना १११

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

प्रश्नोपनिषत्

सटिप्पणटीकाद्वयसंवलितशाङ्करभाष्यसमेता

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः । भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिः । व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

भावः—हे देवताओ ! (आपकी कृपा से) हम कानों के द्वारा कल्याणप्रद शब्दों को सुनें । आँखों से कल्याणप्रद दृश्य देखें । वैदिक यागादिक कर्म में हम समर्थ होवें तथा दृढ़ अवयवों और शरीरों से स्तुति करने वाले हम लोग केवल देवताओं के हित मात्र के लिए जीवन धारण करें । त्रिविध ताप की शान्ति हो ।

मन्त्रोक्तस्यार्थस्य विस्तरानुवादीदं ब्राह्मणमारभ्यते । ऋषिप्रश्नप्रतिवचनाख्या-यिका तु विद्यास्तुतय एवं संवत्सरब्रह्मचर्यसंवासादियुक्तैस्तपोयुक्तैर्ग्राह्या पिप्पलादादि-

---

[1]आथर्वणे ब्रह्मा देवानामित्यादि[2]मन्त्रैरेवाऽऽत्मतत्त्वस्य निर्णीतत्वा[3]त्तत्रैव [4]ब्राह्मणेन तदभिधानं पुनरुक्तमित्याशङ्क्य तस्यैवेह विस्तरेण प्राणोपासनादिसाधनसाहित्येनाभिधानान्न पौनरुक्त्यमिति तद्ब्राह्मणमवतारयति—मन्त्रेति । विस्तरेति । मन्त्रे हि द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा चेत्युक्त्वा तत्रापरर्ग्वेदाद्यभिधेयेत्युक्तम् । सा च विद्या कर्मरूपोपासनारूपा च । तत्र द्वितीया द्वितीयप्रश्नाभ्यां विव्रियते । आद्या कर्मकाण्डे विवृतेति नेह विव्रियते । उभयोः फलं तु ततो वैराग्यार्थं प्रथमप्रश्ने स्पष्टी क्रियते । परविद्या चाथ परा यया तदक्षरमधिगम्यत इत्युपक्रम्य कृत्स्नेन मुण्डकेन प्रतिपादिता ।

प्रस्तावना भाष्य

अथर्व मन्त्रोक्त मुण्डकोपनिषत् अर्थ का विस्तार से अनुवाद करने वाली ब्राह्मण-भागीय (यह प्रश्नोपनिषत्) अब प्रारम्भ की जाती है । प्रश्न और उत्तररूप आख्यायिका ब्रह्मविद्या की स्तुति के लिये है । यह ब्रह्मविद्या आगे बतलाये प्रकार से एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरुकुल में निवास करने वाले एवं तप आदि साधनों से युक्त पुरुषों द्वारा ही ग्रहण करने योग्य है और पिप्पलाद महर्षि

---

१. आथर्वणे—एतदाख्ये वेदे । २. मन्त्रैः—मुण्डकगतैः । ३. तत्रैव—आथर्वणे एव । ४. ब्राह्मणेन—प्रश्नोपनिषद्रूपेण ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्यश्चाऽऽश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥१॥

भरद्वाज का पुत्र सुकेशा शिबि का पुत्र सत्यकाम, सूर्य का पौत्र गर्गगोत्रोत्पन्न गार्ग्य, अश्वल का पुत्र कौसल्य, भृगु गोत्र में उत्पन्न विदर्भ देश का रहने वाला वैदर्भी, कत्य के प्रपोते कवन्धी; ये सब अपर ब्रह्म की उपासना में लगे हुए थे एवं तदनुकूल अनुष्ठान में तत्पर ये सभी ऋषि परब्रह्म का अन्वेषण करते हुए भगवान् पिप्पलाद के पास इस विचार से गये कि ये ऋषि परब्रह्म के विषय में सब कुछ हमें बतला देंगे। सभी ने हाथ में समिधा ली हुई थी अर्थात् विधिवत् ब्रह्मविद्या के लिए गुरु के निकट गए ॥१॥

वत्सर्वज्ञकल्पैराचार्यैर्वक्तव्या च । न सा येन केनचिदिति विद्यां स्तौति । ब्रह्मचर्यादिसाधनसूचनाच्च तत्कर्तव्यता स्यात् । सुकेशा च नामतः । भरद्वाजस्यापत्यं भारद्वाजः । शैब्यश्च शिबेरपत्यं शैब्यः सत्यकामो नामतः । सौर्यायणी सूर्यस्यापत्यं सौर्यस्तस्यापत्यं सौर्यायणिश्छान्दसः सौर्यायणीति । गार्ग्यो गर्गगोत्रोत्पन्नः । कौसल्यश्च नामतोऽश्वलस्यापत्यमाश्वलायनः । भार्गवो भृगोर्गोत्रापत्यं भार्गवः । वैदर्भिर्विदर्भे भवः । कबन्धी

तत्रापि यथा सुदीप्तादित्यादिमन्त्रद्वयोक्तार्थस्य विस्तरार्थं चतुर्थः प्रश्नः । प्रणवो धनुरित्यत्रोक्तप्रणवोपासनविवरणार्थं पञ्चमः प्रश्नः । एतस्माज्जायते प्राण इत्यादिना शेषेण मुण्डकेनोक्तस्यार्थस्य स्पष्टीकरणार्थः षष्ठः प्रश्न इतीदं ब्राह्मणं तद्विस्तरानुवादीत्यर्थः । अतः एव विषयप्रयोजनादिकं तत्रैवोक्तमिति नेह पुनरुच्यत इति बोध्यम् । आख्यायिकाया ब्रह्मचर्यतपआदिसाधनविधानं 'पुराकल्पस्वरूपेण प्रयोजनान्तरं चास्तीत्याह—ब्रह्मचर्यादिसाधनेति । सौर्यायणीति । सौर्यायणिरिति वक्तव्ये दैर्घ्यं

की भाँति सर्वज्ञ तुल्य आचार्यों से ही कही जाने योग्य है, जिस किसी से नहीं। इस प्रकार इस आख्यान द्वारा विद्या की स्तुति करते हैं तथा ब्रह्मचर्यादि साधकों की सूचना द्वारा उनकी कर्तव्यता भी सिद्ध हो जाती है।

सुकेशादि ऋषियों का महर्षि पिप्पलाद के पास जाना

नाम से सुकेशा भरद्वाज का पुत्र भारद्वाज था। शिबि का पुत्र शैब्य जिसका नाम सत्यकाम था। सूर्य के पौत्र होने से सौर्यायणी और गर्ग-गोत्र में उत्पन्न होने से जो गार्ग्य कहलाता था। मन्त्र में सौर्यायणी दीर्घ ईकारान्त छान्दस प्रयोग है। वस्तुतः 'सौर्यायणि' ऐसा ह्रस्वान्त पद साधु है।

---

१. सुकेशा चेति सुकेशश्चेति वक्तव्ये दैर्घ्यं छान्दसं सौर्यायणीतिवदित्यवधेयम् । २. पुराकल्पेति—पुराकल्पो नामार्थवादभेदस्तदुक्तम् "स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प" इत्यर्थवाद इति, गौ. सू. । तत्र परकृतिः पुरुषविशेषनिष्ठतया कथनं (परक्रिया) यथा वपामेवाग्रेऽभिधारयन्तीति । ऐतिह्यमात्रचरिततया कीर्तनं पुराकल्पः । पुराकल्पस्वरूपेणेति—सम्प्रदायपारम्पर्येणेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥२॥

इस प्रकार उन आए हुए ऋषियों से महर्षि पिप्पलाद ने कहा कि तुम तपस्या, इन्द्रिय संयम रूप ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से युक्त हो गुरुशुश्रूषापूर्वक एक वर्ष ठहरो फिर अपनी इच्छानुसार प्रश्न करना। यदि मैं उसे जानता होऊँगा तो तुम्हें सब वतला दूंगा ॥२॥

नामतः। कत्य(त?)स्यापत्यं कात्यायनः। [1]विद्यमानः प्रपितामहो यस्य सः। युवप्रत्ययः, ते हैते ब्रह्मपरा अपरं ब्रह्म परत्वेन गतास्तदनुष्ठाननिष्ठाश्च ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणाः, किं तत्। यन्नित्यं विज्ञेयमिति तत्प्राप्त्यर्थं यथाकामं यतिष्याम इत्येवं तदन्वेषणं कुर्वन्तस्तदधिगमायैष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीत्याचार्यमुपजग्मुः। कथम्। ते ह समित्पाणयः समिद्भारगृहीतहस्ताः सन्तो भगवन्तं पूजावन्तं पिप्पलादमाचार्यमुपसन्ना उपजग्मुः ॥१॥

तानेवमुपगतान्ह स किल ऋषिरुवाच भूयः पुनरेव यद्यपि यूयं पूर्वं तपस्विन

छान्दसमित्यर्थः। युवप्रत्यय इति। कत्य(त)स्य युवापत्ये विवक्षिते फक्प्रत्यये तस्याऽऽयनादेशे च कात्यायन इति सिध्यतीत्यर्थः। ब्रह्मपराणां पुनर्ब्रह्मान्वेषणमयुक्तमित्यत आह—अपरं ब्रह्मेति। नन्वपरब्रह्मान्वेषणेनैव पुरुषार्थसिद्धेः किं परब्रह्मान्वेषणेनेत्याशङ्क्ते—किं तदिति। तस्य [2]कोऽतिशय इत्यर्थः। तस्यानित्यत्वेन तत्प्राप्तेरप्यनित्यहेतुत्वेनापुरुषार्थत्वात्परस्यैव नित्यत्वात्तत्प्राप्तस्तज्ज्ञानमात्रसाध्यत्वेनापि नित्यत्वाच्च तस्यैवान्वेषणीयत्वमिति परस्वरूपकथनेनाऽऽह—यदिति। परब्रह्मान्वेषमाणानां [3]कोऽतिशय इत्यत [4]आह—तत्प्राप्त्यर्थमिति। तत्प्राप्त्यर्थं तदधिगमाय तदन्वेषणं कुर्वन्तो यथाकामं यतिष्याम इत्येवमभिप्रायेणेत्यन्वयः। समिदिति। समिद्ग्रहणं यथायोग्यं (ग्य?)दन्तकाष्ठाद्युपहारोपलक्षणार्थम् ॥१॥

नाम से कौशल्य और अश्वल का पुत्र होने से आश्वलायन कहलाता था। भृगुगोत्र में उत्पन्न होने से भार्गव विदर्भदेशीय वैदर्भि कहा जाता था। नाम से कबन्धी और कत्य का युवापत्य अर्थात् कत्य का प्रपौत्र कात्यायन था। जिसका पितामह जीवित हो उसकी युव संज्ञा होती है। ये सभी अपर ब्रह्म को ही परब्रह्म माने बैठे थे और तदनुकूल अनुष्ठान में तत्पर थे। ऐसे ब्रह्मनिष्ठ ऋषिगण परब्रह्म की खोज करते हुए 'वह तत्त्व क्या है जो नित्य विज्ञेय है, हम उसकी प्राप्ति के लिये ही यथेष्ट प्रयत्न करेंगे' इस प्रकार उस तत्त्व का अन्वेषण करते हुए उसे जानने के लिये आचार्य पिप्पलाद के पास गये, इस विश्वास को लेकर कि ये हमें सब कुछ बतला देंगे। किस प्रकार गये? (इसे वतलाते हैं) समिधा का भार हाथों में लिये पूज्य भगवान् पिप्पलाद के पास वे गये ॥ १ ॥

---

१. "जीवति तु वंश्ये युवे"ति सूत्रादाह—विद्यमान इत्यादि। २. कोऽतिशय इति—अपरस्माद्ब्रह्मण इति भावः। ३. कोऽतिशय इति—अपरब्रह्मान्वेषकेभ्य इति भावः। ४. आहेति—श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठाचार्योपसदनं विशेष इत्याहेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ। भगव-न्कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति। ३॥

एक वर्ष गुरुकुल वास करने के बाद कात्यायन कबन्धी ने पिप्पलाद महर्षि के पास जाकर पूछा—'हे भगवन्! (ब्राह्मणादि) ये सम्पूर्ण प्रजा किससे उत्पन्न होती हैं' ॥३॥

एव तपसेन्द्रियसंयमेन तथाऽपीह विशेषतो ब्रह्मचर्येण श्रद्धया चाऽऽस्तिक्यबुद्ध्याऽऽदरवन्तः संवत्सरं कालं संवत्स्यथ सम्यग्गुरुशुश्रूषापराः सन्तो वत्स्यथ। ततो यथाकामं यो यस्य कामस्तमनतिक्रम्य यथाकामं यद्विषये यस्य जिज्ञासा तद्विषयान्प्रश्नान्पृच्छत। यदि तद्युष्मत्पृष्टं विज्ञास्यामः। अनुद्धतत्वप्रदर्शनार्थो यदिशब्दो नाज्ञानसंशयार्थः प्रश्ननिर्णयादवसीयते। सर्वं ह वो वः पृष्टं वक्ष्याम इति ॥ २॥

अथ संवत्सरादूर्ध्वं कबन्धी कात्यायन उपेत्योपगम्य पप्रच्छ पृष्टवान्। हे भगवन्कुतः कस्माद्ध वा इमा ब्राह्मणाद्याः प्रजाः प्रजायन्त उत्पद्यन्ते। अपरविद्याकर्मणोः समुच्चित-

---

तथाऽपीत्यस्य तपसेत्यतः पूर्वमन्वयः। विशेषत इत्यस्य पूर्वत्राप्यन्वयः। निष्कृष्टमर्थमाह—यद्विषय इति। अज्ञानाद्यर्थत्वाभावे हेतुमाह—प्रश्नेति। अत्रेतिशब्दोऽध्याहार्यः। सर्वप्रश्नानां निर्णयादज्ञानाद्यसंभवादित्यर्थः ॥२॥

परं ब्रह्मान्वेषमाणा इत्युपक्रान्तेऽस्मिन्ब्रह्मप्रकरणे प्रजापतिकर्तृकप्रजासृष्टिविषयप्रश्नप्रत्युक्त्योरसंगतिमाशङ्क्य प्रश्नप्रत्युक्तिरूपायाः श्रुतेस्तात्पर्यमाह—अपरविद्येति। तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोक इति समुच्चितकार्यस्य ब्रह्मलोकस्याथोत्तरेणेति तद्गतेर्देवयानमार्गस्य चेह वक्ष्यमाणत्वादित्यर्थः। इदमुपलक्षणं केवलकर्मणां चेत्यपि द्रष्टव्यम्। केवलकर्मकार्यस्यापि चन्द्रलोकस्य तद्गतेः पितृयाणस्य च 'तेषामेवैष ब्रह्मलोकः' 'प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते' इति वक्ष्यमाणत्वादिति। यद्यपीदमपि परब्रह्मजिज्ञासावसरेऽसंगतमेव तथाऽपि केवलकर्मकार्यात्समुच्चितकर्मकार्याच्च विरक्-

---

इस प्रकार अपने निकट आये उन ऋषियों से पिप्पलाद ऋषि ने कहा कि यद्यपि आप लोग पहले से ही तपस्वी हैं तथापि इन्द्रिय संयमरूप तप, विशेषरूप से ब्रह्मचर्य पालन तथा आस्तिक बुद्धिरूप श्रद्धा से आदर युक्त हो गुरु सेवा में तत्पर रहकर एक वर्ष फिर यहाँ पर निवास करें। तत्पश्चात् जैसी जिसकी इच्छा हो, उसका अतिक्रमण न करते हुए अपने जिज्ञास्य विषय में प्रश्न करना। यदि आपके पूछे हुए विषय को हम जानते होंगे तो आपकी पूछी हुई सभी बातों को अवश्य बतला देंगे। यहाँ पर 'यदि' शब्द अपनी नम्रता प्रकट करने के लिये कहा है, न कि अज्ञान या संशय प्रदर्शन के लिये। ऐसा ही प्रश्न का निर्णय करने से आगे स्पष्ट होता है ॥ २॥

प्रजा उत्पत्ति के विषय में कबन्धी का प्रश्न

एक वर्ष के बाद कबन्धी कात्यायन ने समीप जाकर पूछा—हे भगवन्! ये ब्राह्मणादि प्रजा किससे उत्पन्न होती है? तात्पर्य यह कि अपर ब्रह्म विषयक ज्ञान एवं कर्म के समुच्चय अनुष्ठान से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥४॥

उस कबन्धी (कात्यायन) से उस पिप्पलाद महर्षि ने कहा—प्रसिद्ध है कि प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा वाले प्रजापति ने (पूर्वकल्पीय ज्ञान का स्मरणरूप) तप किया। उसने पूर्वोक्त तप करके सृष्टि के साधनभूत रयि और प्राण रूप जोड़े को उत्पन्न किया। (यह सोचकर कि) ये दोनों ही मेरी नाना प्रकार की प्रजा को उत्पन्न करेंगे ॥४॥

योर्यत्कार्यं या गतिस्तद्वक्तव्यमिति तदर्थोऽयं प्रश्नः ॥ ३ ॥

तस्मा एवं पृष्टवते स होवाच। तदपाकरणायाऽऽह। प्रजाकामः प्रजा आत्मनः सिसृक्षुर्वै प्रजापतिः सर्वात्मा सञ्जगत्स्रक्ष्यामीत्येवं विज्ञानवान्यथोक्तकारी तद्भावभावितः कल्पादौ निर्वृत्तो हिरण्यगर्भः सृज्यमानानां प्रजानां स्थावरजङ्गमानां पतिः सञ्जन्मान्तरभावितं ज्ञानं [1]श्रुतिप्रकाशितार्थविषयं तपोऽन्वालोचयदतप्यत। अथ तु स एवं तपस्तप्त्वा

स्यैव तत्राधिकार इति ततो वैराग्यार्थमिदमुच्यते। यद्यपि मुखतः सृष्टिः प्रतीयते तथाऽपि तदुक्तौ प्रयोजनाभावात्सृष्ट्युक्तिव्याजेन परविद्याफलमेवात्रोच्यत इति भावः। प्रश्न इति प्रतिवचनं चेत्यपि द्रष्टव्यं ताभ्यामेव तदुक्तेरिति ॥३॥

तस्मै स होवाचेति प्रतिज्ञातं विशेषतो दर्शयति—तदपाकरणायेति। आद्यस्य सन्नित्यस्य प्रजाकामः सन्नित्यन्वयः। यथोक्तकारीति। ज्ञानकर्मसमुच्चयकारीत्यर्थः। तद्भावभावित इति। प्रजापतिरहं सर्वात्मेत्युपासनकालीनप्रजापतिभावनायुक्त इत्यर्थः। पूर्वकल्पीयतद्भावभावित एतत्कल्पादौ हिरण्यगर्भात्मना निर्वृत्तः प्रजापतिः सम्पश्चात्प्रजाकामः संस्तपो जन्मान्तरभावितं ज्ञानं श्रुतिप्रकाशितार्थविषयमतप्यतान्वालोचयच्चिन्तादिना तत्संस्कारमुद्बोध्य ज्ञानमुत्पादितवानित्यन्वयः। तत्र प्रथममादित्यचन्द्रोत्पादनेन तद्भावमापद्य पश्चाच्चन्द्रादित्यसाध्यसंवत्सरभावमापद्यैवमेव तदवयवायनद्वयमासपक्षाहोरात्रभावमापद्य ततस्तत्साध्यव्रीह्याद्यन्नभावं रेतोभावं चाऽऽपद्य तेन रेतसा प्रजाः सृजेयमित्येवं निश्चित्य प्रथमं रयिप्राणशब्दितचन्द्रसूर्यद्वन्द्वमुत्पादितवानित्याह—स एवमिति। रयि-

---

जो फल मिलता है और उसकी जो गति है, उसे बतलावें। बस उसी के लिये प्रश्न किया ॥ ३ ॥

प्रजापति से सर्वप्रथम रयि और प्राण की उत्पत्ति

इस प्रकार प्रश्न करने वाले उस कबन्धी से उसकी शंका दूर करने के लिये पिप्पलाद महर्षि ने कहा। अपनी प्रजा रचने की इच्छा वाले प्रजापति ने "मैं सर्वात्मा होकर जगत् की रचना करूँगा" ऐसे विज्ञान से युक्त तदनुरूप जगत् रचना में उपयोगी ज्ञान और कर्म के समुच्चय अनुष्ठान करने वाला पूर्वकल्पीय प्रजापतित्व की भावना से भावित और कल्प के आदि हिरण्यगर्भ रूप से उत्पन्न होकर

---

१. श्रुतिप्रकाशितेति—हिरण्यगर्भस्याहंग्रहोपासनश्रुतिः सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयदित्येवमादिसृष्टिश्रुतिश्च तया प्रकाशितेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एत-त्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥५॥

निश्चय आदित्य ही प्राण (भोक्ता अग्नि) है और रयि ही चन्द्रमा है। यह सब जो स्थूल और सूक्ष्म है, वह मूर्त तथा अमूर्त भोक्ता भोग्य रूप होने पर भी) रयि हो है। अतः मूर्ति ही रयि है ॥५॥

श्रौतं ज्ञानमन्वालोच्य सृष्टिसाधनभूतं मिथुनमुत्पादयते मिथुनं [1]द्वन्द्वमु[2]त्पादितवान्। रयिं च सोममन्नं प्राणं चाग्निमत्तारमेतावग्नीषोमावत्रन्नभूतौ मे मम बहुधाऽनेकधा प्रजाः करिष्यत इत्येवं संचिन्त्याण्डोत्पत्तिक्रमेण सूर्याचन्द्रमसावकल्पयत् ॥ ४ ॥

तत्राऽऽदित्यो ह वै प्राणोऽत्ताग्निः। रयिरेव चन्द्रमाः। रयिरेवान्नं सोम एव।

शब्देन घनवाचिना भोज्यजातं लक्षयित्वा भोज्यस्य सोमकिरणामृतयुक्तत्वात्तद्द्वारा सोमो लक्ष्यत इत्याह—रयिं चेति। एवं प्राणशब्देनापि।

"अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्" ॥

इति स्मृतेरग्नेः प्राणसंबन्धादग्निर्भोक्ता लक्ष्यत इत्याह—प्राणं चेति। अग्नीषोमयोरण्डान्तर्गतत्वेनाण्डोत्पत्त्यनन्तरमुत्पत्तिरित्याशयेनाऽऽह—अण्डोत्पत्तीति। उद्यन्तं वावाऽऽदित्यमग्निरनुसमारोहतीति श्रुतेः सूर्याग्न्योरेकत्वमभिप्रेत्याग्निं सूर्यपदेनाऽऽह—सूर्याचन्द्रमसाविति ॥४॥

रयिप्राणौ श्रुतिः स्वयमेव व्याचष्ट इत्याह—तत्राऽऽदित्य इति। प्रजापतेरेव संवत्सरादिप्रजा-

---

सृज्यमान सम्पूर्ण जड़-चेतन प्रजा का पति होते हुए भी तप किया। यहाँ पर जन्मान्तरीय भावना की। इस श्रुति से प्रकाशित विषय के ज्ञान का स्मरण ही तप है। तत्पश्चात् श्रौत ज्ञान का स्मरणरूप तप करके प्रजापति ने सृष्टि के साधन जोड़े को बनाया। उसने सोमरूप अन्न और प्राण अर्थात् भोक्तारूप अग्नि को यह समझ कर बनाया कि ये भोक्ता और भोग्यरूप अग्नि एवं सोम मेरो नाना प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करेंगे। अण्ड के उत्पत्ति क्रम से सूर्य और चन्द्र को बनाया ॥ ४ ॥

सूर्य और चन्द्र में प्राण तथा रयि दृष्टि

यहाँ पर निःसन्देह आदित्य ही प्राण अर्थात् भोक्तारूप अग्नि है और रयि ही चन्द्रमा है, यही रयि अन्न और सोम है। यहाँ भोक्ता और अन्न एक ही है क्योंकि एक ही प्रजापति ने इस मिथुन रूप को

---

१. "स्त्रीपुंसौ मिथुनं द्वन्द्वमि"त्यमरोक्तेः स्त्रीपुंसयुग्मवाच्येव लोके मिथुनशब्दः प्रकृते तु योग्यतया युग्ममात्रपर इत्याशयेन व्याचष्टे—द्वन्द्वमिति। "द्वन्द्वं व लहयुग्मयोरि"त्यमरः। २. उत्पादितवानिति—सत्यसंकल्पत्वात्संकल्पेनैव न तु रेतसेत्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथाऽऽदित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान्प्राणान्रश्मिषु संनिधत्ते । यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान्प्राणान्रश्मिषु संनिधत्ते ॥६॥

जिस समय उदय होकर सूर्य पूर्व दिशा में प्रवेश करता है, तो उससे वह पूर्व दिशा के प्राणों को (सर्वत्र व्याप्त किरणों में होने के कारण) अपनी किरणों में प्रविष्ट कर लेता है (उन्हें आत्मभूत कर लेता है)। इसी प्रकार जब वह दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे, ऊपर और अवान्तर सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है तो उससे भी वह उन सबके प्राणों को अपनी किरणों में धारण कर लेता है ।६॥

तदेतदेकमत्ता चान्नं च प्रजापतिरेकं तु मिथुनम् । गुणप्रधानकृतो भेदः । कथम् । रयिर्वा अन्नं वा एतत्सर्वं किं तद्यन्मूर्तं च स्थूलं चामूर्तं च सूक्ष्मं च मूर्तामूर्ते अत्त्रन्नरूपे रयिरेव । तस्मात्प्रविभक्तादमूर्ताद्यदन्यन्मूर्तरूपं मूर्तिः सैव रयिरमूर्तेनाद्यमानत्वात् ॥ ५ ॥

तथाऽमूर्तोऽपि प्राणोऽत्ता सर्वमेव यच्चाऽऽद्यम् । कथम्—

अथाऽऽदित्य उदयन्नुद्गच्छन्प्राणिनां चक्षुर्गोचरमागच्छन्यत्प्राचीं दिशं स्वप्रकाशेन

पर्यन्तस्रष्टृत्वं वक्तुं रयिप्राणयोः संवत्सरस्रष्ट्रोः प्रजापत्युपादानत्वात्प्रजापत्यात्मत्वमाह—तदेतदेकमिति । कथमेकस्यात्ताऽन्नं चेति भेद इत्याशङ्क्य तस्यैव गुणभावविवक्षयाऽन्नत्वं प्राधान्यविवक्षया चात्तृत्वमिति भेद इत्याह—गुणेति । रयिप्राणयोः कथं प्रजापत्यात्मत्वमिति शङ्कते—कथमिति । तत्र रयेः सर्वात्मकत्वात्प्रजापतित्वमित्याह—रयिरिति । अमूर्तस्यापि वाय्वादेः [1]केनचिदद्यमानत्वाद्रयित्वमित्यर्थः । ननु मूर्तामूर्तयोरत्त्रन्नयोरुभयोरपि रयित्वेऽन्नमेव रयिरिति कथमुक्तमित्याशङ्क्य मूर्तामूर्तत्वविभागमकृत्वा सर्वस्य गुणभावमात्रविवक्षया सर्वं रयिरित्युच्यते । यदोभे विभज्य गुणप्रधानभावेन विवक्ष्येते तदाऽमूर्तेन प्राणेन मूर्तस्याद्यमानत्वान्मूर्तस्यैव रयित्वमित्याह—तस्मादिति ॥५॥

रयिशब्दितस्यान्नस्य प्रजापतित्वार्थं सर्वात्मत्वमुक्त्वा प्राणस्यापि तदर्थमेव सर्वात्मत्वमुच्यतेऽथाऽऽदित्य इतिवाक्येनेत्याह—तथेत्यादिना । यच्चाऽऽद्यं तदपि प्राणोऽन्नोऽत्ता प्राणोऽपि सर्वमेवेति सर्वात्मक इत्यर्थः । स्वप्रकाशेनेति । [2]स्वकीयप्रकाशेन स्वप्रभयेत्यर्थः । अन्नभूतानिति । यद्यपि प्राणस्या-

---

धारण किया है । इनमें गौण और प्रधान भाव का ही केवल भेद है । कैसे ? (इसे बतलाते हैं—) निःसन्देह यह सब रयिरूप अन्न ही तो है । वह क्या है ? वह जो स्थूल मूर्त एवं सूक्ष्म अमूर्त पदार्थ है। ये भोक्ता-भोग्यरूप होते हुए भी रयि हैं, फिर भी उस विभक्त हुए अमूर्त से भिन्न जो मूर्तरूप है, वही रयिरूप अन्न है क्योंकि वह अमूर्तरूप भोक्ता से भोगा जाता है ॥ ५ ॥

वैसे ही अमूर्त होता हुआ भी प्राण भोक्ता है क्योंकि उससे भिन्न सभी भोग्य हैं, कैसे ?

जब सूर्य उदय होकर ऊपर की ओर जाता हुआ प्राणियों के नेत्रों का विषय होकर अपने

---

१. केनचिदिति—सर्पचकोरादिनेत्यर्थः । २. स्वकीयेति—अनावश्यकैवंविधव्याख्यानोपलम्भादादौ मङ्गलादर्शनादन्ते च नेयमानन्दगिरिकृता टीकेत्यनुमीयते ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्नि-
रुदयते । तदेतदृचाऽभ्युक्तम् ॥७॥

वह यह (भोक्ता) वैश्वानर विश्वरूप (होने के कारण) प्राण और अग्नि रूप ही प्रकट होता है। यही बात मन्त्र द्वारा भी कही गयी है ॥७॥

प्रविशति व्याप्नोति। तेन स्वात्मव्याप्त्या सर्वांस्तत्स्थान्प्राणान्प्राच्यानन्नभूतान्रश्मिषु स्वात्मावभासरूपेषु व्याप्तिमत्सु व्याप्तत्वात्¹प्राणिनः संनिधत्ते संनिवेशयति, आत्मभूतान्करोतीत्यर्थः। तथैव यत्प्रविशति दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीमध ऊर्ध्वं यत्प्रविशति यच्चान्तरा दिशः कोणदिशोऽवान्तरदिशो यच्चान्यत्सर्वं प्रकाशयति तेन स्वप्रकाशव्याप्त्या सर्वान्सर्वदिक्स्थान्प्राणान्रश्मिषु संनिधत्ते ॥ ६ ॥

स एषोऽत्ता प्राणो वैश्वानरः सर्वात्मा विश्वरूपो विश्वात्मत्वाच्च प्राणोऽग्निश्च स एवात्तोदयत उद्गच्छति प्रत्यहं सर्वा दिश आत्मसात्कुर्वन्। तदेतदुक्तं वस्तु ऋचा मन्त्रेणाप्यभ्युक्तम् ॥ ७ ॥

सत्त्वमुक्तं तथाऽपि रयिर्वा एतत्सर्वमित्यत्रामूर्तस्य प्राणस्यापि गुणभावविवक्षयाऽन्नत्वमुक्तमिति तथोक्तम्। स्वात्मावभासरूपेष्विति। स्वात्मप्रभारूपेषु रश्मिष्वित्यर्थः। व्याप्तत्वादिति। संबद्धत्वादित्यर्थः ॥६॥

तस्य प्रत्यक्षत्वमाह—स एष इति। वैश्वानर इति। नरा जीवा विश्वे च ते नराश्च विश्वानराः स एव वैश्वानरः सर्वजीवात्मक इत्यर्थः। विश्वरूपः सर्वप्रपञ्चात्मक इति भेदः। उक्तं वस्त्विति। आदित्यस्योक्तं माहात्म्यमित्यर्थः ॥७॥

प्रकाश से पूर्व दिशा में प्रवेश करता है अर्थात् उसे अपने तेज से व्याप्त कर लेता है और उसके द्वारा अपनी व्याप्ति से उस पूर्वदिशा में स्थित सम्पूर्ण पूर्व दिग्वर्ती प्राणों को सर्वत्र व्याप्त अपने अवभासरूप किरणों में सम्पूर्ण प्राणियों को धारण कर लेता है। इसी को अपने में प्रविष्ट कर लेना कहा गया है। इस प्रकार उन सभी प्राणों को सूर्य आत्मभूत कर लेता है; यह इसका भावार्थ है। वैसे ही जब वह आदित्य दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, नीचे और ऊपर की ओर प्रवेश करता है या कोणस्थ जो अवान्तर दिशाएं हैं, उन्हें अथवा अन्य सबको प्रकाशित करता है तो वह अपने प्रकाश की व्याप्ति से सम्पूर्ण दिग्वर्ती प्राणों को अपनी किरणों में धारण कर लेता है ॥ ६ ॥

वह यह भोक्ता प्राण समष्टि जीवरूप वैश्वानर, सर्वात्मा और सर्वरूप है एवं सर्वमय होने के कारण-ही वह प्राण और अग्निरूप है। वही भोक्ता सभी दिशाओं को आत्मसात् करता हुआ ऊपर की ओर जाता है। यह उपर्युक्त बात ही मन्त्र द्वारा भी कही गयी है ॥ ७ ॥

---

१. प्राणिपरो लक्षणया प्राणशब्द इत्याशयेन प्राणानित्यस्यार्थमाह—प्राणिन इति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योति-
रेकं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥८॥

सर्वरूप, किरण वाला, ज्ञान से सम्पन्न सम्पूर्ण प्राणों का आश्रय, ज्योति स्वरूप, अद्वितीय और तपते हुए सूर्य को (ब्रह्मवेत्ताओं ने अपने आत्म स्वरूप से जाना है)। यह सूर्य अनेकों किरणों वाला, अनेकों प्रकार से वर्तमान तथा प्रजाओं के प्राणरूप से उदित होता है ॥८॥

विश्वरूपं सर्वरूपं हरिणं [१]रश्मिवन्तं जातवेदसं जातप्रज्ञानं परायणं सर्वप्राणाश्रयं ज्योतिरेकं सर्वप्राणिनां चक्षुर्भूतमद्वितीयं तपन्तं तापक्रियां कुर्वाणं [२]स्वात्मानं सूर्यं सूरयो विज्ञातवन्तो ब्रह्मविदः । कोऽसौ यं विज्ञातवन्तः । सहस्ररश्मिरनेकरश्मिः शतधाऽनेकधा प्राणिभेदेन वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥

यश्चासौ चन्द्रमा मूर्तिरन्नममूर्तिश्च प्राणोऽत्ताऽऽदित्यस्तदेकमेतन्मिथुनं सर्वं कथं प्रजा करिष्यत इति, उच्यते—

विश्वरूपमित्यादिद्वितीयान्तानां सहस्ररश्मिरित्यादिप्रथमान्तानां सामानाधिकरण्येनान्वयायोगादध्याहारं कृत्वा वाक्यभेदेन व्याचष्टे—स्वात्मानमित्यादिना ॥८॥

स मिथुनमुत्पादयत इत्युपक्रान्तं मिथुनमुपसंहरति—यश्चासाविति । यश्चासौ चन्द्रमा यश्चामूर्तः(र्तिः) प्राणस्तदेकं मिथुनं सर्वं सर्वात्मकमित्यन्वयः । एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इत्युक्तं तत्केन प्रकारेणेति पृच्छति—कथमिति । रयिप्राणयोः संवत्सरादिद्वारा प्रजास्रष्टृत्वमित्याह— उच्यत इति । तदेव मिथुनमेव संवत्सरः कालः । स च प्रजापतिः प्रजापत्यात्मकमिथुननिर्वर्त्यत्वा-

---

सर्वरूप, किरणों वाला, ज्ञानवान्, सम्पूर्ण, प्राणों के आश्रय सभी प्राणियों के नेत्र स्वरूप एकमात्र अद्वितीय एवं तपन क्रिया करते हुए सूर्य को ब्रह्मज्ञानियों ने अपने आत्मरूप से जाना है, जिसे इस प्रकार जाना है। वह कौन है? (इसे बतलाते हैं) अनेकों किरणों वाला, सैकड़ों अर्थात् अनेकों प्रकार के प्राणी भेद से वर्तमान तथा प्रजाओं का प्राणस्वरूप सूर्य उदय होता है (वही तो यह है) ॥ ८ ॥

संवत्सरादि में प्रजापति की दृष्टि

वह जो चन्द्रमा मूर्तरूप अन्न और अमूर्तरूप प्राण भोक्ता स्वरूप आदित्य है, वह एक ही मिथुन स्वरूप है फिर वह किस प्रकार प्रजा को उत्पन्न करेगा? इस पर कहते हैं, वह मिथुन ही

---

१. निघण्टौ रश्मिपर्यायेषु हरिशब्दपाठादाह—रश्मिवन्तमिति । पामादिलक्षणो नः । २. स्वात्मानमिति— योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मीत्यादिश्रुतिस्थ्य इति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च। तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते। ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते। त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ॥९॥

सम्वत्सर रूप काल ही प्रजापति है, उसके दक्षिण और उत्तर (छः-छः मास वाले प्रसिद्ध) दो अयन हैं। जो लोग इष्टापूर्त रूप केवल कर्म मार्ग का अवलम्बन करते हैं, वे (मिथुनात्मक प्रजापति के अंश अन्न रूप) चन्द्रलोक पर ही विजय पाते हैं और वे ही पुन-पुनः (उत्तमाधम योनियों में) आवागमन को प्राप्त होते हैं। अतः ये प्रजा चाहने वाले गृहस्थ ऋषि लोग दक्षिण-मार्गोपलक्षित चन्द्रमा को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जो पितृयाण है, वही रयि है ॥९॥

तदेव कालः संवत्सरो वै प्रजापतिस्तन्निर्वर्त्यत्वात्संवत्सरस्य। चन्द्रादित्यनिर्वर्त्यतिथ्यहोरात्रसमुदायो हि संवत्सरस्तदनन्यत्वाद्रयिप्राणमिथुनात्मक एवेत्युच्यते, तत्कथम्, तस्य संवत्सरस्य प्रजापतेरयने मार्गौ द्वौ दक्षिणं चोत्तरं च। द्वे प्रसिद्धे ह्ययने षण्मासलक्षणे याम्यां [1]दक्षिणेनोत्तरेण च याति सविता केवलकर्मिणां ज्ञानसंयुक्तकर्मवतां च

दित्याह—तन्निर्वर्त्यत्वादिति। तदुपपादयति—चन्द्रेति। चन्द्रनिर्वर्त्यास्तिथय आदित्यनिर्वर्त्यान्य[2]होरात्राणीति विभागः। तन्निर्वर्त्यत्वेऽपि कालस्य कथं तदात्मकतेत्याशङ्क्य कार्यकारणयोरभेदादित्याह—तदनन्यत्वादिति। न केवलं तिथ्यादिद्वारा चन्द्रादिनिर्वर्त्यत्वं संवत्सरस्य किं त्वयनद्वयद्वाराऽपीति वक्तुं तस्यायने इत्यादिवाक्यं तत्प्रश्नपूर्वकं व्याचष्टे—तत्कथमिति। चन्द्रादित्यनिर्वर्त्यत्वं कुतो हेत्वन्तरादित्यर्थः। केवलकर्मिणां लोकान्विदधद्दक्षिणेन याति। ज्ञानयुक्तकर्मवतां लोकान्विदधदुत्तरेण यातीत्यन्वयः। सवितेत्युपलक्षणं चन्द्रस्यापि। ज्येष्ठादिर्दक्षिणायनं मार्गशीर्षादिरुत्तरायणमिति श्रुतिषु

सम्वत्सररूप काल है और वही प्रजापति है क्योंकि उस मिथुन से ही सम्वत्सर निष्पन्न होता है। चन्द्रमा और सूर्य से निष्पन्न होने वाले तिथिरूप दिन-रात्रि के समुदाय का नाम ही तो सम्वत्सर है। अतः सम्वत्सर रयि और प्राण से अभिन्न होने के कारण मिथुनरूप हो है, ऐसा कहा गया है। वह कैसे? उस सम्वत्सर नामक प्रजापति के दक्षिण और उत्तर ये दो मार्ग हैं। छः-छः मास की अवधि वाले ये दोनों ही अयन प्रसिद्ध हैं, जिनके द्वारा केवल कर्मी और ज्ञान संयुक्त कर्मी पुरुषों के लोकों का विधान करता हुआ दक्षिण एवं उत्तर मार्ग से जाता है। वह किस प्रकार? इस पर कहते हैं—उन

---

१. दक्षिणेनेति—एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्या इत्येनबन्तमेतद्दक्षिणस्यां दिशीत्यर्थः। एवमुत्तरेणेत्येतदपि तथेति बोध्यम्। २. *होरात्राणीत्यत्र "रात्राह्नाहाः पुंसि" इति लाघवम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकान्विदधत् कथं, तत् तत्र च ब्राह्मणादिषु ये ह वै तदुपासत इति क्रियाविशेषणो द्वितीयस्तच्छब्दः। इष्टं च पूर्तं चेष्टापूर्ते इत्यादि कृतमेवोपासते नाकृतं नित्यं ते चान्द्रमसं चन्द्रमसि भवं प्रजापतेर्मिथुनात्मकस्यांशं रयिमन्नभूतं लोकमभिजयन्ते कृतरूपत्वाच्चान्द्रमसस्य ते तत्रैव च कृतक्षयात्पुनरावर्तन्त इमं लोकं हीनतरं वा विशन्तीति ह्युक्तम्। यस्मादेवं प्रजापतिमन्नात्मकं फलत्वेनाभिनिर्वर्तयन्ति चन्द्रमिष्टापूर्तकर्मणैत ऋषयः स्वर्गद्रष्टारः प्रजाकामाः प्रजार्थिनो गृहस्थास्तस्मात्स्वकृतमेव दक्षिणं दक्षिणायनोपलक्षितं चन्द्रं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयिरन्नं यः पितृयाणः पितृयाणोपलक्षितश्चन्द्रः ॥९॥

प्रसिद्धेः, ततश्च 'कर्मिणां लोकान्विधातु' तयोर्दक्षिणोत्तराभ्यां मार्गाभ्यां गमनात्तन्निमित्तत्वाच्चायनद्वयप्रसिद्धेस्तन्निर्वर्त्यत्वं तयोरयनयोरिति तद्द्वारा संवत्सरस्यापि तन्निर्वर्त्यत्वमित्यर्थः। चन्द्रादित्ययोः कथं लोकविधायकत्वमिति पृच्छति—कथमिति। चन्द्रादित्यनिर्वर्त्यदक्षिणोत्तरायणद्वारा लोकप्राप्तेः प्राप्यस्य लोकस्यापि चन्द्रादित्यात्मकत्वाच्च तयोस्तद्विधायकत्वमिति तद्ये ह वा इत्यादिवाक्येन परिहरति—तत्त्रेति। इष्टं चेति।

"अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्।
आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते॥
वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च।
अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते"

इति तयोर्भेदः। कृतमित्युपासत इति कृतशब्दोपरितनमितिशब्दमिष्टापूर्ते इति पूर्तशब्दोपर्याकृष्याऽऽदिशब्दपर्यायतया व्याचष्टे—इत्यादीति। 'दत्तमादिशब्दार्थः। कृतमेवोपासते कार्यमेवानुतिष्ठन्तीत्यर्थः। इदं च विशेषणं पुनरावृत्तौ हेतुतयोक्तम्। कृतरूपे'ष्टचादिजन्यत्वाच्चन्द्रस्यापि कृतत्वेनानित्यत्वात्पुनरावृत्तिरित्याह—कृतरूपत्वादिति। पुनरावृत्तौ मन्त्रवाक्यं प्रमाणयति—इमं लोकमिति ॥९॥

ब्राह्मणादि में जो ऋषिगण निश्चयपूर्वक इष्ट और पूर्त कर्म की ही उपासना करते हैं; नित्य की नहीं, वे सदा चन्द्रमा में होने वाले मिथुनात्मक प्रजापति के अंशभूत रयिलोक पर ही विजय करते हैं क्योंकि चन्द्रलोक कृति साध्य है। श्रुति में ('तदिष्टापूर्ते' यहाँ पर, दूसरा तच्छब्द क्रिया विशेषण है, (जिसका सम्बन्ध 'उपासते' क्रिया के साथ है) वहाँ पर अपने कर्म के क्षय होने पर पुनः वे लौट आते हैं, ऐसा ही "इस मनुष्य लोक अथवा इससे भी अत्यन्त निकृष्ट तिर्यगादि लोक में प्रविष्ट करते हैं" इस मुण्डक श्रुति में भी कहा गया है। जबकि ऐसी बात है, इसीलिये सन्तानार्थी स्वर्गद्रष्टा गृहस्थ, ऋषिगण, इष्ट और पूर्त कर्म द्वारा उनके फल स्वरूप अन्नात्मक प्रजापति रूप चन्द्रलोक का ही सम्पादन करते हैं। इसीलिये वे अपने कर्मों द्वारा उपार्जित दक्षिणायन मार्ग से ही चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं। यह जो पितृयाण से उपलक्षित चन्द्रलोक है, निःसन्देह वह रयिरूप अन्न ही है ॥ ९ ॥

---

१. इष्टापूर्ते इति—अन्येषामपि दृश्यत इति पूर्वपदस्य दीर्घः। २. कर्मिणामिति—केवलकर्मिणां ज्ञानकर्मवतां चेत्यर्थः। ३. दत्तमिति—"शरणागतसंत्राणं भूतानां चाप्यहिंसनम्। बहिर्वेदि च यद्दानं दत्तमित्यभिधीयते"॥
४. इष्टचादीत्यत्रेष्टादीति प्राकरणिकः पाठः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्याऽऽदित्यमभिजयन्ते । एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥१०॥

तथा इन्द्रिय संयमरूप तप, दृढ़ ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और प्रजापति तादात्म्यरूप विद्या द्वारा आत्मा को खोज कर उत्तरायण से सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं। निश्चय यही सम्पूर्ण प्राणों का सामान्य आयतन है, वही अमृत है, यही भय रहित है और यही समुच्चय अनुष्ठान करने वालों की परागति है, इससे फिर लौटते नहीं। अतः अविद्वानों के लिए यह निरोध स्थान है। (क्योंकि वे आदित्यमण्डल को भेद कर ऊपर नहीं जा सकते) इस विषय में अग्रिम मन्त्र प्रसिद्ध है ॥१०॥

अथोत्तरेणायनेन प्रजापतेरंशं प्राणमत्तारमादित्यमभिजयन्ते। केन। तपसेन्द्रियजयेन विशेषतो ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्यया च प्रजापत्यात्मविषययाऽऽत्मानं प्राणं सूर्यं [1]जगतस्तस्थुषश्चान्विष्याहमस्मीति विदित्वाऽऽदित्यमभिजयन्तेऽभिप्राप्नुवन्ति। एतद्वा आयतनं सर्वप्राणानां सामान्यमायतनमाश्रयमे(ए)तदमृतमविनाशि, अभयमत एव भयवर्जितं न चन्द्रवत्क्षयवृद्धिभयवदेतत्परायणं परा गतिर्विद्यावतां कर्मिणां च ज्ञानवतामेतस्मान्न पुनरावर्तन्ते यथेतरे केवलकर्मिण इति यस्मादेषोऽविदुषां निरोध आदित्याद्धि

अथेति। मार्गान्तरारम्भार्थोऽथशब्दः। प्रजापत्यात्मविषययेति। तत्तादात्म्यविषययेत्यर्थः। आदित्यमभिजयन्त इति पूर्वमन्वयार्थमुक्तमिदानीं व्याख्यानार्थमिति द्रष्टव्यम्। सामान्यमिति। समष्टिरूपमित्यर्थः। विद्यावतामिति। कर्मानधिकारिणामत एव केवलोपासनवतामित्यर्थः। कर्मिणां च ज्ञानवतामिति। समुच्चयवतामित्यर्थः। ननु केवलकर्मिणामप्यादित्यप्राप्तावपुनरावृत्तिर्भविष्यतीत्याशङ्क्य तेषामादित्यप्राप्तिरेव नास्तीति वक्तुमित्येष इति वाक्यं व्याचष्टे—इति यस्मादिति। तस्मा-

---

वैसे ही वे उत्तरायण द्वारा प्रजापति के अंश भोक्तारूप प्राण अर्थात् आदित्य को प्राप्त होते हैं। किस साधन से ? इसे बतलाते हैं, इन्द्रिय विजयरूप तप से विशेषतः ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और प्रजापति के साथ तादात्म्य विषयक उपासना से आदित्य लोक पर विजय प्राप्त करते हैं। स्थावर-जंगम जगत् के प्राण सूर्य से अपने को अनुसन्धान कर जिसने यह समझ लिया है कि मैं सूर्य हूँ, वे इस उपासना के फलस्वरूप आदित्य को प्राप्त कर लेते हैं। निःसन्देह सम्पूर्ण प्राणों का सामान्य आश्रय यही है, यह अविनाशी है अतएव भय रहित है, चन्द्रमा के समान क्षय और वृद्धिरूप भय से युक्त नहीं है एवं उपासकों की और उपासना सहित कर्मानुष्ठान करने वालों की परा गति है। इस पद को प्राप्त कर लेने के पश्चात् दूसरे केवल कर्म परायण लोगों के समान फिर ये संसार में नहीं लौटते क्योंकि यह लोक विद्वानों के लिये निरोध है। उपासनाहीन पुरुष आदित्य मण्डल को भेद कर इस लोक में

---

१. जगतस्तस्थुषश्च जङ्गमस्य स्थावरस्य च प्राणं सूर्यमित्यन्वयः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् । अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥११॥

काल के रहस्य जानने वाले अन्य विद्वान् इस आदित्य को पाँच (ऋतु रूप) पैरों वाला सबका पिता, बारह मास रूप आकृतियों वाला पुरीषी (जल वाला) और द्युलोक से ऊपर स्वर्गलोक में स्थित बतलाते हैं। तथा ये अन्य कालज्ञ पुरुष उसीको सर्वज्ञ एवं सात चक्र और उसी छः ऋतु रूप अरे वाले में इस जगत् को विशिष्ट बतलाते हैं ॥११॥

निरुद्धा अविद्वांसो नैते संवत्सरमादित्यमात्मानं प्राणमभिप्राप्नुवन्ति। स हि संवत्सरः कालात्माऽविदुषां निरोधः। तत्तत्रास्मिन्नर्थ एष श्लोको मन्त्रः ॥ १० ॥

पञ्चपादं पञ्चर्तवः पादा इवास्य संवत्सरात्मन आदित्यस्य तैरसौ पादैरिवर्तुभिरावर्तते। हेमन्तशिशिरावेकीकृत्येयं कल्पना। पितरं सर्वस्य जनयितृत्वात्पितृत्वं तस्य, तं

त्तेषामादित्यप्राप्तिरनाशङ्क्येति शेषः (१०)। यद्वा तस्यायने इत्यारभ्येत्येष निरोध इत्यन्तं श्रुतिवाक्यमयनयो रयिप्राणरूपत्वप्रतिपादनपरतया व्याख्येयम्। तथा हि। संवत्सरस्य रयिप्राणमिथुननिर्वर्त्यत्वे रयिप्राणरूपत्वं च वक्तव्यं तत्कथमिति पृच्छति—तत्कथमिति। तत्रायनयोरयनयोस्तद्रूपत्वं वक्तुं तयोः प्रथमं प्रसिद्धिमाह—तस्येति। प्रसिद्धिमेवाऽऽह—यास्यामिति। एवमपि कथं तयोस्तदात्मकत्वमित्याह—कथमिति। दक्षिणायनस्य रयित्वं वक्तुं कर्मिणां रयिरूपचन्द्रनिर्वर्तकत्वमाह—तत्तत्रेति। लोकमिति। सोमरूपं शरीरमित्यर्थः। तस्य कर्मकृतत्वं पुनरावृत्त्या साधयति—कृतरूपत्वादिति। रयिरूपचन्द्रस्य दक्षिणायनद्वारा प्राप्यत्वात्तस्यायनस्य तदन्तर्भाव इति वक्तुं तस्य कर्मिभिः प्राप्यत्वमाह—यस्मादिति। एवं च तस्य रयित्वं सिद्धमित्याह—एष इति। पितृयाणोपलक्षित इति। तत्प्राप्य इत्यर्थः। ततश्च तद्विशेषणस्यायनस्यापि रयित्वमित्यर्थः (९)। इदानीमुत्तरायणस्य प्राणत्वमाह—अथेति। प्राणरूपादित्यप्रापकत्वादुत्तरायणस्य तस्यापि प्राणत्वमिति संवत्सरस्य रयिप्राणमिथुनात्मकत्वमिति तत्कार्यत्वं युक्तमिति भावः। अस्य कर्मसाध्यचन्द्रवैलक्षण्यमाह—एतद्वा इति। इतरत्सर्वं समानम्। अस्मिन्नर्थं इति। संवत्सरस्वरूप इत्यर्थः ॥१०॥

इयं कल्पनेति। पञ्चधा कल्पनेत्यर्थः। जनयितृत्वादिति। संवत्सरात्मककालस्य सर्व-

---

नहीं जा सकते। ऐसे पुरुष आदित्यरूप सम्वत्सर अर्थात् अपने आत्मस्वरूप प्राण को नहीं प्राप्त करते हैं क्योंकि वह कालरूप सम्वत्सर उपासनाहीन पुरुषों के लिये निरोध स्थान है। इसीलिये इस विषय में यह मन्त्र प्रसिद्ध है ॥ १० ॥

आदित्य सर्वाधिष्ठान है

इस सम्वत्सररूप आदित्य के पाँच ऋतुएँ चरण के समान हैं, इसीलिये ये पाद कहे गये हैं क्योंकि चरणों की भाँति उन ऋतुओं से ही यह घूमता है। हेमन्त और शिशिर को एक मानकर यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वादशाकृतिं द्वादश मासा आकृतयोऽवयवा आकरणं वाऽवयवविकरणमस्य द्वादशमासैस्तं द्वादशाकृतिं दिवो द्युलोकात्पर ऊर्ध्वेऽर्धे स्थाने तृतीयस्यां दिवीत्यर्थः। पुरीषिणं पुरीषवन्तमुदकवन्तमाहुः कालविदः। अथ तमेवान्य इमं उ परे कालविदो विचक्षणं निपुणं सर्वज्ञं सप्तचक्रे सप्तहयरूपेण चक्रे 'सततं गतिमति कालात्मनि षडरे षड्तुमत्याहुः सर्वमिदं जगत्कथयन्ति। अर्पितमरा इव रथनाभौ निविष्टमिति। यदि पञ्चपादो द्वादशाकृतिर्यद्वि वा सप्तचक्रः षडरः सर्वथाऽपि संवत्सरः कालात्मा प्रजापतिश्चन्द्रादित्यलक्षणोऽपि जगतः कारणम् ॥ ११ ॥

जनकत्वादित्यर्थः। समानाधिकरणबहुव्रीहितया व्याख्याय व्यधिकरणबहुव्रीहिर्वेत्याह—आकरणं वेति। अवयविकरणमिति। अवयवित्वेन करणमित्यर्थः। पक्षद्वयेऽप्येक एवार्थः। द्युलोकादिति। आकाशरूपादन्तरिक्षलोकादित्यर्थः। अन्यथा स्वर्गलोकात्परस्य चतुर्थत्वेन तृतीयस्यामित्यनन्वयापत्तेः। उदकवन्तमिति। आदित्याज्जायते वृष्टिरिति स्मृतेरित्यर्थः। 'अन्य इत्यस्य पूर्वार्धगतेनाऽऽहुरित्यनेन संबन्धः। उ इति तुशब्दसमानार्थो निपातः। परे तु तमेव विचक्षणमाहुरित्यन्वयः। किमाहुरित्यत आह—सप्तचक्र इति। तस्मिन्विचक्षणे सप्तचक्राद्यात्मके सर्वमिदं जगदर्पितमित्याहुरित्यर्थः। मतद्वयेऽपि कीदृशोऽर्थभेद इत्यत आह—यदीति। पूर्वमत ऋतूनां पादत्वकल्पनया मासानामवयवत्वकल्पनयाऽऽदित्यात्मना संवत्सरः काल एवोक्तः। द्वितीये तु हेमन्तशिशिरौ पृथक्कृत्य षण्णामृतूनामरत्वकल्पनया संवत्सरस्य परिवर्तनगुणयोगेन चक्रत्वकल्पनया कालप्राधान्येन सर्वाश्रयत्वेन च स एवोक्तः। पक्षद्वयेऽपि गुणभेदेन कल्पनाभेदेन च भेदो न धर्मिभेद इत्यर्थः॥११॥

कल्पना की गयी है। सबका उत्पादक होने के कारण इसमें पितृत्व है। इसीलिये इसे पिता कहते हैं। बारह महीने उसकी आकृतियाँ अवयव अथवा आकार हैं या यों समझो कि बारह महीनों द्वारा ही उसका विभाग किया जाता है। इसीलिये उसे द्वादशाकृति कहते हैं और अन्तरिक्ष से ऊपर के स्थानरूप तीसरे स्वर्गलोक में स्थित है। कालज्ञ पुरुष उसे जल वाला कहते हैं, उसी को निपुण अन्य कालवेत्ता पुरुष सर्वज्ञ कहते हैं तथा सात अश्वरूप, सात चक्र और षट् ऋतुरूप छः अरों वाले निरन्तर गतिशील उस कालात्मा में ही रथ की नाभि में जुड़े अरों की भाँति इस सम्पूर्ण जगत् को निविष्ट बतलाते हैं।

यदि पंचपाद और द्वादश आकृतियों वाला है अथवा सप्तचक्र छः अरों वाला है; सभी प्रकार चन्द्रमा और सूर्यरूप से ही कालस्वरूप सम्वत्सर प्रजापति सम्पूर्ण जगत् का कारण है॥ ११ ॥

---

१. (निघण्टौ) निरुक्ते पुरीषशब्दस्योदकनामसु पाठाद्व्याचष्टे—उदकवन्तमिति। २. कालविद इति—कालात्मप्रजापत्युपासका इत्यर्थः। ३. सततं गतिमतीति—सातत्यं चक्रात् गतिश्च सप्ततः निरुक्ते सप्तत्वेनापि सप्तव्याख्यानदर्शनादेवं सप्तहयरूपेण चक्रे इत्यधिकं प्रक्षिप्तं भाति, सूर्यात्मना वा हयसम्बन्धसंभवः। ४. अन्य इत्यस्येत्यादि—तथा च अथेमे परे त्विति परत्वेनोच्यमानेभ्योऽन्ये कालविदः पञ्चपादमित्येवमादिरूपेणाहुः। अथेमे परे तु विचक्षणमित्येवमादिरूपेणाहुरित्यन्वय इति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥१२॥

मास ही पूर्वोक्त प्रजापति है, उस मास रूप प्रजापति का कृष्ण पक्ष ही रयि है, शुक्ल पक्ष प्राण है। इसलिये ये प्राण उपासक ऋषिगण शुक्ल पक्ष में यज्ञ किया करते हैं, अर्थात् कृष्ण पक्ष को भी वे शुक्ल पक्ष समझते हैं तथा दूसरे ऋषि (शुक्ल पक्ष में) यज्ञ करते हुए भी कृष्ण पक्ष में यज्ञ करते हैं ॥१२॥

यस्मिन्निदं श्रितं विश्वं स एव प्रजापतिः संवत्सराख्यः [1]स्वावयवे मासे [2]कृत्स्नः परिसमाप्यते। मासो वै प्रजापतिर्यथोक्तलक्षण एव मिथुनात्मकस्तस्य मासात्मनः प्रजापतेरेको भागः कृष्णपक्षो रयिरन्नं चन्द्रमाः अपरो भागः शुक्लः शुक्लपक्षः प्राण आदित्योऽत्ताऽग्निर्यस्माच्छुक्लपक्षात्मानं प्राणं सर्वमेव पश्यन्ति तस्मात्प्राणदर्शिन एत ऋषयः कृष्णपक्षेऽपीष्टं यागं कुर्वन्तः [3]शुक्लपक्ष एव कुर्वन्ति प्राणव्यतिरेकेण कृष्णपक्ष-

---

कारणत्वे श्लोकोक्तं जगदाश्रयत्वं हेतुमाह—यस्मिन्निति। संवत्सरस्यापि मासाहोरात्ररूप-व्यतिरेकेणौषध्यादिजनकत्वाभावात्तस्य मासाद्यात्मकत्वमाह—स एवेति। यथोक्तेति। संवत्सररूपो रयिप्राणमिथुनात्मक इत्यर्थः। शुक्लकृष्णयोरुभयोरपि दर्शपूर्णमासादिकर्मानुष्ठानदर्शनात्तस्मादेत ऋषय इत्यादि वाक्यमनुपपन्नमित्याशङ्क्य शुक्लस्य प्राणात्मत्वज्ञानस्तुतिपरतया व्याचष्टे—यस्मादिति। यस्मात्प्राणं सर्वमेव सर्वात्मकमेव पश्यन्ति यस्माच्च प्राणव्यतिरेकेण कृष्णपक्षस्तैर्न दृश्यते तस्मादित्य-न्वयः। प्राणस्य शुक्लपक्षात्मकत्वात्कृष्णपक्षादिसर्वजगतः प्राणात्मत्वात्प्राणद्वारा कृष्णपक्षस्यापि शुक्लपक्षत्वे सति कृष्णे कुर्वन्तोऽपि प्रकाशात्मके शुक्ल एव कुर्वन्तीति शुक्लपक्षे प्राणत्वज्ञानस्य [4]स्तुति-

---

मासादियों में प्रजापति आदि की दृष्टि

जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् आश्रित है, वही सम्वत्सर नामक प्रजापति अपने अवयवरूप मास में पूर्ण रूपेण परिसमाप्त हो जाता है। निःसन्देह पूर्वोक्त लक्षण युक्त मिथुनात्मक प्रजापति मास ही तो है; उस मास स्वरूप प्रजापति का एकभाग कृष्णपक्ष रयिरूप अन्न अर्थात् चन्द्रमा है और दूसरा भाग शुक्लपक्ष प्राणरूप भोक्ता अग्नि स्वरूप आदित्य है क्योंकि वे शुक्लपक्षरूप प्राण को सर्वात्मा के रूप में देखते हैं, उन्हें कृष्णपक्ष भी प्राण से भिन्न नहीं दीखता है। इसीलिये ऐसे प्राण उपासक ऋषि लोग कृष्ण पक्ष में भी (उसे शुक्लपक्ष मानकर ही) अपना इष्ट याग करते हैं किन्तु जो दूसरे ऋषि प्राण

---

१. स्वावयव इत्यादि—न खलु स्वोदबिन्दौ न परिसमाप्यते कृत्स्ना गङ्गा कथमन्यथा तन्मात्रमाचम्यापि पूयेत हीति भावः। २. कृत्स्नः परिसमाप्यत इति—यथा गङ्गाया एकस्मिन्नपि बिन्दावयवे गङ्गात्वं तथा प्रजापत्य-वयवेऽपि प्रजापतित्वमिति यावत्। ३. शुक्लपक्ष एव कुर्वन्तीति—तथा च शुक्लमार्गगामिनस्ते भवन्ति समुच्चयकारित्वात्तेषामिति भावः। ४. स्तुतिरिति—सा च ज्ञानकर्मसमुच्चयानुष्ठानविधानायेत्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥१३॥

निश्चय ही दिन-रात भी प्रजापति है, उनमें दिन ही प्राण है और रात्रि ही रति है। जो लोग (मूर्खतावश) दिन में रति स्वरूपा स्त्री से संयुक्त होते हैं वे निश्चय ही प्राण की हानि करते हैं तथा जो ऋतु काल में रात्रि के समय रति से संयुक्त होते हैं वह उनका ब्रह्मचर्य ही है। (अतः प्रशस्त होने के कारण ऋतु काल में ही रात्रि के समय स्त्री गमन का प्रासंगिक विधान है) ॥१३॥

स्तैर्न दृश्यते यस्मादितरे तु प्राणं न पश्यन्तीत्यदर्शनलक्षणं कृष्णात्मानमेव पश्यन्ति। इतर इतरस्मिन्कृष्णपक्ष एव कुर्वन्ति शुक्ले कुर्वन्तोऽपि ॥ १२॥

सोऽपि मासात्मा प्रजापतिः स्वावयवेऽहोरात्रे परिसमाप्यते पूर्ववत्। तस्याप्यहरेव प्राणोऽत्ताऽग्नी रात्रिरेव रयिः पूर्ववत्, प्राणमहरात्मानं वा एते प्रस्कन्दन्ति [1]निर्गमयन्ति शोषयन्ति वा स्वात्मनो विच्छिद्यापनयन्ति। के। ये दिवाऽहनि रत्या रति-

---

रित्यर्थः। एतत्स्तुत्यर्थमेव ज्ञानरहितान्निन्दति—इतरे त्विति। ये तु सर्वात्मानं प्राणं न पश्यन्त्यज्ञत्वात्तेषां शुक्लपक्षः प्राणत्वेनाज्ञायमानत्वादज्ञानात्मकः सन्कृष्णपक्षत्वमापद्यतेऽतः शुक्ले कुर्वन्तोऽप्यदर्शनात्मकत्वात्प्रकाशरहिते कृष्ण एव कुर्वन्तीति ते [3]निन्द्यन्त इत्यर्थः। उक्तमर्थं श्रुत्यारूढं करोति—इतर इति ॥१२॥

रयिः पूर्ववदिति। रयिरन्नं चन्द्रमा इत्यर्थः। अह्नः प्राणत्वोक्तिप्रसङ्गादह्नि मैथुनं निषेधति—प्राणमिति। प्रकृतमिति। कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति पृष्टमित्यर्थः। पूर्वोक्तं सर्वमेतदुपयो-

---

का दर्शन नहीं करते। इसीलिये ऐसे लोग सबको अदर्शनात्मक कृष्णपक्षरूप ही देखते हैं। अतः वे शुक्लपक्ष में यागानुष्ठान करते हुए भी कृष्णपक्ष में ही करते हैं ॥ १२ ॥

मासरूप प्रजापति की दिन-रात्रि में समाप्ति

वह मासात्मक प्रजापति भी अपने अवयव दिन-रात्रि में परिसमाप्त हो जाता है। निःसन्देह अहोरात्रि भी पूर्व की भाँति प्रजापति ही हैं, उसका भी दिन ही प्राणरूप भोक्ता अर्थात् अग्नि है और पूर्व की भाँति रात्रि ही रयि है। वे लोग दिनरूप प्राण को क्षीण करते अर्थात् अपने से पृथक् करके नष्ट करते हैं। ऐसे कौन हैं? जो मूढ़ दिन के समय रति को कारण स्वरूपा स्त्री से संयुक्त

---

१. अहोरात्र इति। अहश्च रात्रिश्चानयोः समाहार इत्येकत्वम्। "रात्राह्नाहाः पुंसी"ति पुंस्त्वम्। "अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रे"रिति समासान्तोऽच्। २. स्कन्दिर्गतिशोषणयो रतिस्मरणादाह—निर्गमयन्ति शोषयन्ति वेति। ३. निन्द्यन्त इति—निन्दा चैषा केवलकर्मप्रहाणेन समुच्चयप्रवर्तनायेत्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥१४॥

अन्न ही प्रजापति है (उसी से प्रजा का कारण रूप) वह वीर्य होता है और उस वीर्य से ही यह (मनुष्यादि रूप सम्पूर्ण) प्रजा उत्पन्न होती है ॥१४॥

कारणभूतया सह स्त्रिया संयुज्यन्ते मैथुनमाचरन्ति मूढाः। यत एवं तस्मात्तन्न कर्तव्यमिति प्रतिषेधः प्रासङ्गिकः। यद्रात्रौ संयुज्यन्ते रत्या 'ऋतौ ब्रह्मचर्यमेव तदिति प्रशस्तत्वादृतौ भार्यागमनं कर्तव्यमिति। अयमपि प्रासङ्गिको विधिः। प्रकृतं तूच्यते सोऽहोरात्रात्मकः प्रजापतिर्व्रीहियवाद्यन्नात्मना व्यवस्थितः ॥ १३ ॥

एवं क्रमेण परिणम्य तदन्नं वै प्रजापतिः। कथम्। ततस्तस्माद्ध वै रेतो नृबीजं

गितयोक्तं न तु साक्षात्प्रकृतमिति भावः ॥१३॥

एवं क्रमेणेति। रयिप्राणसंवत्सरादिक्रमेण परिणम्य व्रीह्याद्यात्मना व्यवस्थितः सन्नन्नं वै प्रजापतिरन्नात्मको जातः प्रजापतिरित्यन्वयः। कथमिति। अन्नरूपत्वेऽपि तस्य कथं प्रजाजनकत्वमित्यर्थः। तत इति। 'भक्षितादन्नादित्यर्थः। रेत इति। 'शोणितस्याप्युपलक्षणं 'तुल्यत्वादिति ॥१४॥

होते हैं अर्थात् मैथुन करते हैं, क्योंकि ऐसो बात है। इसलिये ऐसा नहीं करना चाहिये, यह निषेध प्रासंगिक है और ऋतुकाल में रात्रि के समय जो ऋतु से संयुक्त होते हैं, वह तो ब्रह्मचर्य ही है। अतः प्रशस्त होने के कारण (गृहस्थों को) ऋतुकाल में ही स्त्री गमन करना चाहिये, यह विधि भी प्रासंगिक है। अब प्रकृत विषय को कहते हैं, वह दिन-रात्रिरूप प्रजापति क्रमशः व्रीहि और यव आदि अन्नरूप से स्थित हुआ ॥ १३ ॥

अन्न में प्रजापति दृष्टि

इस प्रकार क्रमशः परिणाम को प्राप्त होकर वह अन्न ही प्रजापतिरूप है। कैसे? उस अन्न

---

१. तस्मादिमाः प्रजा इति—तथा च यथोक्तक्रमेण प्रजापतेरेव प्रजात्मना व्यवस्थितत्वाद्ब्रह्मस्मि सर्वात्मा प्रजापतिर्हिरण्यगर्भ इति शक्यमुपासितुं प्रजयेति तत्कर्तव्यतयेति हृदयम्। २. "ऋतौ भार्यामुपेयादि"ति विध्यन्तर संगृह्णन्नाह—ऋताविति। ३. भक्षितादन्नादिति—ननु भक्षकस्तु नाद्यापि समजनिष्ट को भक्षयेद्रेतसो हि तेनोत्पत्तव्य रेतसा च तस्मादित्यन्योऽन्याश्रयता स्यात्। नच प्रजापतिरेव भक्षयेदिति साम्प्रतं यो ह्यन्तरेणापि रेतो मिथुनमुदपादयत् किमसौ तदर्थं भक्षयेदितीति चेत्सत्यम् प्रजापतिर्नैव रयिप्राणमिथुनमिव मनुशतरूपाख्यमपरं मिथुनमन्तरेणैव रेतसोत्पाद्यत इति बृहदारण्यके पठ्यते तदेव भवेद् भक्षयितृ ततस्तु भवेद्रेतसी प्रजेति गृहाण। वस्तुतस्तु प्रजापतेः सर्वात्मत्वमात्रमत्र विवक्ष्यते नैवं क्रम इत्यनवद्यम्। ४. शोणितस्येति—नारीबीजस्य रजस इत्यर्थः। ५. तुल्यत्वादिति—अन्नजत्वप्रजाजनकत्वयो रजोवीर्योभयसाधारणत्वादित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुन-मुत्पादयन्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

इस प्रकार जो भी (कोई गृहस्थ ऋतु काल में रात्रि के समय स्त्री-गमन रूप) प्रजापति व्रत का आचरण करते हैं, वे (पुत्र और पुत्री रूप) जोड़े को उत्पन्न करते हैं। जिनमें (इष्टादि कर्मानुष्ठान रूप) तप और पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य है तथा जिनमें असत्य त्याग रूप सत्य स्थित है, उन्हीं को यह (चन्द्रलोक में स्थित पितृयाण रूप) ब्रह्मलोक प्राप्त होता है ॥१५॥

तत्प्रजाकारणं तस्माद्योषिति सिक्तादिमा मनुष्यादिलक्षणाः प्रजाः प्रजायन्ते यत्पृष्टं कुतो ह वै प्रजाः प्रजायन्त इति। तदेवं चन्द्रादित्यमिथुनादिक्रमेणाहोरात्रान्तेनान्नासृ-ग्रेतोद्वारेणेमाः प्रजाः प्रजायन्त इति निर्णीतम् ॥ १४ ॥

तत्तत्रैवं 'सति ये गृहस्थाः 'ह वै' इति प्रसिद्धस्मरणार्थौ निपातौ। 'तत्प्रजापतेर्व्रतं त-'मृतौ भार्यागमनं चरन्ति कुर्वन्ति तेषां दृष्टफलमिदम्। किम्। ते मिथुनं पुत्रं दुहितरं

प्रजापतिव्रताचरणमात्रेण नादृष्टफलं चन्द्रलोकः प्राप्यते मूर्खाणामपि प्रसङ्गादत आह—

से ही प्रजा का कारणरूप पुरुष का शुक्र उत्पन्न होता है और स्त्री की योनि में सींचे जाने पर उसी वीर्य से मनुष्यादिरूप प्रजा उत्पन्न होती हैं। हे शिष्य तूने जो पूछा था कि यह सम्पूर्ण प्रजा किससे उत्पन्न होती हैं, वह इस प्रकार चन्द्रमा और आदित्य रूप मिथुनादि क्रमशः अहोरात्र पर्यन्त अन्न, रक्त एवं वीर्य के द्वारा ये सारी प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। ऐसा निर्णय हो गया ॥ १४ ॥

प्रजापति व्रत का फल

इस परिस्थिति में निःसन्देह जो गृहस्थ उस प्रजापति के व्रत का आचरण करते हैं अर्थात् ऋतुकाल में रात्रि के समय स्त्री गमन करते हैं। यहाँ पर 'ह' और 'वै' ये दोनों निपात प्रसिद्ध अर्थ

---

१. संप्रति विधानाय विद्यासाधनानि ब्रह्मचर्यादीनि फलोक्त्या स्तौति—तद्ये ह वा इत्यादिना। फलोक्त्येति फलान्तरोक्त्येत्यर्थः। २. असृक्छोणितम्। ३. एवं सतीति—प्रजापतेरात्मनो ब्रह्मचर्यं रक्षित्वैव मिथुनादि-सृष्टत्वे सतीत्यर्थः। ४. प्रजापतिना हि प्रजोत्पत्तिकामेनापि सता नात्मनो ब्रह्मचर्यमुत्सृष्टमिति ब्रह्मचर्यमेव तस्य व्रतं तच्चाद्यत्वे गृहस्थानामृतौ रात्रौ भार्यागमनरूपमेव ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्त इति श्रुतेरित्य-भिसंधाय व्याचष्टे—प्रजापतेर्व्रतमृतौ भार्यागमनमिति। ५. यद्वाऽहरात्मकस्य प्राणस्य प्रजापतेरस्कन्दनव्रतम् प्रजापतिव्रतमित्याशयेनाह—ऋताविति। रात्रेरुपलक्षणमृतौ रात्रावेवेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु
जिह्ममनृतं न माया चेति ॥१६॥

इत्यथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषदि प्रथमः प्रश्नः ॥१॥

जिन गृहस्थों में कुटिलता (क्रीड़ादि वशात्) अनृत और माया नहीं है, उन्हीं को यह विशुद्ध ब्रह्मलोक प्राप्त होता है (ऐसा एकान्त निष्ठ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और भिक्षुक में ही संभव है। कर्म और उपासना के समुच्चित अनुष्ठान से ही उक्त फल मिलता है, केवल कर्म से तो चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है) ॥१६॥

॥ इति प्रथमः प्रश्नः ॥

श्चोत्पादयन्ते[1]। अदृष्टं च फलमिष्टापूर्तदत्तकारिणां तेषामेवैष यश्चान्द्रमसो ब्रह्मलोकः पितृयाणलक्षणो येषां तपः [2]स्नातकव्रतादीनि, ब्रह्मचर्यम् [3]ऋतावन्यत्र मैथुनासमाचरणं ब्रह्मचर्यम्। येषु च सत्यमनृतवर्जनं प्रतिष्ठितमव्यभिचारितया वर्तते नित्यमेव ॥ १५ ॥

यस्तु पुनरादित्योपलक्षित उत्तरायणः प्राणात्मभावो विरजः शुद्धो न चन्द्रब्रह्मलोकवद्रजस्वलो वृद्धिक्षयादियुक्तोऽसौ केषां तेषामित्युच्यते। यथा गृहस्थानामनेकविरुद्ध-

---

इष्टापूर्तेति। चान्द्रमसो ब्रह्मलोक इत्यपरब्रह्मणः प्रजापतेरंशत्वाद्रयिरूपस्य चन्द्रस्य ब्रह्मलोकत्वमित्यर्थः। इष्टादिकारिणां तपआदिकमपि चन्द्रलोकप्राप्त्यर्थमपेक्षितमित्यत आह—येषां तप इति ॥१५॥

तेषामसौ विरज इत्यादिवाक्यं व्याचष्टे—यस्त्विति। उत्तरायण इति। तेन प्राप्य इत्यर्थः। प्राणात्मभावोऽपरब्रह्मतयाऽवस्थानमित्यर्थः। असौ केषां तेषामिति। तेषामसौ विरज इत्यत्र तेषामित्यनेन केषां निर्देश इति प्रश्नार्थः। न येषु जिह्ममित्यत्र जिह्मादिशब्दं व्यतिरेकप्रदर्शनेन व्याचष्टे—

का स्मरण करने के लिये हैं। उन प्रजापति व्रत आचरण करने वालों को यह दृष्टफल प्राप्त होता है। कौन फल ? वे पुत्र और पुत्री को उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त उन इष्ट, पूर्त और दत्त कर्म करने वालों को यह अदृष्ट फल मिलता है, जो चन्द्रलोक में स्थित पितृयाणरूप ब्रह्मलोक हैं (ऐसे फल के अधिकारी वे हैं) जिनमें स्नातक व्रतादि तप ऋतुकाल से भिन्न समय में स्त्री गमन न करनारूप ब्रह्मचर्य और असत्य भाषण का त्यागरूप सत्य, नित्य अव्यभिचरित रूप से प्रतिष्ठित होता है ॥ १५ ॥

उत्तर-मार्गगामी की गति

किन्तु जो चन्द्रलोक सम्बन्धित ब्रह्मलोक के समान मल से युक्त और वृद्धि, क्षय आदि से युक्त नहीं है, प्रत्युत सूर्य से उपलक्षित विशुद्ध प्राणात्म भाव है, वही लोक उन्हें प्राप्त होता है।

---

१. उत्पादयन्त इति—न तु क्लीबमिति भावः। २. स्नातकेत्यादि—ब्रह्मचर्येण वेदं लब्ध्वा कृतसमावर्तनस्नानो गृहस्थः स्नातकस्तत्कर्तव्यतया स्मृत्याद्युक्तानि व्रतानि "नेक्षेतोद्यन्तमादित्य"मित्येवमादीनीत्यर्थः। आदित्यमिति—"अस्तं यान्तं कदाचन। नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतमि"ति मनुवाक्यशेषः।
३. ऋतावन्यत्रेति—अत्रर्तोरन्यत्रेति युक्तः पाठः। सप्तमीप्रतिरूपकं वा भवेदव्ययमृताविति। रजोदर्शनोपलक्षितान्मैथुनार्हाहतोरन्यस्मिन्नृतौ काले इति पञ्चम्यर्थे वा सप्तमीत्येवमुपपादनीयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संव्यवहारप्रयोजनवत्त्वाज्जिह्मं कौटिल्यं वक्रभावोऽवश्यंभावि तथा न येषु जिह्मम्। यथा च गृहस्थानां [1]क्रीडानर्मादिनिमित्तमनृतमवर्जनीयं तथा न येषु तत्, तथा माया गृहस्थानामिव न येषु विद्यते। माया नाम बहिरन्यथाऽऽत्मानं प्रकाश्यान्यथैव कार्यं करोति सा माया मिथ्याचाररूपा। मायेत्येवमादयो दोषा येष्वधिकारिषु ब्रह्मचारिवानप्रस्थभिक्षुषु निमित्ताभावान्न विद्यन्ते तत्साधनानुरूपेणैव तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोक इत्येषा [2]ज्ञानयुक्तकर्मवतां गतिः। पूर्वोक्तस्तु ब्रह्मलोकः केवलकर्मिणां चन्द्रलक्षण इति ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्य-
श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ प्रश्नोपनिषद्भाष्ये प्रथमः प्रश्नः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयः प्रश्नः ॥

प्राणोऽत्ता प्रजापतिरित्युक्तम्। तस्य प्रजापतित्वमत्तृत्वं चास्मिञ्शरीरेऽवधारयितव्यमित्ययं प्रश्न आरभ्यते—

यथेत्यादिना। मायाग्रहणं तादृशानां दोषाणामुपलक्षणमिति वदन्वाक्यार्थं संगृह्य दर्शयति—मायेत्येवमिति। भिक्षुष्विति परमहंसव्यतिरिक्तानां कुटीचकादीनां ग्रहणम्। तेषां ब्रह्मलोकादपि विरक्तत्वेन तत्रानर्थित्वात्। इतिशब्दार्थमाह—इत्येषेति ॥ १६ ॥

इति श्रीमदानन्दज्ञानविरचितप्रश्नोपनिषद्भाष्यटीकायां प्रथमः प्रश्नः ॥ १ ॥

प्रश्नान्तरस्य प्रथमप्रश्नेन संगतिमाह—प्राणोऽत्तेति। अवधारयितव्यमिति। अत्ता विश्वस्य

किनको ? इसे कहते हैं—जैसे अनेकों विरुद्ध व्यवहार रूप प्रयोजन वाला होने से गृहस्थों में कुटिलता अर्थात् वक्रता निश्चित है, उस प्रकार जिनमें जिह्म नहीं है। जैसे क्रीड़ादि निमित्त से अनृत भाषण गृहस्थों में अनिवार्य है, वैसा जिनमें अनृत नहीं है तथा जिनमें गृहस्थों की भाँति माया नहीं है। अपने आपको बाहर से कुछ दिखलाते हुए भीतर से जो कुछ व्यवहार करना वही मिथ्याचरण रूप माया है। इस प्रकार जिन एकान्तनिष्ठ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और भिक्षुओं में कोई निमित्त न होने के कारण माया आदि दोष नहीं है। उन्हें उनके साधनानुरूप ही वह विशुद्ध ब्रह्मलोक प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार उपासना सहित कर्मानुष्ठान करने वाले की गति बतला दी गयी किन्तु पूर्वोक्त चन्द्रमारूप ब्रह्मलोक केवल कर्म करने वालों के लिये ही कहा गया ॥ १६ ॥

द्वितीय प्रश्न

प्रजा को धारण करने वाले देवगण कौन-कौन है

प्राण भोक्ता प्रजापति है, ऐसा पहले कहा गया है। उसका प्रजापतित्व और भोक्तृत्व इस शरीर में निश्चित करना है। इसलिये यह प्रश्न प्रारम्भ किया जाता है। उसके पश्चात् उस पिप्पलाद

---

१. क्रीडानर्मेति—कन्दुकखेलनादिरूपा क्रीडा। हास्यादिकं च नर्मेति विवेकः। २. ज्ञानयुक्तकर्मेति—कर्मात्र तत्तदाश्रमधर्म एवेति ब्रह्मचारिवानप्रस्थभिक्षुष्विति न विरुध्यत इत्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ । भगवन्क-
त्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रका-
शयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥१॥**

उसके बाद पिप्पलाद मुनि से विदर्भदेशीय भार्गव ने पूछा—'हे भगवन् ! (इस शरीर रूप) प्रजा को कितने देवता धारण करते हैं तथा (उन देवताओं में से) कौन इसे प्रकाशित करते हैं और इन देवों में कौन प्रधान है' ॥१॥

अथानन्तरं ह किलैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ । हे भगवन्कत्येव देवाः प्रजां शरीरलक्षणां विधारयन्ते विशेषेण धारयन्ते । 'कतरे 'बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रियविभक्तानामेत-'त्प्रकाशनं स्वमाहात्म्यप्रख्यापनं प्रकाशयन्ते । कोऽसौ पुनरेषां वरिष्ठः प्रधानः कार्यकरण-

---

सत्पतिरित्यत्तृत्वस्यैषोऽग्निस्तपतीत्यारभ्यारा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायस इत्यादिना च प्रजापतित्वस्योत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वादित्यर्थः । इदमुपलक्षणं 'पूर्वं गतिश्रवणेन विरक्तस्यापि चित्तैकाग्र्य' विना वक्ष्यमाणात्मज्ञानासिद्धे'स्तदर्थं मन्दानां फलविशेषार्थं च प्राणोपासनार्थं प्रश्नद्वयारम्भः । तत्रापि श्रेष्ठत्वात्तृत्वप्रजापतित्वादिगुणनिर्धारणार्थं द्वितीयः प्रश्नः । तदुत्पत्त्यादिनिर्धारणपूर्वकं तदुपासनविधानार्थं तृतीयः प्रश्न इत्यपि द्रष्टव्यम् । प्रजाशब्देन शरीरमेव गृह्यते न जीवस्तस्य प्राणधारकत्वेन तद्धार्यत्वाभावादित्याह—शरीरेति । विभक्तानामिति निर्धारणे षष्ठी । स्वमाहात्म्यख्यापनमिति । अवकाशदानादिकमाकाशादीनां माहात्म्यं तस्य प्रख्यापनं तस्य लोकान्प्रति प्रकटनं तत्प्रकाशयन्ते कुर्वन्तीत्यर्थः । 'पाकं पचतीतिवत् । अवकाशदानादिकं स्वस्वकार्यं

मुनि से विदर्भदेशीय भार्गव ने पूछा—हे भगवान् ! इस शरीररूप प्रजा को कितने देवता मिलकर विशेषरूप से धारण करते हैं और ज्ञान इन्द्रियों तथा कर्म इन्द्रियों के रूप में विभक्त उन देवताओं में से कौन-कौन देवता इसे प्रकाशित करते हैं अर्थात् अपने माहात्म्य को स्थापन करते हैं और इन

---

१. कतर इति—विधारयमाणाश्च सन्त इत्यादिः । २. "किंयत्तदोर्निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरजि"त्याश-येनाह—बुद्धीत्यादि । ज्ञानेन्द्रियत्वकर्मेन्द्रियत्वाभ्यां द्विधा विभक्तानां मध्ये कतरे किंजातीया इत्यर्थः । (द्वयोरेकस्येति किमोऽस्मिन्विषये डतरजपीति वार्त्तिकानुसंधाने तु द्वैराश्यकरणप्रयासोऽनावश्यको यद्यपि तथापि प्रसिद्ध्यनुरोधेनैव स आस्थित इत्यास्थेयम्) । ३. प्रकाशनमिति—अत्र प्रकाश्यमित्याद्यः पाठः प्रतिभाति । ४. पूर्वं गतिश्रवणेन विरक्तस्यापीति—दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते, अथोत्तरेणेति दक्षिणोत्तरगतिश्रवणात्तत्प्राप्यलोक-द्वयादपि संजातवैराग्यस्याप्यधिकारिण इत्यर्थः । ५. तदर्थम्—विरक्तस्य चित्तैकाग्र्यार्थम् । मन्दानामविरक्ता नाम् । ६. स्ववाच्यविशेषार्थकपदान्तरसमभिव्याहारे विशेषवाचिनः सामान्यपरत्वे निदर्शनं दर्शयति—पाकं पचतीतिवदिति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मै स होवाचाऽऽकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः ॥२॥

तब आचार्य पिप्पलाद ने उस भार्गव से कहा—'निश्चय आकाश ही वह देव है। वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक् (सभी कर्मेन्द्रियाँ) मन और चक्षुः (ज्ञानेन्द्रियाँ) वे सभी देव अपनी-अपनी श्रेष्ठता के लिये महिमा को प्रकट करते हुए कहते हैं कि इस कार्य-कारण-संघात रूप शरीर को स्तम्भ की भाँति आश्रय देकर हम ही स्पष्टरूप से धारण करते हैं' ॥२॥

लक्षणानामिति ॥ १ ॥

एवं पृष्टवते तस्मै स होवाच। आकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवीत्यानि पञ्च महाभूतानि शरीरारम्भकाणि वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रमित्यादीनि कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियाणि ते कार्यलक्षणाः करणलक्षणाश्च ते देवा आत्मनो माहात्म्यं प्रकाश्याभि-

---

सर्वलोकप्रकटनं यथा तथा कतरे कुर्वन्तीत्यर्थः ॥१॥

एष देव इति। वक्ष्यमाणाभिवदनादिव्यवहारसिद्धार्थं चेतनत्वं संभावयितुं देव इति विशेषणम्। "अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्" इति न्यायेनाऽऽकाशाद्यभिमानिदेवताग्रहणार्थम्। तच्च विशेषणं वाय्वादिष्वपि सर्वत्र संबध्यते। वाग्ग्रहणं कर्मेन्द्रियोपलक्षणार्थं चक्षुरादिग्रहणं ज्ञानेन्द्रियोपलक्षणार्थमिति मत्वाऽऽह—कर्मेन्द्रियेति। कार्यलक्षणाः शरीराकारेण परिणता आकाशादयः। करणलक्षणानीन्द्रियाणि। माहात्म्यमिति। आकाशादीनामवकाशदानादिरूपं शरीरधारणैकदेश-

---

कार्य-कारण रूप देवताओं में से कौन (सर्वश्रेष्ठ) प्रधान है ॥ १ ॥

आकाशादि शरीर के आधार हैं

इस प्रकार पूछने वाले उस भार्गव से पिप्पलाद ने कहा कि निःसन्देह यह प्रसिद्ध आकाश ही वह देव है, साथ ही वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये शरीर के आरम्भक पंचभूत एवं वाणी, मन, चक्षु और श्रोत्रादि कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ देव हैं (इसको धारण करने वाले हैं)। वे कार्य तथा

---

१. धारकत्वं यथोक्तप्रकाशकत्वं च आकाशादिसाधारणं वरिष्ठत्वं तु प्राणस्यैवेति वक्ष्यान्नृषिरवोचदित्याह—तस्मै स होवाचेति। २. प्रकटनमिति—अत्र प्रकटमिति युक्तं पश्यामः। ३. अभिमानीति ब्र. सू. २।१।५। ते हेमे प्राणा अहंश्रेयसे विवदमाना इत्यादि श्रुतिषु प्राणादिशब्दैः प्राणाद्यभिमानिदेवतानां व्यपदेशो भवति। कुतः। विशेषानुगतिभ्याम्। विशेषणं विशेषः अनुगतिश्च ताभ्याम् "एता ह वै देवता अहंश्रेयसे विवदमाना" इति प्राणानां चेतनवाचिना देवताशब्देन विशेषितत्वात्। अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशदित्यादिमन्त्रार्थवादादिषु सर्वत्र तदभिमानिदेवतानामनुगतिश्रवणाच्चेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तान्वरिष्ठः प्राण उवाच । मा मोहमापद्यथाह-
मेवैतत्पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य
विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः ॥३॥

इस प्रकार अभिमान से युक्त उन देवों के प्रति प्राण ने कहा—तुम लोग मोह को प्राप्त मत होवो, क्योंकि अपने को पाँच भागों में विभक्त कर मैं ही इस शरीर को आश्रय देकर धारण करता हूँ। किन्तु उन देवताओं ने उक्त बात पर विश्वास नहीं किया ॥३॥

वदन्ति स्पर्धमाना 'अहंश्रेष्ठतायै, कथं वदन्ति । वयमेतद्बाणं कार्यकरणसंघातमवष्टभ्य प्रासादमिव स्तम्भादयोऽविशिथिलीकृत्य विधारयामो विस्पष्टं धारयामः । मयैवैकेनायं संघातो ध्रियत इत्येकैकस्याभिप्रायः ॥ २ ॥

तानेवमभिमानवतो वरिष्ठो 'मुख्यः प्राण उवाचोक्तवान् । मा मैवं मोहमापाद्यथा-

---

त्मकं प्रकाश्यं स्वकार्यं प्रकाश्य सर्वलोकप्रकटं यथा तथा कृत्वाऽभिवदन्ति, अभितः सर्वतः कृत्स्नं शरीरधारणं प्रत्येकं वयमेव कुर्म इति ,वदन्तीत्यर्थः । बाणमिति । 'बवयोरभेदाद्वाति कुत्सितं गन्धं वहतीति वा [बाणम्] । विनाशं गच्छतीति वा देशाद्देशान्तरं गच्छतीति वा वाणं 'वाणमेव बाणं कार्यकरणसंघातं शरीरमित्यर्थः ॥२॥

कारणरूप देव अपनी महिमा को प्रकट करते हुए अपनी-अपनी श्रेष्ठता के लिये स्पर्धापूर्वक बोलते हैं। कैसे बोलते है ? इस कार्य-करण के संघातरूप शरीर को वैसे ही आश्रय देकर शिथिलता से बचाते हुए हम विस्पष्टरूप से धारण कर रहे हैं, जैसे स्तम्भादि महल को धारण करते हैं। उनमें से प्रत्येक का यही अभिप्राय था कि इस संघात को अकेले मैंने ही धारण किया है ॥ २ ॥

प्राण के प्राधान्य में दृष्टान्त

इस प्रकार अभिमान युक्त उन देवताओं से मृत्यु प्राण ने कहा—ऐसे मोह को प्राप्त न होओ !

---

१. वरिष्ठः प्राण इति—अनेन कः पुनरेषां वरिष्ठ इत्युत्तरितं भवतीत्यवधेयम् । २. एतदित्यादि—अत्राद्य-मेतदिति क्रियाविशेषणं प्रविभज्येत्यनेनान्वेति, इत्थं प्रविभज्येति प्रत्यक्षं निर्दिशन्नाहेत्यर्थः । अन्त्यं तु तद्बाण-समानाधिकरणमेवेति बोध्यम् । ३. मयूरव्यंसकादिशब्दं प्रयुङ्क्ते—अहश्रेष्ठताया इति । ४. मुख्यः प्राण इति—अनेन वागादीन्द्रियाणां गौणप्राणत्वं शास्त्रे व्यपदिश्यत इत्यवधापयति । ५. बवयोरभेदादिति—नणयोश्चेत्यपि वक्तव्यं मानवो माणव इत्युभयदर्शनात् । तत्र कुत्सायां णत्वमिति चेदत्रापि समानं यदाह कुत्सितं गन्धमिति । गन्धस्य कुत्सितत्वमाहेति चेत्सत्यं कुत्सितवतोऽपि नाऽन्तत्त्वम् । वानमेव वाणमिति सम्बन्धः । ६. बानमेव बाणमिति—यथा निगन्तवः सन्तो निघण्टव उच्यन्ते तद्वदिति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्य- थेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिꣳश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते । तद्यथा मक्षिका मधुकर-

तब वह प्राण (इन्द्रियों की अश्रद्धा को देख कर) अभिमान पूर्वक मानो ऊपर उठने लगा, उसके ऊपर उठते ही और सभी प्राण ऊपर उठने लगे तथा उसके बैठ जाने पर सभी बैठ गये। जैसे रानी-मक्खी के ऊपर उठने पर सभी मक्खियाँ ऊपर उठ जाती हैं और उसके बैठ जाने पर सभी बैठ जाती

विवेकतयाऽभिमानं मा कुरुत यस्मादहमेवैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्य प्राणादिवृत्तिभेदं स्वस्य कृत्वा विधारयामीत्युक्तवति च तस्मिंस्तेऽश्रद्दधाना अप्रत्ययवन्तो बभूवुः कथमेतदेवमिति ॥ ३ ॥

स च प्राणस्तेषामश्रद्दधानतामालक्ष्याभिमानादूर्ध्वमुत्क्रमत इवेदमुत्क्रान्तवानिव सरोषान्निरपेक्षस्तस्मिन्नुत्क्रामति यद्वृत्तं तद्दृष्टान्तेन प्रत्यक्षी करोति। तस्मिन्नुत्क्रामति सत्यथानन्तरमेवेतरे सर्व एव प्राणाश्चक्षुरादय उत्क्रामन्त उच्चक्रमिरे। तस्मिंश्च प्राणे प्रतिष्ठमाने तूष्णीं भवत्यनुत्क्रामति सति सर्व एव प्रातिष्ठन्ते तूष्णीं व्यवस्थिता अभूवन्।

कथमेतदिति। एतत्व (द) हमेवैतदित्याद्युक्तम्। एवं यथासूतं कथमित्यर्थः ॥३॥

उत्क्रान्तवानिवेति। अत्यन्तोत्क्रान्त्यभावादिवशब्दः। निरपेक्ष इति। स्वयमेवेत्यर्थः।

अविवेक के कारण अभिमान मत करो क्योंकि अपने को प्राणादि पाँचवृत्ति भेद से विभक्त कर मैं ही इस शरीर को आश्रय देकर धारण करता हूँ। वरिष्ठ प्राण के ऐसा कहने पर भी वे उसके इस कथन में विश्वस्त नहीं हुए कि यह कैसे हो सकता है॥ ३॥

तब वह प्राण उनकी अश्रद्धा को देखकर क्रोधाविष्ट हो निरपेक्ष ही अभिमान पूर्वक ऊपर की ओर उठता हुआ-सा व्यापार करने लगा। उस वरिष्ठ प्राण के ऊपर उठते ही जो कुछ घटा, उसे दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं। तात्पर्य यह कि मुख्य प्राण के ऊपर उठने के तत्काल ही नेत्रादि इन्द्रियाँ उत्क्रमण करने लगीं और उस प्राण के प्रतिष्ठित होते ही वे सब प्रतिष्ठित हो चुपचाप बैठ जाते थे।

---

१. उत्क्रामन्त इति—दैर्घ्यं छान्दसम्, लोके तु क्रमः परस्मैपदेष्विति नियमः। २. पदलकारव्यत्ययश्छान्दस इत्याशयेन व्याकरोति—कुरुतेति। ३. अप्रत्ययवन्त इति—अविश्वासवन्त इत्यर्थः। 'प्रत्ययोऽधीनशपथ-ज्ञानविश्वासहेतुषु' इत्यमरः। ४. इदमुत्क्रान्तवानिवेति—इदं शरीरं त्यक्तवानिवेत्यर्थः। ५. तद्वृत्तमिति शेषः। ६. करोतीति कारयतीति यावत्। ७. कालव्यत्ययश्छान्दस इत्याह—उच्चक्रमिरे इति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥४॥

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥५॥

हैं। वैसे ही वाक्, मन, चक्षु और श्रोत्रादि भी (प्राण के साथ ही उठने और प्रतिष्ठित होने लगे) तब वे सभी इन्द्रियाँ सन्तुष्ट होकर मुख्य प्राण की स्तुति करने लगीं ॥४॥

यह प्राण अग्नि होकर प्रज्वलित होता है यह सूर्य (होकर प्रकाशित होता है) और यह मेघ (होकर बरसाता) है। यही इन्द्र (होकर प्रजा का पालन करता है तथा असुरों का वध करता) है। यह वायु है तथा यह देव ही पृथिवी चन्द्रमा (रूप से सबका धारण एवं पोषण करने वाला है) और जो कुछ स्थूल, सूक्ष्म एवं अमृत है, वह सब कुछ यही है ॥५॥

---

[1]तत्तत्र यथा लोके मक्षिका मधुकराः [2]स्वराजानं मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं प्रति सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्ते प्रातितिष्ठन्ति। यथाऽयं दृष्टान्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं चेत्यादयस्त उत्सृज्याश्रद्दधानतां बुद्ध्वा प्राणमाहात्म्यं प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति [4]स्तुवन्ति ॥ ४ ॥

[5]कथम्—

एष प्राणोऽग्निः संस्तपति ज्वलति। तथैष सूर्यः सन्प्रकाशते। तथैष पर्जन्यः

दृष्टान्तेनेति। तत्र यथे(तद्यथे)ति वक्ष्यमाणेनेत्यर्थः ॥४॥

सूर्यः सन्निति। [6]तपतीत्यनुषङ्गः संतापयतीत्यर्थः। आवहप्रवहादीति। आवहादयः [7]सप्तसप्तवायु-

---

जैसे लोक में मधु-मक्खियाँ अपने प्रधान मधुकर राजा के उठते ही सबकी सब उड़ जाती हैं और उसके बैठते ही सबकी सब बैठ जाती हैं। जैसा यह दृष्टान्त है, वैसे ही वाक्, मन, चक्षु और श्रोत्रादि भी हो गये। उसके बाद वे वागादि अपनी अश्रद्धा को त्यागकर प्राण की महिमा को समझकर सन्तुष्ट हो प्राण की स्तुति करने लगे ॥ ४ ॥

---

१. प्राणोपासकेन प्रत्यहं पठनीय प्राणदेवतास्तोत्रं चक्षुरादिदेवैः प्रणीतमाह—एष इत्यादिना। २. वृत्तमुक्त्वा दृष्टान्तेन स्पष्टयति—तत्तत्रेत्यादिना। ३. समासान्तविधेरनित्यत्वमाश्रित्याह—स्वराजानमिति, एवमुत्तरत्र। ४. विकरणव्यत्ययश्छान्दस इति व्याचष्टे—स्तुवन्तीति, कालव्यत्ययात्तुष्टुवुरित्यर्थः। ५. कथमिति—कथं तुष्टुवुरित्याकाङ्क्षायां यथाऽसौ तैरस्तावि तथा तत्स्तोत्रं पठतीत्यर्थः। ६. तपतीत्यनुषङ्ग इति—अयमनुषङ्गः प्रकाशते भाष्येणासङ्गः। ७. सप्तसप्तवायुगणा इति—सप्तानां वायूनां गणः सप्तवायुगण एकस्तादृशाः सप्तेत्येकोनपञ्चाशदित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । ऋचो यजूꣳषि सामानि यज्ञः क्षत्त्रं ब्रह्म च ॥६॥

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे । तुभ्यं प्राण

जैसे रथ की नाभि में अरे लगे रहते हैं, वैसे ही ऋक्, यजुः और साम (तीन प्रकार के मन्त्र), उनसे निष्पन्न यज्ञ तथा ब्राह्मण-क्षत्रिय ये सब प्राण में ही स्थित हैं ॥ ६ ॥

हे प्राण ! तू ही प्रजापति है, तू ही गर्भ में विचरता है और (माता-पिता के अनुरूप होकर)

सन्वर्षति । किंच मघवानिन्द्रः सन्प्रजाः पालयति जिघांसत्यसुररक्षांसि । एष वायुरावह-प्रवहादिभेदः । किं चैष पृथिवी रयिर्देवः सर्वस्य जगतः सन्मूर्तममूर्तं चामृतं च यद्देवानां स्थितिकारणं किं बहुना ॥ ५ ॥

अरा इव रथनाभौ श्रद्धादि नामान्तं सर्वं स्थितिकाले प्राण एव प्रतिष्ठितम् । तथर्चो यजूंषि सामानीति त्रिविधा मन्त्रास्तत्साध्यश्च यज्ञः क्षत्त्रं च सर्वस्य पालयितृ ब्रह्म च यज्ञादिकर्मकर्तृत्वेऽधिकृतं चैवैष प्राणः सर्वम् ॥ ६ ॥

किंच—

गुणास्तथाभूतः सन्मेघाज्ज्योतिश्चक्रादींश्च वहतीति शेषः । एष देवः पृथिवी सन्सर्वस्य जगतो धारयिता रयिश्चन्द्रः सन्सर्वं पुष्णातीत्यर्थः ॥५॥

श्रद्धादीति । प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिराप इत्यादिना वक्ष्यमाणषोडशकलात्मकमित्यर्थः । ब्रह्म चेति । ब्राह्मणजातिरित्यर्थः । [1]चशब्दार्थमाह—यज्ञादीति । अधिकृतं सर्वमेवेत्यन्वयः ॥६॥

किस प्रकार स्तुति करने लगे ? इसे बतलाते हैं—प्राण अग्नि होकर प्रज्वलित होता है और यह सूर्य होकर प्रकाशित होता है एवं मेघ बनकर बरसता है, यही इन्द्र होकर प्रजा का पालन करता है एवं असुर और राक्षसों का वध करना चाहता है । आवह-प्रवह आदि भेदों वाला वायु भी यही है, विशेष क्या कहें, यही देव पृथिवी और चन्द्रमारूप से सम्पूर्ण जगत् का धारक और पोषक है । स्थूल सूक्ष्म, सदसद्रूप यही है और देवताओं की स्थिति का कारणरूप अमृत भी यही है ॥ ५ ॥

प्राण सबका आश्रय है

जैसे रथ की नाभि में अरे जुड़े होते हैं, वैसे ही जगत् की स्थिति काल में श्रद्धा से लेकर नाम पर्यन्त सम्पूर्ण विश्व प्राण में ही प्रतिष्ठित है एवं ऋक्, यजुः और साम, ऐसे त्रिविध मन्त्र उन मन्त्रों से सम्पन्न होने वाला यज्ञ, सबका पालन करने वाला क्षत्रिय और यज्ञादि कर्मों के अधिकारी ब्राह्मण; ये सभी प्राण ही हैं ॥ ६ ॥

प्राण की स्तुति

जो प्रजापति है, वह भी तू ही है, गर्भ में तू ही संचरण करता है और माता-पिता के प्रतिरूप

---

१. ब्रह्म चेति—चाद्वैश्यादिपरिग्रहः । २. चशब्दार्थमाहेति—न किञ्चिदेतद् ब्रह्मशब्दार्थं एव ह्ययं सर्वस्य पालयित्रिति क्षत्रशब्दार्थं इवेत्यवधेयम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥७॥

देवानामसि वह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा ।

ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥८॥

तू ही जन्म लेता है। ये मनुष्यादि सम्पूर्ण प्रजाएँ तुझे ही (चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा) उपहार समर्पण करती हैं क्योंकि जो उन इन्द्रियों के साथ भोक्ता रूप से स्थित है, वह तू ही है ॥ ७ ॥

देवताओं के लिये तू श्रेष्ठ वह्नितम है। नान्दीमुखादि श्राद्धों में पितरों के लिए प्रथम स्वधा तू है और अथर्वा श्रुति के अनुसार अंगों का रस रूप तू है अर्थात् देह धारणादि के लिये सत्य आचरण रूप तू है ॥ ८ ॥

यः प्रजापतिरपि स त्वमेव गर्भे चरसि पितुर्मातुश्च प्रतिरूपः सन्प्रतिजायसे प्रजापतित्वादेव प्रागेव सिद्धं तव मातृपितृत्वं सर्वदेहदेह्याकृतिच्छद्मनैकः प्राणः सर्वात्माऽसीत्यर्थः । तुभ्यं त्वदर्थं या इमा मनुष्याद्याः प्रजास्तु हे प्राण चक्षुरादिद्वारैर्बलिं हरन्ति । यस्त्वं प्राणैश्चक्षुरादिभिः सह प्रतितिष्ठसि सर्वशरीरेष्वतस्तुभ्यं बलिं हरन्तीति युक्तम् । भोक्ता हि यतस्त्वं तवैवान्यत्सर्वं भोज्यम् ॥ ७ ॥

किंच—

देवानामिन्द्रादीनामसि भवसि त्वं वह्नितमो हविषां प्रापयितृतमः । पितृणां नान्दीमुखे श्राद्धे या पितृभ्यो दीयते स्वधाऽन्नं सा देवप्रदानमपेक्ष्य प्रथमा भवति । तस्या

किंचेति । यः प्रजापतिर्विराट्सोऽपि त्वमेवेत्यन्वयः । पितुर्गर्भे रेतोरूपेण मातुर्गर्भे पुत्ररूपेण यश्चरति पश्चात्तयोरेव प्रतिरूपः सन्सदृशः सन्यः प्रजायते स त्वमेव प्रजायस इत्यन्वयः । प्रतिशब्दार्थं उक्तः—प्रतिरूपः सन्निति । ननु प्राणस्य पुत्ररूपत्वमेवोक्तं न तु पितृमातृरूपत्वं तत्कस्मादत आह— प्रजापतित्वादेवेति । तस्य सर्वात्मत्वादित्यर्थः निष्कृष्टार्थमाह—सर्वदेहेति । अत्रापि निष्कृष्टार्थमाह— भोक्ता हीति । अतस्तवैवेत्यतः शब्दाध्याहारेण योज्यम् । ७॥

हविषां प्रापयितृतम इति । वह्निशब्दो वहनाद्वह्निरिति यौगिक इत्यर्थः । प्रथमा भवतीति ।

होकर तू ही उत्पन्न होता है। प्रजापति होने के कारण तुझमें मातृत्व और पितृत्व तो पूर्व से ही सिद्ध है। तात्पर्य यह कि सम्पूर्ण देह और देही के व्याज से अकेला तू प्राण ही सर्वात्मा है। हे प्राण ! ये जो मनुष्यादि प्रजा हैं, वे नेत्रादि इन्द्रियों द्वारा तुझे ही उपहार भेंट करती हैं और तुम चक्षुरादि इन्द्रियों के साथ सम्पूर्ण शरीरों में प्रतिष्ठित हो इसीलिये वे लोग तुझे ही बलि समर्पित करते हैं और ऐसा करना उचित ही है क्योंकि तू ही भोक्ता है और अन्य सब तेरा ही भोज्य है ॥७॥ तू इन्द्रादि देवताओं

---

१. अत्र प्रतिजायस इति भाष्ये प्रतिशब्दटीकायां प्रजायस इत्यस्यां प्रशब्दश्चाधिकः २. बलिं हरन्ति— रूपादिविषयरूपां पूजामर्पयन्तीत्यर्थः । ३. युक्तमिति—दृष्टं हि लोके बहूनामुपकर्तुः पूज्यत्वं यथा मण्डलेश्वराणामिति युक्तिमिदत्यर्थः । ४. अनेन प्राणस्य भोक्तृत्वमस्मिञ्छरीरे निरधारीति सूचयन्नाह—भोक्ता हीत्यादिना । ५. प्रापयितृतम इति—स हि वह्निः स च त्वमेवेति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥९॥

हे प्राण! तू परमेश्वर है, तू अपने तेज से (जगत् का संहार करने वाला) रुद्र है और (अपने सौम्यरूप से तू ही जगत् का) सर्वतो भावेन संरक्षक है। तू अन्तरिक्ष में सदा गमन करता है और तू ही समस्त ज्योतियों का अधिपति सूर्य है ॥९॥

अपि पितृभ्यः प्रापयिता त्वमेवेत्यर्थः। किंचर्षीणां चक्षुरादीनां प्राणानामङ्गिरसाम्अङ्गिरसभूतानाम्अथर्वणां तेषामेव 'प्राणो वाऽथर्वा' इति श्रुतेः। चरितं चेष्टितं सत्यमवितथं देहधारणाद्युपकारलक्षणं त्वमेवासि ॥ ८ ॥

किंच—

इन्द्रः परमेश्वरस्त्वं हे प्राणस्तेजसा वीर्येण रुद्रोऽसि संहरञ्जगत्। स्थितौ च परि समन्ताद्रक्षिता पालयिता परिरक्षिता त्वमेव जगतः सौम्येन रूपेण। त्वमन्तरिक्षेऽजस्रं चरसि 'उदयास्तमयाभ्यां सूर्यस्त्वमेव च सर्वेषां ज्योतिषां पतिः ॥ ९ ॥

यज्ञादिदेवे(व)कर्मणि प्रथमं नान्दीमुखश्राद्धस्यावश्यकर्तव्यत्वात्सा प्रथमेत्यर्थः। ऋष गताविति धातोर्ज्ञानार्थत्वादृषिशब्दस्य ज्ञानजनकचक्षुराद्यर्थत्वमित्यर्थः। अङ्गिरसभूतानामिति। प्राणाभावेऽङ्गानां शोषदर्शनात्तेषामङ्गिरसत्वमित्यर्थः। मुख्यप्राणस्यार्थत्वं श्रुत्याऽभिहितं यद्यपि तथाऽपि चक्षुरादीनामपि तदंशत्वादथर्वशब्दार्थत्वमिति भावः ॥८॥

इहेन्द्रशब्देन परमेश्वरत्वमुच्यते मघवानित्यनेन त्विन्द्र उक्त इति भेदमाह—इन्द्रः परमेश्वर इति। वीर्येण संहारसामर्थ्येनेत्यर्थः। सौम्येनेति। विष्ण्वादिरूपेणेत्यर्थः ॥९॥

के लिये हविओं को पहुँचाने वालों में श्रेष्ठ वह्नि है। नान्दी मुख श्राद्ध में पितरों को जो अन्नमयी सुधा दी जाती है, वह देव प्रधान कर्म की अपेक्षा से प्रथम है। उस प्रथम सुधा को भी पितरों के पास पहुँचाने वाला तू ही है। इसीलिये पितृगण की प्रथम सुधा तुझे कहते हैं तथा चक्षुरादि प्राणरूप ऋषियों का जो "प्राणो वाऽथर्वा" इस श्रुति के अनुसार अंग के रस स्वरूप अथर्वा आंगिरस है। उनका देह धारण आदि में उपकारक आचरणरूप सत्य भी तू ही है ॥ ८ ॥

---

१. अकारलोपश्छान्दस इत्याशयेनाह—अङ्गिरसभूतानामिति। अङ्गी अवयवी देहस्तस्य रसभूतानां सारभूतानामित्यर्थः। २. अथर्वणामिति—अङ्गिनो रसभूतत्वात्पुष्टिजनकानामित्यर्थः। ३. गतेरप्रत्यक्षत्वादाह—उदयास्तमयाभ्यामिति। ताभ्यामनुमेयचरणोऽसीत्यर्थः। नहि सूर्यगतिः शकटादिगतिवद्दृश्येति तस्या उदयास्तमयाभ्यां लिङ्गाभ्यामनुमेयता स्थिरत्वे तु कुतस्ताविति। यद्वा निमित्ते तृतीया निमित्तं चेह फलं तथा चोदयास्तमयनिमित्तं चरसीत्यर्थः। किं वा तादर्थ्ये चतुर्थ्यर्थैषा तथा चोदयास्तमयार्थं तत्प्रयुक्तलोकव्यवहारार्थमजस्रं चरसीति यावत् (इत्थंभूतलक्षणे तृतीया। तथा चोदयास्तमयोपलक्षितश्चरसीत्यर्थः। एवं च जटाभिस्तापस इत्यत्र यथा जटाज्ञाप्यतापसत्ववानित्यर्थस्तथात्रोदयास्तमयज्ञाप्यचरण इत्यर्थ इत्यभिसंदधान आह—गतेरित्यादि टिप्पण्याम्)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजाः । आन-
न्दरूपास्तिष्ठन्ति 'कामायान्नं भविष्यतीति ॥१०॥
व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ॥११॥

हे प्राण ! जब तू मेघ होकर बरसता है, तब तेरी यह सम्पूर्ण प्रजा सुख को प्राप्त हुए के समान स्थित होती है कि अब यथेच्छ अन्न उत्पन्न होगा ।१०॥

हे प्राण ! तू (संस्कारकर्ता के अभाव में संस्कार हीन) व्रात्य है । तू आथर्वणों का एकर्षिनामक अग्नि होकर सम्पूर्ण हवियों का भोक्ता है तथा विश्व का सत्पति है । आज हम तेरे लिये भक्ष्य देने वाले हैं । हे मातरिश्वन् ! तू हमारा पिता है ॥११॥

यदा पर्जन्यो भूत्वाऽभिवर्षसि त्वमथ तदाऽन्नं प्राप्येमाः प्रजाः प्राणते प्राणचेष्टां कुर्वन्तीत्यर्थः । [2]अथवा प्राण ते तवेमाः प्रजाः स्वात्मभूतास्त्वदन्नसंवर्धितास्त्वदभिवर्षण-दर्शनमात्रेण चाऽऽनन्दरूपाः सुखं प्राप्ता इव सत्यस्तिष्ठन्ति । कामायेच्छातोऽन्नं भविष्यती-त्येवमभिप्रायः ॥ १० ॥

किंच—

प्रथमजत्वादन्यस्य संस्कर्तुरभावादसंस्कृतो व्रात्यस्त्वं स्वभावत एव शुद्ध इत्यभि-प्रायः । हे प्राणैकऋषिस्त्वमाथर्वणानां प्रसिद्ध एकर्षिनामाऽग्निः सन्नत्ता सर्वहविषाम् ।

॥१०॥

असंस्कृत इति । संस्कारहीनो व्रात्य इति स्मृतेरित्यर्थः । अनेन स्वतःशुद्धत्वं विवक्षितमित्याह—

हे प्राण ! तू परमेश्वर है, तू अपने सामर्थ्य से जगत् का संहारक रुद्र है और स्थिति के समय सोम्यरूप से सभी ओर से जगत् पालन करने वाला है । उदय और अस्त द्वारा निरन्तर आकाश में गमन करने वाला, सम्पूर्ण ज्योतियों का अधिपति सूर्य तू ही है ॥ ९ ॥

जब तू मेघ होकर बरसता है, तब सम्पूर्ण प्रजा आनन्दित हुए की भाँति स्थित होती है अर्थात् तेरी वृष्टि के दर्शन मात्र से मानो अन्न पाकर प्राण क्रिया करते हैं अथवा यों समझो कि हे प्राण ! तेरे आत्मस्वरूप प्रजावर्ग तुझसे प्राप्त अन्न द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं । इसलिये तेरी वृष्टि के दर्शनमात्र से सुखी हुए की भाँति स्थित हैं, उसके आनन्दित होने का अभिप्राय यह है कि अब यथेच्छ अन्न उत्पन्न होगा (ऐसी उसकी आशा बन जाती है) ॥ १० ॥

इसके अतिरिक्त सबसे प्रथम उत्पन्न होने के कारण किसी अन्य संस्कार कर्ता के अभाव में तू

---

१. कामायेति—तादर्थ्ये तुरीया । तदेव च कामार्थं भवितु पारयति यत्तस्य पूरकं तथा च पर्याप्तमिति निर्गलितं तदाह भाष्ये—इच्छात इति । यथेच्छमित्यर्थः । २. एकऋषिरिति—समासेऽप्यत्र "ऋत्यक" इति प्रकृतिभावः । ३. प्राणन्तीत्यस्य स्थाने प्राणते इतीयान् व्यत्ययो दुःसह विधान्तरमादत्ते—अथवा प्राणेति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ।
या च मनसि संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः । १२ ।

तेरा जो स्वरूप (वक्ता की) वाणी में स्थित है तथा जो श्रोत्र, नेत्र और मन में व्याप्त है, उसे शान्त करो। तुम उत्क्रमण न करो अर्थात् इस देह को अमंगलमय न बनाओ ॥ १२ ॥

त्वमेव विश्वस्य सर्वस्य सतो विद्यमानस्य पतिः सत्पतिः । 'साधुर्वा पतिः सत्पतिः । वयं पुनराद्यस्य तवादनीयस्य हविषो दातारः । त्वं पिता मातरिश्व हे मातरिश्वन्नोऽस्माकम् । अथ वा मातरिश्वनो वायोस्त्वम् । अतश्च सर्वस्यैव जगतः पितृत्वं सिद्धम् ॥ ११ ॥

किं बहुना—

या ते त्वदीया तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता वक्तृत्वेन 'वदनचेष्टां कुर्वती । या श्रोत्रे या च चक्षुषि या च मनसि संकल्पादि व्यापारेण संतता समनुगता तनूस्तां शिवां शान्तां कुरु मोत्क्रमीरुत्क्रमणेनाशिवां मा कार्षीरित्यर्थः ॥ १२ ॥

स्वभावत एवेति । मातरिश्वेति । मातरिश्व न इत्यत्र नलोपश्छान्दस इत्यर्थः । वायोस्त्वमिति । पितेत्यनुषङ्गः । अस्मिन्व्याख्याने वायुमात्रपितृत्वादस्मदादिसर्वपितृत्वमनुक्तं स्यादत आह—अतश्चेति । अस्मदादिसर्वजनकत्वाद्वायोस्तज्जनकस्याऽऽकाशात्मनः प्राणस्य सर्वजनकत्वं सिद्धमित्यर्थः ॥११॥

वाचि प्रतिष्ठितेति । वाच्यपानरूपा तनूः प्रतिष्ठिता । श्रोत्रे व्यानरूपा । चक्षुषि प्राणरूपा । मनसि समानरूपा । स प्राणस्तच्चक्षुः स व्यानस्तच्छ्रोत्रं सोऽपानः सा वाक्स समानस्तन्मन इति श्रुतेरित्यर्थः । उत्क्रमणेनेति । प्राणोत्क्रमणे सत्यपानाद्यात्मिका वागादिरूपा तनूरशिवा कार्यायोग्या स्यादित्यर्थः ॥१२॥

संस्कार हीन है अर्थात् स्वभावतः शुद्ध है। हे प्राण ! तू आथर्वणों का एकर्षि नामक प्रसिद्ध अग्नि होकर सम्पूर्ण हवियों का भोग करता है और तू ही सम्पूर्ण विद्यमान जगत् का पति होने से सत्पति है अथवा साधुपति होने के कारण तू सत्पति है। हम तो तेरे भक्ष्य हवि के दाता हैं। हे मातरिश्वा ! तू हमारा पिता है। अथवा यों समझो कि तू वायु का पिता है। अतः तुझमें सम्पूर्ण जगत् का पितृत्व सिद्ध है ॥ ११ ॥

बहुत क्या कहें, वक्तारूप से बोलने की चेष्टा करता हुआ तेरा जो स्वरूप वाणी में प्रतिष्ठित है और जो श्रोत्र, नेत्र एवं संकल्पादि व्यापार द्वारा मन में व्याप्त है, उसे शान्त करो, उत्क्रमण न करो। तात्पर्य यह कि उत्क्रमण करके उसे अमंगलमय न बनाओ ॥ १२ ॥

---

१. एकदेशान्वयस्यासार्वत्रिकत्वादाह—साधुर्वेत्यादि। २. वदनचेष्टां कुर्वती वक्तृत्वेन रूपेण प्रतिष्ठितेत्यन्वयः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्। मातेव पुत्रान्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥१३॥

इत्यथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषदि द्वितीयः प्रश्नः ॥२॥

इस लोक में यह सब और स्वर्गलोक में देवादि के उपभोगरूप जो कुछ वैभव हैं, वे सब प्राण के ही अधीन हैं। जैसे माता पुत्रों की रक्षा करती है; वैसे ही तुम हमारी रक्षा करो तथा हमें श्री और प्रज्ञा प्रदान करो ॥ १३ ॥

॥ इति द्वितीयः प्रश्नः ॥

किं बहुना—

[1]अस्मिल्लोके प्राणस्यैव वशे सर्वमिदं यत्किंचिदुपभोगजातं त्रिदिवे तृतीयस्यां दिवि च यत्प्रतिष्ठितं देवाद्युपभोगलक्षणं तस्यापि प्राण एवेशिता रक्षिता। अतो मातेव पुत्रानस्मान्रक्षस्व पालयस्व। त्वन्निमित्ता हि [3]ब्राह्म्यः [4]क्षात्त्रियाश्च श्रियस्तास्त्वं श्रीश्च श्रियश्च प्रज्ञां च त्वत्स्थितिनिमित्तां विधेहि नो विधत्स्वेत्यर्थः। इत्येवं सर्वात्मतया वागादिभिः प्राणैः स्तुत्या गमितमहिमा प्राणः प्रजापतिरत्तेत्यवधृतम् ॥ १३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्य-श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ प्रश्नोपनिषद्भाष्ये द्वितीयप्रश्नः ॥ २ ॥

ब्राह्म्य इति। ऋगादिमन्त्ररूपा ब्राह्म्यः श्रियः। ऋचः सामानि यजूंषि। सा हि श्रीरमृता सतामिति श्रुतेः। क्षात्र्यः प्रसिद्धा धनाद्यैश्वर्यरूपाः। अस्मिन्प्रश्ने निर्धारितं गुणं संगृह्याऽऽह—इत्येवमिति। इदं वरिष्ठत्वादेरुपलक्षणम् ॥१३॥

इत्यानन्दज्ञानविरचितप्रश्नोपनिषद्भाष्यटीकायां द्वितीयः प्रश्नः ॥२॥

बहुत क्या कहें, इस लोक में यह जो कुछ उपभोग साधन हैं, वे सब प्राण के ही अधीन हैं और तीसरे स्वर्गलोक में भी देवता आदि का जो उपभोग साधन है, उसका भी रक्षक प्राण ही है। अतः जैसे माता पुत्रों की रक्षा करती है, वैसे ही तू हमारा पालन कर। ब्राह्मण और क्षत्रियों की विभूतियाँ भी तेरे ही अधीन हैं, वह श्री और आप की स्थिति के निमित्त से होने वाली प्रज्ञा तू हमें प्रदान कर, यह इसका भावार्थ है।

इस प्रकार वागादि प्राणों के स्तुति करने से जिसकी महिमा सर्वात्मभाव दिखलायी गयी, वह प्राण ही प्रजापति और भोक्ता है, ऐसा निश्चय हुआ ॥ १३ ॥

---

१. इति स्तुवन्तीति पूर्वेणान्वयः। २. इदमिति प्रत्यक्षवाचिवशादाह—अस्मिँल्लोक इति। ३. ब्राह्म्य इति—ब्राह्मोऽजाताविति टिलोपः। ४. क्षात्त्रिया इति—अत्र क्षात्र्य इत्येव पाठष्टीकानुरोधी न्याय्यश्च। यथाश्रुते तु स्वार्थण्यन्तात्क्षात्रशब्दादेकदेशविकृतमनन्यवदिति क्षत्त्राद्घः। श्रियां च जन्यत्वेनापत्यत्वविवक्षेत्युपपत्तिरित्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ तृतीयः प्रश्नः

अथ हैनं कौसल्यश्चाऽऽश्वलायनः पप्रच्छ । भगवन्कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥१॥

तत्पश्चात् अश्वल के पुत्र कौसल्य ने पिप्पलाद से पूछा—हे भगवन् ! यह प्राण किस कारण विशेष से उत्पन्न होता है और किस व्यापार विशेष से किस शरीर में आता है तथा शरीर में प्रविष्ट अपने को विभक्त कर किस प्रकार स्थित होता है फिर शरीर से उत्क्रमण क्यों करता है और किस प्रकार बाह्य तथा आभ्यन्तर शरीर को धारण करता है ॥१॥

अथ हैनं कौसल्यश्चाऽऽश्वलायनः पप्रच्छ । प्राणो ह्येवं प्राणैर्निर्धारिततत्त्वैरुपलब्धमहिमाऽपि संहतत्वात्स्यादस्य कार्यत्वमतः पृच्छामि । भगवन्कुतः कस्मात्कारणादेष यथावधृतः प्राणो जायते । जातश्च कथं केन वृत्तिविशेषेणाऽऽयात्यस्मिञ्शरीरे । किंनिमित्तकमस्य शरीरग्रहणमित्यर्थः । प्रविष्टश्च शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य प्रविभागं कृत्वा कथं केन प्रकारेण प्रातिष्ठते प्रतितिष्ठति । केन वा वृत्तिविशेषेणास्माच्छरीरा-

---

एवं प्रजापतित्वात्तृत्वादिगुणजातं निर्धार्य प्राणस्योत्पत्त्यादि निर्धारयंस्तदुपासनां विधातुं प्रश्नान्तरमवतारयति—अथेति । वैदर्भिप्रश्नानन्तरमित्यर्थः । प्राणैरिति । यैर्वागादिप्राणैराकाशादिभिश्च प्राणस्य तत्त्वमुपलब्धं तैरित्यर्थः । प्राणस्य पूर्वोक्तमहिमत्वादेवोत्पत्तिशङ्काभावात्कुत इति प्रश्नानुपपत्तिमाशङ्क्याऽऽह—अपि संहतत्वादिति । अनेकात्मकत्वात्सावयत्वादित्यर्थः । शरीरग्रहणमिति । शरीरप्रवेश इत्यर्थः । प्रातिष्ठत इति । आङ्प्रश्लेषाद्दीर्घत्वम् ॥१॥

तीसरा प्रश्न

प्राण के सर्गादि प्रकार का प्रश्न

तत्पश्चात् उन पिप्पलाद मुनि से अश्वल के पुत्र कौशल्य ने पूछा कि पूर्वोक्त प्रकार से चक्षुरादि इन्द्रियों के द्वारा जिसका स्वरूप निश्चित हो गया है और उसी से जिसकी महिमा का भी अनुभव हो चुका है, उस प्राण को संघात होने के कारण कार्यरूप ही होना चाहिये । इसीलिये हे भगवन् ! मैं पूछता हूँ कि जैसा पहले निश्चित हो चुका है, वैसा यह प्राण किस कारण विशेष से उत्पन्न होता है और उत्पन्न हुआ वह प्राण किस व्यापार विशेष से इस शरीर में आता है अर्थात् इसके शरीर ग्रहण का निमित्त क्या है और शरीर में प्रविष्ट हुआ अपने आपको अनेकों भाग में विभक्त कर किस प्रकार से उसमें प्रतिष्ठित होता है और किस व्यापार द्वारा पुनः इस शरीर से निकल जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान्पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥२॥

आत्मन एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनाऽऽयात्यस्मिञ्शरीरे ॥३॥

उससे आचार्य पिप्पलाद ने कहा—तू प्राणादि के उत्पत्ति विषयक अत्यन्त कठिन प्रश्न पूछता है फिर भी तू बड़ा ब्रह्मवेत्ता है। अतः मैं प्रसन्न होकर तेरे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ॥ २॥

आत्मा से यह प्राण उत्पन्न होता है। जैसे लोक में मनुष्य शरीर से छाया उत्पन्न होती है, वैसे ही इस आत्मा में प्राण व्याप्त है तथा यह मनोजन्य संकल्पादि से इस शरीर में आता है॥ ३॥

दुत्क्रमत उत्क्रामति। कथं बाह्यमधिभूतमधिदैवतं चाभिधत्ते धारयति कथमध्यात्ममिति॥ १॥

एवं पृष्टस्तस्मै स होवाचाऽऽचार्यः। प्राण एव तावद्दुर्विज्ञेयत्वाद्विषमप्रश्नार्हस्तस्यापि जन्मादि त्वं पृच्छस्यतोऽतिप्रश्नान्पृच्छसि। ब्रह्मिष्ठोऽसीत्य[1]तिशयेन त्वं ब्रह्मविदतस्तुष्टोऽहं तस्मात्ते तुभ्यं ब्रवीमि यत्पृष्टं शृणु॥ २॥

आत्मनः परस्मात्पुरुषादक्षरात्सत्यादेष उक्तः प्राणो जायते। कथमित्यत्र दृष्टान्तः।

विषमेति। विषमं दुर्घटं यथा तथा प्रश्नार्ह इत्यर्थः। अतिप्रश्नानिति। त्वदन्यैषां प्रश्नानतिक्रान्तानन्यदीयप्रश्नागोचरान्सूक्ष्मप्रश्नान्प्रष्टव्यार्थानित्यर्थः। अतिशयेनेति। अपरब्रह्मापेक्षयाऽतिशयितमुख्यब्रह्मविदसि त्वमिति प्रोत्साहार्थं स्तौतीति भावः॥२॥

"दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः, अक्षरात्परतः परः" "एतस्माज्जायते प्राणः" इति मन्त्रावत्र संवादयितुं तद्गतविशेषणान्याह—परस्मादिति। अत्र दृष्टान्त इति। तस्यानृतत्वार्थं दृष्टान्त उच्यत

है एवं अधिभूत और अधिदैव विषयों को कैसे धारण करता है तथा देह, इन्द्रिय, अध्यात्म को कैसे धारण करता है? यहाँ पर 'धारयति' यह क्रिया शेष है (जिसका अध्याहार कर अर्थ करना चाहिये॥ १॥

महर्षि पिप्पलाद का उत्तर

इस प्रकार पूछने पर उस आचार्य ने उस कौशल्य से कहा—पहले तो दुर्विज्ञेय होने के कारण प्राण ही विषम विषय का प्रश्न है, उस पर भी तू तो उसकी उत्पत्ति आदि की बात पूछता है। अतः तू अतिप्रश्न पूछ रहा है। इससे जान पड़ता है कि तू अत्यन्त ब्रह्मवेत्ता है। इसीलिये तुझ से सन्तुष्ट हुआ मैं तुझे तेरे प्रश्न का उत्तर देता हूँ, तू सुन॥ २॥

---

१. स्वविषयकज्ञानवत्त्वसम्बन्धेनातिशयेन ब्रह्मवानितीष्ठनि विन्मतोर्लुगित्याशयेनाह—अतिशयेन त्वं ब्रह्मविदिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते एतान्ग्रा-
मानेतान्ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण
इतरान्प्राणान्पृथक्पृथगेव संनिधत्ते ॥४॥**

जैसे राजा ही, "तुम इन ग्रामों में और तुम इन ग्रामों में निवास करो' इस प्रकार अधिकारियों को नियुक्त करता है, वैसे ही यह मुख्य प्राण भी अन्य इन्द्रियों को इनके स्थानों के अनुसार पृथक्-पृथक् नियुक्त करता है ॥ ४ ॥

यथा लोक एषा पुरुषे शिरःपाण्यादिलक्षणे निमित्ते छाया नैमित्तिकी जायते तद्वदेतस्मिन्ब्रह्मण्येतत्प्राणाख्यं छायास्थानीयमनृतरूपं तत्त्वं सत्ये पुरुष आततं समर्पितमित्येतत् छायेव देहे। मनोकृतेन मनःसंकल्पेच्छादिनिष्पन्नकर्मनिमित्तेनेत्येतद्वक्ष्यति हि पुण्येन पुण्यमित्यादि। तदेव सक्तः सह कर्मणेति च श्रुत्यन्तरात्। आयात्यागच्छत्यस्मिञ्शरीरे ॥ ३ ॥

यथा येन प्रकारेण लोके राजा सम्राडेव ग्रामादिष्वधिकृतान्विनियुङ्क्ते। कथम्। एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठस्वेति। एवमेव यथा दृष्टान्तः। एष मुख्य प्राण इतरा-

---

इत्यर्थः। छायेति। प्रतिबिम्बादिरूपेत्यर्थः। एतस्मिन्निति। प्रकृते जनक आत्मनि ब्रह्मणीत्यर्थः। कथमायातीत्यस्योत्तरमाह—मनोकृतेनेति। संधिरार्षः। तदेव सक्त इति। अस्य कर्मणो मनो यस्मिन्फले निषक्तं संसक्तमासक्तः संस्तदेव फलं कर्मणा सहैतीति श्रुतौ च शरीरग्रहणं कर्मसाध्यमुक्तमित्यर्थः ॥३॥

आत्मानं वा प्रविभज्येत्यस्योत्तरं दृष्टान्तेनाऽऽह—यथेति। इतरानिति। इतरांश्चक्षुरादीन्यथास्थानमक्ष्यादिगोलकस्थाने संनिधत्ते संनिधापयति। आत्मभेदान्मुख्यप्राणस्य वृत्तिभेदान्प्राणापाना-

---

प्राण की उत्पत्ति

यह पूर्वोक्त प्राण सत्य अक्षर परमात्म पुरुष से उत्पन्न होता है। कैसे ? इस पर यह दृष्टान्त है—जिस प्रकार लोक में हस्त, पादादि अवयव वाले पुरुष के रहने पर उससे होने वाली छाया उत्पन्न होती है। ठीक वैसे ही इस सत्य स्वरूप ब्रह्म में छाया स्थानीय यह मिथ्या तत्त्व व्याप्त है। छाया के समान मन के संकल्प और इच्छादि से निष्पन्न कर्म के कारण ही यह प्राण इस शरीर में आता है। ऐसा ही "पुण्य से पुण्यलोक को ले जाता है" इत्यादि श्रुति से आगे कहेंगे। यही बात "कर्मफल में आसक्त पुरुष अपने कर्म के सहित (तदनुरूप फल को प्राप्त करता है") इस अन्य श्रुति से भी कही गयी है ॥ ३ ॥

इन्द्रियों का अधिष्ठाता प्राण

जिस प्रकार लोक में राजा ही अधिकारियों को ग्रामादि के अधिकार पद पर नियुक्त करता है। कैसे ? कि तुम इन-इन ग्रामों में निवास करो। जैसे यह दृष्टान्त है, ठीक वैसे ही यह मुख्य प्राण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः। एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥५॥

यह प्राण गुदा और मूत्रेन्द्रिय में अपान को (मलमूत्र त्याग के लिये नियुक्त करता है) एवं मुख तथा नासिका से निकलता हुआ चक्षु और श्रोत्र में स्वयं सम्राट् रूप से स्थित रहता है और मध्य में समान रहता है। यह समान वायु ही खाये-पीये हुये अन्न जल को शरीर में सर्वत्र समभाव से ले जाता है। उसी जठराग्नि से शिरोवर्ती ये सात ज्वालाएँ उत्पन्न होती हैं ॥ ५ ॥

न्प्राणांश्चक्षुरादीनात्मभेदांश्च पृथक्पृथगेव यथास्थानं संनिधत्ते विनियुङ्क्ते ॥ ४ ॥

तत्र विभागः—

पायूपस्थे पायुश्चोपस्थश्च पायूपस्थं तस्मिन्। अपानमात्मभेदं मूत्रपुरीषाद्यपनयनं कुर्वंस्तिष्ठति संनिधत्ते। तथा चक्षुःश्रोत्रे चक्षुश्च श्रोत्रं च चक्षुश्रोत्रं तस्मिंश्चक्षुःश्रोत्रे। मुखनासिकाभ्यां च मुखं च नासिका च ताभ्यां मुखनासिकाभ्यां च निर्गच्छन्प्राणः स्वयं सम्राट्स्थानीयः प्रातिष्ठते प्रतितिष्ठति। मध्ये तु प्राणापानयोः स्थानयोर्नाभ्याम्। समानोऽशितं पीतं च समं नयतीति समानः। एष हि यस्माद्यदेतद्धुतं भुक्तं पीतं चाऽऽत्माग्नौ प्रक्षिप्तमन्नं समं नयति तस्मादशितपीतेन्धनादग्नेरौदर्याद्धृदयदेशं

दीन्पाद्यत्रादिषु नियुङ्क्त इति। अत्र श्रुत्या नेत्रादीनां चक्षुरादिस्थानानां स्पष्टत्वात्तानि नोक्तानीति द्रष्टव्यम् ॥४॥

यः कुर्वंस्तिष्ठति तं संनिधत्ते विनियुङ्क्त इत्यर्थः। मध्य इति। प्राणापानयोर्मध्ये या नाभिस्तस्यां समानः प्रतितिष्ठतीत्यन्वयः। समानशब्दार्थमुक्तं श्रुत्यारूढं करोति—एष हीति। आत्माग्नाविति। आत्मनि शरीरेऽग्निर्जाठराग्निस्तस्मिन्नित्यर्थः। एवं हुतपदबलादन्नस्य हविष्ट्वं जाठराग्नेराहवनीयत्वं प्रक्षेपस्य होमत्वं चोक्त्वा शीर्षण्यसप्तद्वारान्निर्गतानां ज्ञानानामर्चिष्ट्वं वक्तुं तस्मादेता इति वाक्यं व्याचष्टे—तस्मादिति। प्राप्तादिति। अग्नेरौदर्याद्धेतोः प्राप्तपरिपाकादन्नरसादन्ननाडीद्वारा

भी अपने ही विशेषरूप नेत्रादि अन्य प्राणों को पृथक्-पृथक् उनके स्थानों के अनुसार नियुक्त करता है ॥ ४ ॥

पंच प्राण की स्थिति

वहाँ पर विभाग इस प्रकार है—यह प्राण अपना ही विशेष रूप अपान को गुदा और मूत्रेन्द्रिय में मूत्र और मल आदि को निकालते हुए नियुक्त करता है और मुख एवं नासिका इन दोनों से निकलता हुआ सम्राट् स्थानीय यह प्राण स्वयं चक्षु और श्रोत्र में प्रतिष्ठित रहता है एवं प्राण और अपान के स्थानों के मध्य नाभि प्रदेश में समान रहता है। खाये और पीये हुए पदार्थों को समीकरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥६॥

यह जीवात्मा हृदयाकाश में स्थित है, इस हृदयेश में एक सौ एक (प्रधान) नाड़ियाँ हैं। उनमें से प्रत्येक प्रधान नाड़ी की सौ-सौ शाखाएँ हैं और फिर उन सौ भेदों में से बहत्तर-बहत्तर हजार प्रति शाखा नाड़ियाँ हैं। इन सभी नाड़ियों में व्यान वायु विचरता है ॥ ६ ॥

प्राणादेताः सप्तसंख्याका अर्चिषो दीप्तयो निर्गच्छन्त्यो भवन्ति शीर्षण्य प्राणद्वारा दर्शनश्रवणादिलक्षणरूपादिविषयप्रकाशा इत्यभिप्रायः ॥ ५ ॥

हृदि ह्येष पुण्डरीकाकारमांसपिण्डपरिच्छिन्ने हृदयाकाश एष आत्माऽऽत्मना संयुक्तो लिङ्गात्मा, अत्रास्मिन्हृदय एतदेकशतमेकोत्तरशतं संख्यया प्रधाननाडीनां

देहं व्याप्तुं नाडीस्थानं हृदयं प्राप्तादन्नरसादिति शेषः। दर्शनद्वयं श्रवणद्वयं घ्राणद्वयं मुखं चैकं रस-(न)मिति सप्तार्चिषः। जाठराग्निपाकजन्यान्नरसबलेन दर्शनादीनां प्रवृत्तेस्तेषु तदर्चिष्ट्वरोप इत्यर्थः ॥५॥

व्यानस्य नाडीरूपं स्थानं दर्शयितुं नाडीनामुत्पत्तिस्थानं वक्तुमाह—हृदित्यादिना। हृदयस्य लिङ्गात्मस्थानत्वोक्तेः प्रयोजनं तु केचिद्योगिनो नाभिकन्दस्य नाड्युत्पत्तिस्थानत्वं वदन्ति तन्निराकरणं, तत्रैव लिङ्गात्मनः संचरणार्थ नाड्यः। नाडीभिः प्रत्यवसृप्येत्यादिश्रुतेः। ततश्च लिङ्गात्मनो हृदयस्थानत्वे तत्संचारमार्गभूतनाडीनामपि तदेवोत्पत्तिस्थानमन्यथा प्रदेशान्तरस्थनाडीनां तन्मार्गत्वायोगाद्द्वासप्ततिसहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्त इति श्रुतेश्चेति। [1]'लिङ्गशरीरस्याऽऽत्मत्वमात्मोपाधित्वेन तद्योगादित्याह—आत्मना संयुक्त इति। यस्माल्लिङ्गात्मा हृदि वर्तते तत्संचारमार्गभूतनाडीनामपि तदेव स्थानमित्याह—अत्रेति। नाडीनां शरीरविधारकत्वेन प्रसिद्धत्वं वक्तुमेतदिति

करने के कारण जिसे समान कहते हैं क्योंकि यह समान वायु ही खाये और पीये देहान्तवर्ती जठराग्नि में डाले हुए अन्न को सम्पूर्ण शरीर में पहुँचाता है। इसीलिये खान-पानरूप इंधन के द्वारा हृदय देश में प्राप्त जठराग्नि से ये मस्तक देश में रहने वाली सात दीप्तियाँ निकलती हैं। तात्पर्य यह है कि रूपादि विषयों को देखना-सुनना आदि प्रकाश प्राण से ही हुआ करते हैं ॥ ५ ॥

सूक्ष्म देह की स्थिति

आत्मा के सहित यह सूक्ष्म शरीर अर्थात् जीवात्मा कमल के समान आकार वाले मांस-पिण्ड से परिच्छिन्न आकाश में रहता है। इसी हृदयाकाश में एक सौ एक प्रधान नाड़ियाँ हैं, उनमें से प्रत्येक प्रधान नाड़ियों के सौ-सौ भेद हैं, पुनः प्रधान नाड़ी के सौ-सौ भेद में से प्रत्येक में बहत्तर-वहत्तर हजार

---

१. लिङ्गशरीरस्येत्यादि। यथा—वह्न्युपाधेरयोगोलकादेरग्नियोगेनाग्नित्वव्यवहारस्तद्वदिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति

तथा (उन एक सौ एक नाड़ियों में से सुषुम्ना की ऊर्ध्वगामिनी) एक नाड़ी द्वारा ऊपर की ओर जाने वाला उदान वायु (जीवात्मा को) शास्त्रोक्त कर्म से देवादि पुण्यलोक को प्राप्त कराता है

भवतीति । तासां शतं शतमेकैकस्याः प्रधाननाड्या भेदाः । पुनरपि द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिर्द्वे द्वे सहस्रे अधिके सप्ततिश्च सहस्राणि । सहस्राणां द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि प्रतिप्रतिनाडीशतं संख्यया प्रधाननाडीनां सहस्राणि भवन्ति । आसु नाडीषु व्यानो वायुश्चरति । व्यानो व्यापनात् । आदित्यादिव रश्मयो हृदयात्सर्वतोगामिनीभिर्नाडीभिः सर्वदेहं संव्याप्य व्यानो वर्तते । संधिस्कन्धमर्मदेशेषु विशेषेण प्राणापानवृत्त्योश्च मध्य उद्भूतवृत्तिर्वीर्यवत्कर्मकर्ता भवति ॥ ६ ॥

विशेषणम् । तस्य स्पष्टत्वाद्भाष्ये न व्याख्यातम् । एकैकस्या नाड्याः शाखानाड्यः शतं शतं भवन्तीत्याह—तासामिति । ततश्च शतोत्तरमयुतं शाखानाड्य इत्यर्थः । शाखानाडीनां च प्रत्येकं द्व्यधिकसप्ततिसहस्राणि प्रतिशाखानाड्यः सन्तीत्याह—पुनरपीति । सप्ततिरितिपदस्य संख्याप्रधानत्वे सहस्राणीत्यस्य तेन सामानाधिकरण्यायोगात्षष्ठयन्ततया व्याचष्टे—सहस्राणामिति । प्रतिशाखेति । शाखाभ्यो निर्गता अल्पशाखाः प्रतिशाखाः । द्वासप्ततिरित्यत्र वीप्सार्थमाह—प्रतिप्रतीति । प्रतिप्रतिनाडीशतमित्यनन्तरमेकैकस्या इत्यनुषङ्गः । तथा च प्रतिप्रतिनाडीशतमेकैकस्या नाड्याः प्रतिशाखानाडीनां द्वासप्ततिसहस्राणि भवन्तीत्यर्थः । तथा च मूलशाखाप्रतिशाखानाड्यो मिलित्वा द्वासप्ततिकोयो द्वासप्ततिलक्षाणि दशसहस्रं च शतद्वयमेका च भवन्तीति द्रष्टव्यम् । एवं नाडीरुक्त्वा व्यानस्य तत्स्थानत्वमाह—आस्विति । सूक्ष्मासु नाडीषु विद्यमानस्य व्यानस्य कथं व्यापकत्वमित्याशङ्क्य नाडीनां सर्वदेहव्याप्तेस्तत्स्थस्यापि व्यानस्य तद्द्वारा व्याप्तिरित्याह—आदित्यादिवेति । यथाऽऽदित्याद्विनिर्गत्य रश्मयः सर्वतो गतास्तथा हृदयात्सर्वतोगामिन्यो नाड्यस्ताभिरिति योज्यम् । सामान्येन सर्वशरीरव्याप्तावपि विशेषस्थानमाह—संधीति । प्राणेति । उच्छ्वासनिश्वासयोः प्राणापानवृत्त्योरभावे व्यानवृत्तिरुद्भवतीत्यर्थः । वीर्यवदिति । अथ यः प्राणापानयोः संधिः स व्यान इत्युक्त्वा यानि वीर्यवन्ति कर्माणि बलवता पुरुषेण साध्यानि धनुरायमनादीनि तान्यप्र.णन्ननपानन्करोतीति श्रुत्यन्तरोक्तेरित्यर्थः ॥६॥

प्रतिशाखा नाड़ियाँ हैं (जो सब मिला के ७२७२१०२०१ बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार, दो सौ एक नाड़ियाँ होती हैं) इन सभी नाड़ियों से व्यान वायु विचरता रहता है। व्यापक होने से उसे व्यान कहते हैं। सूर्य से जैसे किरणें निकलती हैं, वैसे ही हृदय से निकलकर सभी ओर फैली हुई नाड़ियों द्वारा व्यान वायु सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त कर रहता है। सन्धि स्थान, स्कन्ध प्रदेश और मर्म स्थलों से एवं विशेषरूप से प्राण-अपान वृत्तियों के मध्य में अभिव्यक्त व्यापार वाला यही प्राण वायु परा कर्म युक्त कर्मों का कर्ता होता है॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥७॥

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥८॥

और शास्त्र निषिद्ध पाप कर्म से तिर्यगादि पापमय लोक को ले जाता है, एवं पुण्य-पाप दोनों प्रकार के मिश्रित कर्मों द्वारा उसे मनुष्य लोक में ले जाता है ॥ ७ ॥

निश्चय आदित्य ही अधिदैवत बाह्य प्राण है। यह नेत्रस्थ चाक्षुष इस आध्यात्मिक प्राण पर अनुग्रह करता हुआ प्रकाशित होता है। पृथिवी में जो देवता है, वह पुरुष के अपान वायु को अपने अधीन करके रहता है। इन दोनों के मध्यवर्ती आकाशस्थ वह समान वायु है एवं इनसे भिन्न व्यापक वायु ही व्यान है ॥ ८ ॥

अथ या तु तत्रैकशतानां नाडीनां मध्य ऊर्ध्वगा सुषुम्नाख्या नाडी तयैकयोर्ध्वः सन्नुदानो वायुरापादतलमस्तकवृत्तिः संचरन्पुण्येन कर्मणा शास्त्रविहितेन पुण्यं लोकं देवादिस्थानलक्षणं नयति प्रापयति। पापेन तद्विपरीतेन पापं नरकं तिर्यग्योन्यादिलक्षणम् उभाभ्यां समप्रधानाभ्यां पुण्यपापाभ्यामेव मनुष्यलोकं नयतीत्यनुवर्तते ॥ ७ ॥

आदित्यो ह वै प्रसिद्धो ह्यधिदैवतं बाह्यः प्राणः स एष उदयत्युद्गच्छति। एष

इदानीमुदानस्य स्थानं वदन्केनोत्क्रमत इत्यस्योत्तरमाह—या त्विति। उभाभ्यां समप्रधानाभ्यामिति। अनेन पुण्याधिक्ये देवलोकं पापाधिक्ये नरकलोकं नयतीति 'पूर्वं[1] व्याख्यातं भवति ॥७॥ कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममित्यस्योत्तरमाह—आदित्य इति। या देवता प्रसिद्धेति।

मरणोत्तर प्राणोत्क्रमण का प्रकार

उन एक सौ एक नाड़ियों के मध्य में से जो सुषुम्ना नाड़ी ऊर्ध्वगामिनी है, केवल उसी के द्वारा ऊपर की ओर वहने वाला, पैर से मस्तक पर्यन्त संचरण करने वाला, उदान वायु है। जो शास्त्र विहित पुण्यकर्मों के फल स्वरूप देवादि स्थानरूप पवित्रलोक को ले जाता है और उसके विपरीत पाप कर्म के फलस्वरूप तिर्यक् योनि आदिरूप नरक लोक को ले जाता है और सामान्यत: पुण्य-पाप दोनों कर्मों के फलस्वरूप वही उदान वायु जीव को मनुष्य लोक में ले जाता है। यहाँ पर 'नयति' इस क्रिया की अनुवृत्ति सर्वत्र होती है ॥ ७ ॥

अधिदैवत रूप बाह्य प्राणादिकावर्णन

यह प्रसिद्ध आदित्य ही अधिदैवत स्वरूप बाह्य प्राण है, वही यह ऊपर की ओर जाता है

---

१. पूर्वमिति—पुण्येनेत्यादिवचनमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ह्यनमाध्यात्मिकं चक्षुषि भवं चाक्षुषं प्राणं प्रकाशेनानुगृह्णानो रूपोपलब्धौ चक्षुष आलोकं कुर्वन्नित्यर्थः। तथा पृथिव्यामभिमानिनी या देवता प्रसिद्धा सैषा पुरुषस्यापानमपानवृत्तिमवष्टभ्याऽऽकृष्य वशीकृत्याध एवापकर्षणेनानुग्रहं कुर्वती वर्तत इत्यर्थः। अन्यथा हि शरीरं गुरुत्वात्पतेत्सावकाशे वोर्ध्वगच्छेत्। यदेतदन्तरा मध्ये द्यावापृथिव्योर्य आकाशस्तत्स्थो वायुराकाश उच्यते। मञ्चस्थवत्। स समानः समानमनुगृह्णानो वर्तत इत्यर्थः। समानस्यान्तराकाशस्थत्वसामान्यात्। सामान्येन च यो बाह्यो वायुः स व्याप्तिसामान्या-

---

अग्निदेवता पृथिव्येव यस्याऽऽयतनमग्निर्लोक इति श्रुतेरग्निसंबद्धा(न्धा?)वगमादित्यर्थः। अवष्टभ्येत्यनन्तरमध्याहारेण वाक्यं पूरयति—अध एवापकर्षणेनेति। [1]वृत्तार्थं स्तम्भादेरूर्ध्वमुखेन निखातस्य परितो [2]विद्यमानरज्जुभिरध एवापकर्षणेन पतनाभाववदध एवापकर्षणेन शरीरस्य पतनाभावः सिध्यतीत्यर्थः। अनुग्रहमिति। शरीरधारणलक्षणमित्यर्थः। अन्यथेति। [3]पृथिवीदेवताया विधारणाकरणे गुरुत्वादपानेनाध आकर्षणाच्च सावकाशे भूम्यादिपतनप्रतिबन्धकाभावस्थले पतेदित्यर्थः। अन्तरा यदाकाश इति वाक्यं व्याचष्टे—यदेतदिति। यदिति क्लीवत्वं छान्दसमित्याह—य आकाश इति। मञ्चस्थवदिति। मञ्चाः क्रोशन्तीत्यत्र मञ्चशब्देन मञ्चस्था यथा लक्ष्यन्ते तथाऽऽकाशब्देन तत्स्थो वायुर्लक्ष्यत इत्यर्थः। स समान इति। सामानाधिकरण्यमनुग्राह्यानुग्राहकयोरभेदोपचारादित्याह—समानमनुगृह्णान इति। एवमुत्तरत्राप्यनुग्रहे हेतुमाह—समानस्येति। शरीरान्तराकाशस्थत्वं समानस्य द्यावापृथिव्यन्तराकाशस्थत्वं बाह्यवायोरित्यन्तराकाशस्थत्वं तयोस्तुल्यमित्यर्थः। वायुर्व्यान इत्यत्र त्व[6]न्तराकाशस्थत्वविशेषरहितं वायुसामान्येन समुच्चीयत इति न पूर्वमिव इत्याह—सामान्येनेति ॥८॥

और वही इस चाक्षुषरूप आध्यात्मिक प्राण को अपने प्रकाश से अनुगृहीत करता हुआ रूप की उपलब्धि में नेत्र को प्रकाश देता रहता है। चक्षु में रहने से उसे चाक्षुष कहा गया है तथा पृथिवी में जो प्रसिद्ध उसका अभिमानी देवता है, वह पुरुष की अपानवृत्ति को अपनी ओर खींचकर उसे अपने अधीन कर लेता है। अभिप्राय यह है कि वह देवता नीचे की ओर अपानवृत्ति को आकृष्ट कर अनुग्रह करता हुआ स्थित रहता है; अन्यथा शरीर अपने भारीपन से गिर जाता या अवकाश मिलने के कारण फूल जाता। इस द्यु लोक और पृथिवी के मध्य में जो आकाश है, उसमें रहने वाला वायु ही आकाश पद लक्ष्य है, 'मञ्चा क्रोशन्ति' यहां पर अजहल्लक्षणा द्वारा मंच का अर्थ मञ्चस्थ पुरुष किया जाता है, ठीक ऐसे ही आकाश शब्द का लक्षणा द्वारा उसमें स्थित रहने वाला वायु अर्थ किया गया है। वह आधिदैविक समान वायु आध्यात्मिक समान वायु के ऊपर अनुग्रह करता हुआ स्थित रहता है क्योंकि

---

१. ननु पतनाभावस्तु तदनुकूलप्रयत्नादेव न तत्र पृथिव्याकर्षणं हेतुरत आह—सावकाशे वेत्यादि। २. उद्गच्छेदिति—न चेदाकर्षेदधस्तात्पृथिवी कुतो नायमुद्गच्छेदुद्गन्तुमभिलष्यन्नपीति भावः। यद्वा उद्गच्छेदिति सततोर्ध्वगाम्युदानवृत्तबलादूर्ध्वं गच्छेदित्यर्थः। ३. वृत्तार्थमिति—'वृत्तम् पद्ये चरित्रे' इत्यमरः। तथा च केचिन्नटाः मिथोबद्धवंशयुग्मद्वयं नातिदूरे भूमौ निखाय तदुपरि दृढां रज्जुमातन्य तत्र नर्तनादि कुर्वन्तीति प्रसिद्धं तादृशं नटादिचरित्रं वृत्त तदर्थमित्यर्थः। ४. विद्यमानेति—अत्र बध्यमानेति सुगमः पाठः। ५. पृथिवीदेवताया इति— कर्तरि षष्ठी देवतयेति वा पाठः। ६. अन्तराकाशस्थत्वविशेषरहितं वायुसामान्यं समुच्चीयत इति पाठान्तरम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेजो ह वाव उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः ।
पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि संपद्यमानैः ॥९॥

लोक प्रसिद्ध सूर्य तेज ही उदान है। अतः जिसकी शारीरिक ऊष्मा शान्त हो जाती है, वह मन में विलीन हुई वागादि इन्द्रियों के सहित देहान्तर को प्राप्त होती है ।९॥

द्व्यानो व्यानमनुगृह्णानो वर्तत इत्यभिप्रायः ॥ ८ ॥

यद्बाह्यं ह वै प्रसिद्धं सामान्यं तेजस्तच्छरीर उदान उदानं वायुमनुगृह्णाति [1]स्वेन प्रकाशेनेत्यभिप्रायः । यस्मा[2]त्तेजःस्वभावो बाह्यतेजोनुगृहीत उत्क्रान्तिकर्ता तस्माद्यदा

तेजो ह वा इति वाक्यं व्याचष्टे—यद्बाह्यमिति । पूर्वमादित्यात्मकं विशेषतेज उक्तमत्र तेजः सामान्यमुच्यत इति न पौनरुक्त्यमित्याह—सामान्यं तेज इति । एवमादित्यादिना रूपेण मुख्यप्राणस्य प्राणापानसमानोदानव्यानुग्राहकत्वोक्त्याऽध्यात्मं प्राणादिवृत्त्यनुग्राहकत्वमुक्तम् । आदित्याग्न्याकाशसामान्यवायुतेजोरूपी सन्बाह्यमधिदैवमादित्यादिकं धारयतीत्युक्तम् । तद्रूपेणावस्थानमेव तद्धारणं प्राणापानाद्यनुग्रहेण चक्षुराद्यनुग्रहोक्तेस्तद्द्वारा [3]तद्ग्राह्याधिभूतविधारकत्वमुक्तम् । स प्राणस्तच्चक्षुः सोऽपानः सा वाक्स व्यानस्तच्छ्रोत्रं स समानस्तन्मनः स उदानः स वायुरिति श्रुत्यन्तरे चक्षुरादीनां प्राणाद्यात्मत्वोक्तेश्चक्षुराद्यनुग्राहकत्वोक्त्या चक्षुरादिरूपाध्यात्मविधारकत्वं चोक्तमिति कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममित्यस्योत्तरमुक्तमिति द्रष्टव्यम् । तेजस उदानवाय्वनुग्राहकत्वं व्यतिरेकप्रदर्शनेन साधयति—यस्मादिति । यस्मात्तेजः स्वभाव उत्क्रान्तिकृदप्युदानवायुर्बाह्यतेजोनुगृहीतः सन्नेव शरीरे वर्तते तस्मा[4]ज्जीवजीवनहेतुकर्मोपरमे बाह्यतेजोनुग्रहाभावेनोपशान्ततेजा मुमूर्षुर्भवतीत्यन्वयः ।

मध्याकाश में स्थित होना रूप समान बाह्य वायु की भाँति समान वायु के लिये साधारण है और सामान्यरूप से जो बाह्य वायु है, वह व्यापकता में शरीरान्तर्वर्ती व्यान वायु के समान होने के कारण व्यान है। इसीलिये आध्यात्मिक व्यान वायु पर अनुग्रह करता हुआ विद्यमान है ॥ ८ ॥

जो आदित्य नामक प्रसिद्ध बाहर सामान्य तेज है, वह शरीर में उदानरूप है। तात्पर्य यह है कि वह तेज अपने प्रकाश से आध्यात्मिक उदान वायु को अनुगृहीत करता रहता है, क्योंकि उत्क्रमण करने वाला उदान वायु तेजः स्वभाव है और वह बाह्य तेज से अनुगृहीत होता रहता है। इसीलिये जिस समय लौकिक पुरुष के शरीर में स्वाभाविक तेज शान्त हो जाता है, उस समय उस उपशान्त

---

१. स्वेन प्रकाशेनेति—स्वकीयौष्ण्येनेति यावत् । औष्ण्येन हि तेजोऽनुग्राह्यत्वं वायोर्देहे वातप्रकोपव्यथायां अग्न्याद्यौष्ण्योपधानेन प्रशमदर्शनात्प्रसिद्धमित्यवधेयम् । २. तेजःस्वभाव इति—उदानस्य तेजःस्वरूपत्वं तु तेजो ह वा उदान इति श्रुत्या तेजोऽनुग्राह्यत्वोक्त्यैवावगन्तव्यं प्रसिद्धं हि तैजसस्य चक्षुषः सूर्यादितेजोऽनुग्राह्यत्वमिति वाय्वात्मनोऽप्युदानस्य तेजःस्वभावत्वं पञ्चीकरणप्रक्रियया तेजोंशप्राचुर्यमाश्रित्योपपादनीयमित्यलम् । पञ्चीकरणप्रक्रिययेति प्राणस्यापञ्चीकृतकार्यत्वे तु भाष्ये तेजःस्वभाव इत्यस्य व्याख्यानमेव बाह्यतेजोऽनुगृहीत इतीति विभावनीयम् । ३. तद्ग्राह्यादिभूतेति—चक्षुरादिग्राह्यरूपादिविषयात्मकाधिभूतेत्यर्थः । ४. जीवेति कर्मान्वयि ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः ।
सहाऽऽत्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति ॥१०॥

जिसका जैसा चित्त संकल्प करता है, उस संकल्प के सहित यह जीव मुख्य प्राण वृत्ति को प्राप्त होता है तथा वह प्राण उदान वृत्तिरूप तेज से संयुक्त हो भोक्ता जीव के सहित संकल्पानुरूप लोक को प्राप्त कराता है ॥ १० ॥

लौकिकः पुरुष उपशान्ततेजा भवति । उपशान्तं स्वाभाविकं तेजो यस्य सः । तदा तं क्षीणायुषं मुमूर्षुं विद्यात् । स पुनर्भवं शरीरान्तरं प्रतिपद्यते । कथम् । सहेन्द्रियैर्मनसि संपद्यमानैः प्रविशद्भिर्वागादिभिः ॥ ९ ॥

मरणकाले यच्चित्तो भवति तेनैष जीवश्चित्तेन संकल्पेनेन्द्रियैः सह प्राणं मुख्य-प्राणवृत्तिमायाति । मरणकाले क्षीणेन्द्रियवृत्तिः सन्मुख्यया प्राणवृत्त्यैवावतिष्ठत इत्यर्थः ।

स्वाभाविकमिति । जाठराग्निकृतं हस्तादिना स्वशरीरस्पर्शे सत्युष्णत्वेनोपलभ्यमानं तेज इत्यर्थः । भवत्युत्पद्यत इति भवः शरीरमित्यर्थः । शरीरान्तरप्रतिपत्तिरात्मनोऽक्रियस्य न भवतीति शङ्कते—कथमिति । इन्द्रियोपाधिवशादित्याह—सहेति । मनसि संपद्यमानैरिन्द्रियैः सह शरीरान्तरं प्रतिपद्यत इति पूर्वेणान्वयः ॥९॥

उक्तशरीरान्तरप्राप्तिमेवोत्क्रान्तिक्रमप्रदर्शनेन स्पष्टीकर्तुं यच्चित्त इत्यादि वाक्यं तदपेक्षिताध्याहारं कुर्वन्व्याचष्टे—मरणेति । यच्चित्त इति । यदेव देवतिर्यगादिशरीरं सम्यगिति चित्ते यस्य

तेजवाले पुरुष को क्षीण आयु अर्थात् मरणसन्न जानना चाहिये । तब वह देहान्तर को प्राप्त कर लेता है, उस समय उस उपशान्त तेज वाले पुरुष को क्षीण आयु अर्थात् मरणासन्न जानना चाहिये । तब वह देहान्तर को प्राप्त कर लेता है । कैसे ? मन में लीन हुई वागादि इन्द्रियों के सहित ही (वह देहान्तर में जाता है) ॥ ९ ॥

मरण कालिक संकल्प का परिणाम

मरते समय यह पुरुष जैसा चित्त वाला होता है, उसी संकल्प युक्त चित्त से यह जीव इन्द्रियों के सहित मुख्य प्राणवृत्ति को प्राप्त होता है । अभिप्राय यह है कि मरते समय (चित्त के सहित) इन्द्रियों के व्यापार क्षीण हो जाने पर यह जीव मुख्य प्राणवृत्ति से ही स्थित रहता है । उस समय

---

१. मनसीति मरणसमये इन्द्रियान्तरव्यापारोपरमेऽपि क्षणं मनोव्यापारावलोकनादिन्द्रियाणां मनःप्रवेशोऽवगम्यते स च तादात्म्येन मनःसंश्लेष एवेति ध्येयम् । २. जाठराग्निकृतमिति—इदं तु बाह्यतेजोऽनुग्रहाभावेनोपशान्ततेजा इति पूर्वोक्तिविरुद्धं प्रतिभाति स्वाभाविकस्य तेजसो बाह्यतेजोऽनुगृहीतोदानप्रयुक्तत्वे हि पूर्वोक्तं सङ्गच्छते । यद्वा जाठराग्निकृतस्य तेजसो बाह्यतेजोऽनुग्रहलिङ्गत्वमित्यभिप्रायेणैतदिति ध्येयम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

य एवं विद्वान्प्राणं वेद । न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥११॥

जो विद्वान् पुरुष पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त प्राण को इस प्रकार जानता है, उसकी पुत्र-पौत्रादि प्रजा नष्ट नहीं होती और (सायुज्य को प्राप्त हो जाने के कारण) वह अमर हो जाता है। इस विषय में यह मन्त्र है ॥ ११ ॥

तदा हि वदन्ति ज्ञातय उच्छ्वसिति जीवतीति। स च प्राणस्तेजसोदानवृत्त्या युक्तः सन्सहाऽऽत्मना स्वामिना भोक्त्रा स एवमुदानवृत्त्यैव युक्तः प्राणस्तं भोक्तारं पुण्यपापकर्मवशाद्यथासंकल्पितं यथाभिप्रेतं लोकं नयति प्रापयति ॥ १० ॥

यः कश्चिदेवं विद्वान्यथोक्तविशेषणैर्विशिष्टमुत्पत्त्यादिभिः प्राणं वेद जानाति तस्येदं फलमैहिकमामुष्मिकं चोच्यते। न हास्य नैवास्य विदुषः प्रजा पुत्रपौत्रादिलक्षणा हीयते

स यश्चित्त इत्यर्थः। प्राणं प्रत्यागमनं लोकव्यवहारेण प्रथयति—तदेति। तेजसा [1]तेजोनुगृहीतयोदानवृत्त्येत्यर्थः। एवंभूतो भोक्त्रुदानसंयुक्तः प्राणः कं नयतीत्यपेक्षायां तमेव भोक्तारं नयतीति वदन्वाक्यार्थमाह—स एवमिति। एवकारस्य तमेवेत्यन्वयः। यथासंकल्पितमिति। कर्मज्ञानादिसाधना[3]नुष्ठानदशायां संकल्पितं मरणकाले वासनारूपेण पुनरभिव्यक्तं लोकं देवादिशरीरमित्यर्थः ॥१०॥

एवं प्राणस्वरूपं निर्णीय तदुपासनं विधत्ते—यः कश्चिदिति। उत्पत्त्यादिभिर्यथोक्तविशेषणैर्विशिष्टम्। आत्मनः प्राणो जायते, मनःकृताभ्यां धर्माधर्माभ्यां शरीरं गृह्णाति। आत्मानं च

जाति वाले कहा करते हैं कि अभी स्वांस लेता है। इसीलिये जीवित है, वह प्राण उदान वृत्ति रूप तेज से युक्त हो भोक्ता जीवात्मा रूप स्वामी के साथ मिल जाता है। इस प्रकार उदानवृत्ति से युक्त हुआ वह प्राण ही उस भोक्ता जीव को उसके पुण्य-पापरूप कर्म के फल स्वरूप संकल्पानुसार अभीष्ट लोकों को प्राप्त करा देता है ॥ १० ॥

जो कोई विद्वान् इस प्रकार पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट प्राण को उसकी उत्पत्ति आदि के सहित जानता है, उसी के लिये यह लौकिक और पारलौकिक फल कहा जाता है। उस विद्वान् की

---

१. जानातीति—उपास्तेऽनवरतमित्यर्थः। विद्वान् वेदेति वाचोयुक्तिबलादित्यवधेयम्। २. तेजोऽनुगृहीतयेति—इदं च यस्मात्तेजःस्वभाव उत्क्रान्तिकृदपीत्यादि पूर्वोक्त्या विरुध्यते। नव शरीरेऽवस्थितेरेव तेजोऽनुग्रहप्रयुक्तत्वभानादिह चोत्क्रान्तेस्तथात्वावगमात्। यद्वा उदानस्य तेजस्त्वोपपत्तिमात्रार्थमेवैतत् नोत्क्रान्तिकाले त्वनुग्रहो विवक्षित इत्यवधेयम्। उत्क्रान्त्यनुकूलमनुग्रहान्तरं वा विवक्ष्यतामित्यलम्। ३. अनुष्ठानदशायां संकल्पितमिति—ननु पापमनुतिष्ठन्नपि न प्रेप्सति नरकमिति चेदत्रोच्यते यद्यसौ श्रद्दधानो मन्यत एव तर्हि भविष्यत्यवश्यं नरक इति स एव तदानीं संकल्पः विपरीतोऽनभिज्ञ एव वा चेदत्यन्तं तस्य तर्हि शास्त्रप्रामाण्यान्मरणकाल एव तथोद्बोधः पापबलादिति मन्तव्यमिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा ।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतम-
श्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति ॥१२॥

इत्यथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषदि तृतीयः प्रश्नः ॥३॥

प्राण की (परमात्मा से) उत्पत्ति (मनःसंकल्प से इस शरीर में) आगमन (पायूपस्थादि में) स्थान, पंचवृत्ति भेद के कारण व्यापकता एवं आदित्यादि बाह्य तथा चक्षुरादि आध्यात्मिक रूप से प्राण के भेद को जानकर साधक अमरत्व को प्राप्त कर लेता है ऐसा जानकर अमरत्व को प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

॥ इति तृतीयः प्रश्नः ॥

छिद्यते । पतिते च शरीरे प्राणसायुज्यतयाऽमृतोऽमरणधर्मा भवति तदेतस्मिन्नर्थे संक्षेपाभिधायक एष श्लोको मन्त्रो भवति ॥ ११ ॥

उत्पत्तिं परमात्मनः प्राणस्याऽऽयतिमागमनं मनोकृतेनास्मिञ्शरीरे स्थानं स्थितिं च पायूपस्थादिस्थानेषु विभुत्वं च स्वाम्यमेव [2]सम्राडिव प्राणवृत्तिभेदानां पञ्चधा

पञ्चधा विभज्य पायूपस्थयोरपानं स्वस्वरूपं प्राणं चक्षुःश्रोत्रयोः, नाभौ समानम्, नाडीसमूहे व्यानम्, उदानं च सुषुम्नायां स्थापयति । उदानेनोत्क्रामति, बाह्यैः प्राणापानसमानव्यानोदानानुग्राहकैरादित्यपृथिवीदेवताकाशवायुतेजोरूपैरधिदैवमादित्यादिकमादित्यादिकृतानुग्रहैरध्यात्मं [3]चक्षुर्वाक्श्रोत्रमनस्त्वक्चक्षुरादिग्राह्यमधिभूतं च धारयति । स एवोदानवृत्त्या भोक्त्रा च युक्तो भोक्तारं लोकान्तरं नयति । स एव च वरिष्ठः प्रजापतिरत्ता चेत्येवं [4]प्राणं वेदेत्यर्थः । ऐहिकफलमुक्त्वाऽऽमुष्मिकफलमाह—पतित इति । अमृतत्वं च नात्र मुख्यं किंतु प्राणसायुज्यमेवेत्याह—प्राणेति । इदं तु कामिनः, निष्कामस्य तु चित्तैकाग्र्यम् । तच्छुद्धिद्वारा मुख्यमेवामृतत्वं भवतीति द्रष्टव्यम् ॥११॥

आयतिमिति । आयातिमित्यर्थः । ह्रस्वत्वं छान्दसम् ॥१२॥

इति श्रीमदानन्दज्ञानविरचितप्रश्नोपनिषद्भाष्यटीकायां तृतीयः प्रश्नः ॥३॥

पुत्र-पौत्रादिरूप प्रजा उच्छिन्न नहीं होती है और शरीर के गिर जाने पर प्राण सायुज्य को प्राप्त हो जाने के कारण वह अमरण धर्मा हो जाता है । इस अर्थ में संक्षेपरूप से कहने वाला यह मन्त्र है ॥११॥

परमात्मा से प्राण की उत्पत्ति

मानसिक संकल्प से इस शरीर में आगमन, पायु, उपस्थादि स्थानों में उसकी स्थिति सम्राट् के समान प्राण की वृत्ति विशेष को पाँच प्रकार से यथा स्थान में स्थापित करनारूप प्रभुत्व तथा

---

१. इत्नोति—अस्य एव श्लोक इत्यनेन पूर्वगतेन सम्बन्धः । २. सम्राडिवेति—अत्र सम्राज इवेति वक्तुं युक्तम् । ३. चक्षुर्वाक्श्रोत्रमनस्त्वगित्येतदध्यात्मं धारयतीत्यन्वयः । परमनयाऽनुपूर्व्यंयतामेव ग्रहणे मूलं मृग्यम् । ४. प्राणं वेदेति—अहंग्रहेणेत्यवधेयम् । तत्सायुज्यस्यान्यथाऽनुपपत्तेः फलस्य भावनानुसारित्वात् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ चतुर्थः प्रश्नः ।

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ ।

उसके बाद इन पिप्पलाद महर्षि से सूर्य के पौत्र सौर्यायणी गार्ग्य ने पूछा—'हे भगवन् ! इस

स्थापनम् । बाह्यमादित्यादिरूपेणाध्यात्मं चैव चक्षुराद्याकारेणावस्थानं 'विज्ञायैवं 'प्राण-मृतमश्नुत इति । विज्ञायामृतमश्नुत इति द्विर्वचनं प्रश्नार्थपरिसमाप्त्यर्थम् ॥ १२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्य-श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ प्रश्नोपनिषद्भाष्ये तृतीयः प्रश्नः ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थः प्रश्नः ॥

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छः प्रश्नत्रयेणापरविद्यागोचरं सर्वं परिसमाप्य संसारं व्याकृतविषयं साध्यसाधनलक्षणमनित्यम् । अथेदानीमसाध्यसाधनलक्षणमप्राण-ममनोगोचरमतीन्द्रियविषयं शिवं शान्तमविकृतमक्षरं सत्यं परविद्यागम्यं पुरुषाख्यं

एवं कर्मविद्यागतिश्रवणेन विरक्तस्य प्राणविद्यया चित्तैकाग्रचतच्छुद्धिमतोऽत एव साधन-चतुष्टयवतो मुख्याधिकारिणः परविद्योक्त्यर्थं प्रश्नत्रयमारभते—अथ हैनमिति । पूर्वं विद्ययैवामृतत्वोक्तेरुत्तरप्रश्नारम्भो व्यर्थ इत्यत आह—प्रश्नत्रयेणेति । संसारमिति । अतो न तन्मुख्यममृतत्वमित्यर्थः । तस्य संसारत्वे व्याकृतत्वं हेतुमाह—व्याकृतविषयमिति । व्याकृताश्रयं तदन्तर्गत-मित्यर्थः । साध्यसाधनलक्षणमिति । साध्यसाधनसंबन्धेन लक्ष्यतेऽभिव्यज्यत उत्पद्यत इति तथा। यद्वाऽपरब्रह्मणः प्राणस्य साध्यसाधनोभयात्मकत्वाद्वा तथा । तस्मादनित्यमित्यतोऽपि संसारत्वमित्यर्थः । वक्ष्यमाण आत्मा तु न तथेत्याह—असाध्येत्यादिना । अतीन्द्रियविषयमिति । इन्द्रियविषयत्वमति-क्रान्तमित्यव्याकृतमकार्यमित्यर्थः । तत्र हेतुः—अप्राणमिति । प्राणागोचरत्वेन तदात्मककर्मेन्द्रिया-गोचरत्वं मनोऽगोचरत्वेन ज्ञानेन्द्रियागोचरत्वमुक्तम् । सुखरूपतामाह—शिवमिति । निवृत्तानर्थ-त्वमाह—शान्तमिति । तत्र भावविकाररहितत्वं हेतुमाह—अविकृतमिति । अनेनोत्पत्तिपरिणाम-वृद्धयो निषिद्धाः । अक्षरमित्यपक्षयविनाशौ निषिद्धौ । उत्पत्तिनिषेधेन तदनन्तरभाव्यस्तित्वं निषिद्धम् । अत्र सर्वत्र हेतुः—सत्यमिति । कालत्रयेऽप्येकरूपमित्यर्थः । तत्र 'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते' इत्यादि वाक्यं मानमाह—परविद्यागम्यमिति । दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुष इति मन्त्रमप्याह—पुरुषाख्यमिति ।

आदित्य आदिरूप से बाहर और चक्षुरादिरूप से आन्तरिक स्थिति इस प्रकार प्राण को जानकर साधक अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। इस मन्त्र में "विज्ञायामृतमश्नुते" इस पद की दो बार आवृत्ति प्रश्नोत्तर की समाप्ति के सूचनार्थ है ॥ १२ ॥

चतुर्थ प्रश्न

सुषुप्ति में सोने वाला और जागने वाला कौन है ?

उसके बाद उस पिप्पलाद मुनि से सौर्यायणी गार्ग्य ने पूछा । पिछले तीन प्रश्नों में अपरा विद्या

१. विज्ञायैवमिति— यथोक्तोत्पत्त्यादिमत्त्वेन ध्यात्वा चिरमहंग्रहेणेत्यर्थः । २. अमृतमिह प्राणसायुज्यमेव न मुख्यमित्याशयेन व्याचष्टे—प्राणममृतमिति । प्राणात्मकमेवामृतं तद्भावापत्तिरूपमेवेति यावत् । ३. यद्वेत्यादिपङ्क्तौ यद्वा वेत्यनयोरन्यतरदधिकम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥१॥

(सिर और हाथ पैर वाले) पुरुष में कौन इन्द्रियाँ सोती हैं, कौन इसमें जागती हैं, (जाग्रत् और स्वप्न के व्यापार समाप्त हो जाने पर) किसे यह सुख होता है और किसमें ये सभी इन्द्रियाँ प्रतिष्ठित होती हैं' ॥१॥

सबाह्याभ्यन्तरमजं वक्तव्यमित्युत्तरं प्रश्नत्रयमारभ्यते ।

तत्र सुदीप्ताद्विवाग्नेर्यस्मात्परादक्षरात्सर्वे भावा विस्फुलिङ्गा इव जायन्ते तत्र चैवापियन्तीत्युक्तं द्वितीये मुण्डके, के ते सर्वे भावा अक्षराद्विभज्यन्ते । कथं वा विभक्ताः सन्तस्तत्रैवापियन्ति । किं लक्षणं वा तदक्षरमिति । एतद्विवक्षयाऽधुना प्रश्नानुद्भावयति—

कथं पुरुषशब्दोदितं पूर्णत्वं 'बाह्याभ्यन्तरवस्तुभेदावत आह—सबाह्येति । स एव बाह्याभ्यन्तरात्मकस्तद्व्यतिरेकेण तदुभयं नास्तीत्यर्थः । प्रश्नत्रयमिति । यद्यपि पञ्चमः प्रश्नोऽपरविद्याविषय एव प्रणवोपासनविषयत्वात्तथाऽपि तस्य क्रममुक्तिफलत्वेन निर्विशेषात्मन्येव सविशेषब्रह्मप्राप्तिद्वारा पर्यवसानात्सोऽपि परविषय एवेति भावः ।

एवं सामान्येन प्रश्नत्रयस्यापि संबन्धमुक्त्वा चतुर्थप्रश्नस्य 'प्रातिस्विकसंबन्धमाह—तत्रेति । यस्मादित्यस्य किंलक्षणं वा तदक्षरमिति तच्छब्देनान्वयः । उक्तमिति । यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपास्तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्तीति मन्त्रेणेत्यर्थः । एतद्विवक्षयेति । मन्त्रोक्तार्थविस्तरानुवादित्वादस्य ब्राह्मणस्येति भावः । अत्राक्षरस्वरूपस्यैव विवक्षितत्वात्तन्निर्णयार्थं कानि स्वपन्तीत्यादिप्रश्नो जागरितादिना धर्मविशेषनिर्धारणार्थः, अन्यथा

के विषय व्याकृत जगत् के आश्रित साध्य-साधनरूप अनित्य संसार का निरूपण परिसमाप्त कर अब साध्य-साधन से पृथक् तथा प्राण, मन और इन्द्रियों के अविषय परविद्या से जानने योग्य शिव, शान्त, निर्विकार, अक्षर, सत्य और बाहर-भीतर सर्वत्र विद्यमान अजन्मा पुरुष नामक तत्त्व को बतलाना है । इसीलिये आगे के शेष तीन प्रश्न आरम्भ किये जाते हैं । वहाँ पर द्वितीय मुण्डक में यह बात कही गयी थी कि अच्छी प्रकार से प्रदीप्त हुए जैसे चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार जिस पर अक्षर से सम्पूर्ण भाव पदार्थ उत्पन्न होते हैं और पुनः उसी में लीन हो जाते हैं इत्यादि । उस अक्षर परमात्मा से विभक्त होने वाले वे सभी भाव पदार्थ कौन-कौन से हैं ? उससे विभक्त होकर वे पुनः किस प्रकार उसी में लीन होते हैं और वह अक्षर तत्त्व किन लक्षणों वाला है ? इन सब बातों को बतलाने के

---

१. बाह्येत्यादि—यद्बाह्यं न तदाभ्यन्तरं यच्चाभ्यन्तरं न तद्बाह्यं विरोधात् तथा चात्मनो बाह्यत्वेनाभ्यन्तरत्वमाभ्यन्तरत्वे तु न स्याद्बाह्यत्वमिति कथं पूर्णत्वमिति भावः । २. प्रातिस्विकमसाधारणम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे शिरःपाण्यादिमति कानि करणानि स्वपन्ति स्वापं कुर्वन्ति स्वव्यापारादुपरमन्ते कानिचास्मिञ्जाग्रति जागरणमनिद्रावस्थां स्वव्यापारं कुर्वन्ति। कतरः कार्यकरणलक्षणयोरेष देवः स्वप्नान्पश्यति। स्वप्नो नाम जाग्रद्दर्शनान्निवृत्तस्य जाग्रद्वदन्तःशरीरे यद्दर्शनम्। तत्किं कार्यलक्षणेन देवेन निर्वर्त्यते किंवा करणलक्षणेन केनचिदित्यभिप्रायः। उपरते च जाग्रत्स्वप्नव्यापारे यत्प्रसन्नं निरायासलक्षणम्[1]नाबाधं सुखं कस्यैतद्भवति। तस्मिन्काले जाग्रत्स्वप्नव्यापारादुपरताः सन्तः कस्मिन्नु सर्वे

तेषामात्मधर्मत्वशङ्कायां तन्निर्विशेषत्वनिर्णयासिद्धेः। भावानां स्वरूपविभागादिविवक्षा तु ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्तीति दृष्टान्तबलाद्यत्रैकीभावस्ततो विभागेन निर्गमनमित्यक्षर एकीभूतानां पृथिव्यादिकार्यकरणानामक्षराद्विभागप्रतीतेस्तावन्मात्रेण भाष्य उक्तेति द्रष्टव्यम्। तत्राऽऽद्यप्रश्नेन जागरितस्य धर्मी पृष्टः। [2]स्वप्ने यस्य व्यापारोपरमे जागरितं नास्ति स तस्य धर्मीति निश्चेतुं शक्यत्वात्। द्वितीयेनावस्थात्रयेऽपि शरीररक्षणं कस्य धर्म इति पृष्टम्। जाग्रतोऽनुपरतव्यापारस्य प्राणस्य देहरक्षकत्वोपपत्तेः। तृतीयेन स्वप्नस्य धर्मी पृष्टः। चतुर्थेन सुषुप्तिधर्मी, सुखमहमस्वाप्समिति सुप्तोत्थितस्य परामर्शे सुखस्य सुषुप्तिसंबन्धावगमात्। पञ्चमप्रश्नेनावस्थात्रयविनिर्मुक्तमवस्थात्रयपर्यवसानभूमिरूपं तुरीयमक्षरं पृष्टमिति विवेकः। कार्येति। कार्यं शरीरं प्राणो वा, करणानि मनआदीनि। पदार्थानुक्त्वा वाक्यार्थं पिण्डीकृत्याऽऽह—तत्किमिति। तत्पदं पूर्वापरयोः संबध्यते—प्रसन्नमिति। विषयसंपर्ककालुष्यरहितम्। [निरायासेति] निरायासेन विक्षेपाभावमात्रेण लक्ष्यतेऽभिव्यज्यते निर्वतस्यापितदीपालोकवदनाबाधं विनाशरहितं सत्यमात्मस्वरूपमित्यर्थः। एतदिति। सुषुप्ते प्रकाशमानं [3]सुखमहमस्वाप्समितिपरामर्शमूलभूतमित्यर्थः। तस्मिन्काल इति। यद्यपि पञ्चमेन प्रश्नेन तुरीयं पृच्छ्यते न सुषुप्तिस्तथाऽपि संसारदशायां सर्वोपाधिरहिततुरीयावस्थाभावेन विवेकत एव तस्य प्रदर्शनीयत्वात्सुषुप्तावज्ञाने सत्यपीतरोपाधिराहित्येन तत्रैव सर्वोपाधिविवेककरणेन तुरीय-

---

लिये श्रुति अब अग्रिम प्रश्न को उठाती है। हे भगवन्! शिर-पैर वाले इस पुरुष में कौन इन्द्रियाँ सोती हैं अर्थात् अपने व्यापार से उपरत होती हैं तथा कौन इसमें जागती हैं अर्थात् अपना व्यापार करती हैं। कार्य-करण रूप देह-इन्द्रिय देवों में से कौन देव स्वप्न को देखता है? जाग्रत् दर्शन से निवृत्त हुए जीव का शरीर के भीतर जो जाग्रत् के समान विषयों को देखता है, उसे स्वप्न कहते हैं, क्या उसे कार्यरूप देव करता है अथवा करणरूप देव करता है, यह इसका भावार्थ है।

जाग्रत् एवं स्वप्न का व्यापार उपरत हो जाने पर जो प्रसन्न आयास शून्य एवं निर्बाध सुख होता है, वह किसको होता है? उस समय जाग्रत् जो स्वप्न के व्यापार से उपरत हुई सभी इन्द्रियाँ भली प्रकार एकत्रित हो किसमें स्थित होती हैं अर्थात् जैसे नाना वृक्षों के रस मधु में प्रविष्ट हो जाते

---

१. अनाबाधमित्यनन्तरं सत्यमिति विशेषणान्तरं टीकाकृदभिमतम्। २. स्वप्ने इति—स्वाप इत्यर्थः।
३. तत्र तस्य प्रकाशमानत्वं साधयितुमाह—सुखमहमित्यादि। सुप्तोत्थितस्यैवं परामर्शान्यथाऽनुपपत्त्या तत्र तत्प्रकाशः सिध्यतीति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्यगेकोभूताः संप्रतिष्ठिताः। मधुनि रसवत्समुद्रं प्रविष्टनद्यादिवच्च विवेकानर्हाः प्रतिष्ठिता भवन्ति संगताः संप्रतिष्ठिता भवन्तीत्यर्थः। ननु न्यस्तदात्रादिकरणवत्स्वव्यापारादुपरतानि पृथक्पृथगेव स्वात्मन्यवतिष्ठन्त इत्येतद्युक्तं कुतः प्राप्तिः सुषुप्तपुरुषाणां

प्रदर्शनस्य सुकरत्वात्तस्मिन्काले तुरीयप्रदर्शनार्थं सर्वसंप्रतिष्ठोक्तेति। सम्यगेकोभूता इति। तदात्मभावप्राप्त्या विलयं गता इत्यर्थः। मधूनि रसवदिति। यथा नानापुष्परसा मधुन्येकी भवन्ति तद्वदित्यर्थः। [1]विवेकाभावमात्रेण दृष्टान्तावुक्तौ, तत्र सर्वात्मना लयाभावादित्याह--विवेकानर्हा इति। पूर्वं विवेकानर्हाः सन्त पश्चात्संप्रतिष्ठिता इत्यर्थः। न चानेनापि प्रश्नेनाविद्यावासनाभिरविविक्तः सौषुप्त एव पृष्ट इति शङ्क्यम्। पर आत्मन्यक्षरे संप्रतिष्ठत इति वक्ष्यमाणत्वा[2]त्सुषुप्ते [3]चाज्ञान एव [4]संप्रतिष्ठाना[5]देष हि द्रष्टेत्याद्यज्ञानप्रतिबिम्बितस्य भोक्तुरपि संप्रतिष्ठाया अभिध.स्यमानत्वा[6]दच्छायमित्यज्ञानाभावोक्तेश्च तुरीयमेव पृष्टमिति भावः। ननु कार्यकारणव्यतिरिक्ते संप्रतिष्ठानाधिकरणे सामान्येन कस्मिंश्चिदवगते कस्मिन्संप्रतिष्ठिता इति विशेषप्रश्नो घटते। न च तस्यावगतिरस्ति न च संप्रतिष्ठानस्य साधिकरणत्वेन सामान्येनाधिकरणावगतिरस्तीति वाच्यम्। तत्तदुपादानानामेवाचेतनानां तदधिकरणत्वेन तदतिरिक्तस्य चेतनस्यासिद्धि(द्धे)रिति शङ्कते—नन्विति। दात्रं नाम सस्यादिलवनार्थः शस्त्रविशेषः। स्वात्मनीति। स्वोपादान इत्यर्थः। सुषुप्तपुरुषाणां करणानामिति। सुषुप्तपुरुषाणां यानि करणानि तेषामित्यर्थः। एष हि द्रष्टेत्यादिना पुरुषाणामप्येकीभावस्य वक्ष्यमाणत्वाद्वा पुरुषाणामित्युक्तम्। अस्मिन्पक्षे करणानां चेति चकारो द्रष्टव्यः। प्रष्टुः शङ्कायाः कुतः

हैं और जैसे नदियाँ समुद्र में प्रविष्ट हो जाती हैं, वैसे ही प्रविष्ट हुई ये कार्य-करण पृथक् प्रतीति के अयोग्य होकर ये किसमें भली प्रकार प्रतिष्ठित होती हैं।

शंका :—जैसे छेदन क्रिया के पश्चात् छोड़ी हुई दराँती आदि औजार (किसी अन्य में नहीं किन्तु अपने आप में) पड़ी रहती है। ऐसे ही अपने-अपने व्यापार से उपरत हुई इन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् अपने में ही स्थित होती हैं। (सब मिलकर किसी एक में नहीं) ऐसा समझना ही उचित है, फिर भला प्रश्न कर्ता को सुषुप्त पुरुषों को इन्द्रियों के किसी एक में एकत्रित हो जाने को आशंका कैसे हो सकती है?

---

१. ननु विषमौ दृष्टान्तौ सर्वथा हि लयस्तत्र पुनरनुत्थानात्प्रकृते तु न तथा जागरे पुनस्तत एवाविर्भावादित्याशङ्क्याऽऽह—विवेकाभावमात्रेणेते तन्मात्रांशे इति यावत्। तत्र हेतुमाह—तत्रेत्यादिना। तत्र सुषुप्ते। यद्वा तत्र दृष्टान्तयोः मध्वादिव्यक्तरूपेणैवावतिष्ठन्ते रसादय इति न सर्वथा विलयस्तत्र प्रकृते तु न व्यक्तमवतिष्ठत इति सर्वलय इति वैषम्याद्विवेकाभाव मात्रांशे दृष्टान्ताविति भावः। २. ननूक्तश्रुतावात्मशब्दार्थः सौषुप्त एवास्त्विति न तद्विरोध इत्याशङ्क्याऽऽह—सुषुप्ते चेति। ३. अज्ञान एवेति—सौषुप्तव्यावृत्तय एवकारः। ४. संप्रतिष्ठानादिति—संप्रतिष्ठानस्य त्वयाऽवश्यं वक्तव्यत्वादित्यर्थः। ५. तथा चोक्तश्रुतिविरोधस्तदस्थ एव। तत्र हेतुमाह—एष इति। ६. उक्तश्रुतौ सौषुप्तस्यात्मशब्दार्थत्वाभावे सौषुप्तस्य पञ्चमप्रश्नविषयत्वाभावे वा हेत्वन्तरमाह—अच्छायमिति। यद्वा सौषुप्तस्य पञ्चमप्रश्नविषयत्वे श्रुत्यन्तरविरोधमाह—अच्छायमिति। उक्तश्रुतिस्थात्मशब्दार्थस्य पञ्चमप्रश्नविषयस्य वाऽज्ञानाभावोक्तेश्च न स सौषुप्त इति पञ्चमप्रश्नेन तुरीयमेव पृष्टमिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मै स होवाच । यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह

आचार्य ने उस प्रश्नकर्ता से कहा—'हे गार्ग्य ! जैसे सूर्य के अस्त हो जाने पर सम्पूर्ण किरणें उस तेजोमण्डल सूर्य में ही एकत्रित हो जाती हैं तथा उसी सूर्य के पुनः उदय होने पर वे रश्मियाँ उससे

करणानां कस्मिंश्चिदेकीभावगमनाशङ्कायाः प्रष्टुः । युक्तैव त्वाशङ्का । यतः संहतानि करणानि [1]स्वाम्यर्थानि परतन्त्राणि च जाग्रद्विषये तस्मात्स्वापेऽपि संहतानां पारतन्त्र्येणैव कस्मिंश्चित्संगतिर्न्याय्येति तस्मादाशङ्कानुरूप एव प्रश्नोऽयम् । [2]अत्र तु कार्यकरणसंघातो यस्मिंश्च प्रलीनः सुषुप्तप्रलयकालयो[3]स्तद्विशेषं [4]बुभुत्सोः स को नु स्यादिति [5]कस्मिन्सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥ १ ॥

तस्मै स होवाचाऽऽचार्यः । शृणु हे गार्ग्य यत्त्वया पृष्टम् । यथा मरीचयो रश्मयोऽर्कस्याऽऽदित्यस्यास्तमदर्शनं गच्छतः सर्वा अशेषत एतस्मिंस्तेजोमण्डले तेजोराशिरूप

प्राप्तिरित्यन्वयः। संहतानां परार्थत्वेन व्यापृतत्वात्संहतत्वेन हेतुना परस्मिश्चेतने सामान्येनावगते प्रष्टुर्विशेषप्रश्नो युक्त इत्याह—युक्तैव त्विति । स्वाम्यर्थानि संघाताभिमान्यर्थानीत्यर्थः । आशङ्कानुरूप इति । मनसि विद्यमानाशङ्कानुरूपो वाचिकः प्रश्न इत्यर्थः । अत्र संप्रतिष्ठानविशिष्ट आत्मा न पृष्टः किंतु तदुपलक्षितः केवल आत्मा पृष्ट इति वाक्यतात्पर्यमाह—अत्र त्विति । भवन्तीत्यनन्तरं पृष्टमिति शेषः ॥१॥

समाधान :—प्रश्नकर्ता की पूर्वोक्त आशंका उचित ही है, क्योंकि भौतिक संघातरूप इन्द्रियाँ जाग्रत् अवस्था में अपने स्वामी जीवात्मा के लिये परतन्त्र होकर के ही प्रवृत्त होती हैं। अतः सुषुप्ति में भी उन संघातरूप इन्द्रियों का किसी में भी मिलना परतन्त्र ही होगा। अतः यह प्रश्नकर्ता का यह प्रश्न आशंका के अनुरूप ही है। इसलिए यहाँ पर प्रश्नकर्ता का प्रश्न है कि वह कौन है, जिसमें ये सब प्रतिष्ठित होती हैं। सुषुप्ति और प्रलय काल में जिसमें यह कार्यकरणसंघात लीन होता है, उसके संबन्ध में वैशिष्ट्य जानने के लिये प्रश्न करना उचित ही है ॥ १ ॥

आत्मा ही इन्द्रियों का लय स्थान है

प्रश्न कर्ता उस शिष्य से आचार्य ने कहा—हे गार्ग्य ! तूने जिसे पूछा है, उसे सुन। जैसे

---

१. स्वाम्यर्थानीत्यादि—गृहतन्त्राणां गृहार्थमेव च दिवाव्याप्रियमाणानां लौकिकानां नक्तं गृहसंगतिर्हि दृष्टेति भावः। २. अत्र त्विति—यस्मिंश्चेति चकारोऽत्र यत्र त्वित्येव पाठं प्रत्याययति निमित्तसप्तम्या यन्निमित्तं कार्यकरणानां संहतत्वं संघीभवनमित्यर्थः। ३. यच्छब्दद्वयोक्तपरामर्शी तद्विशेषमिति तच्छब्दः। ४. बुभुत्सोः प्रश्नोऽयमित्यन्वयः। ५. प्रश्नमभिनयति—कस्मिन्नित्यादिना इत्ययं प्रश्न इति सम्बन्धः। प्रश्नाभिप्रायं व्यनक्ति—स को नु स्यादितीति । इत्यर्थकोऽयं प्रश्न इत्यर्थः। अन्नत्यटीका तु भ्रान्तिमूलेति प्रतीमः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकी भवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नाऽऽदत्ते नाऽऽनन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥२॥

निकलकर फिर सर्वत्र फैल जाती हैं, उसी प्रकार वे इन्द्रियाँ और विषय मनरूप परम देव में अभिन्न हो जाती हैं। अतः उस निद्रा काल में वह (देवदत्तादि रूप पुरुष) न सुनता है, न देखता है, न सूंघता है, न रस लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न पकड़ता है, न आनन्द भोगता है, न त्यागता है और न चेष्टा करता है। इसीलिये लौकिक पुरुष उसे 'सोता है' ऐसा कहते हैं ॥२॥

एकी भवन्ति विवेकानर्हत्वमविशेषतां गच्छन्ति, मरीचयस्तस्यैवार्कस्य ताः पुनः पुनरुदयतं उद्गच्छतः प्रचरन्ति विकीर्यन्ते । यथाऽयं दृष्टान्तः । एवं ह वै तत्सर्वं विषयेन्द्रियादिजातं परे प्रकृष्टे देवे द्योतनवति मनसि चक्षुरादि देवानां मनस्तन्त्रत्वात्परो देवो मनस्तस्मिन्स्वप्नकाल एकी भवति, मण्डले मरीचिवदविशेषतां गच्छति । जिजागरिषोश्च रश्मिवन्मण्डलान्मनस एव प्रचरति स्वव्यापाराय प्रतिष्ठते । यस्मात्स्वप्नकाले श्रोत्रादीनि शब्दाद्युपलब्धिकरणानि मनस्येकीभूतानीव करणव्यापारादुपरतानि तेन तस्मात्तर्हि

यत्त्वया पृष्टं तच्छृण्वित्यन्वयः । तस्यैवार्कस्य 'ता मरीचय इत्यन्वयः । विकीर्यन्त इति । दशदिक्षु क्षिप्यन्त इत्यर्थः । स्वप्नेऽपि चक्षुरादिव्यापारोपलब्धेरेकीभावोऽसिद्ध इत्याशङ्क्य वासनामयेन्द्रियव्यापारोपलब्धावपि बाह्यशब्दादिश्रवणादिव्यापाराभावेन तं साधयितुं तेनेति वाक्यं व्याख्याति—यस्मादिति । श्रोत्रादीनामेकीभावो नाम स्वस्वव्यापारं विहाय मनस्तन्त्रतयाऽवस्थानमात्रं न तु मुख्य-

---

सूर्यास्त के समय सूर्य की किरणें तेजो-मण्डलरूप उस सूर्य में ही एकत्रित हो जाती हैं, उस समय उन रश्मियों का विवेक करना असम्भव हो जाता है किन्तु उसी सूर्य के उदय होते समय पुनः उससे निकल कर सूर्य किरणें सभी ओर फैल जाती हैं, जैसा यह दृष्टान्त है ठीक उसी प्रकार वह सब विषय और सम्पूर्ण इन्द्रियों का समुदाय स्वप्नकाल में (सुषुप्तिकाल में) अत्यन्त द्योतन स्वभाव वाले मन में चक्षुरादि इन्द्रियाँ लीन हो जाती हैं। इन्द्रियरूप देव मन के अधीन हो जाते हैं। इसीलिये पराधीन इन्द्रियदेव की अपेक्षा मन को परम देव कहा है। उसी मन में इन्द्रियाँ एकत्रित हो जाती हैं अर्थात् जैसे सूर्य मण्डल में सूर्यास्त के समय सूर्य की किरणें उससे अभिन्नता को प्राप्त हो जाती हैं और पुनः सूर्य उदय के समय सूर्यमण्डल से निकलकर सभी ओर फैल जाती हैं, वैसे ही जागने की इच्छा वाले पुरुष के मन से निकलकर इन्द्रियों की वृत्तियाँ अपने व्यापार में प्रवृत्त हो जाती हैं क्योंकि सुषुप्ति विषयों के समय शब्दादि विषयों की उपलब्धि के करण श्रोत्रादि इन्द्रियाँ मन में एकीभाव प्राप्त हुए

---

१. ता मरीचय इति—मरीचिः स्त्रीपुंसयोरित्यमरः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥३॥

इस (नौ द्वार वाले शरीर रूप) पुर में प्राणाग्नि ही जागते हैं। निश्चय यह अपान ही गार्हपत्य अग्नि है। व्यान (हृदय कमल के दक्षिण छिद्र द्वारा निकलने के कारण दक्षिण दिशा से सम्बन्ध के कारण) दक्षिणाग्नि है और जो गार्हपत्य से ले जाया जाता है वह प्राण ही प्रणयन के कारण आहवनीय नामक अग्नि है ॥३॥

तस्मिन्स्वापकाल एष देवदत्तादिलक्षणः पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नाऽऽदत्ते नाऽऽनन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते लौकिकाः ॥२॥

सुप्तवत्सु श्रोत्रादिषु करणेष्वेतस्मिन्पुरे नवद्वारे देहे प्राणाग्नयः प्राणादिपञ्चवायवोऽग्नय इवाग्नयो जाग्रति। अग्निसामान्यं ह्याह गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानः। कथमित्याह—यस्माद्गार्हपत्यादग्नेरग्निहोत्रकाल इतरोऽग्निराहवनीयः प्रणीयते प्रणयनात्प्रणीयतेऽस्मादिति प्रणयनो गार्हपत्योऽग्निः। तथा सुप्तस्यापानवृत्तेः

मेकत्वं तेषां मनःप्रकृतिकत्वाभावेनाप्रकृतौ तदनुपपत्तेरित्यभिप्रेत्येवकारः प्रयुक्तः। नेयायत इति। इणो गत्यर्थस्य यङन्तस्य रूपमेतन्न गच्छतीत्यर्थः ॥२॥

कानि स्वपन्तीत्यस्य सविषयाणि बाह्यकरणानि स्वपन्त्युपरमन्तेऽतस्तेषामेव जागरणं धर्म इत्युत्तरमुक्त्वा कानि जाग्रतीत्यस्योत्तरमाह—सुप्तवत्स्वति। प्राणानामग्नित्वं गौणमित्याह—अग्नय इवेति। अपानस्य गार्हपत्यत्वे यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादितीदं वाक्यं व्यवहितमपि हेतुत्वेन योजयति—यस्मादिति। प्रणयनादिति पदं गार्हपत्यविशेषणमित्याह—प्रणयनो गार्हपत्य इति। तत्संसृष्टमाहवनीयः प्राण इति वाक्यं साहश्याभिधानपूर्वं व्याचष्टे—तथेति। गार्हपत्यत्वेनोक्तेऽपाने-

की भाँति अपने व्यापार से उपरत हो जाती हैं। इसलिये उस निद्रा के समय वह देवदत्तादिरूप पुरुष न सुनता है, न देखता है, न सूँघता है, न चखता है, न छूता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न त्यागता है, न आनन्द को भोगता है और न चेष्टा करता है। उस समय लौकिक पुरुष उसके संबन्ध में यही कहते हैं कि यह सोता है ॥२॥

सुषुप्ति काल में जागने वाले प्राणादि गार्हपत्यादि अग्नि तुल्य हैं

नौ द्वार वाले देहरूप पुर में श्रोत्रादि इन्द्रियों के सो जाने पर प्राणाग्निस्थानीय प्राणादि पाँच वायु ही जागते हैं। वे प्राणादि पाँच वायु अग्नि के समान हैं। अतः अब अग्नि के साथ उनकी

१. सुप्तिस्वप्नावेकीकृत्याह—स्वापकाल इति। २. न ईयायत इति च्छेदः। अकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घः। ३. गार्हपत्यादिति—गृहपतिना संयुक्ते ञ्यः। ४. सुप्तो स्पष्टत्वादाह—सुप्तस्येति। ५. यङन्तस्येति—हलादेरिति स्मृतेश्छान्दसमेव यङादीत्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदुच्छ्वासनिश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः। मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ।।४।।

क्योंकि उच्छ्वास और निश्वास—ये अग्निहोत्र की आहुतियों के समान है (देह रक्षा के लिये) इन्हें जो समभाव से सर्वदा चलाता है, वह समान ऋत्विक् है। निश्चय ही मन यजमान है और उदान वायु ही इष्टफल है। वह उदान वायु इस मन नामक यजमान को (स्वप्न व्यापार से भी गिरा कर) नित्य प्रति सुषुप्ति में ब्रह्म के पास ले जाता है ।।४।।

प्रणीत इव प्राणो मुखनासिकाभ्यां संचरत्यत आहवनीयस्थानीयः प्राणः। व्यानस्तु हृदयाद्दक्षिणसुषिरद्वारेण निर्गमाद्दक्षिणदिक्संबन्धादन्वाहार्यपचनो दक्षिणाग्निः ।।३।।

अत्र च होताऽग्निहोत्रस्य यद्यस्मादुच्छ्वासनिश्वासावग्निहोत्राहुती इव नित्यं

त्वर्गच्छति सति बहिर्गच्छन्प्राणस्ततो निर्गच्छन्निव लक्ष्यत इति प्राण आहवनीय इत्यर्थः। 'परित्यक्त' व्यानोऽन्वाहार्यपचन इति वाक्यमिदानीं व्याचष्टे—व्यानस्त्विति। छान्दोग्ये गायत्रीविद्यायां तस्य वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषय इत्युपक्रम्याथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रमित्यनेन व्यानस्य दक्षिणसुषितो निर्गमनमुक्तमित्यस्यान्वाहार्यपचनसादृश्यं दक्षिणदिक्संबन्धित्वं व्यानस्येति व्यानोऽन्वाहार्यपचन इत्यर्थः ।। ३ ।।

अत्र चेति। अग्निहोत्रस्य होता होमस्य कर्ता, ऋत्विगुच्यत उत्तरवाक्येने(णे)ति शेषः। अत्रोच्छ्वासनिश्वासयोराहुतित्वस्य पूर्वमसिद्धत्वेन सिद्धवन्निर्देशायोगात्स समान इति तच्छब्दानन्वयाच्च वाक्यत्रयं कृत्वाऽन्वयत्रयेण योजयति—यद्यस्मादिति। उच्छ्वासनिश्वासावित्यनन्तरमाहुती इति

समानता बतलाते हैं। निःसन्देह यह अपान ही गार्हपत्य अग्नि है। कैसे? इसे कहते हैं जैसे गार्हपत्य अग्नि से दूसरा आहवनीय अग्नि सम्पन्न किया जाता है। अतः प्रणयन किये जाने के कारण "प्रणीयते अस्मात्" इस व्युत्पत्ति के अनुसार वह गार्हपत्य अग्नि प्रणयन है। वैसे ही सोये हुए पुरुष की अपान वृत्ति से प्राण का भी प्रणयन हुआ-सा ही मुख और नाक के द्वारा संचार होता है। अतः वह प्राण आहवनीय अग्नि के समान है किन्तु हृदय के दाहिनी ओर स्थित छिद्र द्वारा निकलने के कारण व्यान वायु दक्षिण दिशा से संबन्धित अन्वाहार्य-पचन रूप दक्षिणाग्नि के स्थान में है (अन्वाहार्य-पचन ओदन विशेष का नाम है, जो दक्षिणाग्नि में पकाया जाता है। इसीलिये उसका नाम अन्वाहार्य-पचनाग्नि पड़ गया) ।। ३ ।।

प्राणाग्नि के ऋत्विक्

अब अग्रिम मन्त्र से अग्निहोत्र के होता का वर्णन किया जाता है क्योंकि उच्छ्वास और निःश्वास अग्निहोत्र की आहुतियों के समान हैं। अतः (श्वास-निःश्वास की भांति अग्निहोत्रादि की

---

१. उच्छ्वासनिश्वासाविति—क्रियात्मकावित्यर्थः। २. परित्यक्तमिति—परिशिष्टमिति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वित्वसामान्यादेव त्वेतावाहुती समं साम्येन शरीरस्थितिभावाय नयति यो वायुरग्निस्थानीयोऽपि होता चाऽऽहुत्योर्नेतृत्वात् । कोऽसौ स समानः । अतश्च विदुषः [1]स्वापोऽप्यग्निहोत्रहृदनमेव । तस्माद्विद्वान्नाकर्मीत्येवं मन्तव्य इत्यभिप्रायः । सर्वदा सर्वाणि भूतानि विचिन्वन्त्यपि स्वपत इति हि वाजसनेयके । अत्र हि जाग्रत्सु प्राणाग्निषूपसंहृत्य बाह्यकरणानि विषयांश्चाग्निहोत्रफलमिव स्वर्गं ब्रह्म जिगमिषुर्मनो ह वाव यजमानो जागर्ति

पदं भाष्येऽध्याहृत्यैतावुच्छ्वासनिश्वासावाहुती आहवनीयाधिकरणाग्निहोत्राहुती(इ)व द्वित्वसाम्यादेवेत्येकोऽन्वयः । अनन्तरं भाष्ये तुशब्दश्चार्थे । श्रुतिगत इतिशब्दस्तस्मादित्यर्थे । यस्मादेतावाहुती यस्माच्चैतौ समं नयति शरीरस्थितिभावाय साम्येन नयति प्रवर्तयति यो वायुर्यथाऽग्निहोत्रे होमकर्ताऽऽहुतिद्वयमाहवनीयं प्रति समं नयति प्रापयति तद्वत्तस्मादाहुत्योर्नेतृत्वात्स वायुर्होतेति यच्छब्दहोतृशब्दाध्याहारेण द्वितीयोऽन्वयः । कोऽसौ वायुरिति तद्विशेषप्रश्ने [2]'स होता वायुः 'स समान इति तृतीयोऽन्वय इति विभागः । ननु प्राणाग्नय इत्यत्र सर्वेषां प्राणानामग्नित्वोक्तेः कथमिह समानस्य होतृत्वमुच्यत इत्याशङ्क्योक्तम्—अग्निस्थानीयोऽपीति । अग्नित्वेनोक्तोऽपीत्यर्थः । होता चेति । [3]चकारोऽवधारणे, होतैवेत्यर्थः । आहुतिनेतृत्वाद्धोतृत्वे स्थितेऽग्नित्वोक्तिश्छत्रिन्यायेनाग्न्यनग्निसमुदाये लाक्षणिकीत्यर्थः । अवस्थात्रयवर्तिनामुच्छ्वासनिश्वासप्राणानां [4]'चाग्निहोत्रावयवत्वसंपादनस्य नोपासनं प्रयोजनं निर्विशेषात्मप्रकरणत्वात्तद्विध्यदर्शनाच्च, किं त्विन्द्रियाण्युपरमन्ते प्राणा जाग्रतीत्येवं [5]'त्वंपदार्थशोधनरूपस्य ज्ञानस्य स्तुतिरेवेत्याह—अतश्चेति । सर्वदेति । वाजसनेयके हि वाक्चितः प्राणश्चितश्चक्षुश्चित इत्यादिना सर्वप्राणव्यापारेषु प्रत्येकमग्निचितत्वदृष्टिं विधायैवंदृष्टिमतः सर्वाणि भूतान्यस्य स्वापकालेऽपि चयनं कुर्वन्तीति सा दृष्टिः स्तुता तद्वदिहापीत्यर्थः । अत्र हीति । अत्र मनो यजमानः कल्प्यत इति व्यवहितान्वयः । तत्कल्पनायां हेतुद्वयमाह—यजमानवदिति । हेतुद्वयं साधयति—जाग्रत्स्विति । अत्र स्वप्नकाले विषयान्करणानि चोपसंहृत्य मनो जागर्ति, प्राधान्येन स्वव्यापारं कुर्वद्वर्तते । अग्निहोत्रफलं स्वर्गं जिगमिषुर्यजमान इव सुषुप्तिकाले स्वर्गरूपब्रह्म जिगमिषु च मन

आहुतियों में) समानरूप से सदा द्वित्व रहने के कारण जो वायु शरीर की स्थिति के लिये इन दोनों उच्छ्वास और निःश्वासरूप आहुतियों को समभाव से सदा चलाता रहता है, वह वायु अग्नि-स्थानीय होता हुआ भी आहुतियों का नेता होने से होता (ऋत्विक्) ही है, वह कौन ? वह समान वायु है। अतः विद्वान् की निद्रा भी अग्निहोत्र का हवन ही है। अतएव ऐसे विद्वान् को अकर्मी नहीं मानना चाहिये, यही इसका अभिप्राय है। इसीलिये बृहदारण्यकोपनिषत् में कहा है कि विद्वान् के सो जाने पर भी सभी भूत सर्वदा यागानुष्ठान करते ही रहते हैं।

इस अवस्था में पंच प्राणरूप प्रदीप्त अग्नि में बाह्य इन्द्रियों और विषयों को हवनकर मनरूप यजमान निःसन्देह अग्निहोत्र के फल स्वर्ग की भाँति ब्रह्म के प्रति जानने की इच्छा से जागता रहता है जैसे यजमान यज्ञ का स्वामी सब के सो जाने पर भी सदा जागता रहता है; वैसे ही

१. स्वापोऽपीति—किमुत जागर्येत्यपेरर्थः । २. स होतेति—अत्र यो होतेति युक्तः पाठः । ३. यद्वाऽत्र स समान इति सशब्दोऽनुपादेयः । ४. चाग्नीति—चकारोऽयं पूर्वपङ्क्त्यर्थसमुच्चयार्थः । ५. त्वंपदार्थशोधनेति—नात्मनि सुप्तिर्जागरणं किन्त्विन्द्रियादिष्वेवेत्येवं त्वंपदार्थशोधनेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यजमानवत्कार्यकरणेषु प्राधान्येन संव्यवहारात्स्वर्गमिव ब्रह्म प्रति प्रस्थितत्वाद्यजमानो मनः कल्प्यते । इष्टफलं यागफलमेवोदानो वायुः । उदाननिमित्तत्वादिष्टफलप्राप्तेः । कथम्, स उदानो मनआख्यं यजमानं 'स्वप्नवृत्तिरूपादपि प्रच्याव्याहरहः सुषुप्तिकाले स्वर्गमिव ब्रह्माक्षरं गमयति । अतो यागफलस्थानीय उदानः ॥४॥

एवं विदुषः श्रोत्राद्युपरमकालादारभ्य यावत्सुप्तोत्थितो भवति तावत्सर्वयाग-

---

इत्यन्वयः । भाष्ये यजमान इत्यनन्तरमिव शब्दो द्रष्टव्यः । हवावशब्देन तत्प्रसिद्धमित्युक्तम् । इष्टेति । उदाननिमित्तकमरणानन्तरं यागादिफलप्राप्तेस्तस्य तन्निमित्तत्वात्कारणे कार्योपचारादुदान इष्टफलत्वेन कल्प्यत इत्यर्थः । न केवलं मरणद्वारा यागफलप्रापकत्वमुदानस्य किं त्वेतस्यैवाऽऽनन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति श्रुतेः । सर्वयागफलानामपि ब्रह्मात्मकत्वात्तद्ब्रह्मप्रापकत्वादपि अहरहरिष्टफलप्रापकत्वमुदानस्येति प्रश्नपूर्वकमाह—कथमिति । स्वर्गमिवेति । स्वर्गमेवेत्यर्थः । सर्वयागफलात्मकस्वरूपमेव ब्रह्माक्षरं गमयतीत्यर्थः । 'यद्यप्यहरहर्ब्रह्मप्राप्तिर्न यागसाध्या यागरहितानामपि तत्प्राप्ते'स्तथाऽपि ब्रह्मण एव सर्वयागफलत्वेन तत्प्रापकस्योदानस्येष्टफलप्रापकत्वमस्तीति भावः । न चोदानस्य कथं तत्प्रापकत्वमिति शङ्क्यम् । तस्य सुषुम्नानाडीचारित्वेन स मनस्तन्नाडीं प्रवेशयंस्तद्गतं ब्रह्म प्रापयतीत्युपपत्तेः ॥ ४ ॥

ननु गार्हपत्यो ह वा एषोऽपान इत्यारभ्य मनो ह वाव यजमान इत्यन्तेन ग्रन्थेन विद्वानकर्मी न भवतीति स्तूयत इत्युक्तमस्त्वेवं 'तत्राग्निहोत्रादिकर्मप्रतीतेरुदानस्य यागफलस्थानीयत्वोक्तेस्तु न 'तत्फलत्वं 'तत्र कर्माप्रतीतेरत आह—एवं विदुष इति । विद्वत्तेति । श्रोत्रादीनि स्वप्न उपरमन्ते प्राणा एव जाग्रतीत्येवंरूपा विद्येत्यर्थः । अस्याश्च विद्याया जागरणं श्रोत्रादिबाह्येन्द्रियधर्मः शरीररक्षणं

भूत और इन्द्रियों में प्रधानता से व्यवहार करने वाला मन है और स्वर्ग के समान ब्रह्म के प्रति प्रस्थान करने वाला होने के कारण मन की भी यजमान रूप मे कल्पना की गयी है । उदान वायु ही याग का फल है क्योंकि इष्टफल प्राप्ति में उदान वायु को निमित्त माना गया है । कैसे ? वह उदान वायु मन नामक यजमान को स्वप्न व्यापार से भी पृथक् कर प्रतिदिन सुषुप्ति काल में स्वर्ग के तुल्य अक्षर ब्रह्म को प्राप्त करा देता है । अतः याग का फल-स्थानीय उदान वायु है (ऐसा कहना उचित है) ॥ ४ ॥

स्वप्नद्रष्टा की महिमा

इस प्रकार विद्वान् को श्रोत्रादि के उपरत होने से लेकर जब तक वह सोकर उठता है, तब तक सम्पूर्ण यज्ञों के फल का अनुभव करता है । अज्ञानियों की भाँति ज्ञानी को निद्रा अनर्थ का कारण नहीं

---

१. स्वप्नवृत्तिरूपादिति—स्वप्नवृत्त्यात्मकं यन्मनसो रूपं तस्मादित्यर्थः । २. उदानस्य ब्रह्मात्मकेष्टफलप्रापकत्वे कथमनिष्टवतां सुप्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—यद्यपीत्यादि । ३. कथं तह्युदानस्येष्टफलप्रापकत्वं तत्राह—तथापीत्यादि । ४. तत्र यथोक्ते ग्रन्थे । ५. तत्फलत्वमिति—विद्वानकर्मी न भवतीति स्तुतिफलकत्वमित्यर्थः । ६. तस्यायथोक्तफलकत्वाभावे हेतुमाह—तत्रेत्यादिना । इष्टफलमेवोदान इति वाक्ये कर्माप्रतीतेस्तेन विद्वानकर्मी न भवतीति स्तुतेरलभ्यत्वादिति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देश-

इस (श्रोत्रादि इन्द्रियों के उपरतरूप स्वप्न) अवस्था में यह देव अपनी महिमा का अनुभव करता है। इसने जाग्रद् अवस्था में जिसे देखा है, उसी दृष्ट वस्तु को स्वप्न में पुनः देखता है। प्रत्येक

फलानुभव एव नाविदुषामिवा[१]नर्थायेति विद्वत्ता स्तूयते । न हि विदुष एव श्रोत्रादीनि [२]स्वपन्ते प्राणाग्नयो वा जाग्रति जाग्रत्स्वप्नयोर्मनः स्वातन्त्र्यमनुभवदहरहः सुषुप्तं वा प्रतिपद्यते । समानं हि सर्वप्राणिनां पर्यायेण जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिगमनमतो विद्वत्तास्तुति-रेवेयमुपपद्यते । यत्पृष्टं कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यतीति तदाह—

अत्रोपरतेषु श्रोत्रादिषु देहरक्षायै जाग्रत्सु प्राणादिवायुषु प्राक्सुषुप्तिप्रतिपत्तेः । [३]एत-स्मिन्नन्तराल एष देवो[४]ऽर्करश्मिवत्स्वात्मनि संहृतश्रोत्रादिकरणः स्वप्ने महिमानं [५]विभूतिं विषयविषयिलक्षणमनेकात्मभाव[६]गमनमनुभवति प्रतिपद्यते ।

प्राणधर्मो नाऽऽत्मधर्म इत्येवं त्वंपदार्थविवेकरूपत्वात्स्तोतव्यत्वोपपत्तिः । अत एव प्राणजागरणस्याविद्व[द्विद्व]त्साधारणत्वात्कथं विद्वत्तास्तुतिरित्यपि शङ्का निरस्ता तस्यैवंभूतविवेकाभावादिति । ननु विद्याप्रकरणत्वादस्य विदुषः श्रोत्राद्युपरमादिकं सर्वं भवतीति विधीयतां किं स्तुत्येत्याशङ्क्य विद्वदविद्वत्साधारण्येन स्वयमेव भवतो न विधेयत्वमित्याह—न हीति । विद्वत्तास्तुतिरेवेति । श्रोत्रादिकं परे देवे मनस्येकी भवति प्राणाग्नयो जाग्रतीत्यत्र त्वंपदार्थविवेकरूपं ज्ञानं विवक्षितं तज्ज्ञानं गार्हपत्यो ह वा एषोऽपान इत्यादिना स्तूयत उक्तप्रकारेणेत्यर्थः । तृतीयप्रश्नोत्तरत्वेनात्रैष इत्यादि सर्वः पश्यतीत्यन्तं व्याचष्टे—यदिति । अत्रेति श्रौतं पदं गृहीत्वा व्याचष्टे—उपरतेष्वित्यादिनाऽन्तराल इत्यन्तेन । अनेकेति । विषयिविषयाद्यनेकभावगमनमित्यर्थः । इदं च महत्त्वव्याख्यानम् ।

है। ऐसा कहकर विद्वत्ता की स्तुति की गयी है क्योंकि केवल विद्वानों की ही श्रोत्रादि इन्द्रियाँ सोती हैं और प्राणाग्नियाँ जागती हैं तथा उसी का मन जाग्रत् और सुषुप्ति में स्वतन्त्रता का अनुभव करता हुआ प्रतिदिन सुषुप्ति में लीन होता है, ऐसी बात नहीं किन्तु सभी प्राणियों के लिये जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति में गमन समान ही तो है। अतः उपासना के प्रसंग में (सर्व सामान्य सिद्ध भी मन की स्वतन्त्रता) विद्वत्ता की स्तुति के लिये ही है, ऐसा मानना उचित है। हे शिष्य ! पहले तूने जो यह पूछा था कि कौन देव स्वप्न को देखता है, यह बात अब बतलाते हैं। श्रोत्रादियों की इस उपरतिरूपा अवस्था में देह की रक्षा के लिये प्राणादि वायु के जगे रहने पर सुषुप्ति प्राप्ति से पूर्व (जाग्रत् एवं सुषुप्ति के) मध्यावस्था में यही देव अपनी विभूति का अनुभव करता है। जिसने सूर्य की किरणों के समान श्रोत्रादि इन्द्रियों को अपने में लीन कर लिया है। अतः विषय-विषयीरूप अनेकात्मत्व होकर प्राप्त हो जाता है।

---

१. अनर्थायेति—सुषुप्तिरिति शेषः । २. स्वपन्त इत्यत्र परस्मैपदपाठो न्याय्यः । ३. एतस्मिन्नन्तराले जागरासुप्त्योर्मध्यकाल इत्यर्थः । ४. एव देवो मनोऽभिधान इत्याशयेन विशिनष्टि—स्वात्मनि संहृत-श्रोत्रादिकरण इति । एवं ह वैतत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवतीति हि पठितमधस्तात् । ५. विभूतिं विविधाकारेण भवनं तदेतदाचष्टे—विषयेत्यादिना । ६. गमनं प्रतिपद्यते करोति प्राप्नोतीति द्वयोरर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥५॥

सुनी हुई बातों को फिर सुनता है और दिशा तथा विदिशा में अनुभूत वस्तु को ही पुनः पुनः अनुभव करता है। (विशेष क्या कहें) इस जन्म में देखे और जन्मान्तर में सुने वैसे ही अनुभूत और अननुभूत, पृथिव्यादि सत् और मृगजलादि असत् सभी प्रकार की वस्तु को देखता है और वह सर्वरूप से मनोदेव स्वप्न को देखता है ॥५॥

ननु महिमानुभवने करणं मनोऽनुभवितुस्तत्कथं स्वातन्त्र्येणानुभवतीत्युच्यते स्वतन्त्रो हि क्षेत्रज्ञः। नैष दोषः। क्षेत्रज्ञस्य स्वातन्त्र्यस्य मनउपाधिकृतत्वान्न हि क्षेत्रज्ञः परमार्थतः स्वतः स्वपिति जागर्ति वा। मनउपाधिकृतमेव तस्य जागरणं स्वप्नश्चेत्युक्तं वाजसनेयके—"[1]सधीः स्वप्नो भूत्वा ध्यायतीव लेलायतीव" इत्यादि। तस्मान्मनसो विभूत्यनुभवे स्वातन्त्र्यवचनं न्याय्यमेव। मनउपाधिसहितत्वे स्वप्नकाले क्षेत्रज्ञस्य स्वयं-

---

स्वप्नद्रष्टुर्जीवस्य स्वातन्त्र्ये वक्तव्ये देवशब्दितमनसस्तदुक्तिः स्वप्नो मनोधर्मो नाऽऽत्मधर्म आत्मनि तु तदारोपमात्रं लोकस्येति ख्यापनार्थेति शङ्कापरिहाराभ्यामाह—नन्विति। मनउपाधिकृतमिति। बाह्येन्द्रिययुक्तमनउपाधिकृतं जागरणं केवलमनउपाधिकृतः स्वप्न इत्यर्थः। स्वप्नस्य धीशब्दवाच्यमनःपरिणामत्वात्। स्वप्नो भूत्वेतिश्रुतौ [2]सामानाधिकरण्यनिर्देश इति द्रष्टव्यम्। [3]नन्वियं श्रुतिर्विभूत्यनुभवने मनःस्वातन्त्र्यं वक्तुं न शक्नोति [4]श्रुत्यन्तरविरोधापत्तेः। अतोऽत्र देवशब्देन क्षेत्रज्ञ एवोच्यते। तस्यैव स्वतः स्वातन्त्र्यमिति शङ्कते—मन इति। स्वयंज्योतिष्ट्वमिति। [5]स्वयंज्योतिष्ट्वबोधकश्रुतिरित्यर्थः। [6]अन्यथा द्वितीयसत्त्वेऽपि दीपादीनामिव वास्तवस्य तस्य बाधाभावादित्यत्र किं मनसः

शंका :—विभूति के अनुभव करने में अनुभव कर्ता पुरुष का मन करण-स्थानीय है। फिर भला आपने यह कैसे कह दिया कि वह मन स्वतन्त्रता से स्वप्न में अपनी महिमा का अनुभव करता है क्योंकि स्वतन्त्र तो केवल क्षेत्रज्ञ है।

समाधान :—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि क्षेत्रज्ञ की स्वतन्त्रता मनरूप उपाधि के कारण ही तो है। सत्य पूछो तो क्षेत्रज्ञ स्वयं न सोता है और न जागता है, उसका जागना और सोना तो मनरूप उपाधि के कारण ही है; ऐसा बृहदारण्यक श्रुति में कहा है "यह बुद्धि के साथ तादात्म्य का प्राप्तकर स्वप्नरूप हो जाता है, उस समय मानो ध्यान करता तथा चेष्टा करता-सा भासता है"

---

१. सधीरिति—सहीति काण्वपाठोपलम्भः। २. सामानाधिकरण्य निर्देश इति—दृश्यते हि सपरिणामपरिणामिनोः क्षीरं दधि भूत्वाऽवतिष्ठत इत्येवमादिरिति भावः। ३. इयं श्रुतिः—अत्रैष देव इत्येषा प्रकृता श्रुतिरित्यर्थः। ४. श्रुत्यन्तरेति—अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति—इति श्रुत्यन्तरेत्यर्थः। ५. स्वयंज्योतिष्ट्वं हि वास्तवमात्मनोरूपं कथं बाधमर्हतीत्याशङ्कमानं भाष्यार्थं पाठयत—स्वयंज्योतिष्ट्वबोधकश्रुतिरित्यर्थः। ६. उक्तमर्थममन्यमानमनिष्टेन पिनष्टि—अन्यथेत्यादि। यथा दीपादीनां वास्तवं स्वयंज्योतिष्ट्वं ज्योतिरन्तरसत्त्वेऽपि न बाध्यते तद्वद्द्वितीयस्य मनसः सत्त्वेऽपि न तद् बाध्येतैव तथा च बाध्येतेत्येव बाध्येतेत्यनिष्टमापतेदिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्योतिष्ट्वं बाध्येतेति केचित् । तन्न । श्रुत्यर्थापरिज्ञानकृता भ्रान्तिस्तेषाम् । यस्मात्स्वयं-ज्योतिष्ट्वादिव्यवहारोऽप्या[1]मोक्षान्तः सर्वो[2]ऽविद्याविषय एव मनआद्युपाधिजनितः ।

यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येत्[3]न्मात्रासंसर्गस्त्वस्य भवति "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्" इत्यादिश्रुतिभ्यः । अतो [4]मन्दब्रह्मविदामेवेयमाशङ्का न त्वे[5]कात्मविदाम् । नन्वेवं सत्यत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिरिति विशेषणमनर्थकं भवत्यत्रोच्यते ।

सत्त्वे ज्योतिरन्तरस्य मनसो विद्यमानत्वादात्मनः स्वयंज्योतिष्ट्वबोधनं न शक्यमिति श्रुतेः कार्यस्य बोधनस्य बाधोऽभिप्रेत उत तद्बोधनरूपकार्यसिद्ध्यर्थं मनसोऽभावोऽपि विवक्षितः श्रुतौ । ततश्च [6]'तत्सत्त्वे [7]'श्रुत्यर्थबाध इति वा । नाऽऽद्यः । मनसि सत्यप्येवं तर्हीति वक्ष्यमाणरीत्या मनसो दृश्यत्वेन ज्योतिष्ट्वायोगेनाऽऽत्मन एव स्वयंज्योतिष्ट्वस्य बोधयितुं शक्यत्वादित्याह—तन्नेति । न द्वितीयः, तदानीं मनसोऽभावस्तु श्रुत्यर्थ एव न भवतीत्याह—श्रुत्यर्थेति । आत्मनि ज्योतिष्ट्वबोधनात्मकव्यवहारस्य [8]'प्रकाश्यादिसापेक्षत्वात्तस्मिन्सत्येव तद्बोधसाधने मनआदौ च सत्येव तद्बोधयितुं शक्यते नान्यथेति मनआद्यभावो न श्रुतौ विवक्षितः, तथा सति तद्बोधनाशक्तेरित्याह—यस्मादिति ।

तत्र मानमाह—यत्र वेति । द्वितीयाभावे व्यवहारो नास्तीत्यत्रापि मानमाह—मात्रेति । दृश्यं मात्राशब्दार्थः । असंसर्ग इति च्छेदः । दृश्यासंसर्गे सुषुप्तौ विशेषविज्ञानाभावोक्त्या द्वितीयाभावे व्यवहारो नास्तीत्यर्थः । अतो न द्वितीयः कल्पः संभवतीत्याह—अत इति । ननु यदि स्वयंज्योतिष्ट्व-बोधनार्थं मनआद्यभावो नापेक्षितो जागरितेऽपि तर्हि तद्बोधनसंभवादत्रेति स्वप्नवाचिविशेषणमनर्थकमिति शङ्कते—नन्विति । किं विशेषणबलान्मनसोऽभावः सिषाधयिषित उत विशेषणस्य [9]'गतिमात्रं पृच्छ्यते । नाऽऽद्यः । मनसोऽभावाङ्गीकारेऽप्यन्तर्हृदयाकाशस्य तत्कृतपरिच्छेदस्य च श्रुतिसिद्धत्वेन त्वन्मतेऽपि तत्र स्वयंज्योतिष्ट्वबोधनासंभवाद्विशेषणानर्थक्यं तुल्यमित्याह—अत्रोच्यत इति । परि-

---

इत्यादि । अतः विभूति के अनुभव में मन को स्वतन्त्र कहना उचित ही है ।

कुछ लोग कहते हैं कि स्वप्न के समय मनरूप उपाधि के सहित क्षेत्रज्ञ को मानने पर क्षेत्रज्ञ की स्वयंप्रकाशता बाधित हो जायगी; ऐसा कहना ठीक नहीं । श्रुत्यर्थ को न जानने के कारण ही उन्हें ऐसा भ्रम होता है क्योंकि मन आदि उपाधि से प्राप्त स्वप्रकाशत्वादि सभी व्यवहार भी मोक्ष पर्यन्त अविद्या के कारण ही है । ऐसा ही "जहाँ कोई अन्य-सा हो वहाँ पर ही दूसरा दूसरे को देखता है" "इस आत्मा का विषय के साथ संसर्ग होता नहीं" "जहाँ इस तत्त्वज्ञानी के लिये सब कुछ आत्मा ही हो गया, वहाँ किससे किसको देखे" इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है । अतः यह शंका मन्द ब्रह्म-ज्ञानियों की है; अद्वैत आत्मतत्त्व के जानने वालों की नहीं ।

---

१. आमोक्षान्त इति—मोक्षं मर्यादीकृत्येत्यामोक्षमामोक्षमन्तःस्वरूपं यस्य स तथोक्तः । अन्तःस्वरूपे निकटे प्रान्ते निश्चयनाशयोरिति हैमः । २. अविद्येत्यादि—अविद्योपादानको मनआदिनिमित्तक इत्यर्थः । ३. मात्रेत्यादि वाक्यमन्वेष्यम् । ४. मन्देति—मन्दा ब्रह्मविदो नाम ब्रह्मणि श्रद्धालवोऽपि न तद्गतिं संविदन्तीत्यर्थः । ५. एकेत्यादि—मुख्यात्मविदामित्यर्थः । एके मुख्यान्यकेवला इति कोशः । ६. तत्सत्त्वे स्वप्ने मनःसत्त्वोपगमे । ७. श्रुत्यर्थबाध इति—श्रुतिविवक्षितार्थस्य मनोऽभावस्याभाव इत्यर्थः । ८. प्रकाश्या-दीत्यादिना प्रकाश्यसंसर्गो विवक्षितः । ९. गतीति फलेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्यल्पमिदमुच्यते य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्शेत इत्यन्तर्हृदयपरिच्छेदे सुतरां स्वयंज्योतिष्ट्वं बाध्येत, सत्यमेवमयं दोषो यद्यपि स्यात्स्वप्ने केवलतया स्वयंज्योतिष्ट्वे नार्धं तावदपनीतं भारस्येति चेन्न। तत्रापि 'पुरीतति नाडीषु शेत इति श्रुतेः 'पुरीतति नाडीसंबन्धात्तत्रापि पुरुषस्य स्वयंज्योतिष्ट्वे नार्धभारापनयाभिप्रायो मृषैव। कथं तर्ह्यत्रायं

च्छेदोऽधिकोन्नत इति तरपः प्रयोगः। स्वयंज्योतिष्ट्वमिति। तद्बोधनमित्यर्थः। यथाश्रुते वास्तवस्य तस्य बाधस्यानाशङ्क्यत्वादिति। यद्यपि स्वप्नेऽन्तर्हृदयाकाशसत्त्वात्सम्यक्स्वयंज्योतिष्ट्वं बोधयितुं न शक्यमिति दोषस्तुल्यस्तथाऽपि स्वप्ने मनसोऽभावेन तद्बोधनप्रतिबन्धकस्यार्धस्याभावाद्दूरविप्रकर्षेण स्वयंज्योतिष्ट्वं स्वप्ने बोधयितुं शक्यमिति तद्विशेषणमर्थवदिति शङ्कते—सत्यमिति। स्यादित्यनन्तरं तथाऽपीति शेषः। केवलतयेति। मनसोऽभावेनेत्यर्थः। भारस्येति। प्रतिबन्धकस्येत्यर्थः। शेषबोधनं तु सुषुप्ते भविष्यतीत्यभिप्रायः। एवं तर्हि सुषुप्ते सर्वस्याप्यभावमाश्रित्य सम्यग्बोधनं विवक्षणीयं न च तत्संभवति। तत्रापि बहुप्रतिबन्धकस्य विद्यमानत्वादित्याह—न तत्रापीति। सुषुप्तेऽपीत्यर्थः। तत्रापीति। स्वप्नेऽपीत्यर्थः। सुषुप्ते चेत्सर्वभारापनयः स्यात्तदा स्वप्नेऽर्धभारापनयाभिप्रायो वर्णयितुं शक्यते न च तदस्ति। अतोऽत्रेति विशेषणं तदाऽप्यनर्थकमित्यर्थः। तर्हि विशेषणस्य गतिर्वक्तव्येति द्वितीयं शङ्कते—कथं तर्हीति। अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवतीत्यथर्वशाखावाक्यार्थकथनावसरे काण्वश्रुतिगतविशेषणस्य गतिर्न वक्तव्या प्रकृतानुपयोगादिति सिद्धान्त्येकदेशो कश्चि-

---

शंका :—ऐसा मानने पर "इस स्वप्नावस्था में यह पुरुष स्वयं प्रकाश है" इस वाक्य से कहा गया आत्मा का स्वयं ज्योतिष्ट्व विशेषण अनर्थक हो जायगा ?

समाधानः—इस पर हमें यह कहना है कि आपका यह कथन अत्यन्त थोड़ा ही है "यह जो हृदय के मध्यवर्ती आकाश है, उसमें यह आत्मा सोता है" इस वाक्य द्वारा आत्मा में अन्तर्हृदय रूप परिच्छेद के सिद्ध हो जाने पर स्वप्रकाशत्व और भी बाधित हो जागया।

शंका :—यद्यपि यह दोष तो सत्य ही है तथापि स्वप्न में मन का अभाव हो जाने के कारण आत्मा के स्वप्रकाशत्व में प्रतिवन्धक का आधा भाग तो टल हो जाता है (क्योंकि मन के रहने तक आत्मा का स्वप्रकाशत्व पूर्णरूपेण स्फुटित नहीं होता)।

समाधान :—ऐसी बात नहीं है, उस अवस्था में भी "पुरीतत् नाड़ी में सोता है" इस श्रुति से जीव का पुरीतत्व नाड़ी के साथ संबन्ध बतलाया गया है। अतः यहाँ पर भी यह अभिप्राय मिथ्या ही होगा कि पुरुष के स्वयं ज्योतिष्ट्व में आधे प्रतिबन्धक निवृत्त हो जाते हैं।

शंका :—तो फिर यह कैसे कहा गया कि "इस अवस्था में यह पुरुष स्वयं प्रकाश होकर रहता

---

१. अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्यचन वेद हिता नाम नाड्योद्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेत इति वाक्यमाश्रित्याह—पुरीततीति। हृदयपुण्डरीकपरिवेष्टनं पुरीतदित्युच्यते। २. पुरीतति नाडीसम्बन्धादिति—पुरीतति शयानस्य पुरीतद्द्वारा नाडीभिः सम्बन्धादित्यर्थः। ३. अधिकोन्नत इति—अधिकविरोधीत्यर्थः। स हि स्वयंज्योतिष्ट्वसंकोचको ननु मनस्तथेति भावः। ४. अदूरेत्यादि—स्वल्पवैदूर्येणेत्यर्थः। अर्धमिति यावत्। ५. ज्योतिरन्तरापेक्षं कैवल्यमित्याशयेनाह—मनस इत्यादि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरुषः स्वयंज्योतिरिति । अन्यशाखात्वादनपेक्षा सा श्रुतिरिति चेन्न । अर्थैकत्वस्येष्टत्वादेको ह्यात्मा सर्ववेदान्तानामर्थो विजिज्ञापयिषितो बुभुत्सितश्च । तस्माद्युक्ता स्वप्न आत्मनः स्वयंज्योतिष्ट्वोपपत्तिर्वक्तुम्, श्रुतेर्यथार्थतत्त्वप्रकाशकत्वात् । एवं तर्हि शृणु श्रुत्यर्थं हित्वा सर्वमभिमानं न त्वभिमानेन वर्षशतेनापि श्रुत्यर्थो ज्ञातुं शक्यते सर्वैः पण्डितंमन्यैः ।

यथा हृदयाकाशे पुरीतति नाडीषु च स्वपतस्तत्संबन्धाभावात्ततो विविच्य

न्मन्दः शङ्कते—अन्येति । [1]सर्ववेदान्तप्रत्ययन्यायेनाथर्वश्रुत्यविरोधेनैकवाक्यतया श्रुत्यर्थस्य वर्णनीयत्वात्तदविरोधोऽपि वक्तव्य इति पूर्ववाद्याह—नार्थैकत्वस्येति । तर्हि काण्वश्रुति[2]रर्थाभावात्त्यज्यतामत आह—श्रुतेर्यथार्थेति । स्वाध्यायोऽध्येतव्य इत्यध्ययनविधेरर्थावबोधफलकत्वा[3]त्तुल्यं च सांप्रदायिकमितिन्यायाच्चाक्षरमात्रस्याप्यानर्थक्यायोगादित्यर्थः । एवमेकदेशिनि दूषिते सिद्धान्त्युत्तरमाह—एवं तर्हीति ।

[4]तर्ह्यादावेव [5]मुख्यश्रुत्यर्थं उच्यतां किं पूर्वोक्तरीत्या पक्षान्तराशङ्कातन्निराकरणाभ्यामित्याशङ्क्य पाण्डित्याभिमानवतो यथावदर्थबोधेऽनधिकारात्तस्य तदभिमानावतारचिकीर्षया तदीयनानापक्षा निराकृता इति वक्तुं सर्वमभिमानं [6]निरस्येत्याद्युक्तम् । स्वयंज्योतिष्ट्वश्रुतेरनतिशङ्क्यत्वात्तद्बलात्स्वप्नादौ हृदयाकाशादिसत्त्वेऽपि तत्संबन्धप्रतीत्यभावाद्विद्यमानस्याप्यविद्यमानतुल्यत्वेनाऽऽत्मनः केवलत्वात्प्रकाशदर्शनाच्च स्वयंज्योतिष्ट्वमिति बोधनीयं मनसोऽभाववादिनाऽप्येव मनसि सत्यपि तस्य वासनामयगजतुरगादि[7]विषयतया परिणामाद्दृश्यत्वाच्च द्रष्टुस्ततो भेदेन विवेकतः श्रुत्या स्वप्रकाशत्वं बोध्यत इत्याह—यथेत्यादिना । मनसीनि । सत्यपीति शेषः । ननु मनश्चेदविद्यादिनिमित्तवशाद्गजतुरगादि-

है । मध्यस्थ:—यदि ऐसा माने तो कि यह श्रुति अन्य काण्वशाखा की है । अतः उसकी यहाँ कोई अपेक्षा नहीं है ।

शंका :—ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि हमें सब श्रुतियों के अर्थ की एकता बतलाना ही अभीष्ट है, सम्पूर्ण वेदान्त को एक आत्मतत्त्व का प्रतिपादन ही अभीष्ट है और वही जिज्ञासुओं को जानना इष्ट है । अतः श्रुति में आत्मा की स्वप्रकाशता की सिद्धि युक्ति-युक्त ही है । क्योंकि श्रुति यथार्थ तत्त्व को ही बतलाती है ?

समाधान :—अच्छा अब सभी प्रकार के अभिमान को छोड़कर श्रुति के अर्थ को सुनो क्योंकि स्वयं अपने आपको पण्डित मानने वाले सभी पुरुषों को सौ वर्ष में भी अभिमान पूर्वक श्रुति तात्पर्य को समझना शक्य नहीं है ।

१. सर्ववेदान्तेति—"सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्" (ब्र. सू. ३।३।१) सर्ववेदान्तैः प्रत्ययं प्रतीयमानान्युपासनानि न भिद्यन्ते । कुतः । चोदनाद्यविशेषात् । यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च प्राणं वेद, इत्यादि चोदनाया विधेः छन्दोगानां वाजसनेयिनां चाविशिष्टत्वादित्यर्थः । शिष्टं तत्रैव द्रष्टव्यम् । इत्ययमुपासनाविषयोऽपि न्यायः सर्ववेदान्तविषयेऽवतरतीति भावः । २. अर्थाभावात्त्यज्यतामिति—अभिधेयानुपपत्तेर्व्यर्थेत्यास्थीयतामित्यर्थः । ३. "तुल्य च साम्प्रदायिकमिति" (जै. सू. १।२।८) साम्प्रदायिकं गुरुपरम्परासम्प्रदायप्राप्तं स्वाध्यायविधिपरिगृहीतत्वानध्यायपाठाभावादिरूपपालनादिकं तुल्य विध्यर्थवादयोः समानमिति न संपातायातमर्थवादादीत्यर्थः । ४. तर्हीति—अन्तेऽवश्यवक्तव्यश्चेदित्यर्थः । ५. मुख्यः श्रुत्यर्थ इति विग्रहः । ६. निरस्येति—हित्वा स्थाने समापतत् । ७. विषयतया परिणामादिति—तथा च मनस्त्वेन मनःप्रतीत्यभावस्तत्रेति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दर्शयितुं शक्यत इत्यात्मनः स्वयंज्योतिष्ट्वं न बाध्यते। एवं मनस्यविद्याकामकर्मनिमित्तोद्भूतवासनावति कर्मनिमित्तवासनाऽविद्ययाऽन्य[1]द्वस्त्वन्तरमिव[2] पश्यतः सर्वकार्यकरणेभ्यः प्रविविक्तस्य द्रष्टुर्वासनाभ्यो दृश्यरूपाभ्योऽन्यत्वेन स्वयंज्योतिष्ट्वं सुदर्पितेनापि तार्किकेण न वारयितुं शक्यते। तस्मात्साधूक्तं मनसि प्रलीनेषु करणेष्वप्रलीने च मनसि [3]मनोमयः स्वप्नान्पश्यतीति।

कथं महिमानमनुभवतीत्युच्यते। यन्मित्रं पुत्रादि वा पूर्वं दृष्टं तद्वासनावासितः

रूपेणाभिव्यक्तवासनावर्त्तीह जाग्रतीव तस्याहंतयैव प्रतीतिः स्यान्नेदंतयाऽत आह—कर्मनिमित्तेति। तथा प्रतीतिं विना स्वप्ने भोगासिद्धेः स्वप्नभोगप्रदकर्मनिमित्तवशाज्जाग्रति गजादीनामिदंतयाऽनुभवेन तद्वासनानामपि तथैवानुभवार्हत्वेन तद्वासनारूपाविद्यावशाच्च वासनाश्रयस्य मनस इदंतयैव वस्त्वन्तरवत्प्रतीतिरित्यर्थः। इदं च [4]विशेषणं मनसो विषयत्वेन विषयित्वासंभवाद्विषयिण आत्मन एव प्रकाशरूपत्वमिति वक्तुम्। जाग्रत्यादित्यादिकार्यज्योतिषां चक्षुरादिकरणज्योतिषां च सत्त्वेन तत्संकीर्णत्वेनाऽऽत्मनः स्वयंज्योतिष्ट्वं दुर्बोधं स्वप्ने तु तदभावात्सुबोधमिति वक्तुं सर्वकार्येत्यादि विशेषणम्। स्वप्न आदित्यादिकार्यकरणज्योतिषां भासमानत्वेऽपि तेषां वासनामात्रत्वाद्दृश्यत्वाच्च विषयप्रकाशनासामर्थ्यमिति वक्तुं वासनाभ्य इत्यादि विशेषणम्। एतैश्च विशेषणैः स्वप्न ए[5]वंभूते स्वयंज्योतिष्ट्वस्य बोधयितुं शक्यत्वादन्यत्रासंभवादत्रायमितिश्रुतौ स्वप्नविशेषणग्रहणमर्थवदित्युक्तमिति द्रष्टव्यम्। स्वयंज्योतिष्ट्वमिति। सिद्धमिति शेषः। अतः काण्वश्रुतौ स्वप्ने मनसोऽभावविवक्षाकारणाभावेन तद्विरोधाभावादत्र देवशब्देन परे देवे मनस्येकी भवतीत्युक्तं मन एवोच्यत इत्युक्तमुपसंहरति—तस्मादिति।

नन्वि[6]न्द्रियाणामुपरतत्वाद्विषयसबन्धाभावात्कथं मनसो महिमानुभव इति शङ्कते—कथमिति। पूर्वं ज्ञातस्यैव स्वप्ने ज्ञानात्तस्य वासनामात्रत्वमतो नेन्द्रियापेक्षेत्याह—उच्यत इति। यदिति। [7]यन्मित्रं

जैसे स्वप्न के समय हृदयाकाश में और पुरीतत् नाड़ी में सोने वाले आत्मा का स्वप्रकाशत्व बाधित नहीं हो सकता, वैसे ही अविद्या, कामना और कर्म आदि के कारण उद्बुद्ध वासनाओं से युक्त होने पर भी मन में अविद्या के कारण प्राप्त कर्म निमित्तक वासना को अन्य वस्तु की भाँति देखने वाले तथा सम्पूर्ण कार्य-करणों से भिन्न द्रष्टा आत्मा का स्वप्रकाशत्व बड़े-बड़े दर्प युक्त तार्किकों द्वारा भी मिटाया नहीं जा सकता क्योंकि वह दृश्य वासनाओं से भिन्न द्रष्टारूप में ही स्थित है। अतः यह कहना सर्वथा उचित ही है कि इन्द्रियों के मन में लीन हो जाने पर और मन के लीन न होने पर मन के साथ तादात्म्य हुआ मनोमय आत्मा स्वप्नों को देखता रहता है।

१. अन्यन्मनः। २. वस्त्वन्तरमिवेति—इदंतयेति यावत्। कार्यंज्योतिः करणज्योतिर्भ्यं इत्याह—सर्वेत्यादि। ३. मनोमयो मनोदेव इति यावत्। आत्मन एव द्रष्टृत्वेऽपि स्वमर्थविवेकार्थं स्वप्नस्य मनोधर्मत्वविवक्षणे नोपाधिप्रधानकत्वादस्य प्रकरणस्येत्यवधेयम्। मयटं ढंकारयन्नाह—आत्मन एवेति मयटा मनसः प्राधान्यं विवक्षितमिति भावः। ४. विशेषणमिति—पश्यत इत्यन्तं द्रष्टृविशेषणमित्यर्थः। ५. एवंभूते इति—यद्यप्युक्तविशेषणैरेवंभूतत्वमात्मनस्तथापि निमित्तत्वात्स्वप्नस्यापि तदिति भावः। ६. मनसो विषयसंबन्धाभावे हेतुः—इन्द्रियाणामुपरतत्वादिति। चक्षुरादिद्वारक एव मनसो रूपादिसम्बन्धो न साक्षादिति। ७. पुत्रादीत्यस्य स्थाने पुत्रमिति पाठं मत्वाह—यन्मित्रमित्यादि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुत्रमित्रादिवासनासमुद्भूतं पुत्रं मित्रमिव वाऽविद्यया पश्यतीत्येवं मन्यते, तथा श्रुतमर्थं तद्वासनयाऽनुश्रृणोतीव, देशदिगन्तरैश्च देशान्तरैर्दिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनस्तत्प्रत्यनुभवतीवाविद्यया, तथा दृष्टं चास्मिञ्जन्मन्यदृष्टं च जन्मान्तरदृष्टमित्यर्थः। अत्यन्ताहष्टे वासनानुपपत्तेः। एवं श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चास्मिञ्जन्मनि केवलेन मनसाऽननुभूतं च मनसैव जन्मान्तरेऽनुभूतमित्यर्थः। सच्च परमार्थोदकादि। असच्च मरीच्युदकादि। किं बहुनोक्तानुक्तं सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति सर्वमनोवासनोपाधिः सन्नेवं सर्वकरणात्मा मनोदेवः स्वप्नान्पश्यति ॥५॥

पुत्रं वा पूर्वं दृष्टवांस्तदेव दृष्टं पुत्रमित्रादिविषयवासनासमुद्भूतं मित्रं पुत्रं वाऽविद्यया पश्यतीति दृष्टवानित्यादिपदाध्याहारेण वाक्यं योज्यम्। अन्यथा पुत्रमिति द्वितीयाया यच्छब्दस्य चानन्वयः स्यादिति। चक्षुरभावेन दर्शनायोगान्मन्यत इत्युक्तम्। तथेति। अत्रापि योऽर्थः श्रुतस्तमेव श्रुतमर्थमित्यध्याहारेणैव श्रुतिर्योज्या। देशो नदीतीरादिः। दिक्प्राच्यादिरिति भावः। प्रत्यनुभूतं प्रतिवारमनुभूतं पुनः पुनरनेकदिनेष्वनेकस्वप्नेष्वनुभवतीत्यर्थः। जन्मान्तरदृष्टमिति व्याख्याने हेतुमाह—अत्यन्तेति। अनुभूतं चेत्यस्य प्रत्यनुभूतमित्यनेन पुनरुक्तिमाशङ्क्याह—केवलेनेति। पूर्वमिन्द्रियद्वारकानुभव उक्त इत्यपौनरुक्त्यमित्यर्थः। सर्वदर्शने हेतुमाह—सर्वं इति ॥ ५॥

वह अपनी विभूति का अनुभव कैसे करता है? इस पर कहते हैं कि जो मित्र या पुत्रादि उसके देखे हुए होते हैं। उन वासनाओं से वासित वह पुरुष पुत्र-मित्रादि की वासना से उद्भूत पुत्र या मित्र को मानो अविद्यावशात् देखता है, ऐसा समझता है। इसी प्रकार सुने हुए विषय को मानो उसकी वासना से सुनता है तथा देश-देशान्तरों में अर्थात् भिन्न-भिन्न दिशा एवं देशों में अनुभव किये हुए पदार्थों को अविद्या से वारम्वार अनुभव-सा करता है। इसी प्रकार इस जन्म में देखे हुए का अनुभव करता है क्योंकि अत्यन्त अदृष्ट पदार्थों में वासना का होना असंगत है एवं श्रुत-अश्रुत जिसका इसी जन्म में केवल अनुभव किया गया हो, ऐसे अनुभूत और जिसका मन से ही जन्मान्तर में अनुभव किया गया हो ऐसे इस जन्म में अननुभूत जलादि वास्तविक पदार्थ सत् और मृग-जलादि असत्, विशेष क्या कहें ऊपर कहे हुए या नहीं कहे हुए सभी पदार्थों को वह सभी मनोवासनारूप उपाधि वाला होकर देखता है। इस प्रकार यह सर्वेन्द्रियरूप मनोदेव स्वप्नों को देखता है ॥ ५॥

---

१. सर्वमनोवासनोपाधिरिति—सर्वमनोवासनाभिरुपहित उपश्रुत इति यावत्। सर्वविषयकवासनाभिरुपश्रुतत्वादेव सर्वः सन् सर्वं पश्यतीत्यर्थः। २. तदानीं चक्षुरादिसर्वकरणानां मनस्येव प्रलीनत्वादाह—सर्वकरणात्मेति। ३. दृष्टवानित्यादीत्यादिना तदेवेति गृह्यते। ४. दृष्टवानित्यनध्याहारे द्वितीया न लगेत् तदोऽनध्याहारे तु यदिति न लगेदित्याह—अन्यथेत्यादिना। ५. इन्द्रियद्वारकेति—वस्तुतस्तु देशदिगन्तरप्रयुक्तत्वेसति मनःप्रयुक्तत्वं प्रत्यनुभूतेर्मनोमात्रप्रयुक्तत्वं चानुभेतेरित्येषा न भवेदुदक्षराकल्पनेति ध्येयम्। ६. उक्त इति—विवक्षित इत्यर्थः। माध्यमते पक्षान्तरेतु यथाश्रुत इति भेदः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति । अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति ।६।।

जब वह मनोदेव (नाड़ी में रहने वाले पित्त नामक सौर) तेज से सर्वथा अभिभूत हो जाता है तब यह आत्मदेव स्वप्न नहीं देखता (क्योंकि उन्हें देखने का द्वार तेज से अवरुद्ध हो चुका है) उसके बाद इस शरीर में (साक्षी चैतन्य से) यह सुख जाना जाता है ।।६।।

स यदा मनोरूपो देवो यस्मिन्काले सौरेण पित्ताख्येन तेजसा नाडीशयेन सर्वतोऽभिभूतो भवति तिरस्कृतवासनाद्वारो भवति तदा सह करणैर्मनसो रश्मयो हृद्युपसंहृता भवन्ति । यदा मनो दार्वग्निवद विशेषविज्ञानरूपेण कृत्स्नं शरीरं व्याप्यावतिष्ठते तदा सुषुप्तो भवति । अत्रैतस्मिन्काल एष मनआख्यो देवः स्वप्नान्न दर्शनद्वारस्य निरुद्धत्वा-

---

कस्यैतत्सुखं भवतीत्यस्योत्तरं तदपेक्षितं वदन्नाह—स यदेति । पित्ताख्येनेति । इदमुपलक्षणं चिद्रूपेण ब्रह्मणा चेत्यपि द्रष्टव्यम् । तन्मनः प्राणमेवोपश्रयत इतिश्रुत्यन्तरेण प्राणशब्दिते ब्रह्मणि तस्य लयाभिधानात् । तिरस्कृतेति । वासनाभिव्यक्तौ द्वारं स्वप्नभोगप्रदं कर्म यत्तत्तिरस्कृतं तत्रोपरतं भवति तेजःशब्दितब्रह्मचैतन्य संबन्धादित्यर्थः । रश्मय इति । वासना इत्यर्थः । अविशेषविज्ञानेति । 'सामान्यचैतन्यरूपेणेत्यर्थः । 'चेतनाशब्दितसामान्यवृत्तिरूपेण वा । अनेन सुषुप्तमुक्तमित्याह—तदेति । नन्वथैतत्सुखं भवतीत्ययुक्तं जन्यसुखस्य तदानीमसंभवात्स्वरूपसुखस्य पूर्वमपि समत्वेन तदा भवतीत्यनु-

---

जब वह मनरूप देव नाड़ी के मध्यवर्ती पित्त नामक सौर तेज से अभिभूत हो जाता है अर्थात् जब उसको वासनाओं को अभिव्यक्ति का द्वार बन्द हो जाता हैं, तब उस समय इन्द्रियों के सहित मन की रश्मियों का हृदय में उपसंहार हो जाता है । जैसे काष्ठ में व्याप्त अग्नि निर्विशेष रूप से स्थित रहता है, वैसे ही जब मन निर्विशेष विज्ञानरूप से सम्पूर्ण शरीर को व्याप्त करके स्थित रहता है, उस समय वह सुषुप्त माना जाता है अर्थात् उस काल में यह मन नामक देव स्वप्नों को नहीं देखता क्योंकि

---

१. अथेति—अथैतस्मिन्नित्येव शोभनः पाठः । २. सौरेणेति—देहधातुभेदस्य पित्तस्य सौरत्वं सूर्योष्मणा नाडी प्रविष्टेन संजातपाकत्वादित्यवधेयम् । ३. तिरस्कृतेत्यादि—स्वप्नात्मना परिणतो वासनैव द्वारं यस्य तिरस्कृतमित्यर्थः । दृष्टं हि बाह्योष्माद्याक्रान्तस्यापि विस्मरणादि तच्च संस्कारानुद्‌बोधादनुद्‌बोधश्चोष्माद्याक्रमादिति । ४. सह करणैरिति—करणानां लयस्य पुरस्तादेवोक्तत्वेऽपि दृष्टान्तार्थं पुनर्वचनं यथाकरणान्युपसंहृतानि तथा रश्मयोऽपीत्यर्थः । ५. अविशेषेत्यादि—मनो हि विज्ञानरूपमेव वृत्त्युद्भवे च विशेषविज्ञानरूपं तत् सुषुप्तौ चाविद्याविलीनत्वादविद्यात्मना कृत्स्नदेहव्यापित्वं तस्येत्यवधेयम् । ६. दर्शनद्वारस्येति—तेजसः पित्तत्वपक्षे वासनाजालस्येत्यर्थः । ७. सम्बन्धादिति—यज्ज्ञानादेव यदा कर्माणि भस्मीभवन्ति तदा साक्षात्तत्सम्बन्धे तु किमुवक्तव्यं कर्मोपरताविति भावः । तदैव तत्सम्बन्धे तु मूलं मृग्यम् । ८. सामान्यचैतन्यरूपेणेति—अविद्याविलीने मनसि विशेषाभासासंभवादविद्यावस्थिते च तस्मिन् सामान्यावभासस्यैव सत्त्वादिति भावः । ९. जीवनादृष्टावष्टब्धा काचन वृत्तिः सदैवावतिष्ठत इत्याशयेनाह—चेतनेत्यादि ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते ।
एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥७॥

हे सोम्य ! जैसे पक्षी अपने बसेरे वृक्ष की ओर जाते हैं, वैसे ही वह सब परमात्मा में स्थित हो जाता है ॥७॥

त्तेजसा । [1]अथ तदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति यद्विज्ञानं निराबाधमविशेषेण शरीरव्यापकं प्रसन्नं भवतीत्यर्थः ॥६॥

एतस्मिन्काले[2]ऽविद्याकामकर्मनिबन्धनानि कार्यकरणानि शान्तानि भवन्ति । तेषु शान्तेष्वात्मस्वरूपमुपाधिभिरन्यथा विभाव्यमान[3]मद्वयमेकं शिवं शान्तं भवतीत्येतामेवावस्थां पृथिव्याद्य[4]विद्याकृतमात्रानुप्रवेशेन दर्शयितुं दृष्टान्तमाह—

स दृष्टान्तो यथा येन प्रकारेण सोम्य [5]प्रियदर्शन वयांसि पक्षिणो [6]वासार्थं वृक्षं

पपत्तेरित्याशङ्क्य स्वरूपसुखमेव विशेषविज्ञानरूपविक्षेपाभावे निर्वातस्थदीपप्रभावत्सम्यक्प्रकाशते तदपेक्षमेतद्वचनमित्याह—यद्विज्ञानमिति । विज्ञानरूपं स्वरूपसुखमित्यर्थः ॥ ६ ॥

अनेनाऽऽनन्दमयकोशशब्दितमनभिव्यक्तमनआदिवासनावदज्ञानं सुषुप्तधर्मीत्युक्तं पञ्चमप्रश्नस्योत्तरं तुरीयस्वरूपं [7]विवेकसौकर्याद्विविच्या[8]त्रैवोच्यत इत्याह—एतस्मिन्निति । अन्यथेति । पूर्वमन्यथा विभाव्यमानमित्यर्थः । मात्रानुप्रवेशेनेति । मात्राणां [9]विवेकतोऽक्षरेऽनुप्रवेशेनेत्यर्थः ॥ ७ ॥

तेज के कारण उन्हें देखने का द्वार अवरुद्ध हो गया है; तत्पश्चात् इस शरीर में यह सुख होता है जो बाधा रहित और सामान्यरूप से सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त विज्ञान है, वही (सुखरूप से) स्फुट होता है। यह इसका अभिप्राय है ॥ ६ ॥

इस समय अविद्या, काम और कर्म इनके निमित्त से होने वाले कार्य-करण शान्त हो जाते हैं, उनके शान्त होते ही उपाधियों के कारण भिन्नरूप से भासित होने वाला आत्मस्वरूप अद्वय, एक शिव और शान्त स्वरूप ही वह तत्त्वविद् हो जाता है। अतः पृथिवी आदि अविद्या जनित विषयों के अनुप्रवेश द्वारा इसी अवस्था को दिखलाने के लिये दृष्टान्त देते हैं।

---

१. अथ तदेत्यनया वाचोयुक्त्या "अथैतस्मिन्नि"त्येव मूलपाठमनुमिनुमः । २. अविद्येति—अन्यथाप्रतीतिरूपा कार्याविद्येत्यर्थः । तस्या एव तदानीमुपशमेन कार्याद्युपशमादित्यवधेयम् । ३. अद्वयमेकमिति—द्वयं भेदत्रयं पराहन्ति तत्राद्वयमिति द्वयमेकमित्येकमित्यवधेयम् । ४. अविद्याकृतेति—अनेनाविद्यायामेवानुप्रवेश इति सूचयति न्याय्यश्च स एव पुनरुद्भवात् । अविद्याद्वारकं च परात्मसंप्रतिष्ठानमप्यविरुद्धमित्यूहनीयम् । ५. सोम इव सोम्यः शाखादिभ्यो यः इत्याशयेन व्याचष्टे—प्रियदर्शनेति । ६. पृषोदरादीनि यथोपदिष्टमिति न्यायेनाह—वासार्थमित्यादि । ७. ननु समाधौ वक्तव्यं किमिति सुप्तावुच्यते तत्राह—विवेकसौकर्यादिति । सुषुप्तौ हि सुकरो विवेकस्तस्याः सर्वसाधारणत्वादिति भावः । तस्याः सर्वसाधारणत्वादिति समाधिस्तु न तथेति भावः । ८. अत्रैवेति—सुप्त एवेत्यर्थः । ९. विवेकत इति—एकैकश इति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चाऽऽपश्चाऽऽपोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाऽऽकाशश्चाऽऽकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक् च स्पर्शयितव्यं च

शब्दादि पाँच गुणों से युक्त पृथिवी और उसकी गंधतन्मात्रा, जल और रसन्मात्रा, तेज और रूपतन्मात्रा, वायु और स्पर्शतन्मात्रा, आकाश और शब्दतन्मात्रा, नेत्र और द्रष्टव्य रूप विषय, श्रोत्र और उसका श्रोतव्य विषय शब्द घ्राण और घ्रातव्य विषय गन्ध, त्वगिन्द्रिय और स्पर्श योग्य

वासोवृक्षं प्रति संप्रतिष्ठन्ते गच्छन्ति। एवं यथा दृष्टान्तो ह वै तद्वक्ष्यमाणं सर्वं पर आत्मन्यक्षरे संप्रतिष्ठते ॥७॥

किं तत्सर्वम्—

पृथिवी च स्थूला पञ्चगुणा [1]तत्कारणा च पृथिवी मात्रा च गन्धतन्मात्रा, तथाऽऽपश्चाऽऽपोमात्रा च। तेजश्च तेजोमात्रा च। वायुश्च वायुमात्रा च। आकाशश्चाऽऽकाशमात्रा च। स्थूलानि च सूक्ष्माणि च भूतानीत्यर्थः। तथा चक्षुश्चेन्द्रियं रूपं च द्रष्टव्यं च। श्रोत्रं च श्रोतव्यं च। घ्राणं च घ्रातव्यं च। [2]रसश्च रसयितव्यं च। त्वक्च स्पर्शयितव्यं च। वाक्च वक्तव्य च। हस्तौ चाऽऽदातव्यं च। उपस्थश्चाऽऽनन्दयितव्यं च। पायुश्च विसर्जयितव्यं च। पादौ च गन्तव्यं च। बुद्धीन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि तदर्था-

---

आपोमात्रा इत्यत्र विभक्त्यलोपश्छान्दसः। स्थूलानि चेति। पञ्चीकृतानि चेत्यर्थः। ततश्च

वह दृष्टान्त इस प्रकार है। हे प्रिय दर्शन! जैसे पक्षी अपने बसेरे वृक्ष की ओर जाते हैं, जैसा यह दृष्टान्त है, वैसा ही आगे कहे जाने वाला वह सब सर्वातीत अक्षर आत्मा में जाकर स्थित हो जाता है ॥ ७ ॥

शब्दादि पांच गुणों से युक्त स्थूल पृथिवी और उसकी कारण रूपा गन्ध तन्मात्रा तथा जल और रस तन्मात्रा, तेज और रूप तन्मात्रा, वायु और स्पर्श तन्मात्रा एवं आकाश और शब्द तन्मात्रा अर्थात् सम्पूर्ण स्थूल और सूक्ष्मभूत वैसे ही चक्षुरिन्द्रिय और उसके द्रष्टव्यरूप, श्रोत्र और श्रोतव्य शब्द, प्राण और घ्रातव्य गन्ध एवं रसनेन्द्रिय और रसयितव्य, त्वक् और स्पर्शयितव्य, वाणी और वक्तव्य वचन, हाथ और उससे ग्रहण योग्य वस्तु, उपस्थ और आनन्दयितव्य, गुदा और उससे त्यागने योग्य मल, पाद और गन्तव्य स्थान; इस प्रकार कही गई ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तथा पूर्वोक्त मन और उसका मन्तव्य विषय, निश्चयात्मिका वृत्ति बुद्धि और उसका विषय, बोधव्य पदार्थ, अभिमानात्मक

---

१. तत्कारणेति—व्यासश्चन्थो युच् कारणपर्यायित्ता चास्य प्रकरणादित्यवधेयम्। २. रसश्चेति—रसोऽत्र रसनेन्द्रियम् तत्प्रकरणात्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाक् च वक्तव्यं हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहङ्कारश्चाहंकर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ॥८॥

हृदार्थ, हाथ और ग्रहण तद्ग्राह्य वस्तु, उपस्थ और आनन्दयितव्य वस्तु, पायु और विसर्ग जनित मल, पाद और गन्तव्य स्थान, मन और मनन योग्य वस्तु, बुद्धि और बोधयितव्य पदार्थ, अहंकार और अहंकार रूप विषय, चित्त और चेतनीय पदार्थ, तेज और प्रकाश्य पदार्थ, (प्रकाशक और प्रकाश के योग्य वस्तु) प्राण और उसके धारण करने योग्य वस्तु (ये सभी आत्मा में विलीन हो जाते हैं) ॥८॥

श्चोक्ताः। मनश्च पूर्वोक्तम्। मन्तव्यं च तद्विषयः। बुद्धिश्च निश्चयात्मिका। बोद्धव्यं च तद्विषयः। अहंकारश्चाभिमानलक्षणमन्तःकरणमहंकर्तव्यं च तद्विषयः। चित्तं च [1]चेतनावदन्तःकरणम्। चेतयितव्यं च तद्विषयः। तेजश्च त्वगिन्द्रियव्यतिरेकेण [2]प्रकाशविशिष्टा या [3]त्वक्तया निर्भास्यो विषयो विद्योतयितव्यम्। प्राणश्च सूत्रं यदाचक्षते तेन विधारयितव्यं संग्रथनीयं सर्वं हि कार्यकरणजातं [4]पारार्थ्येन संहतं नामरूपात्मकमेतावदेव ॥८॥

पञ्चीकरणमेतच्छ्रुतिसिद्धमित्युक्तमन्यथाऽऽकाशाकाशमात्रयोः पृथगुक्त्यनुपपत्तेरिति। यद्यपि मन्तव्यादयो मनआदिचतुष्टयविषया अपि द्रष्टव्यादिविषया एव न पृथक्तथाऽपि मन्तव्यत्वादिरूपेण पृथगिति पृथङ्निर्दिष्टा इति द्रष्टव्यम्। प्रकाशविशिष्टा या त्वगिति। [5]त्वगाश्रयं चर्म तत्प्रकाशनिर्भास्यं च तदेवेत्यर्थः। पृथिवी चेत्यादिना विधारयितव्यं चेत्यन्तेनाऽऽत्मव्यतिरिक्तं तदुपाधिभूतं सर्वं चोक्तमित्याह—सर्वं हीति ॥ ८ ॥

अहंकाररूप अन्तःकरण और उसका विषय अहंकर्तव्य, चेतना युक्त अन्तःकरणरूप चित्त और उसका चिन्तनीय विषय, त्वगिन्द्रिय से भिन्न प्रकाश विशिष्ट त्वग्रूप तेज और उससे प्रकाशित होने वाला विषय चर्म तथा प्राण जिसे सूत्रात्मा कहते हैं और उससे धारण करने योग्य (ये सभी सुषुप्ति के समय आत्मा में स्थिर हो जाते हैं क्योंकि) आत्मा के लिये संघात को प्राप्त नाम-रूपात्मक सम्पूर्ण कार्यकरण समुदाय इतना ही है ॥ ८ ॥

१. चेतनावदिति—स चिदाभासमित्यर्थः। यद्वा चेतना चिन्तन। २. प्रकाशविशिष्टा या त्वगिति—त्वग्गतो यः प्रकाश इत्यर्थः। तथा तेन प्रकाशेन विषयस्त्वगाख्यं चर्म। ३. विद्योतयितव्यमिति समभिव्याहारान्नात्र दिव्यं तेजोविवक्षितमध्यात्मप्रकरणाविरोधात् तेजश्च तेजोमात्रेत्यत्र तत्संग्रहाच्चेत्याशयेनाह—त्वगिति। ४. संहतत्वात्परार्थं यदर्थं चैतत् स सर्वस्मादस्मात्पर एवेति त्वमर्थशोधनं विवक्षित्वाऽऽह—पारार्थ्येनेत्यादि। ५. त्वगिति—त्वगाश्रय इति युक्तं वक्तुम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥ ९ ॥

यही देखने वाला, स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, सूँघने वाला, चखने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला और कर्ता विज्ञानात्मा पुरुष है। वह (सुषुप्ति के समय जगत् के आधारभूत) पर अक्षर आत्मा में सम्यक्‌रूप से स्थित हो जात है ॥९॥

अतः परं यदात्मरूपं [2]जलसूर्यकादिवद्भोक्तृत्वकर्तृत्वेनेहानुप्रविष्टम्—

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा विज्ञानं विज्ञायतेऽनेनेति करणभूतं बुद्ध्यादीदं तु विजानातीति विज्ञानं कर्तृकारकरूपं तदात्मा तत्स्वभावो विज्ञातृस्वभाव इत्यर्थः। पुरुषः कार्यकरणसंघातोक्तोपाधिपूर्णत्वात्पुरुषः । स च [3]जलसूर्यकादिप्रतिबिम्बस्य सूर्यादिप्रवेशवज्जलाद्याधारशोषे परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥ ९ ॥

एष हि द्रष्टेत्यादिनोपहितस्वरूपमुच्यत इत्याह—अतः परमिति । द्रष्टेति । उपाधिकृतमपि द्रष्टृत्वादिकमुपाधिव्यतिरिक्तेऽनुपहित आत्मन्यारोपितं स्फटिके लौहित्यवदस्तीत्युपाधिभिन्नोऽप्यात्मा द्रष्टेत्यादिनोक्तः । विज्ञानात्मेत्यत्र द्रष्टेत्यादाविव कर्तृवाचकतृचोऽभावाद्विज्ञानं यज्ञं तनुत इत्यादाविव बुद्धेरभिधाने पौनरुक्त्यमाशङ्क्याऽऽह—विज्ञानमिति । करणभूतमिति । [4]विज्ञानमय इत्यादावित्यर्थः । एष हीति हिशब्दश्चशब्दार्थकः स च संप्रतिष्ठत इति क्रिया[5]नुकर्षणार्थ इति [6]वदन्द्रष्टुरात्मनः पृथिव्यादिवत्स्वरूपेणाक्षरे लयो न संभवतीत्याशङ्क्योपाधिलय उपहितरूपाभाव एवास्य लय इत्याह—स चेति ॥ ९ ॥

सुषुप्ति में जीव परमात्मा को प्राप्त कर लेता है

जैसे जल में सूर्यादि प्रतिबिम्बित होते हैं, वैसे ही जो आत्मस्वरूप परतत्त्व इस शरीर में कर्ता-भोक्तारूप से अनुप्रविष्ट हुआ है, अब इसके आगे यही बतलाया जायगा।

यही देखने वाला, स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, सूँघने वाला, चखने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला, कर्ता, विज्ञान आत्मा जिसके द्वारा जाना जाता है, वह बुद्धि आदि ज्ञान के साधन स्वरूप हैं किन्तु यह आत्मा उन्हें जानता है। इसलिये यह कर्ता-कारकरूप विज्ञान है। वह वैसे स्वभाव वाला विज्ञातृ स्वरूप है और कार्य-करण संघातरूप पूर्वोक्त उपाधि में पूर्ण होने से यह पुरुष कहा जाता है। जैसे जल में दीखने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब जलरूप उपाधि के नष्ट होने पर सूर्य में प्रविष्ट हो जाता है, वैसे ही यह द्रष्टा-श्रोता आदिरूप से कहा गया पुरुष जगत् के आधाररूप अक्षर स्वरूप परमात्मा में सम्यक् प्रकार से स्थित हो जाता है ॥ ९ ॥

---

१. द्रष्टा "सृजिदृशोर्झल्यमकिति"। स्रष्टा "अनुदात्तस्यचर्दुपधस्याम्यतरस्याम्"। २. जलसूर्यकेति—जले सूर्य इव प्रतिकृतिर्जलसूर्यकः। ३. जलसूर्यकेति जले सूर्य इव प्रतिकृतिर्जलसूर्यकः। "इवे प्रतिकृतापित कन्"। नासौ प्रतिकृतिः काष्ठादिप्रतिमारूपेत्याशयेनाह—प्रतिबिम्बेति। जलसूर्यकश्चासौ प्रतिबिम्बश्चेति विग्रहः। ४. विज्ञानमय इति—अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमय इत्यादि वाक्यप्रतीकोऽयम्। ५. अनुकर्षणार्थं इति—अन्वयार्थ इति यावत्। ६. वदन्—विवक्षन्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायम-शरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य। स सर्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

हे साम्य ! (सम्पूर्ण एषणाओं से छूटा हुआ अधिकारी पुरुष) इस तमोहीन, लोहितादि सम्पूर्ण गुणों से रहित, शुभ्र अक्षर को जो जानता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है और सर्वरूप हो जाता है, अर्थात् सर्वाधिष्ठान चैतन्य ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। इस विषय में यह श्लोक (मन्त्र) है ॥ १० ॥

तदेकत्वविदः फलमाह—

परमेवाक्षरं वक्ष्यमाणविशेषणं प्रतिपद्यत इत्येतदुच्यते। स यो ह वै [1]तत्सर्वैषणा-विनिर्मुक्तोऽच्छायं तमोवर्जितम्। अशरीरं नामरूपसर्वोपाधिशरीरवर्जितम्। अलोहितं लोहितादिसर्वगुणवर्जितम्। यत एवमतः शुभ्रं शुद्धं सर्वविशेषणरहितत्वात्। अक्षरं सत्यं पुरुषाख्यम्। अप्राणममनोगोचरं शिवं शान्तं सबाह्याभ्यन्तरमजं वेदयते विजानाति।

एवं जाग्रदादीनामन्यधर्मत्वोक्त्या शोधिततुर्यात्मानुवादेन तस्याक्षरैक्याभिधानपुरःसरं तज्ज्ञानस्य फलमुच्यत उत्तरवाक्येनेत्याह—तदेकत्वेति। वक्ष्यमाणलक्षणमक्षरं प्रतिपद्यत इत्येवंरूपं फलमाहेत्यन्वयः। उत्तरवाक्यमिति शेषः। उक्तमर्थं श्रुत्यक्षरारूढमाह—एतदुच्यत इति। स इत्यस्यार्थ-माह—सर्वेति। अत्राधिकारिणो दुर्लभत्वं स यो ह वा इत्यनेनोक्तम्। स यः कश्चिदेवा[2]पूर्ववत्तदच्छाया-दिविशेषणमक्षरं वेदयत इत्येकं वाक्यं समापनीयम्। यस्तु वेदयते स सर्वज्ञ इति वाक्यान्तरं कार्य-मन्यथा यच्छब्दद्वयानन्वयात्। आद्यवाक्येऽच्छायादिविशेषणत्रयेण कारणसूक्ष्मस्थूलशरीरत्रय-निराकरणेनावस्थात्रयनिराकरणेनावस्थात्रयराहित्यमनूद्यते। लोहितादि (सर्व) गुणवर्जितमित्यनेन तद्गुणकस्थूलशरीरवर्जितमिति प्रतीतेः। शुभ्रमित्यनेन तमेव तुरीयमनूद्य तस्याक्षरसामानाधिकरण्ये-नैक्यमुक्तमिति विवेकः। अत्राक्षरमित्यनेनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजोऽप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इति मन्त्रोक्तानि सर्वाणि विशेषणान्यात्मोपलक्षणान्यात्मोपलक्षणार्थं संगृहीतानीत्याह—सत्य-मित्यादिना। यस्तु सर्वत्यागीत्यत्रापि वाक्ये वेदयत इत्यस्यानुषङ्गः। अत्र सर्वज्ञ इत्यनेन कस्मिन्नु

आत्मा-परमात्मा के एकत्व विज्ञान का फल बतलाते हैं।

हे सोम्य ! वह आगे बतलाये जाने वाले विशेषणों से युक्त परम अक्षर को प्राप्त कर लेता है; ऐसा उस ज्ञानी के संबन्ध में कहते हैं। निःसन्देह सम्पूर्ण एषणाओं से छूटा हुआ जो भी अधिकारी पुरुष तमोगुण रहित नाम-रूपात्मक सम्पूर्ण औपाधिक शरीरों से हीन लोहितादि सभी प्रकार गुणों से वर्जित है; क्योंकि ऐसा है इसीलिये विशुद्ध सम्पूर्ण विशेषणों से रहित होने के कारण अक्षर पुरुष नामक सत्य, प्राण रहित मन का अविषय, कल्याण स्वरूप, शान्त, बाहर-भीतर विद्यमान, अजन्मा परब्रह्म को

---

१. कः क्षमो वेदयितुमित्यपेक्षितमाह—सर्वैषणाविनिर्मुक्त इति। २. अपूर्ववदिति—आश्चर्यवदिति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र। तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाऽऽविवेशेति ॥ ११ ॥

इत्यथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषदि चतुर्थः प्रश्नः ॥ ४ ॥

हे सोम्य ! जिस अक्षर में अग्नि आदि समस्त देवों के सहित विज्ञानात्मा प्राण और पृथिव्यादि भूत सम्यक् प्रकार से प्रतिष्ठित होते हैं, उसे जो जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सभी में प्रविष्ट हो जाता है ॥११॥

यस्तु [1]सर्वत्यागी सोम्य स सर्वज्ञो न तेनाविदितं किंचित्संभवति । पूर्वमविद्ययाऽसर्वज्ञ आसीत्पुनर्विद्ययाऽविद्यापनये [2]सर्वो भवति तत्तस्मिन्नर्थं एष श्लोको मन्त्रो भवति उक्तार्थसंग्राहकः ॥ १० ॥

विज्ञानात्मा सह देवैश्चाग्न्यादिभिः प्राणाश्चक्षुरादयो भूतानि पृथिव्यादीनि संप्रतिष्ठन्ति प्रविशन्ति यत्र यस्मिन्नक्षरे तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य प्रियदर्शन स सर्वज्ञः सर्वमेवाऽऽविवेशाऽऽविशतीत्यर्थः ॥ ११ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्य-
श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ प्रश्नोपनिषद्भाष्ये चतुर्थः प्रश्नः ॥४॥

भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति प्रतिज्ञातं सर्वविज्ञानमुक्तम् । सर्वात्मत्वस्य ज्ञानजन्यत्वेऽनित्यत्वं स्यादत आह—पूर्वमिति । एवं चाऽऽरोपनिवृत्तिद्वाराऽभूततद्भावो विवक्षित इत्याह—सर्वो भवतीति ॥ १० ॥

अग्न्यादिभिरिति । ततश्च चक्षुश्च द्रष्टव्यं चेत्यत्रापि चक्षुरादिभिर्देवा अप्युपलक्षिता इति व्याख्यातम् ॥ ११ ॥

इत्यानन्दज्ञानविरचितप्रश्नोपनिषद्भाष्यटीकायां चतुर्थः प्रश्नः ॥ ४ ॥

जानता है और जो सबका त्यागी है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। उससे अविदित कुछ भी नहीं रह जाता है। वह अविद्यावश भले असर्वज्ञ था पुनः ब्रह्मविद्या द्वारा अविद्या के नष्ट होने पर वह सर्वरूप हो जाता है। उसी अर्थ में पूर्वोक्त अर्थ का संग्रहरूप यह मन्त्र है ॥ १० ॥

अक्षर ब्रह्म के ज्ञान का फल

अग्नि आदि देवों के सहित चक्षुरादि प्राण और पृथिवी आदि भूत तथा विज्ञानात्मा जिस अक्षर में प्रवेश करते हैं; हे प्रिय दर्शन ! उस अक्षर को जो जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सभी में प्रविष्ट हो जाता है (अर्थात् उसकी सर्वभावापत्ति हो जाती है) ॥ ११ ॥

---

१. यथोक्तवेदनलिङ्गं तु नाऽऽलिङ्गितमिङ्गयति—सर्वत्यागीति । वैराग्यमात्रेण बाह्यार्थत्यागसंभवेऽप्यहंताद्यत्यागादव्यभिचार इति सर्वेत्युक्तम् । २. सर्वज्ञो भवतीति वक्तव्ये सत्याह—सर्वो भवतीति । को हेतुः सर्वश्चासौ ज्ञश्चेति । अस्तु वा सर्वात्माभेदेनैव सर्वज्ञत्वमिति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ ।
स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत । कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति तस्मै स होवाच ॥ १ ॥

तदनन्तर इन पिप्पलाद मुनि से शिबि के पुत्र सत्यकाम ने पूछा—हे भगवन् ! मनुष्यों में जो (कोई विरला) पुरुष मरणपर्यंन्त ओंकार का चिन्तन करे, वह किस लोक को जीतता है ? ॥ १ ॥

॥ अथ पञ्चमः प्रश्नः ॥

अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ ।

अथेदानीं परापरब्रह्मप्राप्तिसाधनत्वेनोंकारस्योपासनविधित्सया प्रश्न आरभ्यते—स यः कश्चिद्ध वै भगवन्मनुष्येषु मनुष्याणां मध्ये तदद्भुतमिव प्रायणान्तं मरणान्तं यावज्जीवमित्येतदोंकारमभिध्यायीताऽऽभिमुख्येन चिन्तयेत् । बाह्यविषयेभ्य

एवं चतुर्थप्रश्नेनोत्तमाधिकारिणः पदार्थशोधनपूर्वकवाक्यार्थज्ञानेनाक्षरप्राप्तिमुक्त्वाऽत्रानधिकारिणो मन्दवैराग्यवत ओमित्येवं ध्यायत आत्मानं प्रणवो धनुरित्यादिमन्त्रसूचितं ब्रह्मलोकप्राप्तिद्वारा क्रमेणाक्षरप्राप्त्यर्थमोंकारोपासनं वक्तुं पञ्चमप्रश्नमवतारयति—अथ हैनमिति ।

इदानीमिति । गार्ग्यप्रश्ननिर्णयानन्तरमित्यर्थः । परेति । अपरब्रह्मलोकप्राप्तिक्रमेण परब्रह्मलोकप्राप्तिसाधनत्वेनेत्यर्थः । तदद्भुतमिवेति । तदिति क्रियाविशेषणं तादृशमभिध्यानमिति, तेन विशेषणेनाद्भुतत्वं दुष्करत्वं भातीत्यर्थः । अभिध्यानेन तत्पूर्वकालीने 'प्रत्याहारधारणे[1] सूचिते इत्याह—बाह्येति । भक्त्याऽऽदरेणोप[2]चारेणवाऽऽवेशित आरोपितो ब्रह्मभावो यस्मिन्नोंकारे

पंचम प्रश्न

ओंकार उपासक किस लोक को प्राप्त करता है ?

उसके पश्चात् उन पिप्पलाद मुनि से शिवि के पुत्र सत्यकाम ने पूछा ।

अब यहाँ पर, पर और अपर ब्रह्म को प्राप्ति के साधन रूप से ओंकार उपासना का विधान करने के लिये अग्रिम प्रश्न प्रारम्भ किया जाता है ।

हे भगवन् ! मनुष्य जाति के मध्यवर्ती जो कोई आश्चर्यमय विरल पुरुष पूर्ण जीवन ओंकार का मुख्यरूप से चिन्तन करे (तो वह उस उपासना के फल स्वरूप किस लोक पर विजय प्राप्त करता

---

१. प्रत्याहारधारणे इति—स्वविषयाऽसंप्रयोगेचित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" इति योगसूत्रे । २. उपचारेणेति—गौण्या वृत्त्येत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः ।
तस्माद्विद्वानेतेनैवाऽऽयतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥

उस सत्यकाम से पिप्पलाद ने कहा—हे सत्यकाम ! यह जो ओंकार है, वह निश्चय पर (सत्य अक्षर) ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ रूप अपर ब्रह्म है । अतः विद्वान् उपासक (ओंकार में ब्रह्मचिन्तन रूप) इसी उपाय से पर और अपर ब्रह्म में से किसी एक को प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥

उपसंहृतकरणः समाहितचित्तो भक्त्यावेशितब्रह्मभाव ओंकारे । आत्मप्रत्ययसंताना-विच्छेदो भिन्नजातीयप्रत्ययान्तराखिलीकृतो निर्वातस्थदीपशिखासमोऽभि[1]ध्यानशब्दार्थः । सत्यब्रह्मचर्याहिंसापरिग्रहत्यागसंन्यासशौचसंतोषामायावित्वाद्यनेक[2]यमनियमानुगृहीतः स एवं [3]यावज्जीवव्रतधारणः । कतमं वावानेके हि ज्ञानकर्मभिर्जेतव्या लोकास्तिष्ठन्ति तेषु तेनोंकाराभिध्यानेन कतमं स लोकं जयतीति पृष्टवते तस्मै स होवाच पिप्पलादः ॥ १॥

एतद्वै सत्यकाम । एतद्ब्रह्म वै परं चापरं च ब्रह्म परं सत्यमक्षरं पुरुषाख्यमपरं

तस्मिन्समाहितचित्त इत्यन्वयः । अनेन धारणोक्ता । ध्यानशब्दार्थमाह—आत्मेति । संतानाविच्छेद इत्यविच्छिन्नसंतान इत्यर्थः । प्रत्ययान्तरेण विजातीयप्रत्ययेनाखिलीकृतोऽ[4]नन्तरितः । चित्तस्याऽऽत्म-विषयस्यैव सत [5]एकदेशेन विक्षेपं वारयति—निर्वातेति । ध्यानेनैव यमादिसाधनजातमपि सूचितमित्याह—सत्येति । कतममितिडतमचोऽर्थं बहुषु निर्धारणं दर्शयति—अनेके हीति । ओंकाराभिध्यानं ध्यानत्वाद्दहराद्युपासनवदपरप्राप्तिसाधनमेवोत परप्राप्तिसाधनमपीति प्रष्टुरभिप्रायः ॥ १ ॥

तदभिप्रायज्ञः पिप्पलादोऽपरालम्बनतया ध्यानं चेदपरप्राप्तिमात्रसाधनं परालम्बनत्वेन चेत्क्रमेण परप्राप्तिसाधनमित्युत्तरमाह—एतद्वा इति । एतद्यच्छब्दयोर्नपुंसकयोरोंकारविशेषणत्वा-योगाद्ब्रह्मविशेषणत्वमाह—एतद्ब्रह्मेति । किं तद्ब्रह्मेत्यत आह—परं चेति । यद्वैतत्परं चापरं च

है) वाह्य विषयों से इन्द्रियों को हटाकर एकाग्रचित्त हो भक्ति के द्वारा जिसमें ब्रह्मभाव की प्रतिष्ठा की गयी है, उस ओंकार में आत्मप्रत्यय संतति का विच्छेद न हो और भिन्नजातीय प्रतीतियों से उसमें कोई बाधा न आवे तथा वह वायु रहित स्थान में रखे हुए दीपक की शिखा के समान स्थित हो जाय, बस इस प्रकार का ध्यान ही अभिध्यान शब्द का अर्थ है । सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य पालन अहिंसा, परिग्रह का त्याग, संन्यास, शौच, सन्तोष, निष्कपटता आदि अनेक यम-नियमों से सम्पन्न होकर यावज्जीवन ऐसा व्रत धारण करने वाले को भला कौन-सा लोक प्राप्त होगा क्योंकि ज्ञान और कर्म से अनेकों लोक प्राप्त होने योग्य हैं, उनमें से उस ओंकार चिन्तन द्वारा वह उपासक किस लोक पर विजय प्राप्त करता है ॥ १ ॥

---

१. ध्यानेति—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानमिति योगसूत्रम् । २. यमनियमेति । "अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्या-परिग्रहा यमाः" । "शौचसंतोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" इति योगसूत्रे । ३. यावज्जीवे-त्यादि—यावति विन्दजीवोरिति णमुलन्तत्वे तु मकारोऽपि प्राप्नोतीति ध्येयम् । ४. अखिलोऽखण्ड इत्याशये-नाह—अनन्तरित इति । अखण्डित इत्यर्थः । अव्यवहित इति यावत् । ५. एकदेशेनेति—एकेनापि देशेन, कस्मिंश्चिदपि देश इति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

च प्राणाख्यं प्रथमजं यत्तदोंकार एवोंकारात्मकमोंकारप्रतीकत्वात्। परं हि ब्रह्म शब्दाद्युपलक्षणानर्हं सर्वधर्मविशेषवर्जितमतो न शक्यमतीन्द्रियगोचरत्वात्केवलेन मनसाऽवगाहितुमोंकारे तु विष्ण्वादिप्रतिमास्थानीये भक्त्यावेशितब्रह्मभावे ध्यायिनां तत्प्रसीदतीत्यवगम्यते शास्त्रप्रामाण्यात्तथाऽपरं च ब्रह्म। तस्मात्परं चापरं च ब्रह्म यदोंकार इत्युपचर्यते। तस्मादेवं विद्वानेतेनैवाऽऽत्मप्राप्तिसाधनेनैवोंकाराभिध्यानेनैकतरं परमपरं

ब्रह्मास्ति तदुभयमोंकार इति वाक्यान्वय इत्यर्थः। न चैवं ब्रह्मोद्देशेनोंकारत्वविधाने ब्रह्मण्योंकारदृष्टिः प्रसज्येतेति शङ्क्यम्। ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षादिति न्यायेन 'लोकेषु सामोपासीतेत्यादाविव निकृष्ट ओंकार एव ब्रह्मदृष्टिः सिध्यतीति भावः। तयोर्भेदात्कथमैक्यमित्याशङ्क्योपचारादित्याह—ओंकारप्रतीकत्वादिति। ननु किं प्रतीकोपदेशेन 'साक्षादेव अनेन सामानाधिकरण्येनोंकारस्य प्रतीकत्वमुपदिश्यत इति भावः। आदिब्रह्माभिधीयतामत आह—परं हीति। शब्दादीति। शब्दादिभिः साक्षाद्बोधनानर्हमित्यर्थः। आदिशब्देनानुमानादि गृह्यते। प्रवृत्तिनिमित्तस्य धर्मस्य लिङ्गस्य चाभावादिति तत्र हेतुमाह—सर्वेति। 'न शक्यमित्यवगाहितुमित्यन्वयः। 'तर्हीन्द्रियैर्मनसा वा तद्ग्रहोऽस्त्वित्यत आह—अतीन्द्रियेति। मनसेतीन्द्रियैर्वेत्यपि द्रष्टव्यम्। तर्हि तथाविधस्योंकारेऽप्या'वेशासंभवात्किंचिद्विशेषमारोप्याऽऽवेशो वक्तव्यः। अत एव सूर्यान्तर्गतत्वं विशेषं 'वक्ष्यति ओंकारतादात्म्यं च तत्कथं निर्विशेष[त्व]लाभोऽत आह—ओंकारे त्विति। प्रसीदतीति। तदुपासनेन चित्तस्य नैर्मल्ये सति निर्विशेषं स्वयमेव प्रकाशत इत्यर्थः। तत्र मानमाह—शास्त्रेति। अन्यथा परब्रह्मार्थिनस्तदुक्तिवैयर्थ्यादित्यर्थः। तथाऽपरं चेति। प्रसीदतीत्यन्वयः। तस्मादिति। प्रतीकत्वादित्यर्थः। तस्मादेवं विद्वानिति। 'ब्रह्मत्वादब्रह्मत्वार्हमिति विद्वानित्यर्थः। एतेनैवेत्यनन्तरमायतनेनाऽऽलम्बनेनेति पदद्वयं प्रमादतो गलितमिति द्रष्टव्यम्। तस्य पदस्य पिण्डितार्थमाह—ओंकारेति। न 'त्वेतच्छब्दार्थकथनमेतदिति द्रष्टव्यमभिध्यानस्याऽऽयतनत्वा-

---

ओंकार उपासना से पर और अपर ब्रह्म की प्राप्ति

इस प्रकार प्रश्नकर्ता सत्यकाम से उस पिप्पलाद मुनि ने कहा कि हे सत्यकाम! यह सत्य अक्षर एवं पुरुष नामक परब्रह्म और जो प्रथम उत्पन्न प्राण नामक अपर ब्रह्म है, वह ओंकार रूप प्रतीक वाला होने के कारण ओंकार स्वरूप ही है। परब्रह्म शब्दादि से उपलक्षित होने के अयोग्य और सभी प्रकार के विशेष धर्म से रहित है। अतः इन्द्रियों का अविषय होने के कारण केवल मन से उसका अवगाहन नहीं किया जा सकता किन्तु जैसे विष्णु का ध्यान प्रतिमा में किया जाता है, वैसे ही प्रतिमा-स्थानीय ओंकार में भक्ति के द्वारा ब्रह्मभाव की स्थापना की गयी है। इस प्रकार परब्रह्म ध्यान करने वालों के ऊपर प्रसन्न होता है। यह बात शास्त्र प्रमाण से जानी जाती है। वैसे ही अपर ब्रह्म भी

---

१. लोकेष्वित्यादि—छान्दोग्ये "लोकेषु पञ्चविधं सामोपासीतेत्येवमपि सत्यां वाचोयुक्तौ साम्न्येव यथा लोकदृष्टिरभ्युपेयते तद्वदित्यर्थः। २. साक्षादेवेति मोक्षार्थिनामुपासनार्थं तत्त्वतो यद् ब्रह्म तदेवोपदिश्यतां तत्प्रतिनिधिभूतोङ्कारोपदेशः किमितीति भावः। ३. न शक्यमित्यादि—अत्र शब्दादिभिरिति शेषो द्रष्टव्य इति दृश्यते। ४. तर्हीति—शब्दादिभिरनवगाह्यत्व इत्यर्थः। ५. आवेशेति—सम्बन्धेति यावत्। ६. वक्ष्यतीति—यः पुनरेतं त्रिमात्रेणेत्यादिवाक्येन वक्ष्यतीत्यर्थः। ७. ब्रह्मत्वादब्रह्मत्वार्हमिति—अत्र ब्रह्मत्वार्हत्वादब्रह्मेति ब्रह्मप्रतीकत्वादब्रह्मेति वा पाठोऽपेक्षितः प्रतिभाति। ८. एतच्छब्देति—आयतनशब्देत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदित-स्तूर्णमेव जगत्यामभिसंपद्यते । तमृचो मनुष्य-लोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संपन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥

यदि वह एक मात्रा-विशिष्ट ओंकार का चिन्तन करता है, तो उससे बोध प्राप्त कर शीघ्र ही पृथिवी लोक में प्राप्त हो जाता है। उसे ऋचाएं मनुष्यलोक को ले जातीं हैं। वहाँ पर वह तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से सम्पन्न होकर अपनी महिमा का अनुभव करता है ॥ ३ ॥

वाऽन्वेति ब्रह्मानुगच्छति [1]नेदिष्ठं ह्यालम्बनमोंकारो ब्रह्मणः ॥ २ ॥

स यद्यप्योंकारस्य [2]सकलमात्राविभागज्ञो न भवति तथाऽप्योंकाराभिध्यानप्रभावा-द्विशिष्टामेव गतिं गच्छति एतदेकदेशज्ञानवैगुण्यलयोंकारशरणः कर्मज्ञानोभयभ्रष्टो न दुर्गतिं गच्छति किं तर्हि यद्यप्येवमोंकारमेवैकमात्राविभागज्ञ एव केवलोऽभिध्यायीतैकमात्रं सदा

भावादिति । इतरोपासनावदस्याप्युपासनत्वात्परप्रापकत्वं न संभवतीत्यत आह—नेदिष्ठमिति । [3]मन-आद्यपेक्षयेदं नेदिष्ठं समीपवर्त्यन्तरङ्गं श्रेष्ठमालम्बनमेतदालम्बनं परमित्यादिश्रुतेरित्यर्थः ॥ २ ॥

नेदिष्ठत्वमेव [4]संस्तुवन्नुत्तरवाक्येण साधयति—स यदीति । विकलस्यापि फलजनकत्वान्ने-दिष्ठत्वमित्यर्थः । सकलेति । अकारादिमात्रात्रयात्मक ओंकारः स चोपसितव्य इति न जानाति किं तर्ह्योंकाराभिध्यानप्रभावात्तदेकदेशध्यानप्रभावाद्विशिष्टामेव गतिं गच्छतीत्यन्वयः । तात्पर्यार्थमुक्त्वे-दानीमक्षरार्थमाह—यद्यप्येवमिति । यदिशब्दो यद्यपीत्यर्थे व्याख्यतः । एवं च स तेनैवेत्यतः प्राक्तथा-ऽपीति पदं द्रष्टव्यम् । एकमात्रमिति । एकमात्रात्मकमोंकारमकारमित्यर्थः । एकमात्राविशिष्टेत्यत्रा-

---

ओंकार उपासक के ऊपर प्रसन्न होता है। अतः पर और अपर ब्रह्म ओंकार ही है। ऐसा औपचारिक दृष्टि से कहा जाता है। अतः इस प्रकार उपासना करने वाला विद्वान् आत्मप्राप्ति के इस ओंकार चिन्तन रूप साधन के द्वारा ही पर या अपर किसी एक ब्रह्म को अवश्य प्राप्त कर लेता है क्योंकि ओंकार सबसे अधिक समीपवर्ती ब्रह्म का आलम्बन है ॥ २ ॥

एक मात्रा-विशिष्ट ओंकार उपासना का फल

यद्यपि वह ओंकार की सभी मात्राओं का ज्ञाता नहीं होता, फिर भी ओंकार चिन्तन के प्रभाव से वह उपासक विशिष्ट गति को ही प्राप्त करता है अर्थात् ओंकार की शरण में जाने वाला

---

१. नेदिष्ठमिति—अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ । २. सकलमात्राविभागज्ञो न भवतीति । अकार उकारो मकार इति तिस्रोमात्राः । तासामग्निवायुसूर्या ऋषयः । ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा देवताः । अधिदैवतं भूर्भुवःस्वः स्थानानि । अध्यात्मं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यानि । ऋग्यजुःसामानि वेदा इति शाखान्तरगतः सकलमात्राविभागानभिज्ञ इति वर्णयन्ति केचित् । विष्णिवति—अत्र सोमदैवत्ये इति वक्ष्यमाण चतुर्थमन्त्रभाष्य प्रतिकूलमिव भाति । नक्षत्राणामहं शशीति कृत्वा वा समीकरणीयं भवेदिति मन्तव्यम् । ३. मनआदीति—मनो ब्रह्मेत्युपासीते-त्यादावुक्तेत्यादिः । ४. संस्तुवन्निति—प्रणवमित्यादिः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यायीत स तेनैवैकमात्राविशिष्टोंकाराभिध्यानेनैव संवेदितः संबोधितस्तूर्णं क्षिप्रमेव जगत्यां पृथिव्यामभिसंपद्यते। किं, मनुष्यलोकम्। अनेकानि हि जन्मानि जगत्यां संभवन्ति तत्र तं साधकं जगत्यां मनुष्यलोकमेवर्च उपनयन्त उपनिगमयन्ति [1]ऋचः। [2]ऋग्वेदरूपा ह्योंकारस्य प्रथमैकमात्राऽभिध्याता तेन। स तत्र मनुष्यजन्मनि द्विजाग्र्यः संस्तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया च संपन्नो महिमानं विभूतिमनुभवति न वीतश्रद्धो यथेष्टचेष्टो भवति योगभ्रष्टः कदाचिदपि न दुर्गतिं गच्छति॥ ३॥

प्येकमात्रात्वविशिष्टेत्यर्थः। ओंकारेति। तदवयवेत्यर्थः। एकमात्राप्रधानमप्रधानीभूतमात्राद्वयं कृत्स्नमोंकारमिति केचिद्व्याचक्षते। दीपिकायां वाचस्पत्ये चाकारमात्रमित्येव व्याख्यातम्। संबोधित इति। तन्मात्राध्यानेन [3]तन्मात्रासाक्षात्कारवानित्यर्थः। पृथिव्यां किमभिसंपद्यत इति कर्माऽऽकाङ्क्षते—किमिति। मनुष्यलोकमितिपदमिहाऽऽकृष्याऽऽकाङ्क्षा पूरयति—मनुष्यलोकमिति। मनुष्यशरीरमित्यर्थः। पृथिव्यां मनुष्यलोकस्यैव नियमात्तदुक्तिवैयर्थ्यमत आह—अनेकानि हीति। पश्वादीनि हीत्यर्थः। तर्हि तस्य नियमेन कथं मनुष्यत्वप्राप्तिरत आह—तत्र तमिति। ऋग्वेदरूपा हीति। पृथिव्यकारः स ऋग्वेद इति श्रुतेरकारस्य तद्रूपत्वमित्यर्थः। अभिध्याताऽकाररूपा मात्रा ऋग्वेदरूपेत्यन्वयः। तेनेति। येनर्ग्वेदरूपत्वं तस्य तेनर्चो मनुष्यलोकमुपनयन्त इत्यर्थः। वीतश्रद्ध इति। श्रद्धाविरहितः सन्नित्यर्थः। योगभ्रष्ट इति। एकदेशज्ञानविकल इत्यर्थः। अनेन न हि कल्याणकृत्कश्चिदिति गीतावाक्यसंवादः सूचितः॥३॥

पुरुष इसके एकांश ज्ञानरूप दोष से कर्म और ज्ञान के फल से भ्रष्ट होकर दुर्गति को कभी भी प्राप्त नहीं करता तो फिर वह किसे प्राप्त करता है? वह इस प्रकार यद्यपि ओंकार की केवल एकमात्रा का ज्ञाता होकर केवल एकमात्रा विशिष्ट ओंकार का ही सदा चिन्तन करता रहता है, फिर भी वह उस एकमात्रा विशिष्ट ओंकार के ध्यान से ही बोध प्राप्त कर तत्काल ही पृथिवी लोक में आ जाता है। (पृथिवी लोक में) किस शरीर में जाता है? मनुष्यलोक को प्राप्त करता है क्योंकि संसार में अनेक प्रकार के जन्म हो सकते हैं, उनमें से उस साधक यानी उस एकमात्रा विशिष्ट ओंकार के उपासक को ऋचाएँ संसारान्तर्वर्ती मनुष्यलोक को ही ले जाती हैं क्योंकि ध्यान की गयी ओंकार की अकाररूप एकमात्रा ऋग्वेद स्वरूपा है। इससे उस मनुष्य जन्म में वह उपासक द्विजश्रेष्ठ होकर तप, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा से सम्पन्न हो विभूति का अनुभव करता है। श्रद्धा शून्य हो स्वेच्छाचारी नहीं होता। ऐसा योग भ्रष्ट पुरुष कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता॥ ३॥

---

१. ऋच इति—तदभिमानिनो देवा इत्यर्थ एवमग्रेऽपि बोध्यम्। २. ऋग्वेदरूपा हीति—अत्रेयं छान्दोग्यश्रुतिरनुकूला भवति तथाहि—प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयीवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति। तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओङ्कारः संप्रास्रवदित्येवमादिः। ३. तन्मात्रासाक्षात्कारवानिति—तत्र तादात्म्याभिमानवानिति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि संपद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम् । स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥ ४ ॥

यदि वह (अ, उ, इन) दो मात्राओं से विशिष्ट ओंकार का चिन्तन करता है, तो उस चिन्तन द्वारा मन के साथ एकत्व को प्राप्त करता है, उस समय यजुर्वेद की श्रुतियों द्वारा वह अन्तरिक्ष में स्थित सोमलोक को ले जाया जाता है अर्थात् उक्त श्रुतियां सोमलोक संबन्धी जन्म प्राप्त करा देती हैं। तत्पश्चात् सोमलोक में विभूति का अनुभव कर वह पुरुष फिर मनुष्यलोक में लौट आता है ॥ ४ ॥

अथ पुनर्यदि द्विमात्राविभागज्ञो द्विमात्रेण विशिष्टमोंकारमभिध्यायीत [1]स्वप्नात्मके मनसि मननीये [2]यजुर्मये [3]सोमदैवत्ये संपद्यत एकाग्रतयाऽऽत्मभावं गच्छति। स एवं संपन्नो मृतोऽन्तरिक्षम[4]न्तरिक्षाधारं [5]द्वितीयमात्रारूपं द्वितीयमात्रारूपैरेव यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकं

द्विमात्रेण विशिष्टमिति । [6]द्वितीयमात्रत्वेन विशिष्टमोंकारं तद्गतमुकारमित्यर्थः। न तु मात्राद्वयमकारस्य पूर्वमेवोक्तत्वादत एव द्वितीयमात्रारूपमिति वक्ष्यति। श्रुतौ तृतीया द्वितीयार्थे, ओंकारमभिध्यायीतेत्युपक्रमादिति भावः। अत्राभिध्यानं तादात्म्याभिमानपर्यन्तमिति वक्तुं मनसि संपद्यत इति वाक्यं [7]तत्र [8]साक्षान्मनःसंपत्तेः साधनत्वेन वा फलत्वेन वाऽनन्वयान्मनःशब्देन तत्परिणामस्वप्नादिलक्षणाद्वारा स्वप्नयजुराद्यात्मत्वेन श्रुत्यन्तरे श्रुतोंकार एव लक्ष्यत इत्याह—स्वप्नात्मक इति। उकारे संपत्तिपर्यन्तमभिध्यानं यः करोतीति वाक्यार्थं इत्यर्थः। अत्र केचित्स यदीत्यादिर्यःपुनरित्यन्तं न

द्विमात्रा-विशिष्ट ओंकार उपासना का फल

यदि वह अकार और उकार इन दो मात्राओं के विभाग को जानने वाला होकर द्विमात्रा से विशिष्ट ओंकार का चिन्तन करता है तो वह सोम देवता वाले स्वप्नात्मक यजुर्वेद स्वरूप मननीय मन को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् एकाग्रता द्वारा उपर्युक्त गुण विशिष्ट मन को ही आत्मभाव से प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार साधन सम्पन्न वह साधक पुरुष मरकर अन्तरिक्ष के आधार द्वितीय मात्रा स्वरूप चन्द्रलोक में द्वितीयमात्रा रूप यजुः श्रुतियों द्वारा ले जाया जाता है अर्थात् यजुः श्रुतियां उस

---

१. स्वप्नस्य मनःपरिणामत्वात्तेन तं लक्षयित्वाह—स्वप्नात्मक इति। २. मनसैव मननीयत्वाद्यजुर्वेदलक्षणयाह—यजुर्मये इति। तद्रूप इत्यर्थः। ३. चन्द्रमा मनसो जात इति संम्बन्धात्सोमलक्षणामाह—सोमदैवत्य इति। विशेषणत्रयविशेष्यमोङ्कार इति सोऽप्युकारात्मक एवात्रेत्यवधेयम्। ४. अन्तरिक्षाधारमिति—अन्तरिक्षं नभो यस्याधारस्तं सोमलोकमित्यन्वयः। ५. द्वितीयमात्रारूपमिति—सोमलोकविशेषणं तस्य तत्त्वं च श्रुतेरेवेति भावः। ६. द्वितीयमात्रत्वेनेति—बहुव्रीहेस्त्वः। द्वितीयमात्रत्वेनेत्येव वा वक्तव्यम्। त्वे चेति वैकल्पिको वा ह्रस्वः। ७. तत्र वाक्ये मनःशब्देनोङ्कार एव लक्ष्यत इत्यन्वयः। ८. लक्षणाबीजमन्वयानुपपत्तिमाह—साक्षादित्यादिना। यो मनसि संपद्यते सोऽन्तरिक्षमुन्नीयत इति न मनःसंपत्तेः साधनत्वेनान्वयः। नापि यो द्विमात्रमभिध्यायति स मनसि संपद्यत इति फलत्वेन वा तस्मादित्यर्थः। शक्यं साक्षादित्युक्तम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये संपन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः

१. परन्तु जो पुरुष त्रिमात्रा-विशिष्ट 'ॐ' इस अक्षरात्मक प्रतीकरूप से परम पुरुष की उपासना करता है वह (तृतीय मात्रा-रूप होकर) तेजोमय सूर्य लोक में स्थित हो जाता है। जैसे सर्प केंचुली से

'सौम्यं जन्म प्रापयन्ति तं यजूंषीत्यर्थः । स तत्र विभूतिमनुभूय सोमलोके मनुष्यलोकं प्रति पुनरावर्तते ॥४॥

यः पुनरेतमोंकारं त्रिमात्रेण त्रिमात्राविषयविज्ञानविशिष्टेनोमित्येतेनैवाक्षरेण 'परं

स्तुतिः । किं तूक्तफलायाकारे विश्वाभिन्नविराडुपासनमुकारे तैजसाभिन्नहिरण्यगर्भोपासनं च विवक्षितमित्याहुः । तन्मते मनःशब्देन तत्परिणामस्वप्नाभिमानी हिरण्यगर्भ उच्यत इति वक्तुं स्वप्नात्मक इत्यादिविशेषणानीति बोध्यम् । दीपिकायां तु 'मात्राद्वयस्य मिलितस्योपासनं मनसि संपत्तिश्च मनसैकाग्रतया चिन्तनमिति न व्याख्यातम् ॥४।

एवमोंकारं स्तुत्वा 'तदुपासनं परब्रह्मविषयं विधत्ते—यः पुनरिति । विज्ञानविशिष्टेनेति । विज्ञानविषयीकृतेनेत्यर्थः । मात्रात्रयात्मना ज्ञातेनेति यावत् । पूर्ववदत्रापि त्रिमात्रेणेत्यत्र तृतीया मात्रा मकार उच्यत इति भ्रमं वारयितुमोमित्येतेनैवाक्षरेणेत्युक्तम् । पूर्वत्र तत्तन्मात्राप्रधान ओंकार एवोच्यत इति मत इहैवेवं विशेषणमनुपपन्नं पूर्वत्राप्योंकारस्यैवोक्तत्वादिति तन्मतमनुपपन्नमिव भातीति ।

उपासक को सोमलोक संबन्धी 'सौम्य जन्म' को प्राप्त कराती हैं, उस सोमलोक में विभूति का अनुभव कर वह उपासक पुनः मनुष्य लोक में लौट आता है ॥ ४ ॥

द्विमात्रा विशिष्ट ओंकार उपासना का फल

किन्तु जो उपासक इन तीन मात्रा विषयक ज्ञान से विशिष्ट "ओम्" इस अक्षरात्मक प्रतीक रूप से सूर्यमण्डल मध्यवर्ती पर पुरुष का चिन्तन करता है, वह उस चिन्तन के फलस्वरूप तृतीय मात्रा

---

१. सौम्यमिति—सोमसदृशमित्यर्थः । सोम इव सोम्यं शाखादिभ्यो यः ततः प्रज्ञाद्यण् । जन्म शरीरम् ।
२. ओङ्काराभिन्नम् । ३. परं सूर्यान्तर्गतमित्यनेनापरं ब्रह्मैवात्रावगम्यते । टीकायां च परब्रह्मविषयमित्युक्तं तथापि परब्रह्मावाप्तिकामनयैव शास्त्रमनुसरन् सूर्यान्तर्गतमेव पुरुषं ध्यायतीत्युभयं संगच्छत इति ध्येयम् ।
४. मात्राद्वयस्य मिलितस्येति—दीपिकामतं युक्तं यतस्त्रिमात्रेणेत्यत्र मात्रात्रयमेव गृह्यत इत्यवधेयम् । यद्वा यः पुनरेतं त्रिमात्रेणेत्यत्र तृतीयमात्रायामवान्तरविवक्षामुपगम्य तन्मात्रावलम्बनश्च सूर्यं सम्पद्यापि निवर्तते तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः । आब्रह्मभुवनाल्लोका इत्यादि श्रुतिस्मृतिभ्यः समग्रोङ्कारावलम्बनस्तु परं पुरुषमीक्षत इति व्याख्येयम् । तथा च सति तिस्रो मात्रा मृत्युमत्य इति वक्ष्यमाणमाञ्जस्येनोपपद्यत इत्यलम् ।
५. तदुपासनमिति—तत्प्रतीकमुपासनमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघना-त्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥

छूट जाता है, वैसे ही वह उपासक निश्चय ही सम्पूर्ण पाप से मुक्त हो जाता है, फिर तो वह साम श्रुतियों के द्वारा ऊपर की ओर ब्रह्मलोक में ले जाया जाता है। इस जीवन से उत्कृष्ट, हृदय में स्थित परम पुरुष का दर्शन करता है, इसी विषय में ये दो श्लोक हैं ॥ ५ ॥

सूर्यान्तर्गतं पुरुषं प्रतीकेनाभिध्यायीत तेनाभिध्यानेन, प्रतीकत्वेन ह्यालम्बनत्वं प्रकृतमोंकारस्य परं चापरं च ब्रह्मेत्यभेदश्रुतेरोंकारमिति च द्वितीयाऽनेकशः श्रुता बाध्येतान्यथा। यद्यपि तृतीयाभिधानत्वेन करणत्वमुपपद्यते तथाऽपि प्रकृतानुरोधात्त्रिमात्रं परं पुरुषमिति द्वितीयैव परिणेया त्यजेदेकं कुलस्यार्थं इति न्यायेन, स तृतीयमात्रारूपस्तेजसि

त्रिमात्रेणेति तृतीयाश्रवणादोंकारो न प्रतीक तथा सति विषयत्वेन कर्मतया द्वितीया स्यात्किं त्वभिधायकत्वेन करणत्वमेव तृतीयाबलादिति भ्रमं वारयति—प्रतीकेनेति। तस्य कर्मत्वेऽपि कारकत्वेनाभिध्यानक्रियानिर्वर्तकत्वेन हेतुत्वात्तन्मात्रविवक्षया तृतीयोपपद्यत इत्यर्थः। एवं व्याख्याने हेतुमाह—प्रतीकत्वेनेति। अभेदेति। प्रतीकत्वे ह्यधिष्ठानाध्यस्यमानयोस्तादात्म्यारोपादभेदश्रवणमुपपद्यते करणत्वे तु न तदुपपद्यत इत्यर्थः। अनेकश इति। ओंकारमभिध्यायीत स यद्येकमात्रमभिध्यायीतेति द्विवारं श्रुतेत्यर्थः। अन्यथेत्यस्य बाध्येतेत्यनेनान्वयः। अथ यदि द्विमात्रेण यः पुनरेतं त्रिमात्रेणेति च तृतीयाऽपि द्विवारं श्रुता हेतुत्वापेक्षया करणत्वेन स्वरसा च कारकविभक्तित्वात्ततस्तस्या अपि बाधो न युक्त इति शङ्कते—यद्यपीति। द्वितीयाद्वयस्यापि कर्मत्वे स्वारस्यादुपक्रमस्थत्वाच्च तस्यैव प्राबल्यमित्याह—तथाऽपीति। प्रकृतेति। प्रक्रमानुरोधादित्यर्थः। किञ्च द्वितीयाद्वयमुक्ताभेदश्रुतिः। एतेनैवाऽऽयतनेनैकतरमन्वेति। आयतनेनैवान्वेतीत्यालम्बनवाच्यायतनश्रुतिद्वयं चेति बहुश्रुत्यनुरोधेन तृतीयाद्वयं त्याज्यमित्याह—त्यजेदेकमिति। तृतीयमात्रारूप इति। यद्यपि मात्रात्रयध्यातात्मात्रात्रय-

---

रूप होकर तेजोमय सूर्यलोक में सम्पन्न हो जाता है, वह मरने के बाद भी चन्द्रलोकादि के समान सूर्यलोक से लौटता नहीं, किन्तु सूर्य में लीन होकर ही स्थित रहता है। "परं चापरं च ब्रह्म" इस अभेद श्रुति द्वारा प्रतीक रूप से ओंकार में आलम्बनत्व बतलाया गया है (अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति में ओंकार को साधन नहीं कहा है, किन्तु ब्रह्म के ध्यान में प्रतीकरूप से ओंकार को आलम्बन कहा गया है)। अन्यथा

---

१. तेनाभिध्यानेन सूर्ये सम्पन्नो भवतीत्यन्वयः। २. प्रतीकत्वेनेति—न तु वाचकत्वेनेति भावः। ३. तृतीयेत्यादि—तृतीया अभिधानं यस्य तत्त्वेन तृतीयान्तपदबोध्यत्वेनेति यावत्। ४. करणत्वमिति—प्रणवस्येत्यादिः। ५. परिणेयेति—परिणमनीयेत्यर्थः। ६. त्यजेदित्यादि—"ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे सकलं त्यजेदिति" न्यायशेषः। ७. प्रतीकमिति—अङ्ग प्रतीकोऽवयव इत्यमरस्ततो नपुंसकत्वं चिन्त्यम्। ८. तस्या अपीति—करणतृतीयाया अभेदश्रुतेरिवैरयपेरर्थः। ९. उपक्रमस्थत्वाच्चेति— उपक्रमस्याद्युत्पन्नत्वेन ज्येष्ठत्वात्तदनुसारित्वं युक्तं कनिष्ठस्येति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूर्ये संपन्नो भवति। ध्यायमानो मृतोऽपि सूर्यात्सोमलोकादिव न पुनरावर्तते किंतु सूर्ये संपन्नमात्र एव। यथा पादोदरः सर्पस्त्वचा विनिर्मुच्यते जीर्णत्वग्विनिर्मुक्तः स पुनर्नवो भवति। एवं ह वा एष यथा दृष्टान्तः स पाप्मना सर्पत्वक्स्थानीयेनाशुद्धिरूपेण विनिर्मुक्तः सामभिस्तृतीयमात्रारूपैरूर्ध्वमुन्नीयते ब्रह्मलोकं हिरण्यगर्भस्य ब्रह्मणो लोकं सत्याख्यम्। स हिरण्यगर्भः सर्वेषां संसारिणां जीवानामात्मभूतः। स ह्यन्तरात्मा लिङ्गरूपेण सर्वभूतानां तस्मिन्हि लिङ्गात्मनि संहताः सर्वे जीवाः। तस्मात्स जीवघनः। स विद्वांस्त्रिमात्रोंकाराभिज्ञ एतस्माज्जीवघनाद्धिरण्यगर्भात्परात्परं परमात्माख्यं पुरुषमीक्षते पुरीशयं सर्वशरीरानुप्रविष्टं पश्यति ध्यायमानः। तदेतस्मिन्यथोक्तार्थप्रकाशकौ मन्त्रौ भवतः ॥५॥

पित्वमेव तस्य तथाऽपि तृतीयमात्राया एवैहासाधारण्यात्तत्प्राधान्येन निर्देश इति बोध्यम्। तृतीयमात्रारूप इति सप्तम्यन्तपाठे तत्सूर्यविशेषणं 'मकारस्याऽऽदित्यात्मकत्वादिति। हिरण्यगर्भस्य जीवघनत्वम नागतावेक्षणन्यायेनोपपादयति—स हिरण्यगर्भ इति। लिङ्गरूपेणेति। समष्टिलिङ्गरूपेणेत्यर्थः। तस्मिन्हीति। समष्टिलिङ्गात्मनि,हिरण्यगर्भे व्यष्टिलिङ्गाभिमानिनः सर्वे जीवा गोत्वसामान्ये खण्डमुण्डादय इव 'संहता इत्यर्थः। इदानीं वाक्यं योजयति—स विद्वानिति। स विद्वानिदानीं ध्यायमानः पश्चाद्ब्रह्मलोकं प्राप्तः। तत्र ब्रह्मलोके स्थावरजङ्गमेभ्यः पराज्जीवघनात्परं पुरुषं पश्यति ततो मुक्तो भवतीत्यन्वयः ॥५॥

अनेक श्रुतियों में जो "ओंकारम्" ऐसी द्वितीया विभक्ति आयी है, वह बाधित हो जायगी। यद्यपि "ओमित्येतेन" इसमें तृतीया विभक्ति होने के कारण ब्रह्मप्राप्ति के लिये ओंकार में साधनत्व मानना भी ठीक है तथापि "कुल के हित के लिये एक व्यक्ति का त्याग कर देना चाहिये" इस न्याय से प्रकरणानुसार "त्रिमात्रं परं पुरुषम्" इस प्रकार द्वितीया विभक्ति में ही इसे बदलना चाहिये।

जैसे सर्प केंचुली से छूट जाता है और वह जीर्ण त्वचा से छूटा हुआ पुनः नवीन हो जाता है, जैसा यह दृष्टान्त है वैसे ही वह साधक सर्प की केंचुली सदृश मलिन पाप से छूटकर तृतीय मात्रा रूप साम श्रुतियों द्वारा ऊपर की ओर हिरण्यगर्भ रूप ब्रह्मा के सत्य नामक ब्रह्मलोक को ले जाया जाता है। वह हिरण्यगर्भ सम्पूर्ण संसारी जीवों का आत्मस्वरूप है। वही लिंगदेह रूप से समस्त जीवों का अन्तरात्मा है क्योंकि उस लिंगात्मा हिरण्यगर्भ में सभी जीव संहत हैं। अतः वह जीव घन है। त्रिमात्र ओंकार का ज्ञाता एवं ध्याता वह विद्वान् इस उत्तम जीवघन स्वरूप हिरण्यगर्भ से ही श्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण शरीरों में अनुप्रविष्ट परमात्मा नामक पुरुष को देखता है। इसी पूर्वोक्त अर्थ को बतलाने वाले आगे के दो मन्त्र हैं ॥५॥

---

१. संपन्नमात्र एव स पाप्मनेत्यन्वयः। २. अशुद्धिरूपेणेति—आत्मदर्शनप्रतिबन्धकीभूतेनेत्यर्थः। ३. ऊर्ध्वमुन्नीयत इति—अनेन ब्रह्मलोकः सूर्यमण्डलादप्युपरिष्टाद्वर्तत इत्यवगम्यते। क्वचित्तु मण्डलस्यैव तल्लोकावभासता तु मण्डलद्वारैव प्राप्यत्वादित्यवधेयम्। ४. संहताः—संघीभूताः समर्पिता वर्तन्त इति यावत्। ५. पश्यति ध्यायमान इति—ब्रह्मणोपदिष्टं तत्त्वं क्षणं विमृशन्नित्यर्थः। टीका स्वतन्त्रतया भिन्नमार्गा। ६. मकारस्यादित्यात्मकत्वादिति श्रुतिवचोऽत्र मृग्यम्। ७. अनागतावेक्षणन्यायेनोपपादयतीति—वक्ष्यमाणजीवघनत्वमालोच्य तदुपपादनाय हिरण्यगर्भस्वरूपं दर्शयतीत्यर्थः। ८. संहता इति—उपाधिभेदेन कल्पिता इति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ताः अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥

अकार, उकार और मकार—ये तीनों मात्राएँ भिन्न-भिन्न रहने पर मृत्यु से युक्त हैं। वे मात्राएँ ध्यान की क्रियाओं में प्रयुक्त होती हैं और वे परस्पर संबद्ध हैं तथा (विपरीत प्रयोग न किये जाने के कारण ये) अनविप्रयुक्त हैं। इस प्रकार बाह्य जाग्रत् रूप, आभ्यन्तर सुषुप्ति रूप और मध्यम स्वप्न रूप क्रियाओं में ओंकार की उक्त तीन मात्राओं का सम्यक् प्रयोग किये जाने पर विद्वान् पुरुष फिर अपने स्वरूप से विचलित नहीं होता ॥ ६ ॥

तिस्रस्त्रिसंख्याका अकारोकारमकाराख्या ओंकारस्य मात्राः। मृत्युमत्यः, मृत्युर्यासां विद्यते ता मृत्युमत्यो मृत्युगोचरादनतिक्रान्ता मृत्युगोचरा एवेत्यर्थः। ता आत्मनो ध्यानक्रियासु प्रयुक्ताः। किंचान्योन्यसक्ता इतरेतरसंबद्धाः। अनविप्रयुक्ता विशेषेणैकैकविषय एव प्रयुक्ता विप्रयुक्ताः। न तथा विप्रयुक्ता अविप्रयुक्ता नाविप्रयुक्ता अनविप्रयुक्ताः।

तत्र यः पुनरेतमित्यादिनोक्तेऽथ आद्यं मन्त्रं योजयति—तिस्र इति। मृत्युगोचरा इति। प्रत्येकं ब्रह्मदृष्टिं च विना तदुपासकानां मृत्यवनतिक्रमादित्यर्थः। ब्रह्मदृष्ट्या संश्लिष्टत्वेन च संभूय च प्रयुक्ताश्चेन्नायं दोष इत्याह—किंचेति। जाग्रदिति। जाग्रत्पुरुषो वैश्वानराभिन्नो विश्वस्तत्स्थानं

ओंकार की तीन मात्राओं का वैशिष्ट्य

अकार, उकार और मकार ऐसे ओंकार की ये तीन मात्रायें मृत्युमती हैं अर्थात् मृत्यु की पहुँच से परे न होने के कारण ये मृत्यु की विषय ही हैं। इसीलिये उन्हें मृत्युमती कहते हैं। वे मात्रायें आत्मा की उपासना क्रियाओं में प्रयुक्त होती हैं और वे एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं. जो विशेष रूप से एक विषय में ही प्रयुक्त हों वे विप्रयुक्ता कही जाती हैं और जो विप्रयुक्ता न हों उन्हें अविप्रयुक्ता कहते हैं एवं जो

---

१. तिस्रो मात्रा मृत्युमत्य इति—एकैकमात्रायाः स यद्येकमात्रमभिध्यायीतेत्यादिना मृत्युमत्फलस्यैवोक्तत्वात् तिसृणामपि दिव्यभोगमात्राभिलाषेण ब्रह्माभिन्नत्वेन हिरण्यगर्भादिविषयत्वे अतोऽन्यदार्तमिति मृत्युमत्फलकत्वस्यैवावधारणादिति भावः। यद्वाऽनात्मत्वादेव मात्राणां स्वरूपतो मृत्युमत्त्वं विनाशित्वमिति ध्येयम्। २. परब्रह्मविषयाः संश्लिष्टाश्च तु तानमृत्युमत्य इत्याशयेनाह—प्रयुक्ता इत्यादि। ३. अनतिक्रान्ता—अनिर्गता इत्यर्थ इति पञ्चमी। ४. ननु तिसृणामपि मात्राणां मृत्युमत्त्वे तदभिन्नोङ्कारस्यापि तथात्वापत्त्या यो यदिच्छति तस्य तत्, तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तामत्यादि कथमुपपाद्यतामत आह—ता आत्मन इत्यादि। अन्योन्यसक्तत्वादिरूपेणात्मध्याने विनियुक्तास्तु ता मृत्युमतिक्रान्ता एवेति भावः। ५. एकैकविषये जाग्रदादिरूप इत्यर्थः। ६. प्रत्येकमिति—ब्रह्मदृष्ट्यापीति शेषः। ७. तदुपासकानामिति—संहृत्योपीत्यादिः। ८. ब्रह्मदृष्ट्येति—अनेन ता इत्यादि भाष्यं संगृहीतम्। ९. संभूय चेति—संश्लिष्टत्वेन चेत्यस्यैव टिप्पणमिति विद्मः। १०. वैश्वानरो विराट्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोंकारेणैवाऽऽयतनेनान्वेति विद्वान्यत्त-

साधक ऋग्वेद द्वारा इस मनुष्य उपलक्षित लोक को, यजुर्वेद द्वारा सोम से अधिष्ठित अन्तरिक्ष लोक को और सामवेद द्वारा उस तृतीय ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, जिसे विद्वान् लोग ही जानते हैं तथा उस ओंकार रूप आलम्बन के द्वारा ही विद्वान् उस लोक को प्राप्त होता है। जो स्थूल

किं तर्हि विशेषेणैकैकस्मिन्ध्यानकाले तिसृषु क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तस्थानपुरुषाभिध्यानलक्षणासु योगक्रियासु सम्यक्प्रयुक्तासु सम्यग्ध्यानकाले प्रयोजितासु न कम्पते न चलति ज्ञो योगी यथोक्तविभागज्ञ ओंकारस्येत्यर्थः । न तस्यैवंविदश्चलनमुपपद्यते । यस्माज्जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तपुरुषाः सह स्थानैर्मात्रात्रयरूपेणोंकारात्मरूपेण दृष्टाः स ह्येवं विद्वान्सर्वात्मभूत ओंकारमयः कुतो वा चलेत्कस्मिन्वा ॥६॥

सर्वार्थसंग्रहार्थो द्वितीयो मन्त्रः—

ऋग्भिरेतं लोकं मनुष्योपलक्षितम् । यजुर्भिरन्तरिक्षं सोमाधिष्ठितम् । सामभिर्य-

---

स्थूलशरीरं जागरितं च । स्वप्नपुरुषस्तु हिरण्यगर्भाभिन्नस्तैजसस्तत्स्थानं लिङ्गशरीरं स्वप्नश्च । सुषुप्तावीश्वरात्मा प्राज्ञस्तत्स्थानमव्याकृतं सुषुप्तिश्च । तेषामकारादिताटात्म्येन यदभिध्यानं तल्लक्षणासु योगक्रियासु प्रयुक्तास्वन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्तास्तिस्रो मात्राः प्रयुक्ताश्चेन्न कम्पत इत्यन्वयः । अनेन 'सर्वात्मके परब्रह्मणीश्वर ओंकाराभेदेन ध्यानमुक्तम् । यथोक्तेति । तिस्रो मात्रा इतिश्लोकोक्तविभाग इत्यर्थः । कुतो वेति । चलनं विक्षेपः स्वस्य सर्वात्मत्वेन स्वव्यतिरिक्ताभावाच्चलनं न संभवतीति कुतो हेतोः कस्मिन्वा विषये चलेदित्यर्थः ॥६॥

अविप्रयुक्ता भी नहीं हैं, वे अनविप्रयुक्ता कही जाती हैं।

तो फिर इस व्युत्पत्ति से क्या अर्थ सिद्ध हुआ ? इस प्रकार विशेषरूप से एक ही ध्यान काल में आभ्यन्तर और मध्यम क्रियाओं में जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति के अभिमानी पुरुषों के अभिध्यानरूप योग क्रियाओं के सम्यक् प्रकार से प्रयोग किये जाने पर अर्थात् सम्यक् प्रकार से ध्यानकाल में प्रयुक्त किये जाने पर ओंकार की मात्राओं के पूर्वोक्त विभाग को जानने वाला उपासक योगी विचलित नहीं होता। इस प्रकार उस उपासक का विचलित होना सिद्ध नहीं होता है क्योंकि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति के अभिमानी (व्यष्टि रूप से विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ तथा समष्टि रूप से विराड्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर ये सभी) पुरुष अपने स्थानों के सहित मात्रामय ओंकारस्वरूप से देखे जाते हैं। इस प्रकार सर्वात्मभूत ओंकार में तन्मय हुआ वह विद्वान् पुरुष क्यों और किससे विचलित होगा ॥ ६ ॥

ऋगादि वेद तथा ओंकार से प्राप्त होने वाले लोकों का वर्णन

उपर्युक्त सम्पूर्ण अर्थों का संग्रह करने के लिये यह दूसरा मन्त्र है। ऋग्वेद द्वारा मनुष्य

---

१. ननु मात्राणामनात्मत्वेन तदात्मना प्रपञ्चं पश्यतोऽनात्मवित्त्वेन चलनमावश्यकमित्याशङ्क्याऽऽह—ओङ्कारात्मरूपेणेति । ओङ्कारलक्ष्यात्मत्वेनेत्यर्थः । २. अव्याकृतमविद्याकारणदेहः । ३. सर्वात्मक इत्यादि—ओङ्कारं प्रतीकयित्वा तत्र सर्वात्मकेश्वरपरब्रह्मणोऽभेदेन चिन्तनमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

च्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ ७ ॥

इत्यथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषदि पञ्चमः प्रश्नः ॥ ५ ॥

सूक्ष्म प्रपंच से रहित, अजर, अमर, अभय, एवं सबसे परे है। मन्त्र में इति शब्द प्रश्न समाप्ति का द्योतक है ॥ ७ ॥

॥ इति पञ्चमः प्रश्नः ॥

[1]तद्ब्रह्मलोकमिति तृतीयं कवयो मेधाविनो विद्यावन्त एव नाविद्वांसो वेदयन्ते। तं त्रिविधं लोकमोंकारेण साधनेनापरब्रह्मलक्षणमन्वेत्यनुगच्छति विद्वान्। तेनैवोंकारेण यत्तत्परं ब्रह्माक्षरं सत्यं पुरुषाख्यं शान्तं विमुक्तं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिविशेषसर्वप्रपञ्चविवर्जितमत एवाजरं जरावर्जितममृतं मृत्युवर्जितमत एव यस्माज्जराविक्रियादिरहितमतोऽभयम्। यस्मादेवाभयं तस्मात्परं निरतिशयम्। तदप्योंकारेणाऽऽयतनेन गमनसाधनेनान्वेतीत्यर्थः। इतिशब्दो वाक्यपरिसमाप्त्यर्थः ॥७॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ प्रश्नोपनिषद्भाष्ये पञ्चमः प्रश्नः ॥५॥

अपरब्रह्मप्राप्त्यर्थं य ओंकारः प्रयुक्तस्तेनैव ([2]न पृथक्प्रयुक्तः) परमपि प्राप्नोति ब्रह्मलोक उत्पन्ननिर्विशेषब्रह्मसाक्षात्कारेणोक्तस्योंकारस्य क्रममुक्तिफलत्वादित्याह—तेनैवेति। येनापरमन्वेति तेनैव परमप्यन्वेतीत्येवकारार्थ इत्यर्थः। तदप्योंकारेणेत्यायतनविशेषणार्थं पुनरोंकारग्रहणमिति न पुनरुक्तिरिति बोध्यम्। ७।

इत्यानन्दज्ञानविरचितप्रश्नोपनिषद्भाष्यटीकायां पञ्चमः प्रश्नः ॥५॥

उपलक्षित इस लोक को यजुर्वेद द्वारा सोम से अधिष्ठित अन्तरिक्ष लोक को और सामवेद द्वारा उस तृतीय ब्रह्म लोक को (विद्वान् प्राप्त हो जाता है) इस तृतीय ब्रह्मलोक को मेधावी विद्वान् कवि लोग ही जानते हैं, अविद्वान् नहीं। इस क्रम से ओंकाररूप साधन के द्वारा अपर ब्रह्मस्वरूप इस त्रिविध लोक को विद्वान् प्राप्त कर लेता है अर्थात् इन्हीं तीनों का अनुगमन करता है।

उस ओंकार से ही वह उस अक्षर सत्यपुरुष नामक परब्रह्म को प्राप्त होता है जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि विशेष भावरूप सभी प्रपंच से रहित है। इसीलिये तो बुढ़ापा और मृत्यु से रहित है क्योंकि वह जरा आदि विकारों से रहित है। अतः अभयरूप एवं अभय होने के कारण वह निरतिशय पर है। तात्पर्य यह है कि उस परब्रह्म को भी गमन साधन ओंकाररूप आलम्बन द्वारा ही परब्रह्म का उपासक प्राप्त हो जाता है। इस मन्त्र के अन्त में इति शब्द वाक्य की परिसमाप्ति का द्योतक है ॥ ७ ॥

१. यत्तदिति - तृतीयभुवमित्यन्वयः। तदर्थमाह—ब्रह्मलोकमिति। मेधाविनो वेदयन्त इत्यन्वयः। २. न पृथक्प्रयुक्त इति—तेनैवेत्यस्या टिप्पणमिदमन्यथाकृतं भाति तृतीयान्त पाठ्यम्। यस्तेनेति वाऽस्यांश शेषो द्रष्टव्य इत्यलम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ षष्ठः प्रश्नः

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ । भगवन्हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति

उसके बाद उन पिप्पलाद मुनि से भरद्वाज के पुत्र सुकेशा ने पूछा—हे भगवन् ! कौशल देश के राजकुमार हिरण्यनाभ ने मेरे पास आकर इस प्रश्न को पूछा था कि हे भारद्वाज ! तुम सोलह कला वाले पुरुष को जानते हो ? मैंने उस राजकुमार से कहा—मैं इसे नहीं जानता हूँ । यदि मैं इसे

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ, समस्तं जगत्कार्यकारणलक्षणं सह विज्ञानात्मना परस्मिन्नक्षरे सुषुप्तिकाले संप्रतिष्ठि (ष्ठ) त इत्युक्तम् । सामर्थ्यात्प्रलयेऽपि तस्मिन्नेवाक्षरे संप्रतिष्ठते जगत्तत एवोत्पद्यत इति सिद्धं भवति । न ह्यकारणे कार्यस्य संप्रतिष्ठानमुपपद्यते । उक्तं च—"आत्मन एष प्राणो जायते" इति । जगतश्च यन्मूलं तत्परि-

---

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठाः कर्माणि विज्ञानमयश्चेति मन्त्रे 'कर्मभिः सह षोडशकलानां परस्मिंल्लयमुक्त्वा यथा नद्यः स्यन्दमाना इति मन्त्रेण दृष्टान्तोक्तिद्वारा परप्राप्तिरुक्ता मन्त्रयोर्विस्तराभिधानार्थं षष्ठं प्रश्नमारभते—अथ हैनमिति । तस्य पूर्वेण 'संगतिमुक्तार्थानुवादपूर्वकमाह—समस्तमित्यादिना । अक्षरस्य कारणत्वसिद्धयर्थं प्रलयेऽपि तस्मिन्नेव लयमाह—सामर्थ्यादिति । लयाधारत्वेन कारणत्वमाह—तत इति । तदुक्तेः प्रयोजनमाह—जगत इति । यद्यप्यद्वितीयात्मज्ञानान्मुक्तिर्न कारणज्ञानात्तथाऽपि तस्य कारणत्वे तद्व्यतिरेकेण कार्याभावात्तदद्वितीयत्वज्ञानं सिध्यतीति तादृशा-

---

॥ षष्ठ प्रश्न ॥

सोलह कला वाला पुरुष कौन है

उसके पश्चात् उन आचार्य पिप्पलाद से भारद्वाज सुकेशा ने पूछा—सुषुप्तिकाल में विज्ञानात्मा के सहित सम्पूर्ण कार्य-करणरूप संसार अक्षर परम पुरुष में लीन हो जाता है, ऐसा पहले कहा जा चुका है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि प्रलयकाल में भी यह जगत् उसी अक्षर में स्थित होता है और पुनः उसी से उत्पन्न होता है, क्योंकि अकारण में कार्य का लीन होना सम्भव नहीं है।

इसके अतिरिक्त "यह प्राण आत्मा से उत्पन्न होता है" इस तृतीय प्रश्न में कहा गया है। साथ ही सम्पूर्ण उपनिषदों का निश्चित अभिप्राय भी यही है कि जो जगत् का मूल कारण है, उसके अपरोक्ष

---

१. अब्रुवमितिच्छान्दसमब्रवमितिवक्तव्ये भाष्ये तु तत्सांपातिकमित्यवधेयम् । २. उक्तं सामर्थ्यं समर्थयति—न हीत्यादिना । ३. कर्मभिः सह षोडशेति—कर्मणा सह मिलित्वा षोडशेत्यर्थः । ४. संगतिमुक्त्वा-प्योत्थापकभावात्मिकामित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मा-
न्नार्हाम्यनृतं वक्तुं स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज ।
तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥ १ ॥

जानता होता तो भला सर्वगुण सम्पन्न तुझ शिष्य को क्यों नहीं बतलाता । जो पुरुष मिथ्या भाषण करता है, वह मूल के सहित सर्वथा सूख जाता है । अतः मैं तुझसे छिपाने के लिए मिथ्या भाषण नहीं कर रहा हूँ । इतना सुनने पर वह राजकुमार चुपचाप रथ में बैठ कर चला गया । (तब से मेरे हृदय में वह ज्ञातव्य रूप से काँटे के समान खटक रहा है) अतः अब मैं उसके विषय में आपसे पूछता हूँ कि वह जानने योग्य षोडशकला पुरुष कहाँ रहता है ? ॥ १ ॥

ज्ञानात्परं श्रेय इति सर्वोपनिषदां निश्चितोऽर्थः । अनन्तरं चोक्तं स सर्वज्ञः सर्वो भवतीति । वक्तव्यं च क्व तर्हि तदक्षरं सत्यं पुरुषाख्यं विज्ञेयमिति । तदर्थोऽयं प्रश्न आरभ्यते । वृत्तान्वाख्यानं च विज्ञानस्य दुर्लभत्वख्यापनेन तल्लब्ध्यर्थं मुमुक्षूणां यत्नविशेषोत्पादनार्थम् ।

हे भगवन्हिरण्यनाभो नामतः कोसलायां भवः कौसल्यो राजपुत्रो जातितः क्षत्त्रियो मामुपेत्योपगम्यैतमुच्यमानं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं षोडशसंख्याकाः 'कला अवयवा

आत्मज्ञानात्परं श्रेय इति । आत्मा वा इदमेक एव । स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत् । प्रज्ञानं ब्रह्म । स एतेन प्रज्ञेनाऽऽत्मनाऽमृतः समभवत् । सदेवैकमेवाद्वितीयमित्युपक्रम्याऽऽचार्यवान्पुरुषो वेद, अथ संपत्स्ये, तमेवैकं जानथ । अमृतस्यैष सेतुः, अहं ब्रह्मास्मीति । तस्मात्तत्सर्वमभवदित्यादिषु निश्चितमित्यर्थः । इहापि तादृगात्मज्ञानादेव सर्वात्मभावः श्रेय उक्त इत्याह—अनन्तरमिति । वृत्तमनूद्य वर्तिष्यमाणमाह—वक्तव्यमिति । तदर्थोऽयमिति । तस्य शरीरान्तस्थत्वोक्तिद्वारा तस्य प्रत्यगात्मत्वज्ञानार्थमित्यर्थः ।

प्रश्नमिति । प्रष्टव्यमित्यर्थः । अज्ञाने कारणमिति । अज्ञानसंभावनायां कारणमित्यर्थः ।

ज्ञान से ही परम कल्याण हो सकता है । अभी चौथे प्रश्न के उत्तर में यह भी कहा जा चुका है "वह सर्वज्ञ और सर्वात्मक हो जाता है" । अतः अब यह बतलाना आवश्यक है कि उस पुरुष नामक सत्य अक्षर को कहाँ जाना जाय । बस इसीलिये यह प्रश्न प्रारम्भ किया जाता है । आख्यान उल्लेख का तात्पर्य यह है कि विज्ञान की दुर्लभता बतलाने से मुमुक्षु लोग उसकी प्राप्ति के लिये विशेष प्रयत्न करेंगे ।

हे भगवन् ! कोशलपुरी में उत्पन्न हुआ हिरण्यनाभ नामक जातितः क्षत्रिय राजपुत्र ने मेरे पास आकर आगे कहा जाने वाला प्रश्न पूछा कि हे भारद्वाज ! जैसे शरीर में अवयव होते हैं, वैसे ही

---

१. कला अवयवा इवेति—कला तु षोडशो भाग इति प्राणादीनां प्रत्येकं स्वेतरापेक्षया षोडशत्वात्कलात्वमित्यपि द्रष्टव्यम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इवाऽऽत्मन्यविद्याध्यारोपितरूपा यस्मिन्पुरुषे सोऽयं षोडशकलस्तं षोडशकलं हे भारद्वाज पुरुषं वेत्थ विजानासि। तमहं राजपुत्रं कुमारं पृष्टवन्तमब्रुवमुक्तवानस्मि नाहमिमं वेद यं त्वं पृच्छसीति। एवमुक्तवत्यपि मय्यज्ञानमसंभावयन्तं तमज्ञाने कारणमवादिषम्। यदि कथंचिदहमिमं त्वया पृष्टं पुरुषमवेदिषं विदितवान¹स्मि कथमत्यन्तशिष्यगुणवतेऽर्थिने ते तुभ्यं नावक्ष्यं नोक्तवानस्मि न ब्रूयामित्यर्थः। भूयोऽप्यप्रत्ययमिवाऽऽलक्ष्य प्रत्याययितुमब्रुवम्। समूलः सह मूलेन वा एषोऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा कुर्वन्ननृतमयथाभूतार्थमभिवदति यः स परिशुष्यति शोषमुपैती²हलोकपरलोकाभ्यां विच्छिद्यते विनश्यति। यत एवं जाने तस्मान्नार्हाम्यहमनृतं वक्तुं ³मूढवत्। स राजपुत्र एवं प्रत्यायितस्तूष्णीं ⁴व्रीडितो रथमारुह्य प्रवव्राज प्रगतवान्यथागतमेव। अतो न्यायत उपसन्नाय योग्याय जानता विद्या वक्तव्यैवानृतं च न वक्तव्यं सर्वास्ववस्थास्वित्येतत्सिद्धं भवति। तं पुरुषं त्वा त्वां पृच्छामि मम हृदि विज्ञेयत्वेन ⁵शल्यमिव स्थितं क्वासौ वर्तते विज्ञेयः पुरुष इति ॥१॥

अप्रत्ययमिति। अविश्वासमित्यर्थः। अन्यथा सन्तमिति। ज्ञानिनं सन्तमन्यथा कुर्वन्नज्ञानिनं कुर्वन्नारोपयन्नित्यर्थः। कथं ते नावक्ष्यमित्यनेन ⁶सूचितमर्थमाह—अत इति। समूलो वा इत्यनेन ⁷सूचितमाह—अनृतं चेति। स्वरूपेण शल्यत्वाभावादाह—विज्ञेयत्वेनेति। यावज्जिज्ञासितं न ज्ञायते तावत्तद्धृदि शल्यवद्भासत इति शल्यमिवेत्युक्तम् ॥ १ ॥

जिस पुरुष में सोलह कलायें आरोपित की गयी हैं। इसीलिये षोडश कल (सोलह कला वाला) पुरुष कहते हैं। ऐसे उस सोलह कलाओं वाले पुरुष को क्या तू जानता है? इस प्रकार पूछने वाले उस राजकुमार से मैंने कहा कि जिसके विषय में तुम पूछते हो, उसे मैं नहीं जानता; ऐसा कहने पर भी मुझ में अज्ञान की असम्भावना मानने वाले उस राजकुमार को मैंने अपने अज्ञान का कारण बतलाया। यदि तेरे पूछे हुये इस पुरुष को कथञ्चित् मैं जानता होता तो भला अत्यन्त शिष्यगुण सम्पन्न तुझ प्रार्थी को मैं क्यों नहीं बतलाता, फिर भी उसे अविश्वस्त-सा देख विश्वास दिलाने के लिये मैंने कहा—जो पुरुष अपने आपको अन्यथा करता है अर्थात् मिथ्या भाषण करता है, वह मूल के सहित सूख जाता है यानी इस लोक और परलोक दोनों से विनष्ट हो जाता है, जबकि मैं इस बात को जानता हूँ; अतः मूर्खों के समान मैं झूठ नहीं बोल सकता। इस प्रकार विश्वास दिलाने पर वह राजकुमार लज्जित हो चुपचाप रथ में बैठकर वहाँ ही चला गया, जहाँ से वह आया था। इससे यह सिद्ध होता है कि नियमपूर्वक अपने समीप आये हुये योग्य जिज्ञासु के प्रति ज्ञानी पुरुष को विद्या का उपदेश करना ही चाहिये और सभी अवस्थाओं में झूठ नहीं बोलना चाहिये। (सुकेशा ने

---

१. अस्मि भवेयमित्यर्थः। २. इहलोकपरलोकेत्यादि—इहलोको मनुष्यलोकस्तस्मादुत्कृष्टस्तु देवादिदेहरूपः परलोकस्तत्प्राप्तिमूलस्य पुण्यकर्मणोऽसत्येन प्रणाशात्ताभ्यां वञ्चितोऽधोगतिं यातीत्यर्थः। ३. मूढवदिति—श्रुतिसिद्धान्तमजानन्मूढो यथाऽनृतं वक्ति तद्वदित्यर्थः। ४. व्रीडित इति—अस्थाने कृतश्रमत्वादमुष्य व्रीडेति गम्यते। ५. शल्यमिति—वा पुंसि शल्यं शङ्कुर्ना इत्यमरः। वाणाग्रं शल्यम्। ६. सूचितमिति—विधिरूपमिति। ७. सूचितमिति—निषेधमिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मै स होवाच । इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति ॥ २ ॥

उस सुकेशा से आचार्य पिप्पलाद ने कहा—हे सोम्य ! जिस पुरुष में (आगे बताये जाने वाले) इन षोडश कलाओं का प्रादुर्भाव हुआ है, वह पुरुष इस शरीर के भीतर रहता है। (वह पुरुष कलाहीन होते हुए भी इन उपाधिभूत सोलह कलाओं के कारण कलावान् सा दीखता है। अब विद्या से अविद्या की निवृत्ति करके उसके शुद्ध रूप को दिखलाना है। इसलिए प्राणादि कलाओं का उसी से उत्पन्न होना कहा गया है) ॥ २ ॥

तस्मै स होवाच । इहैवान्तःशरीरे हृदयपुण्डरीकाकाशमध्ये हे सोम्य स पुरुषो न देशान्तरे विज्ञेयो यस्मिन्नेता [2]उच्यमानाः षोडश कलाः प्राणाद्याः प्रभवन्त्युत्पद्यन्त इति [3]षोडशकलाभिरुपाधिभूताभिः सकल इव निष्कलः पुरुषो लक्ष्यतेऽविद्ययेति तदुपाधिकला-[4]ध्यारोपापनयेन विद्यया स पुरुषः केवलो [5]दर्शयितव्य इति कलानां तत्प्रभवत्वमुच्यते । प्राणादीनामत्यन्तनिर्विशेषे ह्यद्वये शुद्धे तत्त्वे [6]न शक्योऽध्यारोपमन्तरेण प्रतिपाद्यप्रति-

---

पुरुषस्य षोडशकलत्वं न [7]साक्षात्सावयवत्वेन किंतु [8]कलाजनकत्वेन तदुपाधिमत्त्वादिति वक्तुं यस्मिन्नेता इति वाक्यमिति तत्तात्पर्यमाह—षोडशकलाभिरिति । ननु केवल आत्मा प्रदर्श्यतां किं वक्ष्यमाणकलोक्त्येत्यत आह—तदुपाधीति । [9]तथैव स प्रदर्शनीय इत्यत्र हेतुमाह—अत्यन्तेति । अविद्या-

---

कहा हे भगवन् !) मेरे हृदय में ज्ञातव्यरूप से काँटे के समान चुभे हुये उस प्रश्न के विषय में मैं आपसे विनम्रतापूर्वक पूछता हूँ कि वह विज्ञेय षोडशकल पुरुष कहाँ रहता है ॥ १ ॥

षोडशकल पुरुष शरीर में रहता है

उस सुकेशा से उस आचार्य पिप्पलाद ने कहा कि हे प्रियदर्शन ! इसी शरीर के भीतर हृदय-पुण्डरीकाकाश के मध्य में वह पुरुष जानने योग्य है; किसी अन्य स्थान में नहीं। जिसमें इन आगे बतलाये जाने वाली सोलह कलायें उत्पन्न होती हैं, उन उपाधिरूप सोलह कलाओं के कारण अविद्यावश कला वाला-सा प्रतीत होता है। वस्तुतः उसमें कोई कला नहीं, विद्या द्वारा उन औपाधिक कलाओं के अध्यारोप की निवृत्ति से उस पुरुष को विशुद्धरूप में दिखलाना है। इसीलिये प्राणादि कलाओं को उसी से उत्पन्न होना बतलाया गया है क्योंकि अत्यन्त निर्विशेष, अद्वय और विशुद्ध तत्त्व में अध्यारोप

---

१. नन्विहैव शरीरे चेन्न कुतोऽवलोक्यते शरीरेष्ववस्थितं लोमादि लोक्यतेऽत आह—अन्तरिति । तद्व्याचष्टे—हृदयेत्यादिना । २. उच्यमानाः—स प्राणमसृजतेत्यादिना प्र. उ. -४ मन्त्रे वक्ष्यमाणाः । ३. इमाः षोडश कलाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति, स एषोऽकलोऽमृत इत्याद्युपसंहारमनुसरन्नाह—षोडशकला-भिरित्यादि । ४. अध्यारोपापनयेनेति—अध्यारोपापवादाभ्यां जनितये त यावत् । ५. दर्शयितव्य इति—स यथेमा नद्य इत्यादिना वक्ष्यमाणेनेति भावः । ६. न शक्य इत्यादि—नीलमेव ह्यारोप्याकाशमुपदिश्यते बालेभ्य इति भावः । ७. साक्षादिति—उपाधिमन्तरेति यावत् । ८. कलाजनकत्वेनेति श्रोत्रजनकत्वेना-काशस्य नानात्ववत् । घटादजनकत्वेन वेति ध्येयम् । ९. तथैवेति—अध्यारोपापवादाभ्यामित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain: Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पादनादिव्यवहारः कर्तुमिति कलानां प्रभवस्थित्यप्यया आरोप्यन्ते[1]ऽविद्याविषयाश्चैतन्याव्यतिरेकेणैव हि कला जायमानास्तिष्ठन्त्यः प्रलीयमानाश्च सर्वदा[2] लक्ष्यन्ते[3]। अत एव भ्रान्ताः केचिदग्निसंयोगाद्घृतमिव घटाद्याकारेण चैतन्यमेव प्रतिक्षणं जायते नश्यतीति। तन्निरोधे शून्यमिव सर्वमि[4]त्यपरे। घटादिविषयं चैतन्यं चेतयितुर्नित्यस्याऽऽत्मनोऽनित्यं जायते विनश्यती[5]त्यपरे। चैतन्यं भूतधर्म इति लौकायतिकाः।

[6]अनपायोपजनधर्मकचैतन्यमात्मैव नामरूपाद्यु[7]पाधिधर्मैः प्रत्यवभासते। सत्यं ज्ञानम-

विषया इति। अविद्याधीना इत्यर्थः। [8]कालत्रयेऽपि तासां चैतन्यरूपाधिष्ठानाव्यतिरेकाद्रज्जुसर्पवन्मृषात्वमित्यविद्याविषयत्वं साधयति—चैतन्येति। चैतन्याव्यतिरेकेण लक्ष्यमाणत्वं [9]हेतुं विज्ञानवादिभ्रान्त्या दृढी करोति—अत एवेति। घृतं यथाऽग्निसंयोगाद्द्रवावस्थां प्रतिपद्यत एवमहमाकारमालयविज्ञानमेव वासनावशाद्विषयाकारेण जायत इति वदतां तेषां भ्रमो विषयस्य चैतन्याव्यतिरेके [10]प्रत्ययं गमयति, अन्यथा तथाभ्रमानुपपत्तेरित्यर्थः। विषयाणां चैतन्याव्यतिरेकेण प्रतीतिनियमादेव [11]विषयविज्ञानरूपेण चैतन्याभावे [12]सुषुप्त्यादौ शून्यभ्रमो जातः केषांचिदिति तदीयभ्रान्त्याऽपि चैतन्याव्यतिरिक्तप्रतीतिं दृढी करोति—तन्निरोध इति। चैतन्यस्यानित्यस्य कलारोपाधिष्ठानत्वं न संभवति कलाकार्यत्वादिति नैयायिकपक्षोक्तिव्याजेन शङ्कते—घटादीति। भूतधर्म इति। [13]देहाकारेण संहतभूतधर्म इत्यर्थः।

चैतन्यस्याऽऽरोपाधिष्ठानत्वसिद्ध्यर्थं नित्यत्वमेकत्वं च वदंस्तान्निराकरोति—अनपायेति। प्रत्यवभासत इति। नानात्वेन कार्यत्वेन चेति शेषः। सत्यं ज्ञानमिति। तथा च श्रुतिविरोधात्ते पक्षा

के विना प्रतिपाद्य-प्रतिपादनादि व्यवहार नही कर सकते। अतः उसी निष्कल तत्त्व में कलाओं की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय अविद्या विषयक आरोपित हैं, क्योंकि ये कलायें चैतन्य ब्रह्म से अभिन्न रहकर ही सदा उत्पन्न, स्थिति और लीन होती देखी जाती हैं। अतएव कुछ भ्रान्त पुरुषों का यह भी मत है कि अग्नि संयोग से घृत का काठिन्य जैसे नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार चैतन्य ही प्रत्येक क्षण में घटादि आकारों में उत्पन्न होता और नष्ट होता है। इनसे भिन्न दूसरे शून्यवादियों का मत है कि इनका निरोध हो जाने पर सब कुछ शून्य-सा हो जाता है। वैसे ही अन्य तार्किकों का कहना है कि

१. कथमारोप्यन्त इति न किमिति तथ्याः स्युरत आह—अविद्याविषया इति। ननु न तथाविधं प्रमाणं गोचरयति रूप्याद्यत्र तु प्रमाणं यस्मिन्नेता इतीतीदमनुपपन्नमित्याशङ्क्य प्रमाणं कृतार्थयति—चैतन्येत्यादिना। २. सर्वदेति—सुषुप्तिजागरयोरिति यावत्। ३. लक्ष्यन्त इति—स एषोऽकल इत्यादि परमार्थप्रमाणानुरुद्धमिदमतथात्वेऽपि तथा प्रतीतिमात्रं व्यवहारकालीनमालिङ्ग्य निर्वाति प्रमाणमिति भावः। ४. अपरे आत्मोच्छेदं मोक्षमालिङ्गन्तो बौद्धाः। ५. अपरे नैयायिकास्तेषां च विषयचैतन्यसाहचर्यमात्रमविविक्तं भ्रामकमिति भावः। ६. एवं वादिनां तत्तद्भ्रमान्यथाऽनुपपत्त्या साधितं चैतन्याव्यतिरेकमेव कलानामालम्ब्य यस्मिन्नेताः षोडश कला इत्यारोपमात्रं श्रुतेरवान्तरतात्पर्येणेत्यावेद्य मुख्यतात्पर्यविषयं निष्कलं पुरुषमावेदयितुकामो भगवान् भाष्यकारो वादिनां तत्तद्भ्रमापनोदने नोपचिकीर्षन् विचारमारभमाणः श्रौतं राद्धान्तमुपस्थापयति—अनपायेत्यादिना। ७. उपाधिधर्मैरुपलक्षित इति भावः। ८. कालत्रये—उत्पत्त्यादिकाल इत्यर्थः। ९. हेतुं मृषात्वे। १०. प्रत्ययं प्रतीतिम्। ११. चैतन्यस्य स्वरूपतः कदाऽप्यसत्त्वासंभवादाह—विषयविज्ञानरूपेणेति। यद्यपि तथातदभावो विषयाभावात्तथापि चैतन्यप्रतीतिस्तेषां विषयाधीनेत्येवमप्यव्यतिरेकोपपत्तिरित्यवधेयम्। १२. सुषुप्त्यादाविति मुक्तिरादिशब्दार्थः। सैव चात्र वक्तव्यासीत्तत्र स्वरूपेणापि चैतन्यव्यतिरेकस्य तैरास्थेयत्वादिति ध्येयम्। १३. देहाकारेणेत्यादि—तथाविधभूतसाहचर्यमेव चैतन्यस्य तथात्वभ्रमे तेषां निबन्धनमिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'नन्तं ब्रह्म। प्रज्ञानं ब्रह्म विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। विज्ञानघन एवे'त्यादिश्रुतिभ्यः। स्वरूपव्यभिचारिषु पदार्थेषु चैतन्यस्याव्यभिचारा'द्यथा यथा यो यः पदार्थो विज्ञायते तथा तथा ज्ञायमानत्वादेव 'तस्य तस्य चैतन्यस्याव्यभिचारित्वं वस्तु च भवति किंचिन्न ज्ञायत इति चानुपपन्नम्।

हेया इत्यर्थः। किंच ज्ञानकाले विषयाणां सद्भावनियमाभावाद्विषयकाले च ज्ञानस्य सद्भावनियमात्तयोर्भेद इति विज्ञानवादिपक्षं निराकुर्वन्न'व्यभिचारादेव ज्ञानस्य नित्यत्वं साधयन्नैयायिकादिपक्षमपि निराकरोति—स्वरूपेति। 'घटज्ञानकाले पटाभावसंभवाद्विषयाणां 'ज्ञानव्यभिचारित्वं ज्ञानस्य तु विषयकालेऽवश्यंभावनियमादव्यभिचारित्वमित्यर्थः। पटकाले घटज्ञानमपि नास्तीति घटज्ञानस्यापि पटविषयव्यभिचारित्वं तुल्यमित्याशङ्क्य स्वरूपेत्युक्तम्। ज्ञानस्य विषयविशिष्टत्वरूपेणैव व्यभिचारः। विषयस्य तु स्वरूपेणैवेति विशेष इत्यर्थः। ज्ञानस्याव्यभिचारित्वमुपपादयति—यथा यथेति। नन्'त्पन्नविनष्टादेर्मेरुगुहान्तर्वर्तिनश्चाज्ञायमानत्वाज्'ज्ञानस्यापि ज्ञेयाव्यभिचारोऽसिद्ध इत्याशङ्क्य तस्याज्ञाने तत्सद्भावासिद्धेस्तथाभूतपदार्थोऽसिद्ध इत्याह—वस्तु चेति।

चैतन्य गुण वाले नित्य आत्मा की घटादि विषयक अनित्य चेतनता उत्पन्न होती और नष्ट होता है एवं देहात्मवादी लौकायतिकों का कहना है कि चेतनता भूतों का धर्म है।

परन्तु "सत्य, ज्ञान और अनन्तरूप ब्रह्म है", "ब्रह्म तो ज्ञानस्वरूप है", "विज्ञानघन ही आत्मा है" इत्यादि श्रुतियों से उत्पत्ति नाशरूप धर्म से रहित चेतन ही आत्मा सिद्ध होता है। वही नामरूपादि और औपाधिक धर्मों से युक्त-सा भासता है। अपने स्वरूप से बदलने वाले पदार्थों में चैतन्य का परिवर्तन न होने के कारण जो पदार्थ जैसा-जैसा जाना जाता है, उस-उस प्रकार से उसके जानने के कारण ही उस-उस पदार्थ के चैतन्य का अव्यभिचार सिद्ध होता है (क्योंकि परिवर्तनशील पदार्थों के भीतर नित्य अपरिवर्तनशील चैतन्य न माना जाय तो भला पदार्थ एवं उनके परिवर्तनशील स्वभाव को कौन प्रकाश कर सकेगा। अतः नित्य चैतन्यघन ही आत्मा है) ऐसा मानने पर पूर्वोक्त क्षणिक विनाशवाद, शून्यवाद, अनित्य गुणविशिष्ट नित्य आत्मवाद और देहात्मवाद इत्यादि मतों का संक्षेपतः निराकरण हो गया।

---

१. अनन्तमिति—देशादिपरिच्छेदशून्यमित्यर्थः। तत्त्वं च कलानां तात्त्विकत्वे व्याहन्येतेति भावः। २. इत्यादीत्यादिना—उपाधिधर्मानुकारार्थं ध्यायतीवेत्यादिश्रुतिसंग्रहः। ३. ननु शक्तिसत्त्वेऽपि न तज्ज्ञानमिति तदपि व्यभिचरत्येव विषयमित्याशङ्क्याऽऽह—यथा यथेत्यादि। रूप्यत्वेनैव तदानीमस्ति तज्ज्ञान मति भावः। ४. तस्य तस्य चैतन्यस्येति—तत्तत्प्रकारकतत्तद्विशेष्यकज्ञानस्येत्यर्थः। ५. अव्यभिचारादिति—सदा सत्त्वादित्यर्थः। ६. घटज्ञानकाले पटाभावसंभवादिति—अत्र लिखितादिसर्वपुस्तकेपु घटाभावसंभवादित्येव पाठ उपलभ्यते स च भ्रमात्मकं स्मृत्यात्मकं वा घटज्ञानमादाय घटाभावस्य नित्यत्वमते न चाक्षुषप्रमात्मकमपि वा तदादाय शक्यो नेतुं परं पटकाले घटज्ञानमपि नास्तीत्यादि वक्ष्यमाणवाक्यस्वारस्यमनुसंधाय पटाभावसंभवादित्येतमेव पाठं पाठ्यं पश्यामः। ७. ज्ञानव्यभिचारित्वमिति—ज्ञानकालीनाभावप्रतियोगित्वमित्यर्थः। अभावोऽत्यन्ताभावः। ८. उत्पन्नविनष्टेति—उत्पत्तिक्षणाव्यवहितोत्तरक्षणीयनाशप्रतियोगीत्यर्थः। क्षणीयेति क्षणवर्तीत्यर्थः। ९. ज्ञानस्यापीत्यादि—नैयायिकशङ्का तथा च ज्ञानज्ञेययोर्भेदेऽपि ज्ञानस्य नित्यत्वं न स्यादिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

[1]रूपं च दृश्यते न चास्ति चक्षुरिति यथा। व्यभिचरति तु ज्ञेयं ज्ञानं न व्यभिचरति कदाचिदपि ज्ञेयम्। ज्ञेयाभावेऽपि ज्ञेयान्तरे भावाज्ज्ञानस्य। न हि ज्ञानेऽसति ज्ञेयं नाम भवति कस्यचित्। सुषुप्तेऽदर्शनाज्ज्ञानस्यापि सुषुप्तेऽभावाज्ज्ञेयवज्ज्ञानस्वरूपस्य व्यभिचार इति चेन्न। ज्ञेयावभासकस्य ज्ञानस्याऽऽलोकवज्ज्ञेयाभिव्यञ्जकत्वात् [2]स्वव्यङ्ग्याभाव [3]आलोकाभावानुपपत्तिवत्सुषुप्ते विज्ञानाभावानुपपत्तेः।

[4]न ह्यन्धकारे चक्षुषा रूपानुपलब्धौ चक्षुषोऽभावः शक्यः कल्पयितुं [5]वैनाशिकेन।

अनुपपत्तिमेव दृष्टान्तेन स्फुटी करोति—रूपं चेति। ज्ञेयस्य ज्ञानव्यभिचारित्वं ज्ञानकाले सत्त्वनियमाभावरूपं स्पष्टमित्याह—व्यभिचरति त्विति। घटज्ञानकाले कदाचिद्[6]घटाभावादित्यर्थः। पटकाले घटज्ञानस्यापि व्यभिचारस्तुल्य इत्याशङ्क्य विशिष्टरूपेण व्यभिचारेऽपि स्वरूपेणाव्यभिचारं पूर्ववत्सूचितमाह—न व्यभिचरतीति। ज्ञानमित्यस्येहाप्यनुषङ्गः। पूर्ववाक्ये द्वितीयान्तमिह तु प्रथमान्तमिति विशेषः। भावादिति। स्वरूपेणेत्यर्थः। ज्ञानस्य स्वरूपेण सत्तामेव ज्ञेयान्तरस्य ज्ञेयत्वादेव साधयति—न हीति। स्वरूपेणाप्यभावं शङ्कते—सुषुप्त इति। किं तदानीं ज्ञेयाभावेन ज्ञानाभावः साध्यत उत ज्ञानस्यादर्शनाद्वाऽऽद्येऽपि ज्ञेयस्य व्यङ्ग्यत्वा[7]त्तदभावाद्व्यञ्जकाभाव इति वोत तयोरैक्यादेकाभावे इतराभाव इति। नाऽऽद्यो व्यभिचारादित्याह—न ज्ञेयेति।

व्यङ्ग्यज्ञानैककल्प्यस्य व्यङ्ग्याभावेऽभाव उच्यत आलोकस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वान्नैवमिति ज्ञानानुमेयत्ववादिनं प्रति दृष्टान्तान्तरमाह—न हीति। वैनाशिकमते विज्ञानव्यतिरिक्तालोकाद्य-

---

कोई वस्तु तत्त्व अवश्य है किन्तु जाना नहीं जाता, ऐसा कहना वैसे ही असंगत है कि रूप दीखता तो है पर नेत्र नहीं हैं, इस कथन के समान है। ज्ञेय वस्तु बदली जाती है किन्तु ज्ञान कभी भी नहीं बदलता क्योंकि एक ज्ञेय के हटने पर दूसरे ज्ञेय वस्तु में ज्ञान का सद्भाव बना ही रहता है। ज्ञान के न रहने पर तो ज्ञेय की सिद्धि हो हो नहीं सकती, जैसा कि सुषुप्ति में उनका अभाव देखा ही जाता है।

---

१. रूपं चेत्यादि—चक्षुर्विना रूपं दृश्यत इतिवज्ज्ञानं विना वस्तु भवतीति न शक्यं वक्तुमिति भावः। २. स्वव्यङ्ग्याभाव इत्यादि—तत्तद्व्यङ्ग्य सत्त्वेऽपि तत्तद्व्यङ्ग्याभावाच्चालनीन्यायेन घटादिव्यङ्ग्यसामान्याभावेऽपि नालोकाभावोपपत्तिरिति भावः। ३. आलोकाभावानुपपत्तीति—ननु तदानीमभावस्यैव व्यङ्ग्यत्वादालोकोपपत्तिरिति चेत्तुल्यमत्रापीति न सुषुप्ते ज्ञानाभाव इति भावः। ४. न ह्यन्धकार इत्यादि—रूपोपलब्धिः सकरणिका कार्यत्वाद् घटादिवदिति कल्पकस्यापि सतो व्यङ्ग्यस्य रूपस्यान्धकारे ज्ञातत्वविशिष्टस्याभावेऽपि व्यञ्जकस्य चक्षुषोऽभावाऽनुपगमादेव तत्र व्यभिचार इति भावः। सहकारिसमवधानाभावस्य सुषुप्तेऽपि तुल्यत्वात्सहकारिसत्त्वेऽपीति हेतौ निवेशेऽपि नोद्धार इत्यवधेयम्। ५. वैनाशिकेनेति—क्षणभङ्गुरवादी बौद्धो हि प्रतिक्षणं सर्वस्य विनाशं मन्यत इत्यसौ वैनाशिकः। ६. घटाभावादिति—अत्रापि पटाभावादित्येव पाठ्यम्। ७. तदभावाद्व्यञ्जकाभाव इति—अत्रायं प्रयोगः सुषुप्तो व्यञ्जकाभाववान् व्यङ्ग्याभाववत्त्वाद्व्यतिरेकेण जाग्रद्वदिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'वैनाशिको ज्ञेयाभावे ज्ञानाभावं कल्पयत्येवेति चेद्येन तदभावं कल्पयेत्तस्याभावः केन कल्प्यत इति वक्तव्यं वैनाशिकेन ।

तदभावस्यापि ज्ञेयत्वाज्ज्ञानाभावे तदनुपपत्तेः । ज्ञानस्य ज्ञेयाव्यतिरिक्तत्वाज्ज्ञेयाभावे ज्ञानाभाव इति चेन्न । अभावस्यापि ज्ञेयत्वाभ्युपगमादभावोऽपि ज्ञेयोऽभ्युपगम्यते

भावान्न 'तत्र व्यभिचार इति शङ्कते—वैनाशिक इति । कल्पयत्येवेति । उक्तव्यभिचारस्थलाभावेन व्यभिचाराभावादित्यर्थः । एवमपि ज्ञानाभावकल्पकस्य ज्ञेयाभावस्य ज्ञानमङ्गी क्रियते न वा आद्ये न ज्ञानाभावसिद्धिस्तस्यैवाभावज्ञानस्य सत्त्वादित्याह—येनेति । येन ज्ञेयाभावज्ञानेन तदभावं ज्ञानाभावं कल्पयेत्तस्य ज्ञानस्याभावः केन कल्प्यते न केनापि कल्पयितुं शक्य इत्यर्थः ।

न द्वितीय इत्याह—तदभावस्यापीति । ज्ञेयाभावस्याप्यज्ञातस्य ज्ञानाभावकल्पकत्वासंभवादवश्यं ज्ञेयत्वात्तज्ज्ञानाभावे तदनुपपत्तेः कल्पनानुपपत्तेर्ज्ञानानङ्गीकारपक्षो न युक्त इत्यर्थः । आद्यकोटौ द्वितीयकल्पं शङ्कते—ज्ञेयेति । वैनाशिकमतेऽप्यभावस्य ज्ञेयत्वाभ्युपगमाद्'बुद्धिबोध्यं त्रयादन्यत्संस्कृतं क्षणिकं च तदिति 'प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्या(?)निरोधाकाशरूपत्रयव्यतिरिक्तस्यैव क्षणिकत्वेन निरोधशब्दितस्याभावस्य नित्यत्वाङ्गीकारेण तदभिन्नस्य ज्ञानस्यापि सुषुप्ते सत्त्वं नित्यत्वं च प्राप्तमित्याह—नाभावस्येति । ज्ञानस्याभावाभिन्नत्वेनाभावत्वमेव स्यान्न' तु भावत्वेन सत्त्वं नित्यत्वं च स्यादित्या-

मध्यस्थ :—यदि सुषुप्ति में ज्ञान का भी अभाव हो जाने से ज्ञेय के समान ज्ञान के स्वरूप का भी व्यभिचार माना जाय ?

सिद्धान्ती :—तो ऐसा कहना ठीक नहीं । आलोक के समान ज्ञेय वस्तु का अभिव्यञ्जक उस ज्ञेय के प्रकाशक ज्ञान ही तो है । अतः जैसे प्रकाश्य वस्तु के अभाव में प्रकाश का अभाव मानना असंगत है, वैसे ही सुषुप्तिकाल में वस्तुओं की प्रतीति न होने से विज्ञान का भी अभाव मान लेना असंगत ही होगा । अन्धकार में रूप की उपलब्धि न होने पर क्षणिक विज्ञानवादी भी नेत्र के अभाव की कल्पना नहीं कर सकता ।

मध्यस्थ :—ज्ञेय के अभाव में ज्ञान के अभाव की कल्पना क्षणिक विज्ञानवादी करता ही है ।

सिद्धान्ती :—उस वैनाशिक को कहना पड़ेगा कि जिस ज्ञान से ज्ञेय के अभाव की कल्पना करेगा, उस ज्ञान के अभाव की कल्पना किससे करेगा ? क्योंकि वह ज्ञानाभाव भी ज्ञेयरूप है । अतः उस ज्ञानाभावरूप ज्ञेय को ज्ञान के विना सिद्ध नहीं कर सकते ।

मध्यस्थ :—यदि ज्ञेय से अभिन्न ज्ञान मानकर ज्ञेय के अभाव में ज्ञान का भी अभाव माना जाय तो ?

१. वैनाशिकमते चक्षुषो ज्ञानाभिन्नत्वात्तदभावोऽप्यन्धकारे ज्ञेयाभावादुपगन्तुं शक्य एवेत्याशयेनाह—वैनाशिक इत्यादि । २. तत्रेति—आलोकेऽन्धकारे चेत्यर्थः । ३. उक्तार्थे वैनाशिकवाक्यं प्रमाणयति—बुद्धिबोध्यमित्यादि संस्कृतम्—उत्पाद्यम् । बुद्धिबोध्य प्रमेयमात्रं त्रयात्तुच्छरूपादन्यत् । क्षणिकं चेत्यर्थः । ४. त्रयमाह प्रतीत्यादिना । तत्र बुद्धिपूर्वको नाशः प्रतिसंख्यानिरोधः स्वरसभङ्गुराणां स्तम्भादीनां स्वतो नाशोऽप्रतिसंख्यानिरोधः । आवरणाभावश्चाकाशमित्यभावत्रयम् । अभावश्च तन्मते तुच्छ इति ध्येयम् स्पष्टं चैतत् । प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् । ब्र. २।२।२२ इति सूत्रे भाष्यटीकादौ । ५. न तु भावत्वेनेत्यादि—अभावत्वेन रूपेण सत्त्वे नित्यत्वे च सत्यपीति भावः । तथा चाभाव एव तथा न ज्ञानमिति हृदयम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैनाशिकैर्नित्यश्च तदव्यतिरिक्तं चेज्ज्ञानं नित्यं कल्पितं स्यात्तदभावस्य च ज्ञानात्मकत्वा-दभावत्वं वाङ्मात्रमेव न परमार्थतोऽभावत्वमनित्यत्वं च ज्ञानस्य। न च नित्यस्य ज्ञान-स्याभावनाममात्राध्यारोपे किंचिन्नश्छिन्नम्।

अथाभावो ज्ञेयोऽपि सञ्ज्ञानव्यतिरिक्त इति चेन्न तर्हि ज्ञेयाभावे ज्ञानाभावः ज्ञेयं ज्ञानव्यतिरिक्तं न तु ज्ञानं ज्ञेयव्यतिरिक्तमिति चेन्न। शब्दमात्रत्वाद्विशेषानुपपत्तेः।

शङ्कयाभावस्यापि ज्ञानाभिन्नत्वेऽभावत्वमेव न स्यादित्याह—तदभावस्येति। अनित्यत्वं च ज्ञानस्येति वाङ्मात्रमेव स्यादित्यनुषङ्गः। वाङ्मात्रेणाप्यभावस्याभावत्वेन ज्ञानानित्यत्वेन चास्मत्सिद्धान्तसिद्धि-रित्याशङ्कय नाममात्रेण तेन वास्तवनित्यत्वादिविरोधाभावान्नास्माकं क्षतिरित्याह—न चेति। अभावनामेति। अनित्यनामेत्यपि द्रष्टव्यम्।

एतद्दोषपरिहारार्थं ज्ञेयस्यापि सतोऽभावस्य ज्ञानाभेदो नाङ्गी क्रियत इति शङ्कते—अथेति। तर्हि ज्ञेयाभिन्नत्वेन हेतुना सुषुप्ते ज्ञानाभावो न सिध्यति घटाद्यभावेन तज्ज्ञानाभावसिद्धावप्यभाव-ज्ञानाभावासिद्धेस्तस्याभिन्नत्वाभावादित्याह—न तर्हीति। यद्वाऽभावस्य ज्ञेयस्य ज्ञानाद्भेदे भावस्यापि तथात्वं स्याद्विशेषहेत्वभावात्तथाच न ज्ञेयाभावाज्ज्ञानाभावसिद्धिरित्याह—न तर्हीति। ननु ज्ञेयस्य ज्ञानव्यतिरिक्तत्वमङ्गी क्रियते तथाचाभावस्य ज्ञानव्यतिरिक्तत्वादभावत्वादिकं सिध्यति। ज्ञानस्य तु न ज्ञेयव्यतिरिक्तत्वम्। तथा च ज्ञेयाभावे ज्ञानाभावसिद्धिरितिनिरुद्धगतिकः शङ्कते—ज्ञेयमिति। ज्ञानस्य ज्ञेयाव्यतिरेके ज्ञेयस्यापि तदव्यतिरेकावश्यंभावादन्यथोभयोरत्यन्तभेद एव स्याद्भेदाभेदयो-र्विरोधादनुपपत्तेरिति दूषयति—न शब्दमात्रत्वादिति। इदमुपलक्षणम्। ज्ञानस्याभावाव्यतिरेकेण

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि अभाव भी ज्ञेयस्वरूप माना गया है। वैनाशिकों ने भी अभाव को ज्ञेय तथा नित्य स्वीकार किया है; यदि ऐसे ज्ञेय से ज्ञान को अभिन्न माना जाय तो उनके मत में भी वह ज्ञान नित्य मानना पड़ेगा। फिर तो उस ज्ञान का अभाव ज्ञानस्वरूप होने के कारण उसमें अभावत्व कहने मात्र के लिये है, वास्तव में ज्ञान का अभावत्व और अनित्यत्व सिद्ध नहीं होता है। नित्य ज्ञान का केवल नाम अभाव रख लिया जाय तो ऐसे नाममात्र के अध्यारोप से हमारा कुछ बिगड़ता नहीं है।

---

१. तदभावस्येति—घटादिज्ञेयाभिन्नस्य ज्ञानस्याभावस्येत्यर्थः। सुषुप्तौ घटादीनामभावस्येति यावत्। यद्वा तस्य वैनाशिकस्य (मते) अभावस्तदभावस्तस्येत्यर्थः। २. किंचिदिति—ज्ञानस्य वास्तवं नित्यत्वं सत्त्वं चेत्यर्थः। शब्दमात्रत्वे हेतुमाह—विशेषानुपपत्तेरिति। ज्ञेयज्ञानयोरिति भावः। ४. अभावज्ञानाभावासिद्धेरिति—नन्विदमयुक्तमभावस्य ज्ञानभिन्नत्वेनैव तदभावे ज्ञानाभावस्येव तत्सत्त्वे ज्ञानसत्त्वस्यापि वक्तुमशक्यत्वादित्या-शङ्कयाऽऽह—तस्याभिन्नत्वाभावादिति। अभावस्य ज्ञानभिन्नत्वेन ज्ञेयत्वाज्ज्ञेयसत्त्वे च ज्ञानावश्यंभाव-नियमादिति भावः। ५. विशेषहेत्वभावादिति—अभावस्यैव ज्ञानभिन्नत्वे विनिगमनाविरहादित्यर्थः। न चाभावत्वमेवोपाधिरिति शक्यं वक्तुं पक्षेतरत्वतुल्यत्वात्। ६. अन्यथेति—ज्ञेयस्य ज्ञानाद्भेदे सतीत्यर्थः। ७. ननु ज्ञेये ज्ञानभेदज्ञाने च ज्ञेयाभेद इत्येवं भेदाभेदावेवोभयोरासातामत्यन्तभेदस्तु कुतस्त्य इत्याशङ्कय हेतुमाह—भेदाभेदयोर्विरोधादनुपपत्तेरिति। ज्ञेयाभिन्नज्ञानभेदस्य ज्ञेयेऽभ्युपगमे एकत्र ज्ञेये ज्ञेयभेदाभेदौ विरुद्धौ प्रसक्तौ नोपपद्येते इति तयोरत्यन्तभेद एव स्यादिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञेयज्ञानयोरेकत्वं चेदभ्युपगम्यते ज्ञेयं ज्ञानव्यतिरिक्तं ज्ञानं ज्ञेयव्यतिरिक्तं नेति तु शब्दमात्रमेतद्वह्निरग्निव्यतिरिक्तोऽग्निर्न वह्निव्यतिरिक्त इति यद्वदभ्युपगम्यते, ज्ञेयव्यतिरेके तु ज्ञानस्य ज्ञेयाभावे ज्ञानाभावानुपपत्तिः सिद्धा।

ज्ञेयाभावेऽदर्शनादभावो ज्ञानस्येति चेन्न। सुषुप्ते ज्ञप्त्यभ्युपगमात्। वैनाशिकैरभ्युपगम्यते हि सुषुप्तेऽपि ज्ञानास्तित्वं, तत्रापि ज्ञेयत्वमभ्युपगम्यते ज्ञानस्य स्वेनैवेति चेन्न। भेदस्य सिद्धत्वात्। सिद्धं ह्यभाव'विज्ञेयविषयस्य ज्ञानस्याभावज्ञेयव्यतिरेकाज्ज्ञेयज्ञानयोरन्य-

---

नित्यत्वादिकं च स्यादेवेत्यपि द्रष्टव्यम्। यद्येतद्दोषपरिहाराय तस्यापि भेद एवाङ्गी क्रियते तर्हि न सुषुप्तौ ज्ञानाभावसिद्धिरित्युपसंहरति—ज्ञेयव्यतिरेके त्विति।

सुषुप्ते ज्ञानस्यादर्शनादेवाभाव इत्याद्ये द्वितीयं शङ्कते—ज्ञेयाभाव इति। आलयविज्ञानसंततेर्नित्यत्वाङ्गीकारेण त्वया तदाऽपि तदभावो वक्तुं न शक्यत इत्याह—न सुषुप्त इति। अस्तित्वमिति। तथाच ज्ञानस्यादर्शनमसिद्धं सुषुप्तेऽपि तदङ्गीकारादित्यर्थः। ननु ज्ञेयाभावेन तन्निरूप्यस्य ज्ञानस्यादर्शनमित्युच्यते मया सुषुप्ते च स्वस्यव स्वज्ञेयत्वाज्ज्ञानदर्शनमुपपद्यतेऽस्मन्मते। त्वन्मते तु स्वज्ञेयत्वानङ्गीकारात्सुषुप्ते चान्यस्याभावान्निरूपकाभावान्न ज्ञानदर्शनास्तित्वमुपपद्यत इति शङ्कते—तत्रापीति। अभावस्थले ज्ञानज्ञेययोर्भेदस्य साधितत्वात्तद्दृष्टान्तेन सर्वत्र ज्ञानज्ञेययो'र्भेदसाधनान्न स्वज्ञेयत्वं ज्ञानस्येत्याह—न भेदस्येति। अभावरूपो [वि]ज्ञेयो विषयो यस्य तस्य ज्ञानस्या-

---

मध्यस्थ :—यदि ज्ञेयरूप होने पर भी अभाव ज्ञान से भिन्न माना जाय तो ?

सिद्धान्ती :—तब तो ज्ञेय का अभाव होने पर ज्ञान का अभाव नहीं कह सकते।

मध्यस्थ :—यदि ज्ञान से भिन्न ज्ञेय को माना जाय, ज्ञेय से भिन्न ज्ञान को न माना जाय तो ?

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा कहने से शब्दमात्र का भेद प्रतीत होता है, वस्तु में कोई विशेषता नहीं। यदि ज्ञान और ज्ञेय की अभिन्नता मानते हो तो ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है पर ज्ञान ज्ञेय से भिन्न नहीं है, ऐसा कहना इसी प्रकार केवल शब्दमात्र है। जैसा वह्नि अग्नि से भिन्न है किन्तु अग्नि वह्नि से भिन्न नहीं। अतः यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान, ज्ञेय से भिन्न होने के कारण ज्ञेय के अभाव होने पर भी ज्ञान के अभाव की सिद्धि नहीं हो सकती।

मध्यस्थ :—यदि ज्ञेय के अभाव हो जाने पर उसकी प्रतीति न होने के कारण ज्ञान का भी अभाव मान लिया जाय तो;

सिद्धान्ती :—ऐसा मानना भी ठीक नहीं क्योंकि सुषुप्ति में भी आलय विज्ञानरूप ज्ञप्ति का अस्तित्व वैनाशिकों ने स्वीकार किया ही है।

मध्यस्थ :—यदि उस सुषुप्तावस्था में ज्ञानगत ज्ञेयत्व स्वयं ज्ञान से ही जाना जाता है, ऐसा कहें तो;

---

१. न तु ज्ञान ज्ञेयव्यतिरिक्तमित्यस्य पर्यवसितार्थमादाय सूत्रं व्याचष्टे—ज्ञेयज्ञानयोरेकत्वं चेदभ्युपगम्यत इत्यादिना। २. ज्ञानाभावयोदन्यत्वेऽपि ज्ञेयज्ञानयोस्तु कुतस्तदिति मा प्रत्यवस्थितवैनाशिक इति तदभ्युपगतमेव स्मारयन्नभावं विशिनष्टि—विज्ञेयेति। ३. भेदसाधनादिति—सुषुप्तावपि मज्ज्ञेयं भावात्मकमिति तज्ज्ञानाद्भेत्तुमर्हति ज्ञेयत्वादभाववदिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection: Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्वम् ।

न हि तत्सिद्धं 'मृतमिवोज्जीवयितुं पुनरन्यथा कर्तुं शक्यते वैनाशिकशतैरपि ज्ञानस्य ज्ञेयत्वमेवेति तदप्यन्येन तदप्यन्येनेति त्वत्पक्षेऽतिप्रसङ्ग इति चेन्न । तद्विभागोपपत्तेः सर्वस्य । यदा हि सर्वं ज्ञेयं कस्यचित्तदा तद्व्यतिरिक्तं ज्ञानं ज्ञानमेवेति द्वितीयो

भावरूपो यो ज्ञेयस्तद्व्यतिरेकादित्यर्थः ।

'अभावस्थले भेदेऽपि न सर्वत्रेत्याशङ्क्य 'न्यायस्य तुल्यत्वान्न 'तदन्यथा कर्तुं शक्यमित्याह— न हीति । 'ज्ञानस्य स्वव्यतिरिक्तज्ञेयत्वनियमपक्षेऽनवस्थां वैनाशिकः शङ्कते—'ज्ञानस्येति । ज्ञेयस्य स्वव्यतिरिक्तज्ञेयत्वनियमाङ्गीकारादस्मन्मते च ज्ञानस्य ज्ञेयत्वानङ्गीकारान्न दोष इत्याह—न तदिति । सवस्य वस्तुजातस्य विभागोऽसंकरो ज्ञानं ज्ञानमेव न ज्ञेयं ज्ञेयमपि ज्ञेयमेव न कदाचिदपि ज्ञानमित्येवंरूपस्तस्योपपत्तेरित्यर्थः । अथवा द्विभागोपपत्तेरिति च्छेदः । ज्ञानज्ञेयरूपभागद्वयमेव राशिद्वयमेवाङ्गीक्रियते न तृतीयो ज्ञानविषयकज्ञानरूपो 'भावराशिरङ्गीक्रियत इत्यर्थः । ता(१०त)मेवाऽऽह—यदा हीति । यस्मिन्पक्षे ज्ञेयं सर्वं स्वव्यतिरिक्तस्य कस्यचिज्ज्ञानस्य ज्ञेयमित्यङ्गीक्रियत इति

सिद्धान्ती :—यह भी ठीक नहीं क्योंकि उन ज्ञान और ज्ञेय का भेद सिद्ध हो चुका है। अभावरूप विज्ञेय विषय का ज्ञान अभावरूप नहीं है किन्तु उस ज्ञेय से भिन्न होने के कारण ज्ञेय और ज्ञान का भेद पहले सिद्ध हो चुका है. उस सिद्ध हुये अर्थ को मृतक को पुनर्जीविन करने के समान सैकड़ों वैनाशिक भी अन्यथा कर नहीं सकते ।

पूर्वपक्ष :—यदि ज्ञान में ज्ञेयत्व किसी अन्य ज्ञान का माने तो दूसरा ज्ञान भी किसी अन्य ज्ञान का ज्ञेय होगा और वह तीसरा किसी अन्य ज्ञान का ज्ञेय होगा । इस प्रकार मानने से अनवस्था दोष होने लग जायगा (अतः ज्ञानगत ज्ञेयत्व स्व का ही है. अन्य का नहीं) ।

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण वस्तुओं का ज्ञान और ज्ञेयरूप से विभाग करना सम्भव है । जब सभी ज्ञेय वस्तु किसी एक से जानी जाती हैं, तो उन ज्ञेय विषय से उनका प्रकाशक ज्ञान भिन्न ही रहता है और वह ज्ञानस्वरूप ही रहेगा, ज्ञेय नहीं हो सकता । ऐसा दूसरा ही विभाग क्षणिक विज्ञानवादियों से भिन्न लोगों ने माना है । इस ज्ञान और ज्ञेयरूप में विभक्त

१. मृतमिवेति—मृतं यथा न पुनरुज्जीवयितुं शक्यं तथा सकृत्सिद्धं ज्ञानज्ञेययोरन्यत्वं न पुनरन्यथा कर्तुं शक्यत इत्यन्वयः । २. अतिप्रसङ्गोऽनवस्थारूपानिष्टप्रसङ्ग इत्यर्थः । ३. न तदिति—तद् अनवस्थात्मकमनिष्टं नेत्यर्थः । तत्र हेतुर्विभागोपपत्तेरिति । ४. उक्तानुमानेऽभावत्वमुपाधिरित्याशयेन शङ्कते—अभावेति । ५. न्यायस्येति—ज्ञेयत्वरूपहेतोरित्ि यावत । पक्षेतरत्वरूपत्वच्चाभावत्वं नोपाधिर्भवितुमर्हतीति भावः । ६. तदन्यत्वम् । ७ ज्ञानज्ञेययोर्भेदोक्ति सिद्धान्तिनोऽन्यथैव पर्यवसाय्याह—ज्ञानस्येत्यादि । ८. ज्ञानस्येतीति—अत्र तदप्यन्येनेतीत्येव प्रतीकोपादानं युक्तं पश्यामः । ज्ञानस्य ज्ञेयत्वमेवेतीति तु पूर्वत्रैवान्वेतुं युज्यत इतीत्यवधेयम् । यथास्थितास्थायां तु भाष्ये ज्ञेयत्वमित्यस्य स्वव्यतिरिक्तज्ञेयत्वमित्यर्थः । स्वीकरणीय इत्यलम् । ९. भावराशिरिति—अत्र भागो राशिरिति पाठं सम्यञ्चं प्रतिपद्ये यथाश्रुतस्यास्वारसिकत्वप्रतीतेः । तथा च ज्ञानत्वमेको भागो ज्ञेयत्वं द्वितीयो भाग इति भागद्वयमेव मन्यते ज्ञानविषयकज्ञानोपगमे तु ज्ञानत्वे सति ज्ञेयत्वरूपस्तृतीयोऽपि भागः स्यात् । सोऽस्माभिर्नोपगम्यत इत्यर्थः । १०. तमेवेति—यथोक्तविभागमेवेत्यर्थः । तामेवेति पाठे तु विभागोपपत्तिमेवेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विभाग एवाभ्युपगम्यतेऽवैनाशिकैर्न तृतीयस्तद्विषय इत्यनवस्थानुपपत्तिः।

ज्ञानस्य स्वेनैवाविज्ञेयत्वे सर्वज्ञत्वहानिरिति चेत्सोऽपि दोषस्तस्यैवास्तु किं तन्निर्वहणेनास्माकमनवस्थादोषश्च ज्ञानस्य ज्ञेयत्वाभ्युपगमादवश्यं च वैनाशिकानां ज्ञानं ज्ञेयम्।

स्वात्मना चाविज्ञेयत्वेनानवस्थाऽनिवार्या। समान एवायं दोष इति चेन्न। ज्ञान-

---

ज्ञेयपदावृत्त्या स्वव्यतिरिक्तस्येतिपदाध्याहारेण च यदा हीति वाक्यं योज्यम्। अवैनाशिकैरिति च्छेदः। तद्विषय इति। ज्ञानविषयकज्ञानात्मक इत्यर्थः।

तर्हि स्वत्पक्षे ज्ञानात्मकस्य ब्रह्मणः सर्वज्ञत्वं न स्यात्स्वेन स्वस्याज्ञानादिति शङ्कते—ज्ञानस्येति। ज्ञातुं योग्यस्य सर्वस्याज्ञाने हि सर्वज्ञत्वहानिः, अन्यथा शशविषाणादेरज्ञानात्सर्वज्ञत्वं कस्यापि मते न स्यादतो नास्मन्मते तस्य दोषस्य प्राप्तिः किंतु वैनाशिकस्यैव, तेन ज्ञानस्यावश्यज्ञेयत्वाङ्गीकारात्स्वेन स्वस्य ज्ञेयत्वस्य सिद्धं हीति पूर्वग्रन्थे दूषितत्वाद[1]न्यज्ञेयत्वस्य चानङ्गीकारात्सर्वज्ञत्वायोगादित्याह—सोऽपीति। तर्हि त्व मते कथं सर्वज्ञत्वनिर्वाह इत्याशङ्क्यास्मन्मते [2]तस्य [3]मायिकत्वेन तदनिर्वाहेऽपि न दोष इत्याह—किं तदिति। वस्तुतस्तु सर्वव्यवहारहेतुज्ञानत्वं सर्वज्ञत्वं तत्तु ज्ञानस्यापि स्वप्रकाशत्वेन स्वव्यवहारहेतुत्वादस्ति ज्ञातुं योग्य[4]सर्वज्ञानाद्वा तदस्तीति भावः। पूर्वोक्तानवस्थादोषोऽपि तस्यैवेत्याह—अनवस्थेति।

ननु तेन स्वेनैव ज्ञेयत्वाङ्गीकाराम्नानवस्थेत्यत आह—स्वात्मना चेति। सिद्धं हीत्यत्र स्वज्ञेयत्वासंभवस्योक्तत्वात्परिशेषादन्यज्ञेयत्वे तस्य तस्याप्येवमित्यनवस्थाऽनिवार्येत्यर्थः। ज्ञानस्याज्ञेयत्वे तद्व्यवहारासिद्धिर्ज्ञानान्तरज्ञेयत्वे चानवस्था तवापि स्यादिति शङ्कते—समान एवेति। स्वप्रकाशत्वेन स्वव्यवहारसिद्धेर्ज्ञानभेदस्यैवास्माभिरनङ्गीकारादनवस्थायाः प्रसक्तिरेव नास्तीति

वस्तु से भिन्न तीसरा विभाग नहीं माना गया है। अतः उनके मत में अनवस्था का प्रसंग नहीं आ सकता।

पूर्वपक्ष :—यदि ज्ञान अपने से ही न जाना जाय तो उस ज्ञान के सर्वज्ञत्व की हानि होने लग जायगी।

सिद्धान्ती :—यह दोष भी उन वैनाशिकों के पक्ष में ही आयेगा, हमें उस दोष को हटाने की क्या आवश्यकता है क्योंकि ज्ञान में अवश्य ज्ञेयत्व मानने पर ही अनवस्था दोष आता है। वैनाशिकों ने ज्ञान को भी अवश्य ज्ञेय माना ही है। अतः वह ज्ञान अपने आपका ज्ञेय न हो सकने के कारण उनकी अनवस्था अनिवार्य ही है।

पूर्वपक्ष :—(यदि ज्ञान में अवश्य ज्ञेयत्व न माना जाय तो उसके व्यवहार की सिद्धि न हो सकेगी। अतः उसमें व्यवहार सिद्धि के लिये उस ज्ञान से भिन्न ज्ञान का ज्ञेयत्व आपको भी मानना ही पड़ेगा फिर तो) यह दोष आपके पक्ष में भी समान ही रह जाता है।

---

१. अन्यज्ञेयत्वस्येति—ज्ञानादन्येन ज्ञानज्ञेयत्वस्येत्यर्थः। तथा च तन्मते ज्ञानादन्यस्य ज्ञानेऽपि ज्ञानस्य ज्ञानासंभवान्न सर्वविषयं ज्ञानमिति न सर्वज्ञत्वमित्यर्थः। २. तस्य—सर्वज्ञत्वस्य। ३. मायिकत्वेनेति—तथा चानुपपद्यमानत्वेऽपि भासमानत्वं भूषणमेव मायिकस्य न तु दूषणमिति भावः। ४. सर्वज्ञानादिति—अत्र सर्वज्ञानत्वादिति युज्यते ज्ञानस्यापीत्यस्यैवात्रापि सम्बन्धौचित्यादिति ध्येयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्यैकत्वोपपत्तेः। सर्वदेशकालपुरुषाद्य[1]वस्थमेकमेव ज्ञानं नामरूपाद्यनेकोपाधिभेदात्सवित्रादिजलादिप्रतिबिम्बवदनेकधाऽवभासत इति। नासौ दोषः। तथा चेहेदमुच्यते।

ननु श्रुतेरिहैवान्तःशरीरे परिच्छिन्नः कुण्डबदरवत्पुरुष इति, न। प्राणादिकलाकारणत्वात्। [2]न हि शरीरमात्रपरिच्छिन्नस्य प्राणश्रद्धादीनां कलानां कारणत्वं प्रतिपत्तुं शक्नुयात्। कलाकार्यत्वाच्च शरीरस्य। न हि पुरुषकार्याणां कलानां कार्यं सच्छरीरं कारणकारणं स्वस्य पुरुषं कुण्डं बदरमिवाभ्यन्तरी कुर्यात्, [3]बीजादिवत्स्यादिति चेत्।

परिहरति—न ज्ञानस्येति। एकत्वपक्षे भेदप्रतीतिमुपपादयति—नामरूपेति। [4]एवं च चैतन्यस्यैकत्वेन नित्यत्वाज्जगद्भिन्नत्वेन तस्य सत्यत्वाच्चाधिष्ठानत्वोपपत्तेस्तस्मिन्कलानामध्यारोप आत्मप्रतिपत्त्यर्थमिहोच्यत इत्याह—तथा चेहेति। चैतन्यस्य नित्यत्वेनाधिष्ठानत्वे सतीह श्रुताविदं कलानामध्यारोपणमुच्यत इत्यर्थः।

ननु चैतन्यस्य न नित्यत्वं परिच्छेदश्रुतेः परिच्छिन्नस्य च घटादिवदनित्यत्वादिति शङ्कते—नन्विति। शरीरान्तःस्थत्वं [5]प्रत्यक्त्वविवक्षयोच्यते न परिच्छेदविवक्षया तथा सत्यु[6]त्तरवाक्यविरोधादित्याह—नेति। अयोग्यत्वादपि सोऽर्थो न विवक्षित इत्याह—कलेति। स्वोत्पत्तेः पूर्वं स्वस्याभावात्तत्कालीनपुरुषं परिच्छेत्तुं न शक्नोतीत्यर्थः। बीजकार्यस्य वृक्षस्य कार्यं फलं स्वकारणवृक्षकारणं बीजमभ्यन्तरी करोतीति दृष्टमिति नायोग्यत्वमिति शङ्कते—बीजादिवदिति।

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान में एकत्व सिद्ध हो जाने के कारण हमारे मत में कोई दोष नहीं है। जैसे जलादि में प्रतिबिम्बित एक ही सूर्य अनेक रूप में भासता है, वैसे ही सम्पूर्ण देश, काल और पुरुष आदि अवस्थाओं में अवस्थित एक ही ज्ञान नाम-रूपादि अनेक उपाधियों के भेद से अनेक प्रकार से भासित होता है। अतः हमारे मत में उपर्युक्त दोष नहीं है। इसीलिये यहाँ पर यह कलाओं की उत्पत्ति की बात कही गयी है।

पूर्वपक्ष :—किन्तु इस श्रुति के अनुसार तो पुरुष कुण्डे में रखे बेर के समान इस शरीर में ही परिच्छिन्न है।

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि पुरुष प्राणादि कलाओं का कारण है। शरीरमात्र से परिच्छिन्न पदार्थ को प्राण श्रद्धादि कलाओं के कारणरूप से नहीं जाना जा सकता है क्योंकि शरीर उन षोडश कलाओं का कार्य है। पुरुष का कार्य प्राणादि कलायें हैं और उन कलाओं का कार्य शरीर है, वह शरीर भला अपने कारण के भी कारण पुरुष को कुण्डे में रखे बेर की भाँति अपने भीतर नहीं कर सकता है।

---

१. अवस्थम्—अवच्छिन्नमिति यावत्। २. न हि शरीरमात्रेत्यादि। इन्द्रियेभ्यः परं मन इत्यादौ कार्यापेक्षया कारणस्य महत्त्वाद्यवधारणात्। शरीरमात्रपरिच्छिन्ने च प्राणादौ तत्त्वादर्शनादिति भावः। ३. बीजादिवदिति—लिखितपुस्तके त्वत्र बीजवदित्येव पाठः। ४. रज्जुसर्पादिभ्रमस्थले हि सर्पाद्यपेक्षयैकस्य नित्यस्य सत्यस्य च रज्ज्वादेरधिष्ठानत्वं दृष्टमित्याशयेनाह—एवं च चैतन्यस्येत्यादि। अनित्यं हि घटादिवन्नाना भवति। ५. प्रत्यक्त्वेति—प्रत्यक्त्वमान्तरत्वं तदप्यधिष्ठानत्वे पर्यवस्यतीति भावः। उपलब्ध्यपेक्षया चेत्यपि द्रष्टव्यम्। ६. उत्तरवाक्येति—यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति वाक्येत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथा बीजकार्यं वृक्षस्तत्कार्यं च फलं स्वकारणकारणं बीजमभ्यन्तरी करोत्याम्रादि तद्वत्पुरुषमभ्यन्तरी कुर्याच्छरीरं स्वकारणकारणमपीति चेन्न । अन्यत्वात्सावयवत्वाच्च । दृष्टान्ते कारणबीजाद्वृक्षफलसंवृतान्यन्यान्येव बीजानि दार्ष्टान्तिके तु स्वकारणकारणभूतः स एव पुरुषः शरीरेऽभ्यन्तरीकृतः श्रूयते ।

बीजवृक्षादीनां सावयवत्वाच्च स्यादाधाराधेयत्वं निरवयवश्च पुरुषः सावयवाश्च कलाः शरीरं च, एतेनाऽऽकाशस्यापि शरीराधारत्वमनुपपन्नं किमुताऽऽकाशकारणस्य

तद्विवृणोति—यथेति । दृष्टान्ते बीजव्यक्तिभेदादविरोधेऽपोह पुरुषव्यक्त्यैक्यात्कारणत्वाभ्यन्तरीभावयोर्विरोध इत्याह—नेति । ननु कारणीभूतबीजस्यैव वृक्षफलतदन्तर्गतबीजरूपेण परिणामात्तयोः[2] कारणकार्यबीजयोरैक्य[1]माशङ्क्यैवमपि तस्य सावयवत्वाद्वृक्षवत्फलाकारेण परिणतावयवेभ्यो भिन्नावयवानामेव तदन्तर्गतबीजरूपेण परिणामात्तयोर्भेदेनाऽऽधाराधेयभावः स्यादिह तु निरवयवत्वान्न तथात्वमित्याह—सावयवत्वाच्चेति । आद्यं हेतुं विवृणोति—दृष्टान्त इति । श्रूयत इति । यस्मिन्नेताः षोडश कला इति यच्छब्दोक्तस्यैव पुरुषस्यान्तःशरीरे सोम्य स पुरुष इति तच्छब्देनाभिधानादित्यर्थः ।

द्वितीयं हेतुं विवृणोति—बीजेति । निरवयवश्चेति । तथा चैकदेशेन कलादिरूपेण परिणाम एकदेशेन तत्रावस्थानं बीजवन्न संभवतीत्यर्थः । किंच कलानां सावयवत्वेन परिच्छेदात्पुरुषस्य तद्विपरीतत्वादपरिच्छिन्नस्य न परिच्छिन्नाधारकत्वं संभवतीत्याह—सावयवाश्चेति । यद्वा 'सावयवत्वेन कार्यतया मृषात्वान्निरवयवतया परमार्थसत्यपुरुषाधारत्वं नोपपद्यत इत्याह—सावयवाश्चेति[3] । नन्वाकाशकार्यशरीर आकाशस्यापरिच्छिन्नस्याभ्यन्तरीभावो दृष्ट इत्याशङ्क्य तस्यापि शरीराकारेणावस्थानमेव छिद्रादिविशिष्टस्यैव शरीरत्वान्न तु तदन्तःस्थत्वमित्याह—एतेनेति । युक्त्यसहमपि

पूर्वपक्ष :—जैसे बीज का कार्य वृक्ष है और उस वृक्ष का कार्य आम्रादि फल हैं, जो अपने कारण के कारण बीज को अपने भीतर कर लेता है, वैसे ही बीज वृक्ष के समान शरीर भी अपने कारण के कारण पुरुष को अपने भीतर कर लेगा, यदि ऐसा माना जाय तो ?

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना भी ठीक नहीं है (क्योंकि वृक्ष के कारणीभूत पूर्व बीज की अपेक्षा वृक्ष के फल में रहने वाला बीज) भिन्न है और सावयव है । दृष्टान्त में कारणरूप बीज से वृक्ष के फल में ढका हुआ बीज भिन्न ही है किन्तु दार्ष्टान्त में अपने कारण का कारणरूप वही पुरुष शरीर के भीतर हुआ सुना जाता है, इसके अतिरिक्त सावयव होने के कारण भी बीज वृक्षादि में परस्पर आधार-आधेयभाव हो सकता है किन्तु दार्ष्टान्त में पुरुष निरवयव है और प्राणादि कलायें तथा शरीर सावयव हैं। इस प्रकार शरीर आकाश का भी आधार सिद्ध नहीं हो सकता, फिर भला आकाश के कारण-

---

१. ऐक्यमित्यनन्तरमिति शब्दो द्रष्टव्यो ननुशब्दसाङ्गत्याय । २. तयोरिति फलबीजयोरित्यर्थः । ३. सावयवत्वे कार्यतया मृषात्वादिति—नन्वेवमकार्यत्वादविद्यादेरपि मृषात्वं न स्यात्सत्यत्वं च स्यादिति चेन्न अविद्यादेरनिर्वचनीयतया सावयवनिरवयववैलक्षण्येन कार्याकार्यवैलक्षण्यात् । मृषात्वं तु बोधनिवर्त्यत्वात् । तत्त्वं च भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरित्यादशास्त्रादित्यवधेयम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरुषस्य तस्मादसमानो दृष्टान्तः । किं दृष्टान्तेन वचनात्स्यादिति चेन्न । वचनस्याकारकत्वात् । न हि वचनं वस्तुनोऽन्यथाकरणे व्याप्रियते । किं तर्हि यथाभूतार्थावद्योतने । तस्मादन्तःशरीर इत्येतद्वचन[1]मण्डस्यान्तर्व्योमे[2]तिवच्च द्रष्टव्यम् । उपलब्धिनिमित्तत्वाच्च दर्शनश्रवणमननविज्ञानादिलिङ्गै रन्तःशरीरे परिच्छिन्न इव ह्युपलभ्यते पुरुष उपलभ्यते चात उच्यतेऽन्तःशरीरे सोम्य स पुरुष इति । न पुन[3]राकाशकारणः सन्कुण्डबदरवच्छरीरपरिच्छिन्न इति मनसाऽपीच्छति वक्तुं [4]मूढोऽपि किमुत प्रमाणभूता श्रुतिः ॥२॥

यस्मिन्नेता षोडश कलाः प्रभवन्ती[5]त्युक्तं [6]पुरुषविशेषणार्थं कलानां प्रभवः [7]स चान्यार्थोऽपि श्रुतः केन क्रमेण स्यादित्यत इदमुच्यते—

वचनप्रामाण्यादङ्गीकार्यमिति शङ्कते—किं दृष्टान्तेनेति । वचनस्यापि वस्तुनोऽन्यथाकरणे सामर्थ्याभावाद्वस्तुस्वरूपाविरोधेनैव बोधकत्वा[8]दन्यथा विचारवैयर्थ्याद्विरुद्धार्थो न बोधार्ह इत्याह—वचनस्येति । तर्ह्यन्तःशरीर इति श्रुतेः कथमुपपत्तिरित्याशङ्क्य पुरुषस्य शरीरोपादानत्वेन तदनुस्यूतस्य तदन्तर्गतवत्प्रतीतेस्तदभिप्रायेयं श्रुतिरिति सदृष्टान्तमाह—तस्मादिति । अण्डेति । अण्डकारणस्य व्योम्नो यथा तदनुस्यूतत्वेन तदन्तर्गतत्वप्रतीतिस्तद्वदित्यर्थः । यद्वा लोकभ्रमसिद्धं परिच्छिन्नत्वमनूद्यते श्रुत्येत्याह—उपलब्धीति । तत्राभिव्यक्तेर्वा तदन्तर्गतत्वव्यपदेश इत्याह—उपलभ्यते चेति ॥ २ ॥

ननु यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीत्यनेनाध्यारोपस्योक्तत्वात्स ईक्षामित्यादिना पुनः सृष्टिकथनमधिकमित्यत आह—यस्मिन्निति । अत इति । क्रमप्रतिपत्त्यर्थं स ईक्षामित्याद्युच्यत इत्यर्थः ।

स्वरूप पुरुष का आधार कैसे बन सकता है । अतः यह दृष्टान्त समान नहीं है, अपितु विषम है ।

मध्यस्थ :—दृष्टान्त से क्या लेना है, श्रुति वाक्य से तो उक्त बात सिद्ध हो ही जायगी ।

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि वचन कारक नहीं होता है । वचन किसी भी वस्तु को कुछ का कुछ बना देने में प्रवृत्त नहीं होता तो फिर क्या करता है ? वह वचन तो वस्तु को ज्यों के त्यों बतलाने में प्रवृत्त होता है । अतः "अन्तः शरीरे" इस वचन को "अण्डे के भीतर आकाश" इस कथन के समान ही जानना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त उपलब्धि का कारण होने से ही (पूर्वोक्त अभिप्राय मानना उचित है) देखना, सुनना, मनन करना और जानना आदि लिंगों से शरीर के भीतर पुरुष परिच्छिन्न-सा जान पड़ता है और इस शरीर मात्र में ही उसकी उपलब्धि भी होती है । इसीलिये ऐसा कहा गया है कि

---

१. अवच्छेदवादेन दृष्टान्तमाह—अण्डस्यान्तर्व्योमेतिवदिति । २. इतिवच्चेति—चकारः प्रतिबिम्बवादेन दर्पणस्यान्तर्मुखमिति दृष्टान्तसमुच्चयार्थः । ३. आकाशकारण इति । लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्येति शरणम् । ४. मूढोऽपीति—मौढ्यं हि सूक्ष्मार्थमवगाहते पर्वतस्य घटावेशं तु तदप्यतेतीति लौकिकमिति भावः । ५. इत्युक्तमिति—अत्र इत्युक्त इति साधीयान् पाठः यथा श्रुतस्तु तत्रेति शेषेण शक्यो योजयितुम् । ६. पुरुषविशेषणार्थमिति—अध्यारोपन्यायेन पुरुषबोधनार्थमिति यावत् । ७. स चान्यार्थोऽपीत्यादि—अध्यारोप्योक्तस्य अपवादार्थत्वेऽपि श्रुतत्वादेव क्रमेणापि भवितव्यमिति भावः । ८. अन्यथा विचारवैयर्थ्यादिति—यथाश्रुतवचनार्थस्यैव तथ्यत्वसम्भवे आदित्यो यूपो यजमानः प्रस्तर इत्येवमादिवचनानामर्थवादत्वनिर्णयाय विचारो न स्यादिति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ईक्षांचक्रे। कस्मिन्न्वहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥३॥

उस षोडश कला पुरुष ने ईक्षण (विचार) किया कि किस विशेष कर्ता के उत्क्रमण करने पर मैं भी शरीर से उत्क्रमण कर जाऊँगा। वैसे ही शरीर में किसके स्थित रहने पर मैं भी स्थित रहूँगा ॥ ३ ॥

चेतनपूर्विका च सृष्टिरित्येवमर्थं च पुरुषः षोडशकलः पृष्टो यो भारद्वाजेन स ईक्षांचक्र ईक्षणं दर्शनं चक्रे कृतवानित्यर्थः। सृष्टिफलक्रमादिविषयम्। कथमित्युच्यते, कस्मिन्कर्तृविशेषे देहादुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्याम्यहमेव(वं) कस्मिन्वा शरीरे प्रतिष्ठितेऽहं प्रतिष्ठास्यामि प्रतिष्ठितः स्यामित्यर्थः।

तत्प्रतिपत्तिश्च कलोत्पत्तिप्रतिपत्तिसौकर्यार्थं 'विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते चेति न्यायेन कार्यस्य स्वस्वकारणक्रमेणापवादसौकर्यार्थं चेत्यर्थः। ईक्षणोक्तेः प्रयोजनमाह—चेतनेति। सृष्टीति। सृष्टिः प्राणादेः सृष्टिः, तस्या उत्क्रान्त्यादि फलं, क्रमः प्राणाच्छ्रद्धामित्याद्युक्तानन्तर्यम्। आदिशब्देन लोकेषु च नाम चेत्याधाराधेयविशेषो गृह्यते।

हे प्रियदर्शन! वह पुरुष इस शरीर के भीतर है, नहीं तो आकाश का भी कारण होता हुआ वह पुरुष कुण्डे में बेर के समान शरीर से परिच्छिन्न है। ऐसा कोई मूर्ख मन से भी कहना नहीं चाहेगा; फिर प्राणभूत श्रुति की तो बात ही क्या है? ॥ २ ॥

ईक्षण पूर्वक जगत् की सृष्टि

"जिसमें तो सोलह कलाएं उत्पन्न होती हैं" यह बात पुरुष की विशेषता बतलाने के लिये पहले कही जा चुकी है। इस प्रकार पुरुष की विशेषतारूप अन्य अर्थ को बतलाने के लिये सुना गया उन कलाओं का प्रादुर्भाव किस क्रम से हुआ होगा और सृष्टि चेतन पूर्विका हुआ करती है। इस बात को बतलाने के लिये भी अब आगे का प्रसंग कहा जाता है।

जिसके विषय में भारद्वाज ने पूछा था उस सोलह कलाओं वाले पुरुष ने प्राणादि की उत्पत्ति, उसके उत्क्रमणादि और प्राण से श्रद्धा आदि क्रम के विषय में विचार किया। कैसे? इसे कहते हैं, किस कर्ता विशेष के शरीर से उत्क्रमण करने पर मैं भी उत्क्रमण कर जाऊँगा और इसी प्रकार शरीर में किसके प्रतिष्ठित होने पर मैं भी प्रतिष्ठित होऊँगा (बस इसी बात को निश्चित करने के लिये उसने विचार किया)।

---

१. विपर्ययेणेत्यादि—ब्र. सू. २।३।१४। तदर्थः—अतः उत्पत्तिक्रमात् विपरीतक्रमेणैव लयक्रमः स्वकारणे कार्याणां लयदर्शनात्। उपपद्यते च व्युत्पत्तिक्रमेणैव लयक्रमः। इतरथा सति कार्ये कारणस्य नाशः स्यात्। स चानिष्ट इति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नन्वात्माऽकर्ता प्रधानं कर्तृ, अतः पुरुषार्थं प्रयोजनमुररीकृत्य प्रधानं प्रवर्तते महदाद्याकारेण तत्रेदमनुपपन्नं पुरुषस्य स्वातन्त्र्येणेक्षापूर्वकं कर्तृत्ववचनं सत्त्वादिगुणसाम्ये प्रधाने [1]प्रमाणोपपन्ने सृष्टिकर्तरि सतीश्वरेच्छानुवर्तिषु वा परमाणुषु सत्स्वात्मनोऽप्येकत्वेन कर्तृत्वे साधनाभावादात्मन आत्मन्यनर्थकर्तृत्वानुपपत्तेश्च। न हि चेतनावान्बुद्धिपूर्वकार्यात्मनोऽनर्थं कुर्यात्।

तस्मात्पुरुषार्थेन प्रयोजनेनेक्षापूर्वकमिव नियतक्रमेण प्रवर्तमानेऽचेतने प्रधाने चेतन-

---

नन्वीक्षणोक्त्या न चेतनपूर्वकत्वसिद्धिर्न्यायेन चेतनस्याकर्तृत्वेनाहेतुत्वेऽचेतनस्य प्रधानादेर्विक्रियावत्त्वेन हेतुत्वे च सतीक्षणस्यान्यथा नेयत्वादिति सांख्याः शङ्कन्ते—नन्वात्मेति। अकर्तेत्यस्य तत्रेदमित्यनेनान्वयः। आत्माऽकर्ता तत्र तथा सतीदं कर्तृत्ववचनमुपपन्नमित्यर्थः। किंच तस्य कर्तृत्वाङ्गीकारेऽपि कर्तुः कुलालादेरिव सहकारिसाधनान्तराभावादात्मनो दुःखाद्यनर्थहेतुप्राणादिसंसारकर्तृत्वानुपपत्तेश्चानुपपन्नं स्रष्टृत्ववचनमित्याह—आत्मनोऽपीति। कर्तृत्वेऽपीत्यपिशब्दान्वयः। तर्हि किं कत्रॆत आह—प्रधानमिति। कर्त्रिति। क्रियाशक्तिमदतः प्रवर्तत इत्यन्वयः। ननु प्रधानस्याचेतनस्य प्रयोजनापेक्षाभावात्प्रवृत्त्यनुपपत्तिरित्यत आह—पुरुषार्थमिति। पुरुषस्य चेतनस्य भोगापवर्गरूपमर्थं प्रयोजनमुद्दिश्य प्रवर्तते वत्सविवृद्ध्यर्थमचेतनस्य धेनुदेहगतक्षीरस्य सस्यादिविवृद्ध्यर्थमम्बुनश्चाचेतनस्य प्रवृत्तिदर्शनादित्यर्थः। ननु प्रधानस्याप्येकत्वेन सहकार्यभावात्कारणत्वानुपपत्तावगत्या चेतनस्यैव कथंचित्कर्तृत्वं वाच्यमित्यत आह—सत्त्वादीति। सत्त्वादिगुणत्रयस्य साम्यावस्था प्रधानमिति सांख्यमतम्। तत्र सत्त्वादिगुणै[2]रनेकात्मके प्रधाने कारणे सति पुरुषस्य कर्तृत्ववचनमगतेरभावादनुपपन्नमित्यन्वयः। यदि चेतनानधिष्ठितस्याचेतनस्य प्रवृत्तिर्न दृष्टेति मन्यसे तर्हि परमाणुकारणवादोऽस्तु तत्रेश्वरस्याधिष्ठातुः सत्त्वादित्याह—ईश्वरेच्छेति। अत्रापि सत्स्वित्यस्यानुपपन्नमिति पूर्वेणान्वयः।

तर्हीक्षणश्रवणस्य का गतिरत आह—तस्मादिति। पुरुषार्थेनेति। पुरुषस्य भोगापवर्गार्थेनेत्यर्थः। मुख्य ईक्षितरि विद्यमानेन नियतक्रमेण प्रवर्तमानत्वेन गुणेन योगादैक्षतेति गौणः प्रयोगो माणवके

पूर्वपक्ष :—सांख्यवादी ने कहा कि आत्मा अकर्ता है और प्रधान कर्ता है। अतः पुरुष के भोग और मोक्षरूप उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये महदादि रूप से प्रधान प्रवृत्त होता है इस प्रकार सत्त्वादि गुणों के साम्यावस्थारूप प्रधान ही सृष्टि करता है, यह प्रमाण से सिद्ध हुआ तथा नैयायिकों के मतानुसार ईश्वर की इच्छानुकूल प्रवृत्ति करने वाले परमाणुओं को जगत् कारण रूप से रहते हुये भी केवल एक आत्मा में कर्तृत्व मानने में कोई हेतु नहीं है और उस आत्मा का अपने लिये अनर्थकारक जगत् सृष्टि रचना सिद्ध न हो सकने के कारण असंगत है क्योंकि बुद्धि पूर्वक कर्म करने वाला कोई भी चेतना युक्त पुरुष अपना अनर्थ नहीं कर सकेगा। अतः पुरुष के प्रयोजन के लिये मानो ईक्षा पूर्वक नियमित क्रम से प्रवृत्त हुये अचेतन प्रधान में ही चेतन की भाँति "उसने विचार किया" इत्यादि प्रयोग औपचारिक समझना चाहिये। जैसे राजा के सम्पूर्ण कार्यों को सम्पादन करने वाले

---

१. प्रमाणोपपन्न इति—अजामेकामित्यादि हि प्रमाणं तत्रेति भावः। २. अनेकात्मके—सावयवे इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वदुपचारोऽयं स ईक्षांचक्र इत्यादिः । यथा राज्ञः सर्वार्थकारिणि भृत्ये राजेति तद्वत् । न, आत्मनो भोक्तृत्ववत्कर्तृत्वोपपत्तेः । यथा सांख्यस्य चिन्मात्रस्यापरिणामिनोऽप्यात्मनो भोक्तृत्वं तद्वद्वेदवादिनामीक्षादिपूर्वकं जगत्कर्तृत्वमुपपन्नं श्रुतिप्रामाण्यात् ।

'तत्त्वान्तरपरिणाम आत्मनोऽनित्यत्वाशुद्धत्वानेकत्व'निमित्तो न चिन्मात्रस्वरूपविक्रियाऽतः पुरुषस्य 'स्वात्मन्येव भोक्तृत्वे चिन्मात्रस्वरूपविक्रिया न दोषाय । भवतां पुनर्वेदवादिनां सृष्टिकर्तृत्वे तत्त्वान्तरपरिणाम एवेत्यात्मनोऽनित्यत्वादिसर्वदोषप्रसङ्ग

पैङ्गल्यगुणयोगेनाग्निशब्दप्रयोगवदित्यर्थः । नन्वेवमपीक्षितरि प्रधाने पुरुषशब्दः कथमत आह—यथा राज्ञ इति । तद्वदिति । पुरुषस्य भोगापवर्गकारिणि प्रधाने पुरुषशब्द औपचारिक इत्यर्थः । स्वतोऽकर्तुरप्यात्मनो मायोपाधिककर्तृत्वं संभवतीति हृदि निधाय प्रथममापाततः प्रतिबन्द्या परिहरति—नेति । बुद्धिः कर्त्री भोक्ता पुरुष इति वदद्भिः सांख्यैरात्मनो भोक्तृत्वमुक्तमित्यर्थः । श्रुतिप्रामाण्यादिति । श्रुत्युक्तजगत्कर्तृत्वमविकारिणोऽपि कथंचिन्निर्वाह्यमित्यर्थः ।

सांख्यः प्रतिबन्दिपरिहारं शङ्कते—तत्त्वान्तरेति । भोगो नाम सुखदुःखानुभवः । स च पुरुषस्य स्वरूपभूत इति न तत्त्वान्तरापत्तिलक्षणपरिणाम इत्यर्थः । परिणामो हि पूर्वरूपपरित्यागेन रूपान्तरापत्तिः । सा च सजातीयरूपान्तरापत्तौ विजातीयरूपान्तरापत्तौ वाऽनित्यत्वादिकमावहेदेवेति 'भोज्या-

---

सेवक को भी राजा कह दिया जाता है। ठीक वैसे ही पुरुष के सर्वार्थकारी प्रधान में उक्त प्रयोग समझना उचित ही है।

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि भोक्तृत्व की भाँति आत्मा में कर्तृत्व मानना भी सम्भव है। जैसे सांख्यों ने चिन्मात्र अपरिणामी आत्मा में भोक्तृत्व माना है, वैसे ही श्रुति प्रमाण के आधार पर वेदवादियों के मत में ईक्षण पूर्वक जगत् कर्तृत्व भी आत्मा में बन सकता है।

पूर्वपक्ष :—आत्मा में अनित्यत्व, अशुद्धत्व और अनेकत्व का निमित्त आत्मा का तत्त्वान्तर परिणाम ही है, चिन्मात्र स्वरूप आत्मा में उक्त विकार नहीं माना गया है। अतः पुरुष का भोक्तृत्व आत्मस्वरूप में ही है। ऐसा भोक्तृत्व मान लेने पर चिन्मात्र स्वरूप विक्रिया किसी दोष का कारण नहीं बनती किन्तु आप वेदवादियों के मतानुसार पुरुष में 'सृष्टि कर्तृत्व मानने पर उसका तत्त्वान्तर परिणाम ही मानना पड़ेगा और ऐसा मानने पर आत्मा में उपर्युक्त अनित्यत्वादि सभी दोषों का प्रसंग आ ही जायगा।

सिद्धान्ती :—ऐसी बात नहीं है क्योंकि एक आत्मा में भी अविद्या के कारण नाम-रूप उपाधि और उसके अभाव में उपाधि के न रहने से विशेषता मानी गयी है अर्थात् बन्ध-मोक्षादि शास्त्र व्यवहार के लिये ही आत्मा में अविद्याकृत नामरूप उपाधिमूलक भेद माना गया है। परमार्थ दृष्टि से

---

१. तत्त्वान्तरेत्यादि—विजातीयवस्त्वन्तरात्मना परिणाम इत्यर्थः । २. अनित्यत्वेत्यादि—अनित्यत्वं विनाशित्वम् । अशुद्धत्वमैकरस्याभावः । अनेकत्वं सावयवत्वमिति यावत् । ३. निमित्त इति—पुंस्त्वं परिणामशब्दसांनिध्यादित्यवधेयम् । सांनिध्यं समानाधिकरणत्वम् । ४. स्वात्मन्येवेत्यादि—स्वरूपभूते भोक्तृत्वे सति स्वीकृते स्वरूपाभिन्नैव विक्रिया न दोषावहेत्यर्थः । ५. भोज्येत्यादि—भोज्यानां बुद्धयादीनामात्मतोऽविवेकः तादात्म्यभ्रमः तदुपाधिकमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति चेन्न । एकस्याप्यात्मनोऽविद्याकृतनामरूपोपाध्यनुपाधिकृतविशेषाभ्युपगमादविद्याकृतनामरूपोपाधिकृतो हि [1]विशेषोऽभ्युपगम्यत आत्मनो बन्धमोक्षादिशास्त्रकृतसंव्यवहाराय परमार्थतोऽनुपाधिकृतं च तत्त्वमेकमेवाद्वितीयमुपादेयं [2]सर्वतार्किकबुद्ध्यनवगाह्यमभयं शिवमिष्यते न तत्र कर्तृत्वं भोक्तृत्वं वा क्रियाकारकफलं च स्या[3]दद्वैतत्वात्सर्वभावानाम् । सांख्यास्त्वविद्याध्यारोपितमेव पुरुषे कर्तृत्वं क्रियाकारकं फलं चेति कल्पयित्वाऽऽगमबाह्यत्वात्पुनस्ततस्त्रस्यन्तः परमार्थत एव भोक्तृत्वं पुरुषस्येच्छन्ति तत्त्वान्तरं च प्रधानं पुरुषात्परमार्थवस्तुभूतमेव कल्पयन्तोऽन्यतार्किककृतबुद्धिविषयाः सन्तो विहन्यन्ते ।

विवेकोपाधिकं भोक्तृत्वमङ्गीकर्तव्यं [4]तेन [5]तदात्मककर्तृत्वेऽपि तुल्यमित्यभिप्रेत्य मुख्यपरिहारमाह—नेति । एकस्य वस्तुतोऽसहायस्याकर्तुराप्तकामस्यापीत्यपेरर्थः । उपाधिकृतकर्तृत्वसंभवादविद्यारूपसहायस्य संभवा[6]द्भ्रान्त्या स्वस्माद्भिन्नजीवानामनाप्तकामानां संभवात्तत्पुरुषार्थार्थं स्रष्टृत्वं तथाविधस्याप्युपपद्यत इति नाचेतनस्य चेतनाधिष्ठितस्य तद्युक्तमिति भावः । नामरूपेति । [7]अनभिव्यक्तनामरूपेत्यर्थः । बन्धमोक्षादीत्यादिशब्देन तत्साधनमुच्यते । मोक्षस्यापि [8]बन्धप्रतियोगित्वेन सोपाधिकत्वमुक्तम् । परमार्थस्य श्रुत्येकगम्यत्वमाह—सर्वेति । एवंभूतस्याऽऽत्मनो न स्रष्टृत्वमित्याह—न तत्रेति । कल्पयित्वेति । कल्पयितुं प्रवृत्ता इत्यर्थः । पुरुषस्य निर्विशेषत्वेन तस्मिन्वस्तुतः कर्तृत्वाद्ययोगात्तदारोपितमेवेति कल्पयितुं प्रवृत्ता अपि [9]सर्वविरोधनिरासकागमप्रमाणैकशरणत्वाभावात्प्रत्यक्षादिविरोधापत्त्याऽऽरोपितत्वाङ्गीकाराद् त्रस्यन्तः सर्वं परमार्थत एवेच्छन्ति । तत्राप्यचेतनस्य भोक्तृत्वायोगात्तन्मात्रमात्मनोऽङ्गीकुर्वन्ति । कर्तृत्वादिकं तु प्रधानस्याङ्गी कुर्वन्तीत्यर्थः । तर्हि तस्य को दोष इत्याशङ्क्य भोक्तृत्वाङ्गीकारे तथैव तस्यैव कर्तृत्वमपि स्यादित्य[10]न्यैः शिक्षिताः सन्तः स्वमतात्प्रच्यवन्त इत्याह—अन्येति । कृतायाः शिक्षिताया बुद्धेर्विषया अधीनाः शिक्षितबुद्धय इत्यर्थः ।

उपाधि के अभाव होने के कारण एक अद्वय तत्त्व ही मानना उचित होगा, जो सम्पूर्ण तार्किकों की बुद्धि का अविषय, अभय और शिव स्वरूप है। सभी भाव वस्तु (अधिष्ठान दृष्टि से) अद्वय ब्रह्म स्वरूप होने के कारण उसमें कर्तृत्व, भोक्तृत्व या क्रिया कारक और फलभेद कुछ भी नहीं है।

किन्तु सांख्यवादियों ने पहले पुरुष में अविद्या अध्यारोपित कर्तृत्व, क्रिया, कारक और फल की कल्पना कर पुनः वेद वाह्य होने के कारण उससे भयभीत हो पुरुष में वास्तविक भोक्तृत्व मान लिया है तथा पुरुष से भिन्न तत्त्वान्तर परमार्थ वस्तु के रूप में प्रधान मान लेने के कारण अन्य तार्किकों

---

१. विशेषो भेदः । २. सांख्यादीनामपि तार्किकत्वेन संग्रहायाह—सर्वेति । ३. अद्वैतत्वादित्यादि—सर्वेषां कर्तृत्वादिभावानामद्वितीयात्मरूपत्वादित्यर्थः । ४. तेनेति—सांख्येनेत्यर्थः । अङ्गीकर्तव्यमित्यन्वयः । ५. तदात्मकेत्यादि—भोज्याविवेकोपाधिककर्तृत्वेऽपि तुल्यमङ्गीकरणमित्यर्थः । यद्वा तेनाङ्गीकरणेन तुल्यमङ्गीकरणं तदात्मककर्तृत्वेऽपीत्यर्थः । वस्तुतस्तु तदात्मकर्तृत्वेऽपीत्येव पाठ्यम् । तथा च तद्—औपाधिकत्वमात्मनः कर्तृत्वेऽपि तुल्यमित्यर्थः । ६. भ्रान्त्येति—ईश्वरे त्वसावाहार्यज्ञानरूपैवेत्यवधेयम् । आहार्यज्ञानेति आहृतस्य च दोषानापादकत्वमेव जगदुः प्रामाणिकाः। आहृता हि विषयैकतानता ज्ञानधौतमनसं न लिम्पतीति । ७. कारणोपाधौ नामरूपयोरनभिव्यक्तत्वाभिप्रायेणाह—अनभिव्यक्तेति । ८. बन्धप्रतियोगित्वेनेति—बन्धनिरूप्यत्वेनेत्यर्थः । ९. सर्वविरोधनिरासकेति—अविद्यामुपाधीकृत्येति भावः । १०. अन्यैः तार्किकैः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथेतरे तार्किकाः सांख्यैरित्येवं परस्परविरुद्धार्थकल्पनात् आमिषार्थिन इव प्राणिनोऽन्योन्य [1]विरुद्धमानार्थदर्शित्वात्परमार्थतत्त्वाद्दूरमेवापकृष्यन्तेऽतस्तन्मतमनादृत्य वेदान्तार्थतत्त्वमेकत्वदर्शनं प्रत्यादरवन्तो मुमुक्षवः स्युरिति तार्किकमतदोषप्रदर्शनं किंचिदुच्यतेऽस्माभिर्न तु तार्किकवत्तात्पर्येण ।

तथैतदत्रोक्तम्—

"विवदत्स्वेव निक्षिप्य विरोधोद्भवकारणम् ।
तैः संरक्षितसद्बुद्धिः सुखं निर्वाति वेदवित्" ॥

किंच भोक्तृत्वकर्तृत्वयोर्विक्रिययोर्विशेषानुपपत्तिः । का नामासौ कर्तृत्वाज्जात्यन्तरभूता भोक्तृत्वविशिष्टा विक्रिया, यतो भोक्तैव पुरुषः कल्प्यते न कर्ता प्रधानं तु कर्त्रेव न भोक्त्रिति ।

तर्हि सांख्यशिक्षकस्य तार्किकस्य मतं ग्राह्यमत आह—तथेति । तस्यापि सांख्येन शिक्षितत्वान्न तदपि ग्राह्यमित्यर्थः । तर्हि कस्य तार्किकमतं मतं ग्राह्यमित्याशङ्क्य न कस्यापीत्याह—इत्येवमिति । तर्हि त्वया तार्किकमतं किमर्थं दूष्यते । परस्परमेव तैर्दूषितत्वात्त्व तद्वदेव दूषादिमत्त्वप्रसङ्गाच्चेत्यत आह—अत इति । विरोधोद्भवकारणमिति । पारमार्थिकतया भेददर्शनमित्यर्थः । संरक्षितेति । भेददर्शनस्य परस्परोक्तदोषग्रस्तत्वादद्वैतमेव मिदुष्टमिति निश्चितबुद्धिः सन्निर्वाति सर्वविकल्पेभ्य उपशान्तो भवतीत्यर्थः । दोषप्रदर्शनं किंचित्क्रियत इति यदुक्तं तदेव प्रपञ्चयन्कर्तृत्वादेरारोपितत्वमेव परेणापि वक्तव्यमित्याह—किंचेत्यादिना । तत्राऽऽदौ भोक्तृत्वकर्तृत्वयोर्विशेषस्य वक्तुमशक्यत्वात्तयोराश्रयव्यवस्था न संभवतीत्याह—भोक्तृत्वेति ।

के आक्रोश बुद्धि के विषय होकर अपने सिद्धान्त से च्युत करा दिये जाते हैं । ऐसे ही दूसरे तार्किक सांख्यवादियों द्वारा वे परास्त कर दिये जाते हैं । इस प्रकार परस्पर विशुद्ध अर्थ की कल्पना कर माँस लोलुप हिंसक प्राणियों के समान एक दूसरे के विरुद्ध अर्थ को देखने के कारण परमार्थ तत्त्व से दूर फेंक दिये जाते हैं । अतः मुमुक्षु जन उनके मत को आदर न कर वेदान्त के तात्पर्य को बतलाने वाले एकत्व आत्मदर्शन के प्रति आदर युक्त होवें । इसीलिये हम तार्किकों के मत का किञ्चित् दोष प्रदर्शित करते हैं, तार्किकों के समान तत्परता से नहीं । इस विषय में ऐसा कहा भी गया है । "इस विरोध की उत्पत्ति के कारण को विवाद करने वालों के ऊपर ही छोड़कर जिसने अपनी सद्बुद्धि को सुरक्षित रखा है, वह वेदवेत्ता पुरुष सुख पूर्वक शान्ति को प्राप्त कर लेता है" ।

इसके अतिरिक्त भोक्तृत्व और कर्तृत्व इन दोनों विकारों में कुछ भेद मानना ठीक नहीं है । कर्तृत्व से विलक्षण वह भोक्तृत्व विकार क्या वस्तु है; जिससे पुरुष को केवल भोक्ता मानते हो, कर्ता नहीं मानते और प्रधान कर्ता ही है, भोक्ता नहीं ।

---

१. विरुद्धमानेति—अत्र विरुध्यमानेति युक्तः पाठः । यथाश्रुते तु विरुद्धं मानमर्थञ्च तद्दर्शित्वादिति विग्रहः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ननूक्तं पुरुषश्चिन्मात्र एव स च स्वात्मस्थो विक्रियते भुञ्जानो न तत्त्वान्तरपरिणामेन। प्रधानं तु तत्त्वान्तरपरिणामेन विक्रियतेऽतोऽनेकमशुद्धमचेतनं [1]चेत्यादिधर्मवत्तद्विपरीतः पुरुषः। नासौ विशेषो वाङ्मात्रत्वात्, प्राग्भोगोत्पत्तेः केवलचिन्मात्रस्य पुरुषस्य भोक्तृत्वं नाम विशेषो भोगोत्पत्तिकाले चेज्जायते निवृत्ते च भोगे पुनस्तद्विशेषादपेतश्चिन्मात्र एव भवतीति चेन्महदाद्याकारेण च परिणम्य [2]प्रधानं ततोऽपेत्य पुनः प्रधानं स्वरूपेणावतिष्ठत इत्यस्यां कल्पनायां न कश्चिद्विशेष इति वाङ्मात्रेण प्रधानपुरुषयो[3]र्विशिष्टविक्रिया कल्प्यते।

अथ भोगकालेऽपि चिन्मात्र एव प्राग्वत्पुरुष इति चेन्न तर्हि परमार्थतो भोगः पुरुषस्य

आशयमविद्वाञ्शङ्कावसरोक्तं विशेषं शङ्कते—नन्विति। स्वात्मस्थो विक्रियत इति। चिद्रूपेण विक्रियत इत्यर्थः। तत्त्वान्तरेति। अनेकत्वाशुद्ध्यादियुक्तस्वविलक्षणमहदादिरूपेणेत्यर्थः। पुरुषस्य चिद्रूपेणैव परिणामान्न रूपान्तरापत्तिरशुद्ध्यादिकं वा। प्रधानस्य त्वाकारान्तरेण परिणामात्पूर्वरूपत्यागादशुद्ध्यादिकं स्यादित्यर्थः। किंचिद्रूपेण परिणाम [4]आगन्तुको वा न वा। आद्य आगन्तुकविशेषवत्त्वेनानित्यत्वाद्यापत्त्या प्रधानादविशेषः भोगान्तरं पुनः स्वरूपावस्थानान्नानित्यत्वादिदोषश्चेत्प्रधानस्यापि प्रलये तथात्वाङ्गीकारान्न तयोर्विशेषः स्यादिति दूषयति—नासाविति। संग्रहवाक्यं विवृणोति—प्रागिति। अस्यां कल्पनायामिति। चिद्रूपेण तत्त्वान्तररूपेण विक्रियाकल्पनायामपि विचार्यमाणेऽर्थतो न कश्चिदपि विशेषो लभ्यत इति तयोर्विशिष्टविक्रियेति वाङ्मात्रेणैव कल्प्यत उच्यत इत्यर्थः।

द्वितीयं शङ्कते—अथेति। चिन्मात्र एवेति। न त्वागन्तुकं रूपान्तरमित्यर्थः। तर्हि कर्मजन्यः कादाचित्को भोगो न सिध्येदित्याह—न तर्हीति। एतद्दोषपरिहारायाऽऽगन्तुकं परिणाममङ्गीकृत्य

पूर्वपक्ष :—यह पहले कह आये हैं कि चिन्मात्रस्वरूप रहता हुआ ही पुरुष भोग करते समय अपने आप में स्थित रहकर भोगरूप विकार को प्राप्त होता है, उसका विकार तत्त्वान्तर परिणाम के द्वारा नहीं होता है। इसके विपरीत प्रधान तत्त्वान्तर परिणामरूप से ही विकृत होता है। अतः वह प्रधान महतत्त्वादि भेद से अनेक, अशुद्ध और अचेतन आदि धर्म से युक्त होता है, पर पुरुष उससे विपरीत स्वभाव वाला है।

सिद्धान्ती :—केवल शब्दमात्र का भेद होने के कारण वह वास्तव में कोई भेद नहीं है। यदि भोग उत्पत्ति से पूर्व केवल चिन्मात्रस्वरूप पुरुष में भोग की उत्पत्ति के समय भोक्तृत्वरूप वैशिष्ट्य उत्पन्न होता है और भोग हटते ही उस विशेषता के दूर हो जाने पर पुनः वह चिन्मात्र ही रह जाता है। ऐसी स्थिति में प्रधान भी महदादिरूप से परिणत होकर उनसे निवृत्त होते ही पुनः प्रधानरूप से ही स्थित हो जाता है। अतः इस कल्पना में कोई विशेषता न होने के कारण तुमने प्रधान और पुरुष के विशिष्ट विकार की कल्पना केवल शब्दमात्र से ही की है।

१. चेत्यादीति—च इत्यादीति च्छेदः। तथा चानेकत्वादिधर्मवदित्यर्थः। चेत्यं प्रकाश्यं भावप्रधानः प्रयोगस्तथा च प्रकाश्यत्वादिधर्मवदित्यर्थं इति प्राञ्चः। २. प्रधानमित्येकं परिणामप्रागभावकालीनप्राधान्यमाह—तदपरं तु तद्ध्वंसकालीनतत्त्वं वक्तीत्यूह्यम्। ३. विशिष्टेति—विजातीयेति यावत्। ४. आगन्तुको नैमित्तिको जन्य इति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोगकाले चिन्मात्रस्य विक्रिया परमार्थैव तेन भोगः पुरुषस्येति चेन्न। प्रधानस्यापि भोगकाले विक्रियावत्त्वाद्भोक्तृत्वप्रसङ्गः। चिन्मात्रस्यैव विक्रिया भोक्तृत्वमिति चेदौष्ण्याद्यसाधारणधर्मवतामग्न्यादीनामभोक्तृत्वे हेत्वनुपपत्तिः।

प्रधानपुरुषयोर्द्वयोर्युगपद्भोक्तृत्वमिति चेन्न। प्रधानस्य पारार्थ्यानुपपत्तेः। न हि

भोगकालीनविक्रिया[1]मात्रं भोगः स च पुरुषस्यैव न प्रधानस्येति भोगसदसत्त्वविशेषमात्रेण शङ्कते—भोगकाल इति। तत्रापि किं भोगकालीनविक्रियामात्रं भोग उत तत्कालीनचिन्मात्रगतविक्रिया भोग इति विकल्प्याऽऽद्ये भोगकाले प्रधानस्यापि सुखाद्याकारेण विक्रियावत्त्वाद्भोगः स्यादित्याह—नेति। द्वितीयं शङ्कते—चिन्मात्रस्यैवेति। चिन्मात्रस्यैव विक्रियेत्येवकारेण धर्म्यन्तरगतविक्रियानपेक्षा चैतन्यविक्रिया भोग इत्युच्यते वा चैतन्यमात्रगता तदसाधारणा विक्रिया भोग इति वा। नाऽऽद्यः। सुखादिरूपप्रधानविक्रियां विना भोगासिद्धेः। न द्वितीयः। चैतन्यासाधारणविक्रियैव भोग इत्यत्र हेत्वभावात्स्वासाधारणविक्रिया भोग इति वक्तव्यम्। तथा चातिप्रसङ्गः। सर्वस्यापि स्वासाधारणविक्रियावत्त्वात्। भोगकालीनासाधारणविक्रियावत्त्वं तु प्रधानस्याप्यस्ति। तत्कालीनसुखादिविक्रियावत्त्वादिति दूषयति—औष्ण्येति।

ननु भोगकालीनाऽसाधारणविक्रियैव भोगः। न चाग्न्यादेस्तत्काले नियमेन विक्रियाऽस्ति। न च प्रधानस्यापि प्रसङ्ग [2]इष्टापत्तिरिति शङ्कते—प्रधानेति। भोक्ता हि शेषी भोगश्च शेष उभयोरपि भोक्तृत्वे शेषशेषिभावो न स्यादित्याह—नेति। ननु भोगः [3]सत्त्वगुणप्रधानचेतोरूपेण परिणतप्रकृतेरेव धर्मस्तस्या विक्रियोपपत्तेर्न पुरुषस्य, तस्याविक्रियत्वात्। न च तस्य भोगाभावप्रसङ्गस्तस्य

पूर्वपक्ष :—यदि भोगकाल में भी पुरुष पहले की भाँति चिन्मात्रस्वरूप ही रहता है, ऐसा माना जावे तो ?

सिद्धान्ती :—तब तो परमार्थतः पुरुष का भोग सिद्ध नहीं हो सकता।

पूर्वपक्ष :—यदि ऐसा माना जाय कि भोगकाल में जो चिन्मात्र पुरुष का विकार होता है, वह पारमार्थिक है, इससे पुरुष में भोग सिद्ध हो जाता है ?

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि भोगकाल में तो प्रधान भी विकारयुक्त होता है। ऐसी स्थिति में उस प्रधान के भी भोक्तृत्व का प्रसंग आ जायगा। यदि कहो कि भोक्तृत्व चिन्मात्र का ही विकार माना गया है तो उष्णता आदि असाधारण धर्म वाले अग्नि आदि के भोक्तृत्व न मानने में काई कारण नहीं जान पड़ता है (जैसे पुरुष का असाधारण धर्म चेतनता है, वैसे ही अग्नि का असाधारण धर्म उष्णतादि। अतः उष्णतादि असाधारण धर्म से विशिष्ट अग्नि आदि में भी भोक्तृत्व का प्रसंग आ ही जायगा)।

मध्यस्थ :—यदि प्रधान और पुरुष दोनों में एक साथ भोक्तृत्व माना जाय तो ?

सिद्धान्ती :—यह भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर प्रधान में पारार्थ्य असंगत सिद्ध होगा। जैसे एक दूसरे को प्रकाशित करने में दो प्रकाशों का गौण-मुख्यभाव नहीं सिद्ध होता है, वैसे ही दो भोक्ताओं का भी परस्पर गौण-मुख्यभाव सिद्ध नहीं हो सकता।

---

१. मात्रमित्यत्र वत्त्वमिति पाठान्तरम्। २. इष्टापत्तिरिति—अत्र पञ्चम्यन्तपाठो युक्तः। ३. सत्त्वेति—रजसोऽप्युपलक्षणं दुःखानुभवस्यापि भोगत्वात्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोक्त्रोर्द्वयोरितरेतरगुणप्रधानभाव उपपद्यते प्रकाशयोरिवेतरेतरप्रकाशने। भोगधर्मवति सत्त्वाङ्गिनि चेतसि पुरुषस्य चैतन्यप्रतिबिम्बोदयोऽविक्रियस्य पुरुषस्य भोक्तृत्वमिति चेन्न। पुरुषस्य विशेषाभावे भोक्तृत्वकल्पनानर्थक्यात्।

भोगरूपश्चेदनर्थः पुरुषस्य नास्ति सदा निर्विशेषत्वात्पुरुषस्य कस्यापनयनार्थं मोक्षसाधनं शास्त्रं प्रणीयतेऽविद्याध्यारोपितानर्थापनयनाय शास्त्रप्रणयनमिति चेत्परमार्थतः पुरुषो भोक्तैव न कर्ता प्रधानं कर्त्रेव न भोक्तृ परमार्थसद्वस्त्वन्तरं पुरुषाच्चेतीयं कल्पनाऽऽगमबाह्या व्यर्था निर्हेतुका चेति नाऽऽदर्तव्या मुमुक्षुभिः।

एकत्वेऽपि शास्त्रप्रणयनाद्यानर्थक्यमिति चेन्नाभावात्। सत्सु हि शास्त्रप्रणेत्रादिषु

तथाविधचित्तप्रतिबिम्बितत्वमात्रेण भोक्तृत्वव्यपदेश इति शङ्कते—भोगधर्मवतीति। सत्त्वाङ्गिनीति। सत्त्वगुणोऽङ्गी प्रधानं यस्य तस्मिंश्चेतसीत्यर्थः। तर्हि चित्तगतभोगेन चैतन्ये विशेषो जायते वा न वेति विकल्प्य न द्वितीय इत्याह—नेति।

किंचास्मिन्पक्षे स्वकीयशास्त्रप्रणयनं च व्यर्थं स्यादित्याह—भोगरूपश्चेदिति। आद्ये स विशेषः सत्यो वाऽसत्यो वेति विकल्प्य सत्यविशेषवत्त्वे पुरुषस्य विकारित्वं स्यादिति मनसि संनिधायाऽस्याऽऽरोपितविशेषवत्त्वमस्तीत्याद्यं शङ्कते—अविद्येति। अनर्थेति। भोगरूपेत्यर्थः। तर्हि भोक्तृत्वविशेषवत्कर्तृत्वाविविशेषस्य प्रधानादेश्चा[2]ऽऽरोपत्वमेवाङ्गी कर्तुं युक्तं नार्धवैशसमस्मदुक्तरीत्या बन्धमोक्षव्यवहारसिद्ध्युपपत्तेः। तथा कल्पनायां प्रयोजनाभावात्प्रमाणाभावात्प्रत्युत सर्वश्रुतिविरोधापत्तेश्चेत्याह—परमार्थत इति। पुरुषाद्वस्त्वन्तरं च प्रधानमित्यन्वयः। उक्तदोषजातं सांख्यस्य मतं मोक्षकामिणा नाऽऽदर्तव्यमिति ज्ञापनार्थमुक्तं न तु [3]द्वेषपक्षपातादित्याशयेनाऽऽह—इति नाऽऽदर्तव्येति।

आत्मैकत्वपक्षेऽपि निरसनीयबन्धाभावाच्छास्त्रप्रणयनानर्थक्यमिति शङ्कते—एकत्वेऽपीति। किमात्मैकत्वनिश्चयवन्तं प्रति तस्याऽऽनर्थक्यमुच्यते तद्विपरीतं प्रति वेति विकल्प्याऽऽद्यं प्रति प्रणयनाभावादानर्थक्यदोषाभावमाह—नाभावादिति। दोषापादनाभावादित्यर्थः। संग्रहवाक्यं विवृणोति—न

पूर्वपक्ष :—भोग धर्म वाले सत्त्वगुण प्रधान चित्त में चैतन्य के प्रतिबिम्बित का उदय होना ही निर्विकार पुरुष में भोक्तृत्व है, ऐसा माना जाय तो?

सिद्धान्ती :—ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर पुरुष में कोई विशेषता न होने के कारण उसमें भोक्तृत्व की कल्पना ही निरर्थक हो जायगी। यदि सदा निर्विशेष होने के कारण पुरुष में भोगरूप अनर्थ ही नहीं है तो भला मोक्ष का साधनरूप शास्त्र किस अनर्थ की निवृत्ति के लिये बनाया गया है। यदि कहो कि अविद्या से आरोपित अनर्थ को निवृत्त करने के लिये शास्त्र की रचना हुयी है तो परमार्थतः पुरुष भोक्ता ही है, कर्ता नहीं है और प्रधान कर्त्ता ही है, भोक्ता नहीं; साथ ही वह प्रधान परमार्थतः पुरुष से भिन्न कोई वस्तु है, ऐसी आगम बाह्य कल्पना निर्हेतुक और व्यर्थ ही है। अतः मुमुक्षुओं द्वारा ऐसी कल्पना आदरणीय नहीं है।

मध्यस्थ :—परन्तु एकत्व मानने पर भी शास्त्र रचना आदि में निरर्थकता है ही।

---

१. अविद्येति—अविवेकेति यावत्। २. आरोपत्वमिति—आध्यासिकत्वमिति यावत्। ३. द्वेषपक्षपातादिति—द्वेषाधीनतयेति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्फलार्थिषु च शास्त्रस्य प्रणयनमनर्थकं सार्थकं वेति विकल्पना स्यात्। न ह्यात्मैकत्वे शास्त्रप्रणेत्रादयस्ततो भिन्नाः सन्ति तदभाव[1] एवं विकल्पनैवानुपपन्ना। अभ्युपगत आत्मैकत्वे प्रमाणार्थश्चाभ्युपगतो भवता[2] यदात्मैकत्वमभ्युपगच्छता। तदभ्युपगमे च विकल्पानुपपत्तिमाह शास्त्रं "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्" इत्यादि। शास्त्रप्रणयनाद्युपपत्तिं चाऽऽहान्यत्र परमार्थवस्तुस्वरूपादविद्याविषये, "यत्र हि द्वैतमिव भवति" इत्यादि विस्तरतो वाजसनेयके।

अत्र च विभक्ते[3] विद्याविद्ये परापरे इत्यादावेव शास्त्रस्यातो न तार्किक[4]वादभट-

---

ह्यात्मैकत्व इति। निश्चित इति शेषः। तदभावे शास्त्रप्रणेत्राद्यभाव इयं (एवं) [वि]कल्पनैवार्थवदनर्थकं चे(वे)ति विकल्पनैवानुपपन्नेत्यर्थः। नैवानुपपन्नेति पाठे तु तदभाव इत्यनेनैकत्वनिश्चयाभावोऽभिधीयते। तदानीं निरसनीयबन्धादिसत्त्वादियं कल्पना बन्धनिवृत्त्यर्थं शास्त्रप्रणयनकल्पना नानुपपन्नेति योज्यम्। किंचाऽऽत्मैकत्वनिश्चये जाते तन्निश्चयजनकत्वेन शास्त्रार्थवत्त्वस्य स्वानुभवसिद्धत्वात्तेनेयं शङ्का कर्तुमपि न शक्येत्याह—अभ्युपगत इति। प्रमाणार्थ इति। प्रमाणस्य शास्त्रस्यार्थः प्रयोजनमित्यर्थः। एकत्वनिश्चयवन्तं प्रति शास्त्रानर्थक्यकल्पनाभावः श्रुत्याऽप्युक्त इत्याह—तदभ्युपगमे चेति। अत्राभ्युपगमो निश्चयः। एकत्वनिश्चयाभावदशायां तु निरसनीयारोपितबन्धसत्त्वानाऽऽनर्थक्यं तदपि श्रुत्योक्तमित्याह—शास्त्रप्रणयनेति। अनेन द्वितीयकल्पो निरस्तः। श्रुतिगतं यत्रपदं व्याचष्टे—अन्यत्रेति।

अथर्वणीयमन्त्रोपनिषदि द्वे विद्ये वेदितव्ये इत्युपक्रम्यापरविद्या ऋग्वेदादिरूपा परा त्वदृश्यत्वादिगुणकप्रत्यस्तमितसर्वद्वैतवस्तुविषयेत्युक्त्या विद्याविद्ययोर्विषयभेदः शास्त्रस्याऽऽदावेव सूचित इत्याह—अत्र चेति। अद्वैतवादे सर्वशङ्कानां श्रुतिप्रामाण्येनैव निरासात्तार्किकोत्प्रेक्षित[5]शङ्काशूकस्यापि

सिद्धान्ती :—यह दोष ठीक नहीं क्योंकि उस समय तो उन शास्त्रादि का भी अभाव हो जाता है। शास्त्र के बनाने वाले आदि तथा उनके फलाकांक्षियों के रहने पर ही शास्त्र रचना सार्थक है या निरर्थक है, ऐसा विकल्प हो सकता है। आत्मैकत्व सिद्ध हो जाने पर तो शास्त्र प्रणेतादि उस आत्मतत्त्व से भिन्न नहीं रह जाते हैं और उनका अभाव हो जाने पर तो पूर्वोक्त विकल्प बनता ही नहीं।

इसके अतिरिक्त आत्मैकत्व मान लेने पर जिस आत्मैकत्व के निश्चय करने वाले तुमने उस एकत्व के प्रतिपादक शास्त्र की अर्थवत्ता स्वीकार कर ही ली है, उस एकत्व के निश्चय हो जाने पर भी "जहाँ इसे सब कुछ आत्मरूप ही हो गया, वहाँ किससे किसको देखे" इत्यादि विकल्प को असम्भावना ही शास्त्र बतलाता है और परमार्थ वस्तु से भिन्न अविद्या विषय में 'जहाँ द्वैत-सा होता है" इत्यादि बृहदारण्यक श्रुति में शास्त्र रचना आदि की युक्ति-युक्तता विस्तार से बतलायी है।

यहाँ मुण्डकोपनिषत् के प्रारम्भ में ही परा और अपरारूप विद्या एवं अविद्या का विभाग किया

---

१. इयमिति पाठान्तरम्। २. यदात्मेति—यत आत्मैकत्वमभ्युपगच्छता भवता प्रमाणार्थोऽप्यभ्युपगतो भवति तथा चात्मैकत्वेऽभ्युपगते नैवं विकल्पना युक्तेत्यर्थः। ३. विद्याविद्ये इति—तथा च विद्याविषयेऽद्वैते अविद्याविषये द्वैते च नोक्तविकल्पनोक्तदिशाऽवकाशमासादयतीति भावः। ४. वादस्थाने चाटेति पाठान्तरम्—चाटश्चोरो विश्वासघातकश्च। ५. शङ्काशूकस्येति—शूकोऽस्त्रीश्लक्ष्णतीक्ष्णाग्रे इत्यमरः। श्लक्ष्णं च तीक्ष्णं च तदग्रं चेति विग्रहस्तथा च शङ्कालेशस्यापीति पर्यवस्यतीति ध्येयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवेशो वेदान्तराजप्रमाणबाहुगुप्त इहात्मैकत्वविषय इति । एतेनाविद्याकृतनामरूपाधिकृतानेकशक्तिसाधनकृतभेदवत्त्वाद्ब्रह्मणः सृष्ट्यादिकर्तृत्वे साधनाद्यभावो दोषः प्रत्युक्तो वेदितव्यः परैरुक्त आत्मानर्थकर्तृत्वादिदोषश्च ।

यस्तु दृष्टान्तो राज्ञः सर्वार्थकारिणि 'कर्तर्युपचाराद्राजा कर्तेति सोऽत्रानुपपन्नः । स ईक्षांचक्र इति श्रुतेर्मुख्यार्थबाधनात्प्रमाणभूतायाः । तत्र हि गौणी कल्पना शब्दस्य यत्र मुख्यार्थो न संभवति । 'इह त्वचेतनस्य मुक्तबद्धपुरुषविशेषापेक्षया कर्तृकर्मदेशकालनि-

---

नात्र प्रवेश इत्युपसंहरति—अत इति । राजप्रमाणेति । प्रमाणराजेत्यर्थः । राजदन्तादित्वात्परनिपातः । वेदान्तप्रमाणमेव राजेव राजा तद्बाहवस्तद्युक्तन्यायास्तैर्गुप्त आत्मैकत्वमेव विषय इव देश इव देशो रक्षणीयत्वात्स तार्किकभटैर्योधैर्न प्रवेश्य इत्यन्वयः । पूर्ववाद्युक्तं दोषं निराकरोति—एतेनेति । उपाधिकृता अनेकाः शक्तयः साधनानि च तत्कृतस्य भेदस्यानेकत्वस्य सत्त्वादित्यर्थः । आत्मेति । आत्मनो योऽनर्थः संसारस्तत्कर्तृत्वमित्यर्थः । आदिशब्देनाऽऽप्तकामत्वेन प्रयोजनापेक्षानुपपत्तिः संगृहीता । 'कल्पनया स्वव्यतिरिक्तस्य जीवस्य सत्त्वात्तस्य संसारो नाऽऽत्मनः । तदीयकर्मफलदानार्थं चाऽऽप्तकामस्यापि सृष्ट्यादिप्रवृत्तिः संभवति । 'सर्वव्यवहारस्यापि स्वप्नतुल्यत्वाद्वा स्वप्न इव सर्वमप्युपपद्यत इति सूत्रभाष्यादावेव 'परिहृत इत्यर्थः ।

सांख्येन स्वपक्षे पुरुषशब्दस्येक्षणस्य चोपपत्तिरुक्ता तामनूद्य निराकरोति—यस्त्विति । यजमानः 'प्रस्तर इत्यादावुपचारो दृष्ट इत्याशङ्क्याऽऽह—तत्र हि गौणीति । प्रधानपक्षे न केवलमीक्षणश्रुत्यनुपपत्तिर्वस्तुतस्तस्य स्रष्टृत्वमपि न संभवतीत्याह—इह त्विति । मुक्तान्वर्जयित्वा बद्धान्प्रत्येव

गया है । अतः वेदान्तरूप राजा के प्रामाणिक बाहुबल से सुरक्षित इस आत्मैकत्व राज्य में तार्किकवाद रूप योद्धाओं का प्रवेश हो नहीं सकता । इससे ब्रह्म के सृष्टि आदि कर्तृत्व में साधनों का अभाव है । ऐसा जो दोष दिया गया था, उसे भी निरस्त जानना चाहिये क्योंकि अविद्याजनित नाम-रूपादि उपाधियों के कारण ब्रह्म अनेक शक्ति और साधन प्रयुक्त भेदों वाला है और इसी प्रतिपादन से वह दोष भी निवृत्त हो जाता है, जो हमारे विपक्षियों ने कहा था कि आत्मा अपना ही अनर्थ कैसे करेगा इत्यादि ।

आपने जो दृष्टान्त दिया था कि राजा के सम्पूर्ण कार्य करने वाले सेवक में भी राजा है, ऐसा औपचारिक प्रयोग देखा जाता है, यह दृष्टान्त यहाँ पर उचित नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर "उसने विचार किया" इस प्रमाण भूता श्रुति का मुख्य अर्थ बाधित हो जाता है, जहाँ मुख्यार्थ का ग्रहण सम्भव न हो, वहाँ ही शब्द की गौणी कल्पना की जाती है । इस प्रसंग में तो मुक्तबद्ध पुरुष भेद

---

१. कर्तरीति—भृत्य इत्यर्थः । राजा कर्तेति भृत्योऽसौ राजेत्यर्थः । २. इह त्विति—प्रकृतवाक्ये तु सर्वज्ञेश्वरमादायेक्षणादिकं मुख्यं संभवतीति भावः । टीकाकृता तु ईश्वरकर्तृत्वपक्षे इत्युत्तरभाष्योक्तिमनुरुध्य प्रधानपक्ष इति हेति पदं व्याख्यातमित्यवधेयम् । ३. कल्पनयेति—भेदादिविषयकाहार्यज्ञानरूपयेति यावत् । ४. भेदादिज्ञानमनपेक्ष्यापि निद्रयैव द्रष्टुः स्वप्नजनकत्वं निदर्शयन्नाह—सर्वव्यवहारस्येत्यादि । ५. परिहृत इति—यथोक्तो दोष इति शेषः । ६. प्रस्तरो दर्भमुष्टिः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनः। अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ ॥

उस पुरुष ने सर्वप्रथम प्राण की रचना की, पुनः प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन और अन्न को बनाया, एवं अन्न से वीर्य रूप बल, (अन्तःकरण शुद्धि के साधन) तप, तप के साधन ऋगादि मन्त्र, अग्निहोत्रादि कर्म और कर्म के फलस्वरूप लोक को तथा लोकों में प्राणियों के देवदत्तादि नाम को उत्पन्न किया ॥ ४ ॥

मित्तापेक्षया च बन्धमोक्षादिफलार्था नियता पुरुषं प्रति प्रवृत्तिर्नोपपद्यते। यथोक्तसर्वज्ञेश्वरकर्तृत्वपक्षे तूपपन्ना ॥३॥

ईश्वरेणेव सर्वाधिकारी प्राणः पुरुषेण सृज्यते। कथं, स पुरुष उक्तप्रकारेणेक्षित्वा सर्वप्राणं हिरण्यगर्भाख्यं सर्वप्राणिकरणाधारमन्तरात्मानमसृजत सृष्टवान्। अतः प्राणाच्छ्रद्धां सर्वप्राणिनां शुभकर्मप्रवृत्तिहेतुभूताम्। ततः कर्मफलोपभोगसाधनाधिष्ठानानि

प्रवृत्तिः 'कर्तृकर्माद्यपेक्षया बन्धमोक्षादिशब्दितभोगापवर्गार्था व्यवस्थिता प्रवृत्तिर्नोपपद्यत इत्यर्थः। अनेन पुरुषार्थं प्रयोजनमुररीकृत्य प्रधानं प्रवर्तत इति यदुक्त शङ्कावसरे तन्निरस्तम्। ईश्वरकारणवादे तु न कोऽपि दोष इत्याह—यथोक्तेति ॥३॥

एवं परपक्षं निराकृत्य श्रुतिव्याख्यानं कुर्वन्स प्राणमसृजतेत्यस्य तात्पर्यार्थमाह—ईश्वरेणेवेति। राज्ञेवेत्यर्थः। अक्षरार्थं प्रश्नपूर्वकमाह—कथमिति। हिरण्यगर्भाख्यमिति। हिरण्यगर्भ इत्याख्या येनोपाधिनाऽऽत्मनो भवति तं बुद्ध्यभिन्नं सर्वप्राणं समष्टिप्राणमित्यर्थः। यथाश्रुते कस्मिन्नहमुत्क्रान्त इत्यादिनाऽऽत्मन उत्क्रान्त्याद्युपाधिसृष्टेः प्रस्तुतत्वाद्धिरण्यगर्भस्य जीवस्यातथात्वादुपक्रमविरोधापत्तेः। हिरण्यगर्भाख्यमित्युक्तिस्त्वात्मनो हिरण्यगर्भादिसंसारिभावोऽप्येतदुपाधिक इति सूचयितुमिति बोध्यम्। तस्य समष्टित्वमाह—सर्वेति। अन्तरात्मानमिति। सर्वस्थूलशरीरान्तरत्वादा'त्मबुद्धिगोचरत्वाच्चान्तरात्मा स इत्यर्थः। तत इत्यानन्तयार्थेयं पञ्चमी। एवमुत्तरत्रापि। न च भूतकार्यत्वात्प्राणस्य कथं

की अपेक्षा से तथा कर्ता, कर्म, देश, काल और निमित्त की अपेक्षा से पुरुष के लिये अचेतन प्रधान की नियत प्रवृत्ति कहना ठीक नहीं है। इसके विपरीत पूर्वोक्त सर्वज्ञ ईश्वर को जगत् कर्ता मानने के पक्ष में वह सुसंगत ही है ॥ ३ ॥

सृष्टि का क्रम

राजा की भाँति पुरुष ने ही सर्वाधिकारी प्राण को बनाया। कैसे? उस पुरुष ने पूर्वोक्त प्रकार से ईक्षण कर सभी प्राणियों की इन्द्रियों के आधाररूप हिरण्यगर्भ नामक समष्टि प्राणरूप आत्मा को

---

१. आधारमिति—तादात्म्येनाधारमित्यर्थः। समष्टौ व्यष्टेस्तादात्म्यात्। २. कर्तृकर्माद्यपेक्षयेति—कर्मेदमस्य कर्तुरेतद्देशकालभोगार्हमित्येवमपेक्षया जडस्य नियता प्रवृत्तिर्नोपपद्यत इत्यर्थः। ३. आत्मबुद्धीति—अहंबुद्धीत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारणभूतानि महाभूतान्यसृजत। खं शब्दगुणम्। वायुं स्वेन स्पर्शेन कारणगुणेन च विशिष्टं द्विगुणम्। तथा ज्योतिः स्वेन रूपेण पूर्वाभ्यां च विशिष्टं त्रिगुणं शब्दस्पर्शाभ्याम्। तथाऽऽपो रसेन गुणेनासाधारणेन पूर्वगुणानुप्रवेशेन चतुर्गुणाः। तथा गन्धगुणेन पूर्वगुणानुप्रवेशेन च पञ्चगुणा पृथिवी। तैरेव भूतैरारब्धमिन्द्रियं द्विप्रकारं बुद्धयर्थं कर्मार्थं च दशसंख्यम्। तस्य चेश्वरमन्तःस्थं संशयसंकल्पलक्षणं मनः। एवं प्राणिनां कार्यं करणं च सृष्ट्वा तत्स्थित्यर्थं व्रीहियवादिलक्षणमन्नम्। ततश्चान्नादद्यमानाद्वीर्यं सामर्थ्यं बलं सर्वकर्मप्रवृत्तिसाधनम्। तद्वीर्यवतां च प्राणिनां तपो विशुद्धिसाधनं संकीर्यमाणानां, मन्त्रास्तपोविशुद्धान्तर्बहिःकरणेभ्यः कर्मसाधनभूता ऋग्यजुःसामाथर्वाङ्गिरसः। ततः कर्माग्निहोत्रादिलक्षणम्। ततो लोकाः

ततः पूर्वकालीनत्वमिति वाच्यम्। सत्यम्। सूक्ष्मभूतसृष्टयनन्तरं प्राणमसृजतेति कल्पनीयत्वात्। न चैतदनन्तरं भूतसृष्टयुक्तिविरोधशङ्का। तस्याः पञ्चीकृतस्थूलभूतविषयत्वोपपत्तेः। अत एव भोगसाधनाधिष्ठानानीत्युक्तम्। सूक्ष्माणां तथात्वायोगात्। न चैवमपि स्थूलभूतसृष्टयनन्तरमिन्द्रियमनःसृष्टयुक्तिविरोधः। भूतारब्धदेहाधिष्ठितानमेव तेषां कार्यक्षमत्वेन तेषां तदनन्तरत्वोक्तिरिति भावः। भोगसाधनाधिष्ठानत्वं भूतानां तत्कारणत्वादित्याह—कारणभूतानीति। तेषां भूतानां लक्षणतया खं शब्दगुणमित्यादिनाऽसाधारणगुणा उक्ताः। पूर्वपूर्वगुणानुवृत्तिस्तु पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरोपादानत्वसूचनार्थं स्थौल्यतारतम्यसिद्धयर्थं चोक्तेति बोध्यम्। वायुमिति। श्रुतौ वायुरित्यादिप्रथमा द्वितीयार्थाः। प्राणमसृजतेति द्वितीययोपक्रमात्। तैरेवेति। अपञ्चीकृतावस्थायामित्यर्थः। तस्य चेश्वरमिति। नियामकमित्यर्थः। संकीर्यमाणानामिति। अविशुद्धसत्त्वतया पापाचरणेन तैः पापैः संकीर्यमाणानां संकरपरिहाराय

बनाया। उस प्राण से सभी प्राणियों के शुभ कर्मों की प्रवृत्ति की शरणरूपा श्रद्धा को बनाया और उसी से कर्मफल उपभोग के साधन शरीर के कारण महाभूतों की रचना की। सर्वप्रथम शब्दगुणविशिष्ट आकाश को बनाया, फिर अपना गुण, स्पर्श और कारण के शब्द गुण से युक्त ऐसे दो गुणों वाले वायु को रचा, तत्पश्चात् अपना गुण, रूप और पहले के दो गुण शब्द एवं स्पर्श से युक्त ऐसे तीन गुणों वाले तेज को बनाया तथा अपने असाधारण गुण रस के सहित पूर्वगुणों के अनुप्रवेश से चार गुण वाले जल को बनाया और गन्ध गुण के सहित पूर्व गुणों के अनुप्रवेश से पंचगुणविशिष्ट पृथिवी को बनाया। इसी प्रकार विषयों के जानने और कर्म करने के लिये उन भूतों से ही आरब्ध दश संख्या वाले दो प्रकार के इन्द्रिय समुदाय को एवं उसके स्वामी संकल्प-विकल्पादिरूप शरीर मध्यवर्ती मन को बनाया।

इस प्रकार प्राणियों के विषय और इन्द्रियों को रचना कर उनकी स्थिति के लिये परमेश्वर ने व्रीहि-यवादिरूप अन्न को बनाया, फिर खाये हुये उस अन्न से सब प्रकार के कर्मों की प्रवृत्ति के साधनरूप बल को बनाया, तत्पश्चात् वर्ण सांकर्य को प्राप्त होने वाले उन शक्तिशाली प्राणियों की शुद्धि के लिये साधनरूप तप की रचना की। फिर जिनके बाह्य और अन्तःकरणों के तप से शुद्धि हो चुकी है, उन प्राणियों के लिये कर्म के साधन ऋक्, यजुः, साम और अथर्वांगिरस मन्त्रों की रचना की। उसके बाद अग्निहोत्रादि कर्म और कर्मों के फलस्वरूप लोकों को बनाया, फिर उन रचे हुये लोकों में बनाये गये प्राणियों के देवदत्त-यज्ञदत्तादि नाम की रचना की।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कथम्—

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र

जैसे समुद्र की ओर प्रवाहित होने वाली ये नदियाँ समुद्र में पहुँच कर लीन हो जाती हैं अर्थात् उनके नाम रूप नष्ट हो जाते हैं और वे 'समुद्र'—ऐसा कह कर ही पुकारी जाती हैं, इसी प्रकार

कर्मणां फलम् । तेषु च सृष्टानां प्राणिनां नाम च देवदत्तो यज्ञदत्त इत्यादि । एवमेताः कलाः प्राणिनामविद्यादिदोषबीजापेक्षया सृष्टास्तैमिरिकदृष्टिसृष्टा इव द्विचन्द्रमशकमक्षिकाद्याः स्वप्नदृक्सृष्टा इव च सर्वपदार्थाः पुनस्तस्मिन्नेव पुरुषे प्रलीयन्ते हित्वा नामरूपादिविभागम् ॥ ४ ॥

स दृष्टान्तः । यथा लोक इमा नद्यः स्यन्दमानाः स्रवन्त्यः समुद्रायणाः समुद्रोऽयनं [1]गतिरात्मभावो यासां ताः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्योपगम्यास्तं नामरूपतिरस्कारं

चित्तशुद्धिसाधनं तपोऽसृजतेत्यर्थः । फलमिति । लोक्यते भुज्यत इति लोकः फलमित्यर्थः । नाम चेति । [2]ब्राह्मणादिनाम्नोक्तव्यवहारासंकरार्थमित्यर्थः । नन्वीश्वरसृष्टत्वोक्त्या कलानां सत्यत्वमङ्गीकर्तव्यम् । आरोपे शुक्तिरजतादौ सृष्टत्वव्यवहाराभावादित्याशङ्क्याङ्गुल्य[3]वष्टम्भनेत्रमर्दनादिना प्रयत्नेन सृष्टस्य द्विचन्द्रमशकमक्षिकादेरारोपत्वदर्शनात्, अथ रथान्[4]रथयोगान्पथः सृजत इति सृष्टत्वेनोक्तस्वप्नपदार्थस्य च भ्रमत्वदर्शनान्मैवमित्याह—एवमेता इति । अविद्याकामकर्मादिदोषरूपं यद्बीजं तदपेक्षया तत्साधनीकृत्येत्यर्थः । तैमिरिकशब्दो नेत्रेऽङ्गुल्यवष्टम्भाद्युपलक्षणार्थः । एवमात्मप्रतिपत्त्यर्थमध्यारोपमुक्त्वा तदपवादमवतारयति—पुनस्तस्मिन्नेवेति । ॥४॥

ग्रामादिवद्भेदेन गन्तव्यत्वभ्रमं वारयति—आत्मभाव इति । अस्तशब्देन नाशो नाभिधीयते भेदकोपाधिनामरूपयोर्नाशेऽपि स्वरूपस्य समुद्रात्मना विद्यमानत्वादित्याह—नामरूपतिरस्कारमिति ।

इस प्रकार तिमिर रोगी की दृष्टि से रचे गये द्विचन्द्र की भाँति मच्छर और मक्षिकादि को बनाया । स्वप्नद्रष्टा के बनाये हुये स्वप्नदृश्य पदार्थों की भाँति अविद्या आदि दोषरूप बीज की अपेक्षा से रची गयी ये कलायें अपने नाम-रूपादि विभागों को छोड़कर (प्रलय के समय अपने कारण) उस पुरुष में ही लीन हो जाते हैं ॥ ४ ॥

समुद्र के समान सम्पूर्ण जगत् का आश्रय परमात्मा है

इस प्रकार वह दृष्टान्त ऐसा है जैसे निरन्तर प्रवाहित होने वाली समुद्र ही जिनका अयन है, ऐसी समुद्रायण नदियाँ लोक में समुद्र को प्राप्त होकर नाम-रूप के तिरस्कारात्मक अदर्शन को प्राप्त

---

१. गतिरात्मभाव इति—तादात्म्येन गम्य इति यावत् । २. भाष्यस्थादिशब्देन ब्राह्मणादिनामगृहीत्वा तत्सृष्टेः प्रयोजनमाह—ब्राह्मणादिनाम्नेति । ब्राह्मणादिनाम्ना उक्तः—कृतो यो व्यवहारो ब्राह्मणो बृहस्पतिसवेन यजेतेत्येवमादिलक्षणस्तत्र क्षत्रियादिप्रसक्त्यात्मकसंकरपरिहारार्थमित्यर्थः । अत्रत्यादिना देवदत्तादिनामग्रहस्तद्व्यवहारे यज्ञदत्तादिसंकरपरिहारः फलमिति भावः । ३. अवष्टम्भः संयोगविशेषः । ४. रथयोगानिति—हयानित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चाऽऽसां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ।। ५ ।।

सर्व द्रष्टा की सर्वाधिष्ठान पुरुष में लीन होने वाली ये सोलह कलाएँ उस पुरुष को प्राप्त कर लीन हो जाती हैं। उन कलाओं के नाम रूप नष्ट हो जाते हैं और वे पुरुष ऐसा कह कर पुकारी जाती हैं। ऐसा जानने वाला वह विद्वान् भी कलाहीन और अमर हो जाता है। इसी संबन्ध में यह अग्रिम श्लोक प्रसिद्ध है ।। ५ ।।

गच्छन्ति । [1]तासां चास्तं गतानां भिद्येते विनश्यतो नामरूपे गङ्गायमुनेत्यादिलक्षणे । तद्भेदे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते तद्वस्तूदकलक्षणमेवं यथाऽयं दृष्टान्तः । उक्त लक्षणस्य प्रकृतस्यास्य पुरुषस्य परिद्रष्टुः परि समन्ताद्द्रष्टुर्दर्शनस्य कर्तुः स्वरूपभूतस्य यथाऽर्कः स्वात्मप्रकाशस्य कर्ता सर्वतस्तद्वदिमाः षोडश कलाः प्राणाद्या उक्ताः कलाः पुरुषायणा नदीना-

[2]पूर्वरूपतिरस्कारमित्यर्थः । तद्वस्त्विति । नामरूपनाशानन्तरं परिशिष्टमुदकलक्षणं वस्तु समुद्र इत्येवोच्यत इत्यन्वयः । [3]पुरुषस्येति कर्मणि षष्ठी । पुरुषं स्वात्मरूपं परितः सर्वं स्वरूपत्वेन पश्यत इत्यर्थः । द्रष्टुरित्युक्त [4]आगन्तुकस्य दर्शनस्य कर्ता प्रतीयत इत्यत आह—दर्शनस्य कर्तुः स्वरूपभूतस्येति । स्वरूपत्वे दर्शनस्य तत्र कर्तृत्वानुपपत्तेस्तदर्थकतृच्प्रत्ययविरोध इत्याशङ्क्यार्कः सर्वतः स्वप्रकाशक इत्यत्र यथा कर्त्रर्थकस्य प्रत्ययस्यो[5]पचरितत्वं तद्वदिहापीत्याह—यथाऽर्क इति । नदीनामिवेति । इवशब्दस्[6]तथा-

हो जाती हैं और उन अस्त हुयी नदियों के वे गंगा, यमुनादि नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं और समुद्र से अभेद हो जाने के कारण वह जलमय वस्तु समुद्र इस नाम से ही पुकारी जाती हैं, जैसा यह दृष्टान्त है। इसी प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त परिद्रष्टा पुरुष की ये प्राणादि उपर्युक्त कलायें (पुरुष से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाती हैं) जैसे सूर्य सब ओर अपने स्वरूपभूत प्रकाश का कर्ता है,

१. उक्तं विशदयति—तासां चेत्यादिना । २. उदकत्वरूपेण समुद्रेऽपि सत्त्वादाह—पूर्वरूपेति । इवैत्यनैत्यादिविशिष्टरूपेत्यर्थः । ३. पुरुषस्येति कर्मणि षष्ठीति—परिद्रष्टुरित्यस्य कर्मपुरुषस्येतीत्यर्थः । ततो व्याचष्टे-पुरुषं स्वात्मरूपमित्यादि । वस्तुतस्तु अस्येत्यस्य व्याख्यान पुरुषस्येति परिद्रष्टुरस्येति च समानाधिकरणे षष्ठ्यौ द्रष्टृत्वं चात्र दर्शनात्मकत्वमेव स्वरूपदर्शनं च निर्विषयमेव तदेतत्सर्वमननुसंधायैवैतदुक्तमित्यवधेयम् । ४. आगन्तुकस्येति—कर्तृजन्यत्वात्क्रियाया इति भावः । ५. उपचरितत्वमिति—अव्यवधानापादकत्वरूप-कर्तृसादृश्यप्रयुक्तत्वमिति यावत् । ६. तथाशब्दार्थ इति—यथाशब्दार्थसहिततथाशब्दार्थ इत्यर्थः । तथा च व्याचष्टे—यथेत्यादि ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः । तं वेद्यं

जैसे रथ की नाभि में अरे लगे रहते हैं, वैसे ही जिसमें उक्त सब कलाएँ स्थित रहती हैं (अर्थात् उनकी उत्पत्ति स्थिति और लायका एक मात्र आधार वह पुरुष ही है, उस ज्ञातव्य पुरुष को

मिव समुद्रः पुरुषोऽयनमा[1]त्मभावगमनं यासां कलानां ताः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्य पुरुषात्मभावमुपगम्य तथैवास्तं गच्छन्ति। भिद्येते चाऽऽसां नामरूपे कलानां प्राणाद्याख्या रूपं च यथास्वम् । भेदे च नामरूपयोर्यदनष्टं तत्त्वं पुरुष इत्येवं प्रोच्यते ब्रह्मविद्भिः । य एवं विद्वान्गुरुणा [2]प्रदर्शितकलाप्रलयमार्गः स एष विद्यया प्रविलापितास्वविद्याकामकर्मजनितासु प्राणादिकलास्वकलोऽविद्याकृतकलानिमित्तो हि मृत्युस्तदपगमेऽकलत्वादेवामृतो भवति, तदेतस्मिन्नर्थे एष श्लोकः ॥ ५ ॥

अरा रथचक्रपरिवारा इव रथनाभौ रथचक्रस्य नाभौ यथाप्रवेशितास्तदाश्रया

शब्दार्थे । यथा नदीनां समुद्रोऽयनं तथा पुरुषोऽयनमित्यन्वयः । अस्तगमनस्वरूपमाह—भिद्येते इति । नामरूपभेद एवास्तगमनमिहेत्यर्थः । यथास्वमिति । यस्य यत्स्वरूपं प्राणाद्यात्मकं तदपि भिद्यत इत्यन्वयः । पुरुष इत्येवं प्रोच्यत इत्यस्यार्थमाह—भेदे चेति । यदनष्टमिति । [3]कलानां हि रूपमारोप्याधिष्ठानोभयात्मकं सत्यानृतमिथुनरूपं, तत्राऽऽरोप्यस्य नामरूपात्मकस्य भेदेऽधिष्ठानात्मकं रूपं पुरुषात्मनोच्यत इत्यर्थः । यथा समुद्रस्वरूपभूतं जलं मेघैराकृष्याभिवृष्टं गङ्गादिनामरूपोपाधिना समुद्राद्भिन्नमिव व्यवह्रियमाणं तदुपाधिविगमे समुद्रस्वरूपमेव प्रतिपद्यत एवमविद्याकृतनामरूपोपाधिवशादात्मनो भिन्नमिव स्थितं सर्वं जगद्विद्ययाऽविद्याकृतनामरूपविगमे ब्रह्ममात्रतयाऽवशिष्यत इत्यर्थः । एवं प्राणादिकलोपाधिक आत्मन उत्क्रमणादिशब्दितमरणादिव्यवहार इत्युक्तेः प्रयोजनं प्राणादिनिवृत्तावुत्क्रमणादिसर्वसंसारधर्मरहितात्मस्वरूपावस्थानरूपं दर्शयितुं स एष इति वाक्यं व्याचष्टे—य एवं विद्वानित्यादिना ॥५॥

परिवारा इति । नाभेः परितो नाभौ नेम्यां च प्रोतास्तिर्यक्काष्ठविशेषा इत्यर्थः । यथा-

---

वैसे ही सब ओर दर्शन का कर्ता प्रकृत पुरुष है । इसीलिये इसे परिद्रष्टा कहते हैं । जिनका अयन अर्थात् आत्मभाव प्राप्ति का स्थान वह पुरुष ही है; उन्हें पुरुषायण कहते हैं, जैसे नदियों को समुद्रायण कहा जाता है । जैसे समुद्र में नदियाँ लीन हो जाती हैं, ऐसा ही ये पुरुषायण पूर्वोक्त कलायें उस पुरुष को प्राप्त कर लीन हो जाती हैं । फिर तो इन कलाओं के प्राणादि नाम और अपने-अपने विभिन्न रूप नष्ट ही हो जाते हैं । इस प्रकार नाम-रूप के नष्ट हो जाने पर भी जिसका नाश नहीं होता । उस तत्त्व को ब्रह्मवेत्ता "पुरुष" ऐसा कहकर पुकारते हैं । इस प्रकार जिसे आचार्य ने कलाओं के प्रलय का मार्ग दिखला दिया है, ऐसा पुरुष तत्त्ववेत्ता कहा गया है। वह उस विद्या के द्वारा अविद्या, काम और कर्मजनित प्राणादि कलाओं के लय कर दिये जाने पर कलारहित हो जाता है । मृत्यु भी

---

१. आत्मभावगमनमिति—आत्मत्वेन तादात्म्येन गन्तव्य इति यावत् । २. प्रदर्शितेति · उपदिष्टकलाविलयोपाय इत्यर्थः । स चोपायस्तत्त्वज्ञानमेव यत आह—विद्ययेति । ३. यदनष्टमित्यन्तोक्तेरैकार्थ्यसंगमादाह—कलानां हीत्यादि ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरुषं [1]वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥६॥
तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद । नातः परम-
स्तीति ॥ ७ ॥

तुम जानो। हे शिष्य ! जैसे तुम्हें मृत्यु सब ओर से व्यथित न करे, उसका साधन एक मात्र कलाओं के अधिष्ठान तत्त्व का अवबोध ही है ॥ ६ ॥

उन शिष्यों को (इस प्रकार उपदेश देकर पिप्पलाद मुनि ने) उनसे कहा—उस ज्ञातव्य परब्रह्म को मैं इतना ही जानता हूँ, इससे अधिक कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है ॥ ७ ॥

भवन्ति यथा तथेत्यर्थः। कलाः प्राणाद्या यस्मिन्पुरुषे प्रतिष्ठिता उत्पत्तिस्थितिलयकालेषु तं पुरुषं कलानामात्मभूतं वेद्यं वेदनीयं पूर्णत्वात्पुरुषं पुरि शयनाद्वा वेद [2]जानीयात्। यथा हे शिष्या मा वो युष्मान्मृत्युः परिव्यथा मा परिव्यथयतु। [3]न चेद्विज्ञायेत पुरुषो मृत्यु-निमित्तां व्यथामापन्ना दुःखिन एव यूयं स्थ। अतस्तन्मा भूद्युष्माकमित्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

तानेवमनुशिष्य शिष्यांस्तान्होवाच पिप्पलादः किलैतावदेव वेद्यं परं ब्रह्म वेद विजानाम्यहमेतत्। नातोऽस्मात्परमस्ति प्रकृष्टतरं वेदितव्यमित्येवमुक्तवाञ्शिष्याणाम-

---

प्रवेशिता इति। यथावत्सम्यक्प्रवेशिता इत्यर्थः। माङोऽर्थं व्यतिरेकप्रदर्शनेन स्पष्टयति—न चेदिति ॥६॥

शिष्याणां कृतार्थताबुद्धिजननार्थं तानित्यादि वाक्यं व्याचष्टे—तानेवमिति ॥७॥

अविद्याजनित कलाओं के कारण ही होती है। इसीलिये उनकी निवृत्ति हो जाने पर वह पुरुष निष्कल हो जाने के कारण ही अमर हो जाता है। इस विषय में यह प्रसिद्ध श्लोक है ॥ ५ ॥

मरणदुःख की निवृत्ति में ब्रह्मज्ञान का उपयोग

जैसे रथ के पहिये की नाभि में रथचक्र परिवार रूप अरे आश्रित रहते हैं, वैसे ही जिस पुरुष में प्राणादि कलायें अपनी उत्पत्ति, स्थिति और लय के समय स्थित रहती हैं। कलाओं के आत्मभूत उस ज्ञातव्य पुरुष को जानो। शरीर एवं ब्रह्माण्ड रूप पुर में शयन करने के कारण उसे पुरुष कहते हैं। हे शिष्यो ! उसे जान लेने पर तुम्हें मृत्यु सब ओर से व्यथित न करे, यदि तुमने उस पुरुष को नहीं जाना तो तुम मृत्यु निमित्तक व्यथा को प्राप्त होकर अवश्य दुःखी होओगे। अतः तुम्हें वह दुःख न हो, यही मेरे कहने का अभिप्राय है ॥ ६ ॥

उपसंहार

उन शिष्यों को इस प्रकार का उपदेश देकर पिप्पलाद मुनि ने उनसे कहा—उस ज्ञातव्य परब्रह्म को मैं इतना ही जानता हूँ कि इससे उत्कृष्टतर और कोई ज्ञातव्य नहीं है, अभी कुछ जानना

---

१. वेद यथा—इत्येकं वा पदं वेदयतेत्यर्थकं छान्दसमित्यवगन्तव्यम्। २. वेदेति लेटि रूपमित्याशयेनाह—जानीयादिति। मुमुक्षुरिति शेषः। ३. न चेदित्यादि—पुरुषवेदनेन कलाप्रयुक्तमृत्युव्यथाऽभावं वदन् कलानामात्मन्यध्यस्तत्वमावेदयति—अध्यस्तस्यैवाधिष्ठानज्ञानेन निवृत्तिसंभवादित्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ८ ॥

तब (गुरु से उपदेश पाये हुए) उन शिष्यों ने विद्यादान की अन्य कोई प्रतिक्रिया न देखकर उनकी पूजा करते हुए कहा कि आप तो हमारे पिता हैं, जिन्होंने (विद्यारूप नौका के द्वारा) हमें अविद्या और उसके कार्य से पार कर दिया है। अतः आप परमर्षि को हमारा बार-बार नमस्कार है। इस मन्त्र में द्विरुक्ति आदर दिखलाने के लिये है ॥ ८ ॥

॥ इति षष्ठः प्रश्नः ॥

॥ इति प्रश्नोपनिषत्समाप्ता ॥

विदितशेषास्तित्वाशङ्कानिवृत्तये कृतार्थबुद्धिजननार्थं च ॥ ७ ॥

ततस्ते शिष्या गुरुणाऽनुशिष्टास्तं गुरुं कृतार्थाः सन्तो विद्यानिष्क्रयमपश्यन्तः किं कृतवन्त इत्युच्यते—अर्चयन्तः पूजयन्तः पादयोः पुष्पाञ्जलि[1]प्रकिरणेन प्रणिपातेन च शिरसा, किम्, ऊचुरित्याह—त्वं हि नोऽस्माकं पिता ब्रह्मशरीरस्य विद्यया जनयितृत्वान्नित्यस्याजरामरस्याभयस्य । यस्त्वमेवास्माकमविद्याया विपरीतज्ञानाज्जन्मजरामरणरोगदुःखादिग्रहादविद्यामहोदधेर्विद्याप्लवेन परमपुनरावृत्तिलक्षणं मोक्षाख्यं महोदधेरिव

प्रकिरणेनेति । प्रक्षेपेणेत्यर्थः । अतः पितृत्वं तवेति ।

"जनकश्चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः" ॥

इति स्मृतेरित्यर्थः । योऽस्माकमितिहेतूक्तेस्तात्पर्यं वदन्पितृत्वोक्तिमात्रेण विद्यानिष्क्रयार्थं किं

शेष रह गया है। ऐसी शिष्यों की आशंका की निवृत्ति एव उनमें कृतार्थ बुद्धि उत्पन्न करने के लिये पिप्पलाद मुनि ने उनसे इस प्रकार कहा ॥ ७ ॥

आचार्य की वन्दना

तत्पश्चात् गुरु से उपदेश प्राप्त किए हुये एवं कृतार्थ उन शिष्यों ने उस विद्यादान का कोई निष्क्रय न देखकर क्या किया, इसे बतलाते हैं। उन्होंने आचार्य के चरणों में पुष्पाञ्जलि प्रदान रूप अर्चन किया एवं शिर झुकाकर प्रणाम करके उनका पूजन करते हुये कहा। क्या कहा—इसे कहते हैं। विद्या के द्वारा हमारे नित्य अजर, अमर एवं अभयरूप ब्रह्म शरीर के जनक होने के कारण आप हमारे पिता हैं (इतना ही नहीं बल्कि) जन्म, जरा, मरण, रोग-दुःखादि ग्राहों के कारण जो अपार महा-

---

१. प्रकिरणेनेति टुवम उद्गिरणे इति वदित्त्वं पृषोदरादित्वादिति बोध्यम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

इत्यथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषदि षष्ठः प्रश्नः ॥ ६ ॥

इत्यथर्ववेदीया प्रश्नोपनिषत्समाप्ता ॥

पारं तारयस्य[1]स्मानित्यतः पितृत्वं तवास्मान्प्रत्युपपन्नमितरस्मात् । इतरोऽपि हि पिता शरीरमात्रं जनयति तथाऽपि स प्रपूज्यतमो लोके किमु वक्तव्यमात्यन्तिकाभयदातुरित्यभिप्रायः । नमः परमऋषिभ्यो ब्रह्मविद्यासंप्रदायकर्तृभ्यो नमः परमऋषिभ्य इति द्विर्वचनमादरार्थम् ॥ ८ ॥

इति प्रश्नोपनिषदि षष्ठः प्रश्नः ॥ ६ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यश्रीमच्छंकरभगवत्कृतं प्रश्नोपनिषद्भाष्यं समाप्तिमगमत् ॥

दत्तमित्यपेक्षायां स्वशरीरमेव परिचारकतया दासभावेन गुरवे दत्तमित्याह—इतरस्मादिति । [2]पितृत्वादेव पूज्यतरत्वं परिचार्यत्वं स्वामित्वं(?) [3]किमु वक्तव्यमित्यर्थः । अत एव वाजसनेयके मां चापि सह दास्यायेतीत्युक्तमिति भावः ॥८॥

इत्यानन्दज्ञानविरचितप्रश्नोपनिद्भाष्यटीकायां षष्ठः प्रश्नः ॥४॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्कैवल्येन्द्रशिष्यज्ञानेन्द्रगुरुचरणसेविनारायणेन्द्रसरस्वतीविरचितं प्रश्नोपनिषद्भाष्यविवरणं समाप्तम् ।

सागर के समान है। उस विपरीत ज्ञानरूप अविद्या समुद्र से विद्यारूप नौका के द्वारा उस ओर महासागर के परले पार जाने के समान अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष नामक दूसरे छोर पर पहुँचा दिया है। अतः जन्मदाता पिता की अपेक्षा भी आप में श्रेष्ठ पितृत्व युक्ति-युक्त सिद्ध है क्योंकि दूसरा पिता भी केवल शरीर को ही उत्पन्न करता है। फिर भी वह लोक में सबसे अधिक पूज्य होता है। फिर भला आत्यन्तिक अभय देने वाले आप आचार्यों के पूजनीयत्व के सम्वन्ध में तो कहना ही क्या है। अतः ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय के प्रवर्तक परमर्षि को नमस्कार हो। यहाँ पर "नमः परमऋषिभ्यः" इस वाक्य की दो बार आवृत्ति आदर दिखलाने के लिये है ॥ ८ ॥

❀ श्रीशंकरः प्रीयताम् ❀

१. अस्माकमिति षष्ठ्यन्तं द्वितीयान्तत्वेन परिणमय्याह—अस्मानिति । २. पितृत्वादेवेति—शरीरमात्रजनयितृत्वादेवेत्यर्थः । ३. किमु वक्तव्यमित्यनन्तरमात्यन्तिकाभयदातृत्वे त्विति द्रष्टव्यम् ।

गिरिणा विष्णुदेवेन पठित्वैव गुरोर्मुखात् ।
टिप्पणं चात्र विन्यासि स्वमनःशुद्धये परम् ॥

श्रीमन्महामण्डलेश्वरस्वामिगोविन्दानन्दगिरिपादशिष्यविद्यावाचस्पतिश्रीमन्महामण्डलेश्वरस्वामिविष्णुदेवानन्दगिरिविरचिता गोविन्दप्रसादिनीटिप्पणीसमाप्तिङ्गता ।

इति सटिप्पणटीकाद्वयसंवलितशांकरभाष्यसमेता प्रश्नोपनिषद् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथास्याः प्रश्नोपनिषदो मन्त्रप्रतीकानां वर्णानुक्रमणी

मन्त्रप्रतीकानि	मं.	प्रश्नः	पृ.
अ.			
अत्रैष देवः स्वप्ने	५	४	५४
अथ कबन्धी कात्यायनः	३	१	४
अथ यदि द्विमात्रेण	४	५	७३
अथ हैनं कौसल्यः	१	३	३२
अथ हैनं भार्गवः	१	२	२१
अथ हैनं शैब्यः	१	५	६८
अथ हैनं सुकेशा	१	६	८०
अथ हैनं सौर्यायणी	१	४	४४
अथाऽऽदित्य उदयन्	६	१	७
अथैकयोर्ध्व उदानः	७	३	३७
अथोत्तरेण तपसा	१०	१	१२
अन्नं वै प्रजापतिः	१४	१	१७
अरा इव रथनाभौ	६	२	२६
अरा इव रथनाभौ	६	६	१०९
अहोरात्रो वै प्रजा-	१३	१	१६
आ.			
आत्मन एष प्राणः	३	३	३३
आदित्यो ह वै प्राणः	५	१	६
आदित्यो ह वै बाह्यः ... ... —	८	३	३८
इ.			
इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा	९	२	२८
उ.			
उत्पत्तिमायतिम्	१२	३	४३
ऋ.			
ऋग्भिरेतं यजुर्भिः	७	५	७८
ए.			
एतद्वै सत्यकाम	२	५	६९
एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा	९	४	६५
एषोऽग्निस्तपति	५	२	२५
त.			
तद्ये ह वै तत्	१५	१	१८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि	मं.	प्रश्नः	पृ.
तस्मै स होवाच	४	१	५
,, ,, ,, ...	२	२	२२
,, ,, ,, ...	२	३	३३
,, ,, ,, ...	२	४	४८
,, ,, ,, ...	२	६	८३
तान्वरिष्ठः प्राणः	३	२	२३
तान्ह स ऋषिः	२	१	३
तान्होवाचैतावत्	७	६	११०
तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः	६	५	७७
तेजो ह वाव उदानः	९	३	४०
ते तमर्चयन्तः	८	६	१११
तेषामसौ विरजः	१६	१	१९
द.			
देवानामसि वह्नितमः	८	२	२७
प.			
पञ्चपादं पितरम्	११	१	१३
परमेवाक्षरम्	१०	४	६६
पृथिवी च पृथिवी-	८	४	६३
पायूपस्थेऽपानम्	५	३	३५
प्रजापतिश्चरसि	७	२	२६
प्राणस्येदं वशे	१३	२	३१
प्राणाग्नय एवैतस्मिन्	३	४	५०
भ.			
भद्रं कर्णेभिः	१	१	१
म.			
मासो वै प्रजापतिः	१२	१	१५
य.			
य एवं विद्वान्प्राणम्	११	३	४२
यच्चित्तस्तेनैष प्राणम्	१०	३	४१
यथा सम्राडेव	४	३	३४
यदा त्वमभिवर्षसि	१०	२	२९
यदुच्छ्वासनिश्वासौ	४	४	५१
यः पुनरेतं त्रिमात्रेण	५	५	७४
या ते तनूर्वाचि	१२	२	३०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि	मं.	प्रश्नः	पृ.
व.			
विज्ञानात्मा सह	११	४	६७
विश्वरूपं हरिणम्	८	१	६
व्रात्यस्त्वं प्राणैक-	११	२	२९
स.			
स ईक्षांचक्रे	३	६	९५
स एष वैश्वानरः	७	१	८
स प्राणमसृजत	४	६	१०५
स यथेमा नद्यः	५	६	१०७
स यदा तेजसा	६	४	६१
स यथा सोम्य	७	४	६२
स यद्येकमात्रम्	३	५	७१
संवत्सरो वै प्रजापतिः	९	१	१०
सुकेशा च भारद्वाजः	१	१	२
सोऽभिमानादूर्ध्वम्	४	२	२४
ह.			
हृदि ह्येष आत्मा	६	३	३६

इतीयं मन्त्रवर्णानुक्रमणी ।

—ई—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.